॥ ओ३म् ॥

मीरपुरी-सर्वस्व

लेखक

पं० बुद्धदेव मीरपुरी

सम्पादक

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी (राज०)-३२२ २३०

प्रकाशक : **श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास**
'अभ्युदय' भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग
स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)- ३२२ २३०
चलभाष : ०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९
Email-aryaprabhakar@yahoo.com

अन्य प्राप्ति स्थान : १. **श्री ऋषिदेवजी**, आर्यसमाज न्यू मुलतान नगर,
ब्लॉलक-सी-१०७-१०८, नई दिल्ली-११० ००५६
चलभाष : ९८१८७०४६०९

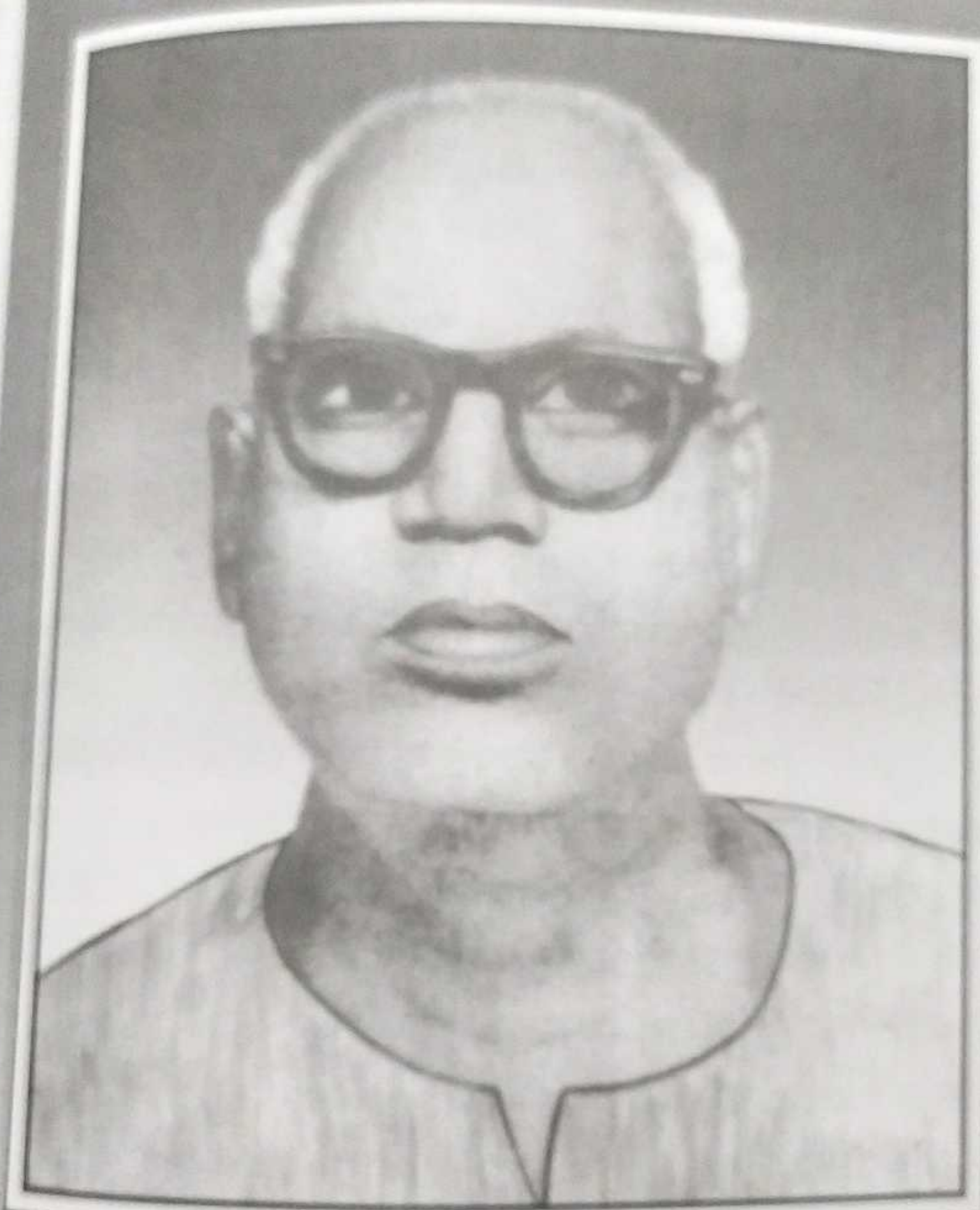
२. **श्री गणेशदास-गरिमा गोयल**, दिल्ली
चलभाष : ९२१२४५८८४१

संस्करण : महर्षि दयानन्द बलिदान पर्व दीपावली, सन् २०१६

मूल्य : ३००.०० रुपये

शब्द-संयोजक : **आर्य लेजर प्रिंट्स**, हिण्डौन सिटी (राजस्थान)

मुद्रक : **राधा प्रेस**, ३८/२/१६, साइट ४, साहिबादा (उ.प्र.)



पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी

प्रकाशकीय

पूर्वकाल में थोड़ा-सा पाप हुआ तो भगवान् ने अवतार लेकर पाप व पापी का नाश किया, लेकिन अब जितना पाप हो रहा है, क्या उसके नाश व धर्मस्थापना के लिए वह अवतार नहीं लेगा? छह दर्शन हमारी वैदिक परम्परा की थाती हैं जो विदेशी षड्यन्त्र के अन्तर्गत परस्पर विरोधी व अमान्य सिद्ध किये गये। महर्षि दयानन्द की मान्यता रही कि यह ईश्वरवादी व एक-दूसरे के पूरक और समर्थक हैं। यही बात श्रद्धेय पण्डितजी ने प्रमाणित की है। इस पुस्तक में संग्रहीत सामग्री हमारे ज्ञानवर्धन की सामग्री तो है ही, साथ ही यह सन्देश भी है कि ऋषि की वेदोक्त मान्यताओं के लिए अभी बहुत कुछ करना शेष है।

पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी आर्ष परम्परा के चिन्तक-विचारक थे। आपको अनेक वैदिक तथा पौराणिक ग्रन्थ कण्ठाग्र थे। शास्त्रार्थों में जब आप बोलते थे तो विरोधी को निरुत्तर होना पड़ता था। ऐसी तार्किक व ज्ञानप्रसूता थी आपकी वाणी। आपने कुछ पुस्तकें लिखीं। हमें जितनी उपलब्ध हो सकीं, वह पूज्य स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती की स्नेहमयी कृपा से सुसज्जित-सुव्यवस्थित आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं। इनके अतिरिक्त किन्हीं के पास कोई पुस्तक या पुस्तिका हो तो हमें उपलब्ध करावाएँ, जिससे जिज्ञासु पाठकों को लाभ हो सके।

हमारे द्वारा प्रकाशित यह संस्करण पूर्वापेक्षा अधिक शुद्ध व उपयोगी बन पड़ा है। श्रद्धेय स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती ने इसका पुनः ईक्क्ष्यवाचन कर शुद्ध किया है। ऋषिराज दयानन्द के १२५ वें बलिदान वर्ष में इस ग्रन्थ का प्रकाशन ऋषि मन्तव्यों के एक अनुयायी लेखक द्वारा एक प्रकाशक की विनम्र व कृतज्ञ श्रद्धाञ्जलि है।

—**प्रभाकरदेव आर्य**

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

जीवन-यात्रा

—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्॥ *
—भर्तृ० नी० ३१

आज हम अपने पाठकों को एक ऐसे शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान् एवं शास्त्रार्थ-महारथी की जीवन-यात्रा का वर्णन सुनाते हैं जिन्होंने न केवल अपने वंश को समुज्ज्वल किया अपितु वसुन्धरा को भी पुण्यवती कर दिया। हमारे चरित-नायक ने न केवल स्वदेश में अपितु विदेशों में भी, देश-देशान्तर और द्वीप-दीपान्तर में जाकर वैदिक धर्म की दुन्दुभि बजाई और ओ३म् की पावन पताका फहराई।

जन्म

संवत् १९५५ में माधवाचार्य का जन्म हुआ था। माधवाचार्य का मान मर्दन करने के लिए, उनकी दुष्टता का दलन करने के लिए, उनके छल-कपट का पर्दाफ़ाश करने के लिए माधवाचार्य से एक वर्ष पश्चात् संवत् १९५६ में हमारे चरित-नायक का जन्म हुआ।

हमारे चरित-नायक का जन्म अबोहर (जिला-फ़ीरोजपुर) से सात मील परे एक गाँव अमरपुर में हुआ। आपने अपने दिव्यालोक से कट्टर मूर्त्तिपूजक श्रीरामशरणदासजी के गृह को आलोकित किया। आपके दो भाई और तीन बहिनें थीं। आपके पिताजी ने दो विवाह किये थे। प्रथम पत्नी से दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। विमाता से उत्पन्न भाई ही अब जीवित हैं। शेष सभी भाई और बहिनें कालकवलित हो चुके हैं।

बालकाल

हमारे चरित-नायक के नामकरण संस्कार के अवसर पर इनका नाम बुद्धदेव रखा गया। आगे चलकर आप पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी

---

* इस परिवर्तनशील संसार में मरने के लिए तो सभी उत्पन्न होते हैं वस्तुतः जन्म लेना तो उसी का सार्थक है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति हो।

के नाम से विख्यात हुए। पण्डितजी के मीरपुरी कहलाने का भी एक कारण था। प्रचारक्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात् पण्डितजी मीरपुर में पुरोहित के रूप में कार्य करने लगे, परन्तु वे १५ दिन तो मीरपुर में कार्य करते थे और १५ दिन सभा के अधीन कार्य करते थे। पं० श्री बुद्धदेवजी विद्यालङ्कार भी सभा में थे। नामों में भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए हमारे चरित-नायक ने अपने नाम के साथ 'मीरपुरी' शब्द जोड़ दिया। इस प्रकार आप का जन्म स्थान अमरपुर होते हुए भी आप मीरपुरी कहलाये।

जिस समय बालक बुद्धदेव का जन्म हुआ वह समय पौराणिकों और आर्यों के संघर्ष का युग था। यह वह युग था जब आर्यसमाज के द्वारा सुधार का कार्य ज़ोरों पर हो रहा था। उस समय कहीं दलितोद्धार का कार्य हो रहा था, तो कहीं नारी-शिक्षा पर बल दिया जा रहा था। उन दिनों में जब आर्यसमाजों के उत्सव होते थे तब एक-एक उत्सव पर पौराणिकों, किरानियों और कुरानियों से कई शास्त्रार्थ हो जाते थे। उस समय शास्त्रार्थ के बिना उत्सव असफल समझे जाते थे। शास्त्रार्थ का श्रोताओं पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ता था कि वे पौराणिक मिथ्या आडम्बरों को तिलांजलि देकर आर्यसमाज में प्रविष्ट हो जाते थे।

जैसा पूर्व उल्लेख किया जा चुका है पण्डितजी के पिताजी एक कट्टर मूर्त्तिपूजक थे। इतना ही नहीं वे एक मन्दिर के पुजारी भी थे। पिता अपने पुत्र को सदा अपने अनुरूप ही बनाना चाहता है। पिताजी की इच्छा थी कि उनका पुत्र जन्मकुण्डली देख सके, टन-टन, पूं-पूं करके पूजा कर ले और हनुमान् चालीसा का पाठ कर ले तो वह पूर्ण पण्डित हो जाए, परन्तु पण्डितजी को उच्च विद्या प्राप्त करने की लग्न थी। पण्डितजी पढ़ने के लिए सामग्री जुटाते, पुस्तकें एकत्र करते, परन्तु पिताजी उन्हें तन्दूर में डाल देते। लगभग १५ वर्ष तक ऐसा ही होता रहा, पिता और पुत्र का विरोध चलता रहा, परन्तु पुत्र अपने निश्चय पर अटल और अडिग था। उन्होंने कष्टों और संकटों की परवाह नहीं की, करते भी क्यों—

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं आगे बढ़नेवालों को।
विपदाएँ कब रोक सकी हैं मर कर जीनेवालों की।

मूर्त्तिपूजा में आपकी आस्था और विश्वास न होने के कारण तथा विद्या-अध्ययन की अभिलाषा से आप घर छोड़कर निकल पड़े।

जब आपका अध्ययन समाप्त हुआ तब आप महर्षि दयानन्द की वाटिका आर्यसमाज में प्रविष्ट हो चुके थे। आप आर्यसमाज में किस प्रकार प्रविष्ट हुए, कौन-सा आकर्षण उन्हें समाज में लाया यह पण्डितजी के अपने ही शब्दों में सुनिए।

आर्यसमाज में प्रवेश

''जिस परिवार में मेरा जन्म हुआ वह घोर पौराणिक था। इसमें एक-एक पौराणिक नियम का दृढ़ता से पालन किया जाता था। मेरे स्वर्गीय नाना पं० हरिदत्तजी संस्कृत के एक धुरन्धर विद्वान् थे। उनके पास दर्शन, व्याकरण, पुराण, उपपुराण आदि समस्त पुस्तकें हस्तलिखित थीं जो अब भी मेरे नाना के मन्दिर में रखी हुई हैं। विद्वान् होने अतिरिक्त वे भक्त भी थे। मुझे बाल-काल में ही पुराणों के अध्याय कण्ठस्थ करा दिये थे। उनका कृपा से सैकड़ों देवताओं के स्तोत्रों के सैकड़ों पद तथा सैकड़ों स्तोत्र मैंने कण्ठस्थ कर लिये थे। पौराणिक धर्म में मेरी अत्यन्त श्रद्धा थी। कोई ही ऐसा व्रत होगा जिसको मैं न रखता था। नानाजी की कृपा से मैं पूर्णरूपेण पौराणिक धर्म का आचरण करता था।

मेरे सम्पूर्ण परिवार में एक ही आर्यसमाजी थे। वे मेरे छोटे चाचाजी थे। उनके पास महर्षि दयानन्दकृत सभी ग्रन्थ विद्यमान थे और भी उनके पास आर्यसमाज की सैकड़ों पुस्तकें थीं। उनका पूर्ण प्रयत्न यह था कि मैं किसी प्रकार से आर्यसमाजी बन जाऊँ। वे मुझे पुस्तकें देते थे। मेरे साथ वादविवाद करते थे। मैं उनकी युक्तियों का भली प्रकार उत्तर न दे सकता था। परिणाम यह होता था कि ऊपर से न मानने पर भी मेरे हृदय में आर्यसमाज का प्रभाव होता जाता था। इसके अतिरिक्त मेरे स्वर्गीय गुरु पण्डित चमननाथजी संस्कृतभाषा के अद्वितीय विद्वान् थे। व्याकरण में वे सारस्वत-चन्द्रिका पढ़े हुए थे। मैं उनसे संस्कृत का अध्ययन करता था। सारस्वत-चन्द्रिका व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन मैंने उन्हीं के द्वारा किया। वे मुझे सुनाया करते थे कि हमने जिस समय अमृतसर में संस्कृतविद्या का अध्ययन किया था तब छपे हुए ग्रन्थ न थे, हमने हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

जब हम अमृतसर में पढ़ते थे तब महर्षि दयानन्दजी कई बार अमृतसर पधारे थे और उनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य भी कई बार मुझे (पं० चमननाथजी को) प्राप्त हुआ था। वे धाराप्रवाह संस्कृत

बोलते थे। पण्डितों को उनके सामने जाने का साहस न होता था। इन्हीं मेरे स्वर्गीय गुरुजी ने महर्षि दयानन्दजी की जीवन-घटनाएँ सुना-सुनाकर मेरे हृदय में महर्षि दयानन्द के प्रति अगाध श्रद्धा पैदा कर दी थी। दूसरी बात उन्होंने मेरे हृदय में यह बैठा दी कि महर्षि दयानन्द आर्षग्रन्थों के पक्षपाती थे, अनार्षग्रन्थों के नहीं। इससे मेरे हृदय में वे बातें बैठ गईं। एक तो महर्षि दयानन्द का प्रेम और दूसरे अष्टध्यायी आदि आर्षग्रन्थों का पढ़ना। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए मैं मथुरा जा पहुँचा, क्योंकि मथुरा में ही महर्षि दयानन्द के गुरु भाई और स्वामी विरजानन्दजी के शिष्य पण्डित बनवारीलालजी चौबे अष्टाध्यायी पढ़ाते थे। मैंने उनके पास अष्टाध्यायी पढ़ना आरम्भ कर दिया। वे अध्यापन के अतिरिक्त मुझे महर्षि के अध्ययनकाल के जीवन की अनेक घटनाएँ सुनाया करते थे। उनका रहन-सहन, उनके अध्ययन में बाधाएँ और गुरुजी द्वारा दण्डविधान आदि रोचक घटनाओं को सुनकर मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। श्री स्वामी विरजानन्दजी के जीवन की भी अनेक कथाएँ पण्डितजी बतलाया करते थे। मेरा दुर्भाग्य था कि उनका देहान्त हो गया और मैं उनसे अष्टाध्यायी न पढ़ सका। पण्डितजी द्वारा मेरे अनेक विचार आर्यसमाज के रंग में रंग गये। अब मैंने यह सोचा कि अष्टाध्यायी को कैसे पूर्ण करूँ? पूछने पर पता चला कि ज़िला मेरठ में संस्कृत की पाठशाला है। उसके मुख्याध्यापक पं० बद्रीदत्तजी अष्टाध्यायी के बड़े विद्वान् हैं और वे ऋषि दयानन्द के गुरुभाई के शिष्य हैं। मैं उनके पास जा पहुँचा और सम्पूर्ण अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। उनके द्वारा मेरा आर्यसमाज के बहुत से सिद्धान्तों पर विश्वास हो गया। वे तर्कपूर्वक और शास्त्रीय ढंग से मुझे आर्यसमाज के सिद्धान्त समझाया करते थे।

अष्टाध्यायी का अध्ययन करने के पश्चात् मैं महाभाष्य और दर्शन का अध्ययन करने के लिए वाराणसी चला गया। वहाँ मैंने महाभाष्य और दर्शनों का अध्ययन आरम्भ कर दिया। अन्य विद्यार्थी एक-एक ग्रन्थ पढ़ते थे, किन्तु मैं अनेक ग्रन्थों का अध्ययन एक साथ करता था। दर्शन और महाभाष्य के अतिरिक्त श्री स्वामी शंकराचार्यकृत वेदान्तदर्शन भाष्य तथा उपनिषद् भी मैं पढ़ता था।

दो वस्तुएँ मुझे प्रिय थीं—एक संस्कृत भाषण और दूसरे शास्त्रार्थ करना। मैं प्रायः संस्कृत में ही वार्त्तालाप किया करता था। बड़े-बड़े पण्डितों के साथ मैं आर्यसमाज के सिद्धान्तों को लेकर संस्कृत में वादविवाद करता था। मुझे आश्चर्य होता था कि वाराणसी का बड़े-

से-बड़ा विद्वान् भी आर्यसमाज की युक्तियों को काट न सकता था। एक दिन मैं वेदान्त के एक बड़े आचार्य के पास गया और उनसे प्रश्न किया कि महाराज! मुझे यह बतलाइए कि सम्पूर्ण संसार ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है और ब्रह्म का व्यावर्त है तो ब्रह्म को इस बात का ज्ञान है या नहीं कि मेरा कुछ भाग दुःखी व अज्ञानी है? यदि ब्रह्म को इस बात का ज्ञान है तो वह स्वयं दुःखी व अज्ञानी हो जाएगा क्योंकि एक भाग का दुःख भी सारे ब्रह्म को भोगना पड़ेगा। यदि कहो कि ब्रह्म को इस बात का ज्ञान नहीं है कि मेरा एक भाग दुःखी व अज्ञानी है तब ब्रह्म सर्वज्ञ नहीं ठहरेगा। मेरी इस आर्यसमाजी युक्ति का उत्तर वह कुछ भी सन्तोषजनक न दे सका।

एक दिन मैंने एक और बहुत बड़े पौराणिक दार्शनिक से प्रश्न किया कि जीवात्मा मुक्ति से वापस नहीं होता तो तीन दोष आते हैं—

१. सब जीवों के मुक्त होने से और लौटकर न आने से संसार की समाप्ति होनी चाहिए।

२. अनन्तकाल से सृष्टि चली आती है। कितने ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर व्यतीत हो गये, परन्तु अभी तक हमारी मुक्ति नहीं हुई तो आगे के लिए मुक्ति की क्या सम्भावना है?

३. यदि मुक्ति कर्मों का फल है तब वह उत्पत्तिवाली है। उत्पत्तिवाला पदार्थ अनित्य होता है, फिर मुक्ति को नित्य मानना ठीक नहीं।

मेरे इन प्रश्नों को सुनकर पौराणिक पण्डित सिवाय आँय, बाँय, शाँय के और कुछ उत्तर न दे सका।

एक दिन मैंने एक और पौराणिक पण्डित से प्रश्न किया कि मूर्त्तिपूजा की विधि, उनकी लम्बाई-चौड़ाई का माप तथा धातु, बनाने का विधान आदि चारों वेदों में कहीं लिखा है तो दिखाइए। वह पण्डित इन प्रश्नों के उत्तर में एक भी वेदमन्त्र न बतला सका।

इस प्रकार के प्रश्न जब मैंने वाराणसी के बड़े-बड़े धुरन्धर पौराणिक पण्डितों से किये तब वे मेरे इन प्रश्नों के उत्तर कटुवचन कहने के अतिरिक्त और कुछ न दे सके तो मेरे हृदय में प्रतिदिन आर्यसमाज के सिद्धान्तों की अटलता और सचाई जमती गई। मैंने सोचा कि वाराणसी विद्या का केन्द्र माना जाता है और यहाँ के पण्डित भी यदि पौराणिक सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध नहीं कर सकते और आर्यसमाज की अकाट्य युक्तियों का उत्तर नहीं दे सकते तो

भारत के दूसरे प्रान्तों में रहनेवाले पण्डितों की तो सत्ता ही क्या है?

उपर्युक्त मेरे चाचा व पण्डित श्री चमनलालजी शास्त्री, पण्डित बनवारीलालजी चौबे और पण्डित श्री बद्रीदत्तजी गुरुओं के द्वारा तथा वाराणसी में रहते हुए अपनी विचारधारा और वादविवाद से ही मेरे कट्टर पौराणिक विचारों में परिवर्तन हुआ। जब मैं वाराणसी से विद्या-अध्ययन करके निकला तब पूर्णरूपेण आर्यसमाज के सिद्धान्तों को अपना चुका था। इनमें दृढ़ता के लिए पण्डित गिरधर शर्माजी, पण्डित अखिलानन्दजी आदि अनेक पौराणिक पण्डितों से संस्कृत में शास्त्रार्थ किये और उनको निरुत्तर पाकर मेरे हृदय पर आर्यसमाज के सिद्धान्त की धाक बैठ गई।

—मैं आर्यसमाजी कैसे बना, पृ० १५५-१५६

एक विशेष घटना

पण्डितजी के अध्ययनकाल की एक महत्त्वपूर्ण और विद्यार्थियों के लिए अति-उपयोगी घटना का उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। जब श्री पण्डितजी अध्ययन करते थे तब उनके गुरुजी उन्हें प्रातः चार बजे जगा दिया करते थे। शौचादि से निवृत्त होकर वे ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने के लिए बैठते थे। निद्रा न आ जाए इसलिए उनकी चोटी को रस्सी के साथ ऊपर एक कड़े में बाँध दिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पण्डितजी को ग्रन्थ-के-ग्रन्थ कण्ठाग्र और मुखाग्र थे। वे एक-एक स्थान पर बैठकर महीनों कथा करते थे, परन्तु उन्हें कभी पुस्तक खोलकर देखने की आवश्यकता न होती थी। रामायण, महाभारत तो उन्हें प्रायः पूरे ही कण्ठस्थ थे। पुराणों के अध्याय-के-अध्याय उन्हें स्मरण थे। वेदों के सूक्त-के-सूक्त महर्षि दयानन्द, सायण और उव्वट, महीधर के भाष्यसहित उन्हें कण्ठस्थ थे। अस्तु!

शिक्षा और दीक्षा समाप्त हुई। आप स्नातक बने। अब आप स्वामी दर्शनानन्दजी की प्रेरणा पर अवैतनिक रूप में आर्यजगत् की सेवा करने लगे। इसी बीच पण्डितजी का परिचय अबोहर मण्डी के भजनोपदेशक श्री बेगराजजी से हुआ। उनके सम्पर्क में आने पर आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में कार्य करने लगे।

असहयोगान्दोलन में

कुछ समय सभा में कार्य करने के पश्चात् पण्डितजी देवतास्वरूप भाई परमानन्दजी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

इसी समय श्री सत्यार्थीजी आदि अनेक कॉलेज छात्रों ने भी कॉलेजों का बहिष्कार कर दिया। इन्हीं दिनों में भाईजी की प्रेरणा पर हिसार के एक ग्राम में पढ़ाते रहे। इन दिनों पण्डितजी की दिनचर्या यह थी—कनक, मोठ, मूंग अथवा उड़द उबालकर खाना। आठ गिरह अर्ज के खद्दर की धोती धारण करना। पण्डितजी ने अपनी धर्मपत्नी के विवाह के समस्त वस्त्रों को भी अग्नि की भेंट कर दिया था। इस प्रकार कुछ समय तक आप तपस्वियों की भाँति विचरण करते रहे। जब यह आन्दोलन कुछ शान्त हुआ तब आप अपनी पत्नीसहित जलालपुर जट्टाँ में जा विराजे। वहाँ आपकी धर्मपत्नी दयावतीजी कन्या पाठशाला में और आप हाई स्कूल में अध्यापन करने लगे, परन्तु अध्यापनपद्धति आङ्गल होने के कारण यह पण्डितजी को ग्राह्य न थी, अतः अध्यापन कार्य को तिलांजलि देकर आप आर्यसमाज रावलपिण्डी में पौरोहित्य कार्य करने लगे।

मीरपुर में

मीरपुर के समीप कोटली नामक स्थान पर मुकटेशाह के पुत्र नत्थुशाह का विवाह था। पौराणिक पण्डितों ने संस्कार कराने से इन्कार कर दिया, क्योंकि लड़केवाले आर्यसमाजी थे, अतः विवाह संस्कारार्थ रातों-रात पं० श्री बुद्धदेवजी को रावलपिण्डी से वहाँ लाया गया। पण्डितजी के पाण्डित्य एवं विद्वत्ता का लोगों पर भारी प्रभाव हुआ। मीरपुर के आर्यजनों ने रावलपिण्डी समाज से प्रार्थना की कि पण्डितजी को कुछ समय के लिए मीरपुर भेज दिया जाए। फलस्वरूप पण्डितजी मीरपुर में रहने लगे। आपकी धर्मपत्नी कन्या पाठशाला में अध्यापन करने लगीं और आप पन्द्रह दिन सभा में तथा १५ दिन मीरपुरसमाज में कार्य करने लगे।

जिस समय पण्डितजी मीरपुर में थे उस समय पण्डित श्री माधवाचार्य, पं० अखिलानन्द और पण्डित लीलाधर आदि पौराणिकों के साथ पं० श्री बुद्धदेवजी का शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें विपक्षियों की करारी हार हुई। इस शास्त्रार्थ के पश्चात् तो शास्त्रार्थों का एक ताँता ही लग गया। श्री पण्डितजी के कुछ शास्त्रार्थों की चर्चा करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

शास्त्रार्थ शाम चौरासी

(जि० होशिआरपुर, पंजाब)

यह शास्त्रार्थ पं० श्री बुद्धदेवजी मीरपुरी और पौराणिक पन्थी

श्रीकृष्णजी शास्त्री के साथ हुआ। प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी पं० अमरसिंहजी आर्यपथिक पं० बुद्धदेवजी के सहायक थे। शास्त्रार्थ का विषय था—स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थ वेदानुकूल हैं अथवा श्रीमद्भागवत आदि पुराण। पण्डितजी ने अपने अगाध पाण्डित्य और विद्वत्ता का परिचय देते हुए पुराणों की पोल खोल दी और उनकी धज्जियाँ उड़ा दीं। इस शास्त्रार्थ में आर्यसमाज का प्रभाव बहुत उत्तम रहा।

शास्त्रार्थ ऊधमपुर राज्य, जम्मू

यह शास्त्रार्थ भी उपर्युक्त विषय पर ही था। शास्त्रार्थकर्त्ता भी पं० बुद्धदेवजी और श्रीकृष्ण शास्त्री ही थे। यहाँ भी पण्डितजी ने पुराणों में अनेक गपोड़े और सृष्टिक्रम विरुद्ध बातें दिखलाकर पुराणों की अवैदिकता सिद्ध की। इस शास्त्रार्थ में भी आर्यसमाज का प्रभाव उत्तम रहा।

शास्त्रार्थ मियानी

(जि० शाहपुर, सरगोधा, पंजाब)

यह स्थान अब पापिस्तान में है। यहाँ दो शास्त्रार्थ हुए। पहला शास्त्रार्थ पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी और पं० श्रीकृष्ण शास्त्री के मध्य महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों पर हुआ। पण्डितजी ने एक ओर तो प्रमाणों की झड़ी लगाकर महर्षि दयानन्दकृत ग्रन्थों पर किये गये प्रश्नों का समाधान किया और दूसरी ओर पुराणों पर तीक्ष्ण प्रहार किया तब तो पौराणिक दल में खलबली मच गई। शास्त्रार्थ के मध्य में ही अपने प्रभाव को नष्ट होते देख और अपनी पराजय निश्चित जान पौराणिकों ने कुछ लड़कों को नाचने और कीर्तन करने के लिए खड़ा कर दिया। शास्त्रार्थ बन्द हो गया। श्रीकृष्णजी ने भी मन-ही-मन सोचा—''जान बची और लाखों पाये।''

दूसरे दिन दूसरा शास्त्रार्थ पं० अमरसिंहजी शास्त्रार्थ महारथी और पं० श्रीकृष्णजी शास्त्री के मध्य मूर्त्तिपूजा पर हुआ।

दोनों शास्त्रार्थ में आर्यसमाज का प्रभाव बहुत उत्तम पड़ा।

तीसरे दिन तीसरा शास्त्रार्थ मृतक श्राद्ध पर होना था। उक्त दोनों शास्त्रार्थों में और तीसरे दिन भी पं० श्री मनसारामजी 'वैदिकतोप' उपस्थित थे। तीसरे दिन के शास्त्रार्थ का प्रबन्ध आर्य कन्या पाठशाला में किया गया था। दोनों पक्षों के लिए पृथक्-पृथक् मञ्च तैयार किये गये थे। आर्यजगत् की ओर से तीनों शास्त्रार्थी बहुत-सी पुस्तकें

अपने साथ लिये हुए मञ्च की शोभा बढ़ा रहे थे। शास्त्रार्थ का समय हो गया, परन्तु पौराणिक पक्ष की ओर से श्रीकृष्णजी शास्त्री नहीं आये। कुछ देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् श्री अमरसिंहजी ने घोषणा की कि पं० श्रीकृष्णजी शास्त्रार्थ के लिए नहीं आये हैं, अतः शास्त्रार्थ के विषय 'मृतक श्राद्ध' पर पं० श्री मनसारामजी 'वैदिकतोप' का भाषण होगा। यह सुनकर एक पौराणिक ग्रेजुएट को जोश आया। उसने खड़े होकर कहा कि मैं अभी अपने पण्डितजी को लाता हूँ। श्री अमरसिंहजी ने कहा—"ले आइए, हम व्याख्यान बन्द करके शास्त्रार्थ करने लगेंगे।" वह युवक गया, परन्तु उसके अनुनय और विनय करने पर भी पण्डितजी नहीं आए। लज्जावश वह युवक भी लौटकर नहीं आया। पीछे पता लगा कि उसने पौराणिक पन्थ को ही तिलाञ्जलि दे दी।

पौराणिकों ने उस दिन श्रीकृष्ण शास्त्री और उनके साथी भजनोपदेशक बाबा चमनलाल दोनों को भोजन नहीं दिया।

दूसरे दिन मूर्त्तिपूजा पर पं० अरमसिंहजी और श्री कृष्णजी शास्त्री के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ था उसके प्रधान एक प्रतिष्ठित डाक्टर थे। शास्त्रार्थ के मध्य में उन्होंने शास्त्रीजी से कहा था कि आर्यसमाजी पण्डित बहुत सभ्यता के साथ बोल रहा है। वह अपने पक्ष के समर्थन में प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है और युक्तियाँ देता है और आप युक्तिप्रमाणरहित असभ्यता से बोलते हो। इसमें सनातनधर्म का पक्ष गिर रहा है और बहुत हानि हो रही है। श्री कृष्णजी ने पीछे बताया कि इसी बात पर रुष्ट होकर मैंने शास्त्रार्थ करने से इन्कार किया है।

शास्त्रार्थ उचकोठ (जि० लायलपुर)

यह स्थान भी अब पापिस्तान में है। यहाँ तीन शास्त्रार्थ हुए। यहाँ भी आर्यजगत् के उक्त तीनों ही शास्त्रार्थी शान से डटे हुए थे। पं० अमरसिंहजी के साथ जो शास्त्रार्थ हुआ उसका विषय था—ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की वेदानुकूलता। दूसरा शास्त्रार्थ पं० श्री बुद्धदेवजी मीरपुरी के साथ पुराणों की वेदानुकूलता पर हुआ और तीसरा पं० मनसारामजी वैदिकतोप के साथ मूर्त्तिपूजा पर हुआ। पौराणिक पन्थ की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता पं० श्री कृष्णजी शास्त्री थे।

इस शास्त्रार्थ में उस्तरे को नमस्ते लिखी होने के कारण पं० श्री मनसारामजी ने 'संस्कार चन्द्रिका' जला दी थी। (स्मरण रहे संस्कार

विधि नहीं चन्द्रिका जलाई थी)। इसी शास्त्रार्थ में पं० श्री कृष्णजी शास्त्री ने अपने अद्वितीय शास्त्रज्ञान का परिचय देते हुए गायत्री-मन्त्र के ''धियो यो नः प्रयोदयात्'' इस चरण का अर्थ किया था—धियों=बेटियों को....। और कहा था कि यह आर्यों का गुरुमन्त्र है। इसपर बहुत बिगाड़ हो गया। रात्रिभर श्री कृष्णजी के पास पहरा लगा और सूर्योदय होने से पूर्व ही श्री कृष्णजी को ताँगे में बैठाकर भगा दिया था। सनातनधर्मी भी उनके विरुद्ध हो गये थे। गायत्री-मन्त्र का ऐसा गन्दा अर्थ करने की शिकायत सनातनधर्मी नेता गोस्वामी गणेशदत्तजी के पास भी गई थी और उन्होंने श्री कृष्णजी को बहुत फटकारा था।

शास्त्रार्थ लाहौर छावनी

यहाँ पाँच शास्त्रार्थ हुए। चार शास्त्रार्थों में शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार और पं० लोकनाथजी तर्कवाचस्पति। एक दिन शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० बुद्धेदेवजी मीरपुरी और उनके सहायक थे पं० श्री अमरसिंहजी आर्यपथिक। पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० अखिलानन्दजी कविरत्न, माधवाचार्य शास्त्री और स्वामी प्रकाशानन्द। अन्तिम शास्त्रार्थ में प्रश्नकर्त्ता थे पं० अखिलानन्दजी और उत्तरदाता थे पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी। उस दिन के शास्त्रार्थ का प्रभाव बहुत उत्तम रहा।

पं० श्री बुद्धेदवजी मीरपुरी कहा करते थे कि जब पं० अमरसिंहजी आर्यपथिक शास्त्रार्थ में मेरे साथ होते हैं तो मुझमें हाथियों का बल आ जाता है।

शास्त्रार्थ हालूबास
(भिवानी के पास)

आर्यजगत् की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० श्री बुद्धदेवजी और पं० अमरसिंहजी आर्यपथिक। पौराणिक पन्थ की ओर से थे पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री। विषय था—महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों की वेदानुकूलता। इस शास्त्रार्थ का प्रभाव ऐसा उत्तम हुआ कि पं० जगदीशचन्द्रजी ने फिर कभी शास्त्रार्थ करने का नाम न लिया। शास्त्रार्थ का नाम सुनकर उनकी घिग्घी बँध जाती थी।

शास्त्रार्थ अम्बाला छावनी

यह शास्त्रार्थ जैनियों के साथ हुआ था। आर्यजगत् की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी और पं० अमरसिंहजी।

जैनियों की ओर से स्वामी कर्मानन्दजी और पं० राजेन्द्रजी थे। स्वामी कर्मानन्दजी[1] के साथ पं० बुद्धदेवजी ने शास्त्रार्थ किया और पं० राजेन्द्रजी के साथ पं० श्री अमरसिंहजी ने। दोनों ही दिन आर्यसमाज का प्रभाव अच्छा हुआ।

शास्त्रार्थ बद्दोमल्ली, जि० स्यालकोट

यह स्थान भी अब पापिस्तान में है। आर्यसमाज का उत्सव था। उसमें पं० श्री रामचन्द्रजी देहलवी और मौलाना सनाउल्ला अमृतसरी के मध्य जीव और प्रकृति के अनादित्व पर शास्त्रार्थ होना था। शास्त्रार्थ से दो घण्टे पूर्व देहलवीजी का तार मिला। जिसमें उन्होंने आने में अपनी विवशता प्रकट की थी। अब समस्या खड़ी हो गई कि शास्त्रार्थ किया जाए अथवा इन्कार कर दिया जाए। आर्यसमाज बद्दोमल्ली के अधिकारी बड़ी उलझन में थे। पं० श्री अमरसिंहजी पथिक वहाँ विद्यमान थे, परन्तु वे उनसे कहने का साहस नहीं करते थे। उनका विचार था कि 'पथिक' जी उनसे कुछ रुष्ट हैं, दूसरे उन्हें यह भी पूरा विश्वास न था कि वे इस विषय पर सनाउल्ला-जैसे विद्वान् से शास्त्रार्थ कर सकते हैं, परन्तु पण्डित बुद्धदेवजी को उनपर पूर्ण विश्वास था और साथ ही उन्हें यह भी ध्यान था कि यदि देहलवीजी के न आने के कारण शास्त्रार्थ न हुआ तो समाज का अपमान और हानि है। उन्होंने आर्यसमाज के अधिकारियों को भी हताश न होने दिया और 'पथिक' जी को एकान्त में ले-जाकर उनके गले से चिपट गये और कहा—मैं आर्यसमाज की लाज बचाने के लिए आपसे साग्रह निवेदन करता हूँ आप इस शास्त्रार्थ से इन्कार कदापि न करना। यह शास्त्रार्थ आपको अवश्य ही करना है। उन दिनों एक व्यक्तिविशेष के कारण पथिकजी के साथ उनका कुछ मनोमालिन्य था, परन्तु आर्यसमाज के हितार्थ उन्होंने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की। 'पथिक' जी ने उनका आदेश मानकर मौलाना

---

१. स्वामी कर्मानन्द जी पहले आर्यसमाजी थे। आर्यसमाज की ओर से उन्होंने जैनियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और उन्हें परास्त किया। जब आर्यों को इनकी चरित्रहीनता का पता लगा तब इन्हें आर्यसमाज से पृथक् कर दिया गया। तब ये जैनी बन गये। वहाँ से इन्हें निकाला गया तो ये सनातनधर्मी बन गये। इन्होंने वाणी का दुरुपयोग किया था, अतः जीवन के अन्तिम २-३ वर्षों में ये वाक्शक्ति से वञ्चित रहे (गूंगे हो गये)। ७-८ वर्ष हुए आपका देहान्त हो गया।

साहब से शास्त्रार्थ किया। प्रभुकृपा से शास्त्रार्थ कमाल का हुआ। मीरपुरीजी ने भरी सभा में 'पथिक' जी को गोद में उठा लिया।[1]

शास्त्रार्थ समुदतीर्थ (करनाल)

पण्डितजी ने यहाँ आर्यसमाज की स्थापना की थी। जब इस समाज का प्रथम वार्षिकोत्सव हुआ तब श्री माधवाचार्य ने जो समीप ही कौल ग्राम के निवासी हैं, सोचा कि मेरी रोटी गई, अतः उन्होंने शास्त्रार्थ की घोषणा कर दी। पण्डित बुद्धदेवजी कब चूकनेवाले थे? उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। नियम निर्धारित किये जाने लगे। माधवाचार्यजी ने कहा कि प्रत्येक वक्ता को २०-२० मिनट मिलने चाहिए। बीस मिनट में प्रतिपक्षी बीसियों प्रश्न कर सकता है और उत्तरदाता को कठिनाई उपस्थित होती है, परन्तु मीरपुरीजी ने इस शर्त को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। माधवाचार्यजी ने अपने रटे-रटाये प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उन्होंने कहा—आर्यसमाजी केवल संहिताओं को वेद मानते हैं। बताओ चारों वेदों में यज्ञोपवीत[2] का मन्त्र कहाँ है? आर्यसमाजी सन्ध्या करते हुए मन्त्र पढ़ते हैं—ओम् वाक्-वाक् इत्यादि तथा ओम् भूः पुनातु शिरसि इत्यादि—ये मन्त्र कौन-से वेद के हैं? 'ओम् नाभिः' में स्वामीजी ने नाभि को इन्द्रिय माना है। यह कौन-सी इन्द्रिय है? और अन्त में वहाँ के क्षत्रियों को भड़काते हुए आपने कहा—'ओ क्षत्रियो! तुम्हारे साथ तो स्वामीजी ने बड़ा अत्याचार किया है। पुरुष मर गया है, उसकी लाश पड़ी हुई है। उसका दाह कर्म करने के लिए लोग खड़े हुए हैं, तब उस स्त्री से कहा जा रहा है कि हे स्त्री! तू इस मरे हुए पति की लाश को छोड़कर इन शेष में से (जो खड़े हुए हैं) किसी एक को चुन ले।'

पण्डित बुद्धदेवजी उत्तर देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने अन्तिम प्रश्न को सबसे पहले लिया। उन्होंने कहा, "पण्डितजी सत्यार्थप्रकाश में 'लाश' शब्द नहीं है।" परन्तु माधवाचार्य कब माननेवाले थे। उन्होंने कहा वहाँ 'लाश' शब्द ही है। सत्य के निर्णयार्थ मीरपुरीजी ने पौराणिक पक्ष से ही एक व्यक्ति को बुलाया। सत्यार्थप्रकाश उसके हाथ में देकर कहा कि पढ़कर सुना दो क्या लिखा है। उस युवक ने

१. यहाँ तक शास्त्रार्थों का यह विवरण शास्त्रार्थ केसरी पं० श्री अमरसिंहजी के संस्मरणों के आधार पर दिया गया है।
२. चारों वेदों में यज्ञोपवीत विषयक लगभग ५२ मन्त्र हैं। (विद्यार्थी)

पढ़कर सुनाया—"हे विधवे! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़के बाकी पुरुषों में से जीते हुए दूसरे पति को प्राप्त हो।" युवक के इतना पढ़ते ही पण्डितजी ने तत्काल एक दोहा बोला—

आशा को लाशा पढ़ें यही पोप की चाल।
बुद्धि इनकी मारी गई खा मुरदों की माल॥

इतना सुनते ही माधवाचार्य जी अपना बोरिया बिस्तर उठाकर भाग पड़े। श्री मीरपुरीजी तो कहते ही रह गये कि अपने शेष प्रश्नों का उत्तर भी लेते जाइए, परन्तु माधवाचार्यजी ने तो कौल में जाकर ही दम लिया। विजयश्री ने मीरपुरीजी के चरण चूमे।

शास्त्रार्थ दसुहा (होशिआरपुर)

दसुहा में श्री बुद्धदेवजी मीरपुरी और श्रीकृष्ण शास्त्री के मध्य एक बहुत ही रोचक, मनोरंजक और निर्णायक शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ का विषय था पुराणों में विभिन्नता। श्री मीरपुरीजी ने अपने पक्ष की पुष्टि में प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहा कि देखिए शैवमत की पुराणों में शिव से भिन्न देवी-देवताओं के उपासकों को पापी लिखा है—

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु यः।
स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते॥

अर्थात् जो राजा शिव का भक्त न होकर अन्य देवताओं में भक्ति रखता है वह ऐसा ही है जैसे कोई युवती अपने पति को छोड़कर जार को चाहती है।

इसी प्रकार वैष्णव पुराणों में रुद्र के भक्तों के विरुद्ध यह लिखा है—

रुद्रभक्ताश्च ये लोके भस्मलिङ्गास्थिधारिणः।
ते पाखण्डत्वमापन्ना वेदबाह्या भवन्तु वै॥

जो लोग रुद्र (शिव) के भक्त हैं और भस्म आदि धारण करते हैं, वे सब पाखण्डी हैं।

इस प्रकार पण्डितजी ने जब पुराणों के श्लोकों की झड़ी लगाई तब श्रीकृष्णजी कोई समाधान न कर सके। इस शास्त्रार्थ का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सनातनधर्म का मन्त्री पौराणिक पन्थ को तिलांजलि देकर आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गया।

शास्त्रार्थ बटाला (पंजाब)

२ मई सन् १९३६ को बटाला, जिला गुरुदासपुर में पं० श्री

बुद्धदेवजी मीरपुरी और माधवाचार्य के मध्य एक ऐसा अद्भुत और रोमांचकारी शास्त्रार्थ हुआ कि "**न भूतो न भविष्यति।**" इस शास्त्रार्थ की अध्यक्षता मुकुन्दकान्त मालवीय ने की थी। श्री मीरपुरीजी ने जब पुराणों की अश्लील कथाएँ सुनानी आरम्भ कीं तो पौराणिकों के छक्के छूट गये। पौराणिकों से कोई उत्तर न बन पड़ा, वे इधर-उधर बगलें झाँकने लगे, तब मीरपुरीजी ने गम्भीर गर्जना करते हुए कहा कि यदि आप किसी विषय पर शास्त्रार्थ नहीं कर सकते तो श्लोक बोलने पर ही हार-जीत का निर्णय रख लो। मैं आर्यजगत् की ओर से अकेला रहूँगा, पौराणिकों की ओर से दो पण्डित आ जाएँ। इस पर माधवाचार्य ने कहा—कि तोते की भाँति रटे हुए श्लोक बोलने में भी क्या कोई वीरता है? इसपर मीरपुरीजी ने कहा कि मैं प्रत्येक श्लोक का अर्थ भी साथ-साथ बोलूँगा, परन्तु पौराणिकों की हिम्मत नहीं हुई। यह शास्त्रार्थ पौराणिकों के लिए बहुत महँगा पड़ा। वहाँ की सनातमधर्म सभा टूट गई। सन् ३६ के पश्चात् आज तक अपनी भीषण पराजय के कारण फिर कभी पौराणिकों को शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं हुआ।

इस शास्त्रार्थ की चर्चा करते हुए नवीनचन्द्र ने माधवाचार्य के अभिनन्दन ग्रन्थ में मिथ्या प्रलाप करते हुए ये शब्द लिखे हैं—"हज़ारों मनुष्यों के सामने श्री मीरपुरीजी ने निरुत्तर होकर स्वामी दयानन्द की बनाई संस्कार-विधि को दियासलाई लगाई थी।"

इस ग्रन्थ को अभिनन्दन ग्रन्थ कहा जाए या 'छल-कपट दर्शन'। यह अभिनन्दन ग्रन्थ झूठ का पुलन्दा है। माधवाचार्य की झूठी और बेतुकी स्तुतियों से भरा हुआ है। यहाँ सत्य और असत्य के निर्णयार्थ हम कुछ स्थल प्रस्तुत करते हैं—

"आपकी (माधवाचार्य की) विनोद प्रियता का उस समय ज्ञान हुआ जब कि देहली महायज्ञ के सुअवसर पर आप द्वारा आमन्त्रित अन्यान्य दयानन्दी उपदेशकों के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए श्री रामचन्द्र देहलवी भी पधारे तो देहलवीजी ने आते ही पूछा कि जूता कहाँ रक्खें? आपने हँसते हुए व्यंग से कहा—जहाँ श्री विद्यालंकारजी ने रक्खा वहीं आप भी रख दें? (अर्थात् श्री बुद्धदेव ने दक्षिण हैदराबाद के मूर्त्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ में मुझसे पराजित होकर स्वामी दयानन्दजी के चित्र पर जूता रखा था। आज शास्त्रार्थ होने से पूर्व ही स्वामीजी के चित्र पर रख दें)।"

पाठकों ने नवीनचन्द्रजी की सभ्यता और शालीनता तो देख ली

अब हम इस सफेद झूठ का पर्दाफ़ाश करते हैं। दिल्ली में जो महायज्ञ हुआ था उसमें माधवाचार्य ने आर्यसमाजियों को ललकारा था। देहलवीजी के माधवाचार्य से जूता रखने की बात पूछना भी सर्वथा मिथ्या है। इस विषय में देहलवीजी का लेखक के नाम लिखित पत्र पठनीय है—

ओ३म्

हापुड़/२३.१.६४

प्रियवर जगदीशजी

सप्रेम नमस्ते!

कुछ वर्ष हुए जब यमुना नदी के मैदान में एक महायज्ञ हुआ था। उस अवसर पर पौराणिकों से आर्यसमाज दीवानहाल का शास्त्रार्थ भी हुआ था। उसमें दोनों पक्षों के मंच जुदा-जुदा खासे फासले पर थे। यदि मैं जूतों के रखने का स्थान पूछता तो माधवाचार्य से क्यूँ पूछता जिनका हमारे मंच से कोई सम्बन्ध न था, परन्तु इस व्यक्ति को तो कोई-न-कोई प्रकार से झूठ घड़कर हैदराबाद की घटना को इस शास्त्रार्थ में भी लाना था, सो लाया और अपनी कलुषित आत्मा का सुबूत दिया।

मान्य पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार ने उस समय हैदराबाद में अपने व आर्यसमाज के, मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध होने का ऐसा जबरदस्त सुबूत दिया कि वहाँ के मुसलमानों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कह उठे कि ''बुत्परस्ती के ख़िलाफ होने का, इससे ज्यादा जबरदस्त व दिलेराना कौन-सा सुबूत हो सकता है जो पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार ने हज़ारों आदमियों की मौजूदगी में भरे हुए जलसे में दिया।''

भवदीय

ह० रामचन्द्र देहलवी

नवीनचन्द्रजी ने पं० व्यासदेवजी शास्त्री एम०ए० के ऊपर भी कीचड़ उछाली है। आप लिखते हैं—''देहली महायज्ञ में पण्डितजी एम०ए० पराजित होकर ज्यों चारपाई पर पड़े कि ऐसा सदमा गुजरा, पुनः उठ ही न सके।''

जिस व्यक्ति ने झूठ बोलने का ठेका लिया हुआ हो उससे सत्य की आशा कैसे की जा सकती है? इस शास्त्रार्थ में हार तो पौराणिक पन्थ की हुई थी। जब श्री व्यासदेवजी शास्त्री ने पूछा की शैव पुराणों के अनुसार वैष्णव उल्लू होते हैं और वैष्णव पुराणों के अनुसार शैव

कौव्वे होते हैं, अब आप बताइए कि आप कौन-सी श्रेणी में आते हैं तो माधवाचार्यजी तिलमिला उठे थे। ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति क्या शास्त्रार्थ में कभी हार सकता है? कभी नहीं। हाँ, नवीनचन्द्रजी सनातनधर्म की पराजय को आर्यसमाज पर लादने का झूठा प्रयास अवश्य कर रहे हैं।

इतने ही प्रमाणों से यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी के सम्बन्ध में जो बातें लिखी गई हैं वे ईर्ष्या-द्वेषवश, अपनी पराजय की झेंप को उतारने के लिए लिखी गई हैं। इनमें सत्य का लेश भी नहीं है।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में कैसा अशिष्ट और अनर्गल प्रलाप किया गया है। इसका भी तनिक-सा नमूना देख लीजिए—

''स्वामीजी अत्यधिक चतुर, अवसरवादी, हाज़िर जबाब और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे—यह सोलहों आने सत्य है। स्वामीजी के कुछ संस्मरण परम्परा श्रुत हैं, जिनसे उनके उपर्युक्त गुणों का पता चलता है। कहते हैं, एक बार मुलतान के प्रसिद्ध पण्डित श्री कूड़ारामजी उनसे शास्त्रार्थ करने आये। स्वामीजी सुन चुके थे कि वे बहुत बड़े विद्वान् हैं, अतः स्वामीजी ने चतुरता से काम लिया। पण्डितजी के आते ही उनसे पूछा—आपका शुभ नाम? पण्डितजी बोले—कूड़ाराम। बस, फिर क्या था स्वामीजी ने उपहास करना आरम्भ किया, कहा छी-छी-छी-छी कूड़ा कचरा-मल और राम, यह सुनकर पण्डितजी उनकी अशिष्टता पर क्रुद्ध हो गये और वापस लौट गये। स्वामीजी का तीर चल गया ''जान बची और लाखों पाये।''

समीक्षा—महर्षि दयानन्द के किसी भी जीवन चरित्र में इस घटना का उल्लेख नहीं है। कूड़ाराम नामक कोई व्यक्ति कभी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने नहीं आया। इस अनर्गल घटना को लिखकर लेखक ने महर्षि के विमल चरित्र पर वृथा कीचड़ उछालने का प्रयास किया है।

आगे फिर लिखते हैं—एक दिन एक संन्यासी ने स्वामीजी से कहा कि ''आप रुपये-पैसों को क्यों संग्रह करते हो, संन्यासी को तो धातुस्पर्श का निषेध है।'' स्वामीजी ने संन्यासी के मुण्डित मस्तक की ओर संकेत करते हुए पूछा कि ''हजामत जूते से करवाकर आये हो क्या?''

समीक्षा—स्वामीजी का यह उत्तर तो युक्तियुक्त और समीचीन ही है। पता नहीं माधवाचार्य को इस उत्तर पर दुःख क्यों है ?

"एक बार एक पादरी ने कहा कि वेदों में तोप का भी उल्लेख नहीं, स्वामीजी बोले—है क्यों नहीं ? देखो—दुष्टः शब्द....यथेन्द्रशत्रुः स्वर—'तोप' राधात्।"

समीक्षा—यदि माधवाचार्यजी अथवा उनका कोई हिमायती इस घटना को महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में अथवा जीवनियों में दिखा देंगे तो हम उन्हें १००० (एक सहस्र) मुद्रा पारितोषिक देंगे। यदि किसी माई के लाल में दम-खम हो तो पौराणिक पन्थ की कटती हुई नाक को बचाये।

लीजिए इस सम्बन्ध में महर्षि के विचार भी पढ़ लीजिए—

प्र०—....और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं ?

उ०—....तोप और बन्दूक ये नाम अन्य देशभाषा के हैं। संस्कृत और आर्यवर्तीय भाषा के नहीं, किन्तु जिनको विदेशी जन तोप कहते हैं संस्कृत और भाषा में उनका नाम 'शतघ्नी' और जिसको बन्दूक कहते हैं उसको संस्कृत और आर्यभाषा में 'भुशुण्डी' कहते हैं।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

दुष्टः शब्द..........इत्यादि वाक्य महाभाष्य का है। यह वेदमन्त्र नहीं है। महर्षि दयानन्द केवल संहिताओं को ही वेद मानते हैं, अतः वे ऐसा उत्तर कदापि नहीं दे सकते। एक बात और इस वाक्य में 'तोप' शब्द तो वैसे भी नहीं है। अन्तिम चरण का पाठ इस प्रकार है—**'यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्'**। यहाँ भी लेखक ने अपने संस्कृत ज्ञान की शून्यता और हृदय के कालुष्य का ही परिचय दिया है।

अब माधवाचार्य के पाण्डित्य का एक नमूना और देख लीजिए—

"स्वामी दयानन्दजी की यही प्रवृत्ति प्रायः शास्त्रार्थों में पाई जाती है। काशी शास्त्रार्थ जो स्वामी विशुद्धानन्दजी से होना था, उसमें भी आरम्भ में ही दयानन्दजी ने जान-बूझकर एक शोशा छोड़ा। लेखनी के स्थान में 'कलम' शब्द का प्रयोग कर दिया। विद्वन् मण्डल उपहास करने लगा। स्वामीजी का तीर चल गया। वे चाहते

---

* इस लेख पर लेखक का नाम नहीं है। भाषाशैली और लेख में दी गई युक्तियों के आधार पर हमारी धारणा है कि यह लेख इस अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए माधवाचार्य ने ही लिखा है, किसी कारणवश अपना नाम नहीं दिया है।

यही थे कि किसी शास्त्रीय गूढ़ विषय की चर्चा ही न चलने पाये।''*

समीक्षा—अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक शिवकुमार गोयल के लिए तो संस्कृतभाषा काला अक्षर भैंस बराबर है, परन्तु यहाँ तो माधवाचार्य की विद्वत्ता का भी दिवाला पिट गया। जिस व्यक्ति को इतना भी पता नहीं है कि 'कलम' शब्द शुद्ध संस्कृत का है वह आचार्य कैसे बन गया? हमारे मित्र श्री कुशवाहाजी ने ठीक ही लिखा है कि ये आचारज थे। आचारज को ही इन्होंने आचार्य के रूप में परिवर्तित कर लिया है। सातवीं-आठवीं श्रेणी का बच्चा भी जानता है कि 'कलम' संस्कृत का शब्द है। यदि स्वामीजी ने लेखनी के स्थान पर 'कलम' का प्रयोग कर दिया तो क्या गुनाह कर दिया?

वस्तुतः स्वामीजी ने लेखनी के स्थान पर 'कलम' का प्रयोग नहीं किया था, उन्होंने तो यह पूछा था—''**व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता न वेति।**'' अर्थात् व्याकरण में 'कल्मसंज्ञा' कही गई है या नहीं? काशी का सारा विद्वन्मण्डल इस प्रश्न का उत्तर न दे सका और महर्षि का यह प्रश्न आज भी उसी प्रकार खड़ा हुआ है।

अपना पेट पालने के लिए दूसरों की आँखों में धूल डालना छोड़ो। जब कोई बात लिखें तो संयत होकर और सोच-समझकर लिखा करें।

आप कहते हैं—''स्वामीजी अत्यधिक चतुर, अवसरवादी, हाज़िर जवाब और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे—यह सोलहों आने सत्य है।'' हमने ऊपर यह सिद्ध कर दिया है कि महर्षि के सम्बन्ध में आपने जो बातें लिखी हैं वे सब मिथ्या हैं। अब हम आपके अभिनन्दन ग्रन्थ से यह सिद्ध करेंगे कि उपर्युक्त लिस्ट आपके जीवन पर पूर्णरूपेण लागू होती है। लीजिए पढ़िए—

''बालक माधव बाल्यावस्था से ही कितना प्रत्युत्पन्नमति और प्रतिभाशाली था इसका पता हमें निम्न घटनाओं से चलता है। कौल से छह कोस की दूरी पर कोर ग्राम में एक बार वह अकेला ही सत्यनारायण कथा कहने पहुँचा। घर से चलते समय उसने शालिग्राम की प्रतिमा लेना चाही, परन्तु उसे पण्डितजी (माधव के पिताजी) अपने साथ ले-गये थे। निदान बालक ने कमल गट्टा जिसे कि वह पहले खेल-खेल में शालिग्राम बनाकर पूजा करता था, अपने साथ ले लिया। गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर माधव ने कार्य शुरु किया। जब ठाकुरजी को दूध में स्नान कराया गया तो ठाकुरजी ऊपर तैरने लगे।

यजमान ने यह देखा तो बोला—भइया! यह कैसे ठाकुरजी हैं, गुरुजी के ठाकुरजी तो दूध में डूब जाते थे, पर ये तो तैर रहे हैं?''

ऐसे में और कोई होता तो घबरा जाता पर माधव ने इतमीनान से उत्तर दिया—''लालाजी, यह सेतुबन्ध रामेश्वर से लाई गई प्रतिमा है, इसकी यही खूबी है कि पानी में डूबती नहीं।''

पाठकगण! यह प्रतिभा है या सफेद झूठ और धोखेबाजी। हम इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहते। आप स्वयं ही निर्णय कर लें।

अब श्री माधवाचार्यजी के छल-कपट, धोखेबाजी, अवसरवादिता और चतुरता विषयक उल्लेख इसी अभिनन्दन ग्रन्थ के शब्दों में पढ़िए—

''मण्डी फुल्लखाना (पंजाब) के उत्सव पर महारथीजी गये हुए थे। स्वामी प्रकाशानन्दजी आदि अन्य भी कई सुवक्ता उपस्थित थे। अन्तिम दिन सभा के मन्त्री ने बताया कि महाराज आर्यसमाज से शास्त्रार्थ होगा, हमने पहले से निश्चित कर रक्खा है। महारथीजी ने कहा—तुमने पहले हमें क्यों नहीं बतलाया, हम पुस्तकें मँगवा लेते, हमारे साथ तो इस समय कोई पुस्तक नहीं। बिना ग्रन्थों के शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है? लाहौर से पुस्तकें आ सकने का समय भी नहीं रहा। आज शास्त्रार्थ नहीं होगा। मन्त्री अपठित और भोला-भाला था, आँखों में पानी भरकर बोला, 'अच्छा महाराज! अज्ज शास्त्रार्थ नहीं होसी तो साड़ी तो सदासद लई नक्क कट्टी जासी।' अर्थात् आज शास्त्रार्थ न होगा तो हमारी तो सदा के लिए नाक कट जाएगी। मन्त्री के आँसुओं से दयार्द्र तो सभी उपदेशक थे, परन्तु ग्रन्थों के बिना शास्त्रार्थ? यह समस्या बड़ी टेढ़ी थी। स्वामी प्रकाशानन्दजी आदि सभी उपदेशक थपकियाँ देने लगे—पण्डितजी आपको तो सब ग्रन्थ कण्ठस्थ पड़े हैं, आज बिना ग्रन्थों के ही शास्त्रार्थ होने दीजिए।

बस! सब उपदेशक महारथीजी के गले में यह बला डालकर आप निश्चिन्त हो गये। मन्त्री को भी आश्वासन दे दिया, रोते क्यों हो? सब ठीक होगा, जाओ। तैयारी करो। महारथीजी सब सँभाल लेंगे। शास्त्रार्थ होना था 'नियोग' विषय पर। प्रतिपक्षी म० लोकनाथ तर्कवाचस्पति, जो आर्यसमाज में नियोग विषय के एकमात्र शास्त्रार्थी माने जाते थे, उनको स्वयं भी अपने इस विषय पर बड़ा अभिमान था, इसलिए अपनी पुस्तकों की सन्दूक पर मोटे अक्षरों में उन्होंने लिखवा रक्खा था—'नियोग वैदिकता साधक ग्रन्थ मंजूषा'।

महारथीजी बहुत चिन्तित थे अब क्या बनेगा? प्रमाण तो बहुत-से कण्ठस्थ हैं, परन्तु उनके पते तो सब कण्ठस्थ नहीं। साथ ही प्रतिपक्षी को यदि यह विदित हो गया कि इनके पास पुस्तक नहीं है तब तो वह इस छिद्र से बहुत लाभ उठाएगा। जानबूझकर बार-बार कहेगा दिखाओ यह प्रमाण कहाँ लिखा है। फिर म० लोकनाथजी तो इस कला में और भी बहुत घुटे-मँजे हुए हैं। आज बुरी तरह फँसे! ऐसे अवसरों पर महारथीजी प्रायः गुनगुनाने लगा करते हैं 'प्रभु मेरो का बिगरेगो जाएगी लाज तिहारी' बस, यह मन्त्र रटते ही भगवान् अटके काम की ऐसी विधि बिठला देते हैं कि वह सोलहों आने पूर्ण हो जाता है। सो इस समस्या का हल सूझ गया। उन दिनों पं० श्री कालूरामजी शास्त्री का 'हिन्दू' नामक मासिक पत्र निकलता था। संयोगवश इस मास का जो नया अंक आया था वह पढ़ने के लिए महारथीजी के साथ था। उसे खोलकर देखा तो उसमें नियोग विषय की ही चर्चा निकल आयी। कई वैदिक प्रमाणों के पते भी अंकित मिल गये, तथापि मूलग्रन्थ तो फिर भी चाहिएँ। शास्त्रार्थ में सनातनधर्मी पत्र के लेखों को कौन प्रमाण मानने लगा। महारथीजी ने मन्दिर के पुजारी से कहा, आपको जो भी पुस्तकें मिलें फिर चाहे वे किसी भी भाषा की हों हमारे पास लाओ। पुजारीजी मण्डीभर में घूमे, पाँच सात पुस्तकें लाई गईं। तुलसीकृत रामायण, प्रेमसागर, आल्हा-ऊदल, तोता-मैना का किस्सा, उर्दू भाषा की उफ़ककृत रामायण, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ ऐसी-ऐसी पुस्तकें मिलीं। महारथीजी ने एक चादर में तो इन पुस्तकों को बाँधा, अन्य दो-तीन चादरों में सभा के कार्यालय में पड़े उर्दू के पुराने अखबारों की जितनी फाइलें पड़ी थीं, नीचे-ऊपर उनको करीने से रखकर बीच-बीच में नम्बरी ईंटें बाँध डाली। चार-पाँच बड़े-बड़े बण्डल बन गये, परन्तु इस सब कार्य का किसी को पता नहीं होने दिया। शास्त्रार्थ के समय सज-धजकर चले। पुस्तकों के बण्डलों को देख साथी उपदेशकों ने साश्चर्य पूछा—पुस्तकें कहाँ से आ गईं? कह दिया, पुस्तकों के बिना कहीं जाते हैं क्या? शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। रामायण आदि ग्रन्थों का बण्डल खोलकर रख लिया, मोटी-मोटी जिल्ददार पुस्तकें दूर से वैदिक ग्रन्थ-से जान पड़ते थे, उनकी जिल्दों पर छपा नाम न दीख पड़े, एतदर्थ सब ग्रन्थों की जिल्दें कागजों के आवरणों से वेष्टित कर दी गई थीं, और उनपर मोटी कलम से ऋग्वेद, मनुस्मृति, महाभारत आदि नाम लिख दिये गये थे। जब प्रमाण देने का अवसर आता तो

अमुक-अमुक पुस्तक उठा-उठाकर कहा जाता था, देखो! वेद में यह लिखा है, मनु में यह लिखा है, महाभारत यह कहता है। हिन्दु अंक ने बहुत काम दिया। प्रमाणांक उसी के आधार पर बोले जाते थे। कई बार तो प्रतिपक्षी को पक्का करने के लिए यह भी कहा गया है कि अमुक मूल ग्रन्थ खोलकर दिखलाऊँ क्या? अरे भाई! देख तो लो कभी हम वैसे ही कहते हों! महाशयजी प्रमाणों से परिचित थे ही कहते रहे—हाँ-हाँ कहिए कहिए, ठीक है। बस, इस प्रकार बड़े धड़ल्ले से शास्त्रार्थ हुआ।''

पाठकगण! यह है माधवाचार्य के शब्दों में सनातनधर्म और पौराणिक पन्थ की नंगी तस्वीर! कैसा छल-कपट और धोखे-धड़ी पूर्ण व्यवहार है! इस सारे अभिनन्दन ग्रन्थ में इस प्रकार की ऊल-जलूल और मिथ्या बातें भरी हुई हैं। उन्हें पढ़ते-पढ़ते एक घटना स्मरण हो आई है। जिसका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता—

घटना शिमला (हिमाचल) की है। कुछ विद्यार्थी गिल्ली-डण्डा खेल रहे थे। खेल समाप्त होने पर जब वे अपने-अपने घरों को चलने लगे तो गुच्ची में पानी भर दिया। दूसरे दिन जब वे पुनः खेलने के लिए पहुँचे तो देखा कि गुच्ची में बर्फ जमी हुई है। कुछ विद्यार्थी कहते थे कि कल जो पानी डाला था उसकी बर्फ जम गई है। दूसरे कहते थे कि यहाँ किसी ने बर्फ डाल दी है। पर्याप्त वादविवाद के पश्चात् निश्चय हुआ कि आज खेल के पश्चात् इस गुच्ची में पानी भर दिया जाए। यदि कल भी बर्फ जमी पायी जाए तो निश्चय हो जाएगा कि यह बर्फ पानी की ही जमी है, यदि नहीं जमेगी तो फिर किसी व्यक्ति से गिर गई होगी—ऐसा निश्चय हो जाएगा। जब खेल समाप्त कर विद्यार्थीगण चलने लगे तो उनके पास पानी नहीं था, अतः एक विद्यार्थी ने वहाँ लघुशंका कर दी। अगले दिन विद्यार्थी वहाँ आये तो देखा बर्फ जमी हुई है। एक विद्यार्थी कहने लगा, ''खा लो, बहुत बढ़िया जमी है।'' दूसर ने कहा—''यह तो मूत्र की बर्फ है, इसे धो लो।'' तीसरे ने कहा—''धोओगे कहाँ तक इसकी तो नस-नस में मूत्र भरा हुआ है।''

ठीक इसी प्रकार इस अभिनन्दन ग्रन्थ के पृष्ठ-पृष्ठ पर झूठ भरा हुआ है। शास्त्रार्थों को छोड़-छोड़कर माधवाचार्यजी भागे हैं और पराजय आर्यसमाजियों की दिखाई गई है। आचार्यजी! हमने तीन वर्ष से चैलेंज दिया हुआ है। कुछ दम-खम है तो आइए मैदान में। आप जब चाहें, जहाँ चाहें, जिस विषय पर चाहें शास्त्रार्थ कर लें।

माधवाचार्यजी ने महर्षि दयानन्द और हमारे चरित-नायक श्री पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी के विमल चरित्र पर जो दोष लगाये हैं उसमें उन्होंने अपनी कलुषित आत्मा का ही परिचय दिया है, यह बात हमने 'स्थाली पुलाक न्याय' से सिद्ध कर दी है।

शास्त्रार्थ नैरोबी (अफ़्रीका)

वैदिक धर्म की विजय वैजयन्ती फहराने के लिए श्री बुद्धदेव जी नैरोबी में गये हुए थे। श्री माधवाचार्य का दुर्भाग्य उन्हें भी वहाँ खींच ले-गया। माधवाचार्यजी के वहाँ पहुँचते ही आर्यों ने शास्त्रार्थ का चैलेंज दे दिया। माधवाचार्यजी तो बुद्धदेवजी से वैसे ही डरते थे, अतः वे शास्त्रार्थ को टालते रहे। अन्त में श्री बुद्धदेवजी ने अपने अन्तिम हथियार का प्रयोग किया। उन्होंने नैरोबी में बड़े-बड़े पोस्टर चिपकवा दिये, जिनपर लिखा था—"अमुक तिथि को माधवाचार्य के साथ आर्यसमाज मन्दिर में शास्त्रार्थ होगा। यदि वे नहीं आये तो सनातनधर्म की पराजय समझी जाएगी।" बस, यह अन्तिम हथियार कभी विफल नहीं जाता। माधवाचार्य को शास्त्रार्थ का चैलेंज स्वीकार करना पड़ा। निश्चित दिन और समय पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। यहाँ भी माधवाचार्य ने प्रत्येक वक्ता के लिए २०-२० मिनट का समय निर्धारित किया था। माधवाचार्य ने २० मिनट में बीसियों प्रश्न कर डाले। शास्त्रार्थ-समर-विजयी योद्धा मीरपुरीजी ने केवल १३ मिनट में सभी प्रश्नों का उत्तर देकर दारुक वन की कथा सुनानी आरम्भ की। इस कथा में शिवजी के ऊपर मनमाने अनर्गल लाञ्छन लगाये गये हैं। शिवजी के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा गया है—

दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः।
स चेष्टामकरोद् दुष्टां हस्ते लिंगं विधारयन्॥*

—शि०पु० कोटि रुद्र० १२।१०

कथा सुनते-सुनते सनातनी बौखला उठे। एक पुराणपन्थी युवक छुरा लेकर बुद्धदेवजी की ओर झपटा। बुद्धदेवजी तो बच गये, छुरा आर्य वीर दल के सेनापति को लगा। बस, सभा में सन्नाटा फैल गया। पौराणिकों को सभा भवन से निकाला जाने लगा। उस समय माधवाचार्य की शक्ल देखने लायक थी। आपने हाथ जोड़े हुए थे और केले के पत्तों की भाँति काँप रहे थे। श्री मीरपुरीजी कहा करते थे 'मेरे जीवन की यह भयंकर भूल थी कि उस समय मैंने इनका

* अर्थ अत्यन्त अश्लील है।

फोटो नहीं खिंचवाया।' इस शास्त्रार्थ से आर्यसमाज के गौरव को चार-चाँद लग गये।

शास्त्रार्थ देहली

जहाँ अब लाजपतराय मार्केट बना हुआ है उस स्थल पर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ हुआ। अखिल भारतीय वर्णाश्रम संघ का उत्सव हो रहा था। इस उत्सव में सनातनधर्म के चोटी के विद्वान् यथा—श्री लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़, श्री राजेश्वर शास्त्री, श्री गिरधर शर्मा चतुर्वेदः तथा चारों शंकराचार्य भी उपस्थित थे। श्री कालूराम शास्त्री का विचार था कि आर्यजगत् में दर्शन का कोई विद्वान् नहीं है, अतः उन्होंने चैलेंज दे दिया दर्शनों पर शास्त्रार्थ करने के लिए। ला० रामगोपालजी शालवालों ने चैलेंज स्वीकार कर लिया। आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० श्री व्यासदेवजी शास्त्री एम०ए० और अध्यक्ष थे पण्डित श्री बुद्धदेवजी मीरपुरी। सूत्र, युक्तियाँ और तर्क बताते थे श्री बुद्धदेवजी और बोलते थे व्यासदेवजी। इस शास्त्रार्थ में बुद्धदेवजी की प्रतिभा मुखरित हो उठी थी। उस दिन लोगों को पता लगा था कि बुद्धदेवजी को दर्शनों के सूत्र किस प्रकार कण्ठस्थ हैं। वे सभी दर्शनों के सूत्रों को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर सुना सकते थे। जब सनातनी युक्तियों और तर्कों का उत्तर न दे सके तो श्री बुद्धदेवजी ने कह दिया था कि आइए आप भी सूत्र बोलें और मैं भी सूत्र बोलता हूँ, सूत्रों पर ही हार-जीत का निर्णय हो जाए, परन्तु किसी ने साहस नहीं किया।

हैदराबाद सत्याग्रह

पाठकगण! शास्त्रार्थों का वर्णन आपने काफी पढ़ लिया। आइए, अब आपको दूसरी ओर ले-चलें।

हैदराबाद में अन्याय और अत्याचार हो रहे थे। दमन नीति ज़ोरों पर थी और निरपराध हिन्दुओं का गला काटा जाता था। हिन्दू नेताओं को क़त्ल किया जाता था, स्त्रियों को अपमानित किया जाता था तथा उन्हें धर्म-परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया जाता था।

पूजा-पाठ के मकानों का निर्माण 'महकमा अमूरे मज़हबी' की आज्ञा के बिना नहीं हो सकता था। पर्याप्त जाँच-पड़ताल, निरीक्षण और परीक्षण के पश्चात् ही ऐसे मकानों के बनने की आज्ञा मिलती थी। हिन्दुओं को अपने उत्सव करने की भी आज्ञा नहीं थी। 'मार्केट एक्ट' द्वारा हिन्दुओं का व्यापार बन्द कर दिया गया था। इतिहास की पुस्तकों

में आर्यों के पूर्वजों तथा सन्तों के पावन चरित्रों पर वृथा दोष लगाये गये थे।

आर्यसमाज भी निजाम के कोप का भाजन बना। आर्यपुरुषों की हत्याओं के षड्यन्त्र होने लगे। समाजमन्दिरों पर लहराता हुआ 'ओ३म्' का ध्वज निजाम की आँखों में खटकने लगा। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों पर भी प्रतिबन्ध लगने लगा। आर्योपदेशकों का रियासत में प्रवेश निषेध कर दिया गया। हवन करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। नगरकीर्तन और उत्सव भी बन्द कर दिये गये।

आर्य वीर इस अपमान को कब सहन कर सकते थे? अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए आर्य वीर सन्नद्ध हो गये। आर्यसमाज ने सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया। हमारे चरितनायक ने सत्याग्रह में जो कुछ किया उसका वर्णन उन्हीं की लेखनी में पढ़िए—

महात्माजी की प्रथम आज्ञा

एक दिन महात्माजी (ला० खुशहालचन्दजी) ने बुलाकर मुझे आज्ञा दी कि आर्यसमाज के प्रचार व सत्याग्रह के लिए शोलापुर चले जाइए। मैंने 'एवमस्तु' कहा और ६ फरवरी को लाहौर से चलकर शोलापुर जा पहुँचा। उस समय तक पंजाब से कोई शोलापुर नहीं गया था। सबसे पहले जानेवाला मैं ही था।

प्रचार तथा कथा—शोलापुर जाकर मैंने कहा कि मैं प्रचार करना चाहता हूँ। मुझे कहा गया कि यहाँ प्रचार नहीं हो सकता। कारण यह कि यहाँ हिन्दूसभा तथा कांग्रेस का परस्पर संघर्ष है, अतः कलह होने की सम्भावना रहती है। मेरे बहुत कहने पर मुझे दो दिन प्रचार करने की आज्ञा मिल गई। इस प्रचार का प्रभाव यह हुआ कि सहस्रों नर-नारियों ने उसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और दो दिन के स्थान में लगभग एक मास तक प्रबल वेग से आर्यसमाज का प्रचार मैंने शोलापुर में किया।

आर्यसमाज की स्थापना—उपर्युक्त प्रचार का प्रथम शुभ परिणाम यह हुआ कि शोलापुर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई और वही आर्यसमाज आज शोलापुर में बड़े वेग से वैदिक धर्म का प्रचार शोलापुर की जनता में कर रहा है।

सत्याग्रह के लिए—श्री महात्माजी की आज्ञा से ५ मार्च को सत्याग्रह करने के लिए मैं उद्यत हो गया। सत्याग्रह समिति की ओर से समाचार-पत्रों में इसकी घोषणा भी हो गई, किन्तु पुनरपि सी०पी० में प्रचार करने के लिए महात्माजी ने मुझे रोक लिया और उनकी

आज्ञा से मैं सी०पी० में प्रचार करने के लिए चल दिया।

द्वितीय स्थान—२९ मार्च को मुझे आर्यसमाज अनारकली में बिदाई दी गई और ४ अप्रैल को अमृतसर आर्यसमाज सफेद कटड़े के शाही जत्थे को लेकर मैं शोलापुर के लिए रवाना हो गया।

सत्याग्रह में बाधा—शोलापुर में शुद्धि समिति का जितना शिष्टमण्डल विद्यमान था, वह सम्पूर्ण मुझको सत्याग्रह करने से रोकता था और सब यही कहते थे कि तुमको प्रचार करना चाहिए, कारागार में जाने से अधिक लाभ नहीं है, किन्तु मेरा आत्मा इस बात को किसी प्रकार भी नहीं मानता था और बार-बार अन्तरात्मा से यही वाणी होती थी कि जब महात्मा जी कारागार में अनेक यातनाएँ भोग रहे हैं तब मैं इस अवस्था में बाहर आनन्द से कैसे रह सकता हूँ।

महात्माजी से भेंट—जब मैंने कोई भी उपाय नहीं देखा, तब मैं एक दिन चुपचाप महात्माजी से मिलने के लिए गुलबर्गा चल दिया। बड़ी कठिनाई से भेंट की आज्ञा मिली। महात्माजी को काषाय वेश में देखकर मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहा। वार्त्तालाप के मध्य मैंने उनसे कहा कि अब मुझको क्या आज्ञा है ? महात्माजी ने हँसकर कहा—आपको मेरा वह शेर याद है या नहीं—

खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो! उठती जवानियाँ हैं॥

मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा और जिस दिन की प्रतीक्षा में था, वह आ गया। मैंने कहा—मेरे सेनापति की आज्ञा मिलने पर संसार की कोई भी शक्ति अब मुझको सत्याग्रह करने से रोक नहीं सकती।

पथरीली भूमि—प्रथम दिन जब गुलबर्गा जेल में गया तब पत्थर की बजरी बिछी हुई भूमि पर जत्थे सहित हमको लेटना पड़ा। पार्श्व छिल गये, सम्पूर्ण रात हमको निद्रादेवी ने स्पर्श नहीं किया। 'सिर मुड़ाते ही ओले पड़े' वाली अवस्था हमारी हो गई। उससे हमको इस बात का अनुमान हो गया कि कारागार में हमारे साथ क्या-क्या बर्ताव होना है।

पाँवों में छाले—दूसरे दिन १२ बजे की कड़कती धूप में नंगे पाँव हमको कचहरी ले-गये। सबके पाँवों में छाले पड़ गये, पीने के लिए पानी नहीं दिया, रेत में चलाते थे, सड़क पर चलने नहीं देते थे, धीरे-धीरे ले-गये तथा उसी प्रकार लौटा कर भूखे-प्यासों को लाये। यह

हमारी जेलपूजा का दूसरा दिन था, जो जीवन में मुझको कभी नहीं भूलेगा।

डण्डों की बरसात—जब हमें ९ मास का दण्ड सुनाया गया तब एक सत्याग्रही ने कहा कि निजाम स्टेट माँ का पेट है। वहाँ ९ मास और यहाँ भी नौ मास। दण्ड के पश्चात् मुझको केवल एक रात ही गुलबर्गा जेल में म० नारायण स्वामीजी की बैरक में रहने दिया। प्रातःकाल ही एक यमदूत आया, मैंने गंजी के दो ग्रास ही मुख में डाले थे कि उठाकर बाहर ले-गया और अनेक सत्याग्रही जो बाहर बैठे थे उनमें मुझको बिठा दिया। जब हमारी मोटर वहाँ से चली तो सब सत्याग्रहियों ने जयघोष किया। जयघोष सुनकर मोहतमिम सहित सब कर्मचारी हमपर टूट पड़े और डण्डों की खूब वर्षा की। कई सत्याग्रहियों को हैदराबाद जाकर सप्ताह भर चिकित्सा करानी पड़ी। यह हमारा कारागारीय तृतीय पूजन था।

गंजी निवास—गुलबर्गा के मोहतमिम मुझपर बहुत कुपित थे। चलते समय कहा था कि इसको हैदराबाद क्यों भेज रहे हो, इससे यहीं चक्की पिसवाओ, मिट्टी खुदवाओ। यहाँ से हैदराबाद को मेरे सम्बन्ध में लिख दिया और हैदराबाद जाते ही मुझे तीन दिन का गंजी निवास मिला। गंजी (काल कोठरी) तीन प्रकार की होती है—डबल गंजी, सिंगल गंजी तथा सर्कल गंजी। गंजी महारानी में पानी नहीं था, वायु नहीं था, शौच-मूत्र करने का कोई भी प्रबन्ध नहीं था। हाँ, अत्यन्त गर्मी, अत्यन्त अन्धकार, दम घोटनेवाली बदबू और मच्छर महाराज पुष्कल मात्रा में विद्यमान थे और इनकी कृपा से निद्रा महारानी कुपित होकर विदा हो गई तथा तीन रात्रि मुझे जागरण करना पड़ा। आँखे सूज गई। भूख बन्द हो गई। 'ओ३म्' स्मरण करते हुए तीन दिन व्यतीत किये। यह हमारी जेल की चौथी पूजा थी और इससे जेल-पुजारियों की मनोवृत्ति का भली प्रकार पता चल गया।

फीमेल वार्ड में—चौथे दिन हमको आज्ञा हुई कि अपने बिस्तर उठाओ। मैंने चुपचाप अपना बिस्तर उठाकर बगल में दबा लिया और मन में कहा, 'भगवान् जाने इस नरक से निकाल कर अब कहाँ ले-जाएँगे'। केन्द्रीय कारागार से बाहर होते ही सामने देखा 'फीमेल वार्ड' लिखा हुआ था। देखकर हमको आश्चर्य हुआ। फाटक खुला, अन्दर दाखिल किया। पुनरपि फाटक बन्द कर दिया। रात्रि व्यतीत की, दूसरे दिन मोहतमिम आये। मैंने उनसे हँसकर कहा कि यदि हमें फीमेल वार्ड में ही डाला है तो कृपया एक साड़ी भी दे दो ताकि पूरा स्वांग बन जाए। मोहतमिम हँसकर कहने लगे—क्या करें सत्याग्रही

अधिक हैं, जेल में स्थान नहीं है।

जल-यात्रा—फीमेल वार्ड में पानी की बहुत कमी थी, अतः हमको एक-एक घड़ा मिल गया। मैं पाजामा पहनकर टोपी सिर पर रख, घड़ा कन्धे पर उठा, पाजामे का एक छोर ऊँचा कर लेता था, दूसरा नीचा। पूर्ण स्वांग बनाकर बाजार में पानी भरने के लिए निकलता था। उच्च स्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण तथा श्लोकों को गाता हुआ, नंगे पाँव पानी लेकर चलता था और मुझे इस अवस्था में देखकर लोगों का जमघट हो जाता था। बड़ी कठिनता से बेचारे जेल के कर्मचारी और वार्डन डरा-धमकाकर लोगों को दूर हटाते थे। जिधर हम जाते, चारों ओर आबाल वृद्ध हमारा नमस्ते से सत्कार करते थे। यह हमारा जल-यात्रा के रूप में पाँचवाँ अर्चन था।

खटमल महाराज—वार्ड में पाँच कमरे थे। भगवान् की कृपा से उनके फर्श तथा दीवारें खटमलों से परिपूर्ण थीं। जब सत्याग्रही अन्दर सोते तब रात्रि को दल-के-दल निकलकर सत्याग्रहियों की भली प्रकार सेवा करते थे।

प्रचार—फीमेल वार्ड में मैं प्रातःकाल रामायण की कथा तथा सायंकाल सत्यार्थप्रकाश की कथा करता था। कथा तथा प्रचार के अन्दर सत्याग्रही बहुत ही रुचि से भाग लेते थे। अनेक सत्याग्रहियों को अभ्यास भी बताया था। इस समय को सत्याग्रही बहुत ही उत्तम समझते थे।

सम्पूर्ण प्रान्त—सत्याग्रह में प्रत्येक प्रान्त, अर्थात् सीमाप्रान्त, पंजाब संयुक्तप्रान्त, राजस्थान, बिहार, बंगाल, दक्षिण के सत्याग्रही विद्यमान थे, अतः मुझे उनमें आर्यसमाज के प्रबल प्रचार का सबसे अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। प्रातःकाल रामायण तथा महाभारत की कथा करता था सायंकाल सत्यार्थप्रकाश तथा सन्ध्या के मन्त्रों की व्याख्या करता। कोई ही ऐसा सत्याग्रही होगा जो मेरे संसर्ग में न आया हो और आर्यसमाज का प्रसाद लेकर न गया हो। मैंने कारागार में बाहर से कई गुणा अधिक प्रचार किया। यह सब प्रचार में अपनी कण्ठाग्र विद्या से ही करता था। मेरे पास कोई पुस्तक विद्यमान न थी। उन भगवे वेशधारी सत्याग्रहियों को देखकर मैं यही कहा करता था—

राम राज्य की जेल में भई संतन की भीर।
सत्याग्रही मिल यज्ञ करें हरें जेल की पीर॥

जेल में श्री पण्डितजी का एक प्रिय गाना था—

क्या क्या मज़े दिखाती हैं निजामी रोटियाँ।
अन्दर से पतली-पतली हैं बाहर से मोटियाँ॥
किनारे जो इनके देखो हिमालय की चोटियाँ।
खाने में किरकिरी और तोड़ने में रोड़ियाँ॥
सीने में जाके चुभती हैं मानिन्द सोटियाँ।
क्या-क्या मज़े दिखाती हैं जेलों की रोटियाँ॥

पण्डितजी के विशेष गुण

निर्लोभता—पण्डितजी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी निर्लोभता। सन्तोष की भावना आपमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। कभी किसी समाज से उन्होंने दक्षिणा ठहराई नहीं, जो जिसने श्रद्धापूर्वक दे दिया वही प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया। एक परिवार में पण्डितजी की कथा रखवाने के लिए मैंने उन्हें पत्र लिखा था जिसमें मैंने यह भी पूछा था कि आप क्या दक्षिणा स्वीकार कर लेंगे। पण्डितजी ने जो उत्तर दिया वह पठनीय है। लीजिए पढ़िए—

ओ३म्

आदरणीय ब्रह्मचारिन्!

सविनय नमस्ते।

जो ठहराकर लिया जाता है वह शुल्क होता है। वह मुझे किसी रूप में भी स्वीकार नहीं है। दक्षिणारूप में आप जो भी देंगे मुझे स्वीकार होगा।

—बुद्धदेव

सिद्धान्तों के पक्के—पण्डितजी सिद्धान्तों के पक्के थे। उनमें वह बात नहीं थी कि 'गङ्गा में गये गङ्गादास और जमना में गये जमनादास'। वैदिक सिद्धान्तों का आप उपदेश ही नहीं करते थे क्रियात्मक रूप में आप स्वयं उनका पालन भी करते थे। आपके एक पुत्र का देहान्त लगभग दो वर्ष की अवस्था में हो गया। प्रायः छोटे बच्चों को नदी में बहाया जाता है अथवा भूमि में गाड़ा जाता है और इसके लिए मनुजी का निम्न प्रमाण दिया जाता है—

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः।
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते॥

—मनु० ५।६८

अर्थात् जिस बालक की आयु के पूरे दो वर्ष न हुए हों ऐसे मृत बालक को बान्धव लोग ग्राम आदि के बाहर शुद्ध भूमि में अस्थि

संचयन बिना ही दबा देवें।

परन्तु वेद का आदेश है—

भस्मान्तः शरीरम्। —यजुः० ४०।१५

शरीर भस्म होनेवाला है।

मनुस्मृति में भी अगले श्लोकों में भस्म करने को उत्तम बताया है, अतः पण्डितजी ने वेदानुसार अपने पुत्र का दाहकर्म ही किया।

मृत्यु से कुछ समय पूर्व पण्डितजी ने राजौरी गार्डन में एक परिवार में रामायण की कथा की। एक दिन गृहपति ने उन्हें एक पुस्तक देकर कहा कि आज व्याख्यान में इस पुस्तक के खरीदने की घोषणा भी कर दें। पण्डितजी ने कहा—पहले मैं पढ़कर देख लूँ। कल घोषणा करूँगा। अवलोकन करने पर पता चला कि पुस्तक में अनेक अवैदिक बातें भरी हैं। परिणामस्वरूप पण्डितजी ने कथा करने से ही इन्कार कर दिया।

अपूर्व सूझ—पण्डितजी की सूझ अद्भुत थी। विपक्षी को ऐसा उत्तर देते थे कि वह मुँह ताकता रह जाता था। लीजिए, एक मज़ेदार घटना पढ़िए। पण्डितजी भिवानी (हिसार) में कथा कर रहे थे। एक पौराणिक ने कहा—"छोटे भाई की पत्नी बेटी के बराबर होती है, उससे विवाह नहीं होना चाहिए।" यह आक्षेप उस व्यक्ति ने इसलिए किया था कि पं० फूलचन्द्रजी शर्मा 'निडर' ने परिस्थिति वश बड़े भाई का पुनर्विवाह उसके छोटे भाई की पत्नी से करा दिया था।

पौराणिक को उत्तर देते हुए मीरपुरीजी ने कहा—छोटे भाई की पत्नी बेटी के बराबर होती है तो बड़े भाई की पत्नी माता के बराबर होती है। यदि बड़े भाई की पत्नी के साथ विवाह कराये तो वह माता से विवाह हो गया, अतः बेटी से तो विवाह नहीं करना चाहिए पर क्या माता से विवाह कर लेना चाहिए। मीरपुरीजी का यह उत्तर सुनकर वह पौराणिक हक्का-बक्का रह गया।

एक और घटना पढ़िए—

महर्षि दयानन्द वैदिक वर्ण-व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

प्रश्न—जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाए तो उसके माँ-बाप की सेवा कौन करेगा? वंशच्छेदन भी हो जाएगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए।

उत्तर—न किसी की सेवा का भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा,

क्योंकि उनको लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राज्यसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी। —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास

महर्षि के इस लेख पर आक्षेप करते हुए एक पौराणिक ने पण्डितजी से प्रश्न किया कि क्या आप इतिहास से कोई ऐसा प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं जिससे पुत्रपरिवर्तन की बात सिद्ध हो सके?

पण्डितजी ने तुरन्त उत्तर दिया कि एक नहीं अनेक प्रमाण हैं। भागवत में लिखा है कि कृष्ण का पिता वसुदेव कृष्ण को उत्पन्न होते ही नन्द के घर छोड़ आया तथा उसकी लड़की को अपने घर ले-आया। यह पुत्र परिवर्तन है या नहीं? पौराणिक की बोलती बन्द हो गई।

विद्या का अथाह सागर—पण्डितजी विद्या के सागर थे। साथ-ही-साथ सारी विद्या उन्हें कण्ठ थी। वे एक-एक स्थान पर महीनों उपदेश देते थे, परन्तु कभी पुस्तक खोलकर नहीं देखते थे। रामायण, महाभारत और पुराणों पर जैसा उनका अधिकार था ऐसा व्यक्ति इस समय तो भूमण्डल पर भी मिलना कठिन है। स्वयं माधवाचार्य और पं० लीलाधर आदि का कथन है कि 'बुद्धदेवजी से टक्कर लेना असम्भव है, क्योंकि पुराणों का जितना स्वाध्याय उनका है उतना तो हम भी नहीं जानते।' एक स्थान पर आप छह मास तक गायत्री-मन्त्र की व्याख्या करते रहे। ८-१० वर्ष पूर्व उन्होंने आर्यसमाज पुलवंगश दिल्ली में वेदों की कथा की थी। सात दिन तक वे 'विश्वानि देव' मन्त्र की ही व्याख्या करते रहे। उनका कहना था कि मुझे इस मन्त्र की व्याख्या के लिए ४४ दिन तो कम-से-कम चाहिएँ। श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'ब्रह्मचक्र' का वर्णन आता है। पण्डितजी ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था कि सामग्री मैं दे दूँगा तुम इस विषय पर पुस्तक लिख दो। दुःख है कि पण्डितजी के आकस्मिक देहावसान के कारण वह पुस्तक न लिखी जा सकी। पण्डितजी का कहना था कि वे इस विषय पर तीन वर्ष तक बोल सकते थे। ऐसा अद्भुत था उनका पाण्डित्य।

योगाभ्यासी भी—हमारे चरित-नायक केवल पण्डित ही नहीं थे, वे योगाभ्यासी भी थे। अपने बाल्यकाल में भी वे श्री व्यासदेवजी (अब स्वामी योगेश्वरानन्द, ऋषिकेश) के साथ योगाभ्यास करते रहे थे। जीवन की सान्ध्य वेला में भी घरबार छोड़ उनकी इच्छा योगाभ्यास की ओर प्रवृत्त होने की थी।

आयुर्वेदाचार्य—पण्डितजी वैद्य भी बहुत उत्तम थे। वे अपने व्याख्यानों में भी अनेक ओषधियाँ बताया करते थे। अपने घर पर भी एलोपैथी, होम्योपैथी और आयुर्वेद के परीक्षण किया करते थे। आयुर्वेद की भस्में आदि वे स्वयं घर पर ही तैयार कर लिया करते थे। आयुर्वेद के ग्रन्थ भी उन्हें कण्ठस्थ थे।

शास्त्रार्थ-समर के विजेता—पण्डितजी संस्कृत सम्भाषण और शास्त्रार्थ के लिए तो हर समय तैयार रहते थे। पण्डितजी ने अनेक शास्त्रार्थ किये और विपक्षियों को चारों खाने चित गिरा दिया। यहाँ हम पण्डितजी के दो विनोदपूर्ण शास्त्रार्थों की चर्चा का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

घटना लाहौर की है। एक दिन प्रात:काल पण्डितजी भ्रमण करके लौट रहे थे। मार्ग में एक मौलवी से भेंट हो गई। चर्चा वेशभूषा पर चल पड़ी। मौलवी साहब कहने लगे कि पाजामा पहनना उत्तम है। इसपर पण्डितजी ने कहा वेश तो धोती का ही उत्तम है, यदि कुछ दम-खम है तो शास्त्रार्थ कर लीजिए। बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये पण्डितजी ने अपना पक्ष स्थापित करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा—मैं बाजार जा रहा हूँ। बहुत बढ़िया सब्जी बिक रही है। मेरे पास थैला नहीं है तो मैं धोती में सब्जी डाल लूँगा परन्तु आप पाजामें में सब्जी नहीं ले-जा सकते। अब दूसरी युक्ति सुनिए, मेरे पास कुर्ता नहीं है तो मैं आधी धोती को बाँध लूँगा और आधी को ऊपर डाल लूँगा। आप पाजामें से दोनों कार्य नहीं कर सकते और यदि आप बिना कुर्ता केवल पाजामा पहनकर चल दिये तो कुत्ते आपके पीछे लग जाएँगे। मौलवी साहब दो ही युक्तियों में परास्त हो गये।

दूसरा शास्त्रार्थ हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर जेल में हुआ। श्री राजगुरु धुरेन्द्रजी शास्त्री (जो पीछे स्वामी ध्रुवानन्दजी बने, अभी कुछ समय पूर्व उनका देहावसान हो गया है) ने कारागार में दाढ़ी बढ़ाना शुरू कर दिया। पण्डितजी ने कहा—दाढ़ी-मूँछ तो मुँडवाते रहना चाहिए। वेद का आदेश है—

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ —अथर्व० ८।२।१७

हे पुरुषो! तुम लोग खूब चमकते हुए तेज धारवाले छुरे से बालों को साफ करा दो—छौर कर्म करा दो। हे केशों को काटनेवाले

नापित! तू सिर और मुख पर के दाढ़ी-मूँछ आदि बालों को मूँड डाल। हे पुरुष! तेरा मुख सुन्दर, शोभायुक्त हो। हे नापित! तू सावधानी से कार्य कर। असावधानी से किसी की प्राण हरण मत कर लेना।

आप इस आदेश को मानकर दाढ़ी-मूँछ मुँडवाइए अन्यथा मेरे साथ शास्त्रार्थ कीजिए। शास्त्रीजी ने मौन रहने में ही कल्याण समझा।

विनोदी—पण्डितजी जहाँ सदाचार की साक्षात् प्रतिमा थे, सरल, निष्कपट और उदार थे, वहाँ विनोदी भी खूब थे। आप व्याख्यान देते-देते थोड़ी-थोड़ी देर में कोई-न-कोई ऐसा वाक्य अथवा घटना सुना देते थे कि लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे। एक बार शासक वर्ग की आलोचना करते हुए आपने कहा—'ये कहते हैं कि हम जनता के सेवक हैं। ये जनता के सेवक कारों में चलते हैं, हवाई जहाज़ों में सैर करते हैं, आलीशान कोठियों में रहते हैं, बढ़िया वस्त्र पहनते हैं और स्वामी के न तन पर कपड़ा है, न पैर में जूता। वाह रे जनता के सेवको!' कैसी वेदना है इन शब्दों में और कैसा करारा है व्यङ्ग और विनोद!

एक भ्रम का निराकरण

कुछ पौराणिकों ने पण्डितजी के सम्बन्ध में ऐसा प्रवाद फैलाना आरम्भ किया है कि वे सनातनधर्मी बन गये थे। यह बात सर्वथा मिथ्या और बिना सिर पैर की है। वे कभी भी पौराणिक या सनातनी नहीं हुए। जिस समय वे रेवाड़ी में रहते थे उस समय 'सार्वदेशिक' में एक लेख लिखकर उन्होंने इस भ्रान्ति का खण्डन कर दिया था। वे जीवन के अन्तिम क्षण तक आर्यसमाजी रहे, आर्यसमाजों में प्रचार करते रहे। इतना ही नहीं मृत्यु से लगभग एक वर्ष पूर्व उन्होंने 'आर्यवीर' मासिक के माध्यम से सभी पौराणिकों को शास्त्रार्थ के लिए चैलेञ्ज भी दिया था।

महायात्रा

निरन्तर भ्रमण और हैदराबाद की जेल-यातनाओं के कारण आपका स्वास्थ्य गिर गया। धर्मपत्नी और पुत्रों ने पूर्ण विश्राम करने का परामर्श दिया, परन्तु पण्डितजी भाररूप होकर रहना नहीं चाहते थे, अतः बराबर प्रचार-कार्य में लगे ही रहे। मृत्यु से दो मास पूर्व आप कानपुर गये। वहाँ हेमरेज का आक्रमण हुआ। डाक्टर ने कहा—पण्डितजी, इस रोग ने आपको चेतावनी दी है। औषध-उपचार से आप स्वस्थ हो गये और स्वस्थ होते ही हरद्वार कथा करने के लिए

चले गये। वहाँ आप पुनः रुग्ण हो गये। ११ अक्टूबर को आर्यसमाज के अधिकारियों ने आपको बस में बैठाकर दिल्ली भेज दिया। दिल्ली पहुँचकर आप बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़े। किसी व्यक्ति ने आपको इरविन हास्पिटल में प्रविष्ट करा दिया। वहाँ डाक्टरों ने न इनकी चिकित्सा की ओर ध्यान दिया और न पण्डितजी के घरवालों को ही सूचना दी, यद्यपि पण्डितजी के पास विद्यमान रेलवे टाइमटेबल और पत्रों पर पण्डितजी का नाम और उनके घर का पता विद्यमान था। इतना ही नहीं जब पण्डितजी को होश आता था तो वे 'बुद्धदेव' ऐसा कहते थे।

पण्डितजी को १५ अक्टूबर को देहली लौटना था। जब वे १५ अक्टूबर को घर नहीं पहुँचे तब हरद्वार तार आदि देकर पूछा गया। वहाँ से पता लगा कि वे देहली गये हैं, तब यहाँ पुलिस में रिपोर्ट की गई। अस्पतालों को फोन किये गये। काफी दौड़-धूप के पश्चात् २१ अक्टूबर को पता लगा कि पण्डितजी इरविन अस्पताल में है। आपकी धर्मपत्नी और पुत्रों ने अपनी ओर से चिकित्सा में कोई कमी नहीं रहने दी, परन्तु आर्यसमाज हरद्वार के अधिकारियों और डाक्टरों की असावधानता के कारण आप २८ अक्टूबर १९६३ को इस असार संसार से चल बसे।

हमारे चरितनायक जीवनभर महर्षि दयानन्दरूपी शमा पर जले और शान से जले। जैसी मृत्यु उन्हें प्राप्त हुई ऐसी मृत्यु किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है। आप अपने पीछे तीन पुत्र और पत्नी को छोड़ गये हैं। तीनों पुत्र सुशिक्षित और समाज के रंग में रंगे हुए हैं। आपकी पत्नी भी रात-दिन आर्यसमाज की सेवा में तत्पर रहती हैं।[1]

पण्डितजी के ग्रन्थ

पण्डितजी ने मौखिक प्रचार ही नहीं किया, अपितु आपने अनेक खोजपूर्ण, वैदिक सिद्धान्तों के पोषक ग्रन्थों का निर्माण भी किया। यहाँ कुछ ग्रन्थों की नामावलि दी जा रही है—

षड्दर्शन समन्वय—महर्षि दयानन्द के भारतीय रङ्गमञ्च पर अवतीर्ण होने से पूर्व यह प्रवाद प्रचलित था कि दर्शनों में विरोध है। महर्षि ने इस भ्रान्त धारणा का खण्डन किया, परन्तु उनके पास इतना समय नहीं था कि वे इस विषय पर एक ग्रन्थ लिखते। पं० श्री

---

१. यह जीवनी १९६४ में प्रकाशित हुई थी।

बुद्धदेवजी ने यह ग्रन्थ लिखकर समन्वय का अवरुद्ध मार्ग खोल दिया। आर्य प्रादेशिक सभा ने इस कृति पर पण्डितजी को दो सौ पचास रुपये पुरस्कार दिया था। आज के युग में यह राशि बहुत छोटी है, परन्तु उस समय यह बहुत बड़ी राशि थी। आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ और मुक्तिरामजी (स्वामी आत्मानन्दजी) ने इस पुस्तक की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।

मूर्त्तिपूजा-मीमांसा—इस पुस्तक में पण्डितजी ने वेद और पुराणों से यह सिद्ध किया है कि मूर्त्तिपूजा नहीं करनी चाहिए। मूर्त्तिपूजा के सम्बन्ध में जितने तर्क दिये जा सकते हैं उनका युक्तियुक्त समाधान प्रस्तुत किया गया है।

अवतारवाद मीमांसा—इस पुस्तक में वेद, रामायण, महाभारत और पुराणों से यह सिद्ध किया गया है कि ईश्वर अवतार नहीं लेता।

राधास्वामी मतालोचन—इस पुस्तक में राधास्वामियों के ढोल की पोल खोली गई है।

यथार्थप्रकाश की हकीकत (उर्दू)—राधास्वामी मत के गुरु बाबू आनन्दस्वरूपजी ने एक पुस्तक लिखी थी 'यथार्थप्रकाश'। इस पुस्तक में वेद, आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में बहुत-सी ऊलजलूल बातें लिखी गई थीं। पण्डितजी ने इस पुस्तक में उसका मुँहतोड़ उत्तर दिया है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त पण्डितजी ने १९ ट्रैक्ट लिखे थे। हमारे पास आठ ट्रैक्ट हैं जिनकी नामावलि निम्न है—

१. विवाह संस्कार—विवाह संस्कार पर किये आक्षेपों का उत्तर।
२. गर्भाधान और योनि-संकोचन।
३. धाया का दूध।
४. पुत्र-परिवर्तन वैदिक है।
५. मृतक श्राद्ध खण्डन।
६. वेदभाष्य—इसमें ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य पर किये गये आक्षेपों का समाधान है।
७. नियोग और पौराणिक धर्मी (उर्दू)।
८. पौराणिक ईश्वर की पड़ताल (उर्दू)।

—o—

प्राक्कथन

भारतवर्ष का सिर उसकी फिलासफी के कारण ऊँचा रहा है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा ये छह आर्य दर्शन हैं। न्याय में प्रमाणों का, वैशेषिक में प्रमेय का, सांख्य में प्रकृति-पुरुष के विवेचन का, योग में योग के साधनों का, वेदान्त में ब्रह्म का, और मीमांसा में कर्मकाण्ड का मुख्यरूप से वर्णन है।

पिछली कुछ शताब्दियों में दर्शनों पर ऐसे भाष्य हुए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि दर्शनों में एक-दूसरे से विरोध है, परन्तु जब सब दर्शनों में भिन्न-भिन्न विषयों का निरूपण है तब उनमें विरोध कैसे हो सकता है ? यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक विषय पर मतभेद या विरोध हो, तब उनका विरोध माना जा सकता है, परन्तु यदि वे दोनों बात ही भिन्न-भिन्न विषयों पर कर रहे हों, तो उनमें विरोध कैसे हो सकता है ? वस्तुतः तो बात यह प्रतीत होती है कि मूल दर्शनों का विरोध नहीं है, यह विरोध केवल भाष्य का है। यदि कहीं विरोध प्रतीत होता भी है तो उसका कारण सबकी अपनी प्रक्रिया है। यदि एक की प्रक्रिया का दूसरे की प्रक्रिया के प्रकाश में अध्ययन किया जाए तो विरोध के आभास का परिहार करना सुगमतर हो जाएगा। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज का विचार है कि दर्शनकारों का परस्पर विरोध नहीं है, वे आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं है, आर्यसमाज या किसी आर्यविद्वान् की ओर से इस विषय पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया था कि जो विद्वान् महोदय इस विषय पर सर्वोत्तम ग्रन्थ लिखेंगे, उनको सभा २५०.०० रुपये पुरस्काररूप में भेंट करेगी। सभा ने पं० बुद्धदेवजी की प्रस्तुत पुस्तक पर उनको २५०.०० पुरस्कार दिया है।

इस ग्रन्थ को पढ़ने से प्रतीत होता है कि श्री पण्डितजी ने यह

ग्रन्थ बहुत परिश्रम और योग्यता से लिखा है। जिस विषय पर पहले कुछ न लिखा गया हो, उसपर इस प्रकार का ग्रन्थ लिख देना बड़ा भारी कार्य है। पण्डितजी ने यह ग्रन्थ लिखकर समन्वय का मार्ग खोल दिया है।

इस विचार से कि जनता में दार्शनिक विषयों के अध्ययन की रुचि बढ़े, सभा इस ग्रन्थ का मूल्य भी बहुत कम रख रही है। इसलिए अब जनता का कर्त्तव्य है कि वह इस ग्रन्थ को अपनाकर पण्डितजी का परिश्रम सफल करे और उनका तथा हमारा उत्साह बढ़ाए, जिससे इस प्रकार के शास्त्रीय विषयों पर और ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जा सकें।

वाचस्पतिः सम्पादक

भूमिका

श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

"परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्धवाद होवे। छह शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है—मीमांसा में—ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाए। वैशेषिक में—'समय न लगे बिना बने ही नहीं'। न्याय में—'उपादानकारण के न होने से कुछ भी नहीं बन सकता'। योग में—'विद्या, ज्ञान न हो और विचार न किया जाए तो नहीं बन सकता'। सांख्य में—'तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता' और वेदान्त में—'बनानेवाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सके'। इसलिए सृष्टि छह कारणों से बनती है। उन छह कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं।" —सत्यार्थ० ८, पृ० १४१

इस लेख में महर्षि ने छहों दर्शनों की एकता को बड़े स्पष्ट और बलपूर्वक स्वीकार किया है। सहस्रों वर्षों से आर्यावर्त्त में इस बात का विरोध चला आता था कि दर्शनों में मतभेद है। सैकड़ों ग्रन्थ लोगों ने इस विरोध को पुष्ट करने के लिए लिखे। यहाँ तक कि अकेले वेदान्तदर्शन ही से द्वैतवाद, अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद-द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि अनेक सिद्धान्त बना डाले।

ऐसे भीषण समय में महर्षि दयानन्द का ही कार्य था, जिन्होंनें इस बात की घोषणा की कि दर्शनों में कोई भी विरोध नहीं है। यह महर्षि का मनुष्यजाति पर इतना बड़ा उपकार है कि इसको कभी भी भूल नहीं सकते। यदि महाराज का शरीर रहता तब अवश्यमेव महाराज इस अतिगहन विषय पर विस्तार से अपने पुनीत विचार प्रकट करते, किन्तु यह सम्पूर्ण संसार का अभाग्य है कि महर्षि समय से पूर्व ही परलोक सिधार गये। इससे यह महान् कार्य अधूरा ही रह गया। आधुनिक दार्शनिक सम्प्रदाय में अनेक मतभेद पाये जाते हैं, सांख्य तथा मीमांसा में परमात्मा को नहीं माना, न्याय तथा वैशेषिक में परमाणुओं को संसार का उपादानकारण माना है। योग तथा सांख्य में प्रकृति को संसार का उपादानकारण माना है। वेदान्त में ब्रह्म को संसार का अभिन्ननिमित्तोपादनकारण माना है। वेदान्त जीव को ब्रह्म का विकार मानता है, वेदान्त जीव को ज्ञानस्वरूप

मानता है, न्याय में जीव को जड़, अर्थात् उसमें आत्मा तथा मन के संयोग से ज्ञान गुण उत्पन्न होता है, ऐसा माना है। वेदान्त जीव को अकर्त्ता, उभोक्ता मानता है, इत्यादि अनेक मतभेद पाये जाते हैं। यदि ऐसे मौलिक भेद दर्शनों में स्वीकार किये जाएँ तो दर्शन किसी भी कार्य के नहीं ठहर सकते। जब सब दर्शनकार परमात्मा के बनाये वेदों को प्रमाण मानते हैं तब यह कैसे हो सकता कि उनमें इतना बड़ा मौलिक भेद हो। इसलिए इस पुस्तक में प्रत्येक विषय पर सप्रमाण विस्तार से यह सिद्ध किया जाएगा कि दर्शनों में कोई भी मतभेद नहीं है और मतभेद माननेवालों की सम्यक्तया आलोचना की जाएगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस विषय पर अत्यन्त अन्वेषण की आवश्यकता है। मेरी इस पुस्तक से अन्वेषण का मार्ग खुल जाएगा।

—बुद्धदेव मीरपुरी

ओ३म् परमात्मने नमः

षड्दर्शन-समन्वय

ईश्वरसत्ता

वेदान्त

वेदान्त परम आस्तिक दर्शन है, सम्पूर्ण पुस्तक में ब्रह्म का विचार है। प्रमाण के लिए कतिपय सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ —१.१.१

अथ शब्द मङ्गल का वाचक है, बिना परमात्मा की सहायता के किसी पुरुष को मुक्ति का सुख नहीं मिल सकता, इसलिए ब्रह्म को जानने की इच्छा करनी चाहिए।

जन्माद्यस्य यतः ॥ —१.१.२

वह ब्रह्म क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है—जो इस संसार की उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाला है, वही ब्रह्म है।

तत्तु समन्वयात् ॥ —१.१.४

उसी ब्रह्म का सब वेदों में प्रतिपादन किया है, उदाहरण के लिए यजुर्वेद में लिखा है—

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराण स्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥

—यजुः० ८.३६

जिस परब्रह्म से दूसरा कोई भी उत्तम पदार्थ नहीं है, जो सब जगत् में व्याप्त हो रहा है, वही सब जगत् का पालनकर्त्ता और अध्यक्ष है, जिसने अग्नि, सूर्य और बिजली—इन तीन ज्योतियों को प्रजा के प्रकाश के लिए रचकर संयुक्त किया है। वह षोडशी है, अर्थात् १. ईक्षण २. प्राण, ३. श्रद्धा, ४. आकाश, ५. वायु, ६. अग्नि, ७. जल, ८. पृथिवी, ९. इन्द्रिय, १०. मन, ११. अन्न, १२. वीर्य, १३. तप, १४. मन्त्र, १५. कर्म और १६. नाम—ये सब ईश्वर ही के बीच में है, अतः उसका नाम षोडशी है।

इसी प्रकार कहीं साक्षात् कहीं परम्परा से—सर्वत्र परमेश्वर ही का वर्णन है।

ईश-विचार

कतिपय पण्डितों को यह भ्रम है कि न्यायदर्शन में परमात्मा का वर्णन नहीं है, इसलिए न्याय के प्रमाण से भी ब्रह्म की सत्ता सिद्ध की जाती है— —४.१.२१

तत् कारितत्वादहेतुः ॥

यह ठीक है कि बिना कर्म किये परमात्मा फल नहीं देता, किन्तु कर्म करनेवाले जीवों पर ईश्वर अनुग्रह करता है। अनुग्रह या दया का अर्थ है—

यद्यथा भूतं यस्य च यदा विपाककालस्तत्तथा तदा विनियुक्तम्।

जो कर्म जैसा हो और जिसका जब विपाक का काल हो, उसका फल कर्म के अनुसार उसी समय में देना, यही ईश्वर का अनुग्रह या दया है।

शङ्का—जो लोग वेद-शास्त्र को नहीं मानते उनके लिए परमात्मा के होने में क्या प्रमाण है ?

समाधान—सृष्टि के बनने से प्रथम प्रकृति या परमाणु में संसार की रचना के लिए जो गति उत्पन्न होती है वह परमात्मा की ओर से होती है, क्योंकि प्रकृति जड़ है, इसलिए उसमें ज्ञानपूर्वक गति उत्पन्न नहीं हो सकती।

दूसरी बात यह है कि धर्माधर्म का फल जड़ प्रकृत्ति नहीं दे सकती, वह परमेश्वर के ही अधीन है। यदि कहो कि जीव को अपने आप कर्म का फल मिल जाता है तो यह भी ठीक नहीं, कोई भी प्राणी पाप के फल दुःख को नहीं चाहता, किन्तु सबको दुःख भोगना पड़ता है। इससे सिद्ध है कि कर्म के अनुसार दुःख का फल देनेवाला कोई दूसरा ही है, जो हमारी इच्छा न होते हुए भी हमें कष्ट में डाल देता है।

शङ्का—संसार में जो भी किसी कार्य का कर्त्ता होता है, वह सक्रिय होता है। ऐसा कोई भी उदाहरण दिखाई नहीं देता जिससे यह सिद्ध होता हो कि कर्त्ता निष्क्रिय होता है, इस न्याय से यदि परमात्मा सृष्टि का कर्त्ता है तो उसको भी सक्रिय मानना पड़ेगा, यदि कहो कि सक्रिय होने में क्या हानि है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि सक्रिय वही वस्तु हो सकती है जो एकदेशी हो, किन्तु परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है, इसलिए सक्रिय नहीं हो सकता और सक्रिय न

होने से सृष्टि का कर्त्ता भी नहीं है।

समाधान—इस शङ्का के नीचे लिखे समाधान हैं—

१. जैसे अयस्कान्तमणि स्वयं निष्क्रिय होते हुए भी लोहें में गति=क्रिया उत्पन्न कर देती है, इसी प्रकार ईश्वर स्वयं निष्क्रिय होते हुए भी परमाणुओं में गति उत्पन्न कर देता है।

२. कुम्भकार का आत्मा मन से सयुंक्त होता है तथा मन हाथ से संयुक्त होता है और हाथ डण्डे से तथा डण्डा चाक से संयुक्त होकर जैसे चाक में क्रिया उत्पन्न कर देता है वैसे ही परमात्मा सब वस्तुओं के अन्दर विद्यामान है, अतः सम्बन्धमात्र से प्रत्येक पदार्थ में क्रिया उत्पन्न कर देता है।

३. क्रिया दो प्रकार की होती है। एक उत्क्षेपण-ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना आदि तथा दूसरी आख्यातशब्द वाच्य, अर्थात् अस्ति, भवति आदि सब क्रियाएँ हैं, अतः दूसरी स्वतन्त्रतारूपी क्रिया परमात्मा में विद्यमान है। पाणिनीजी का सूत्र भी है—**'स्वतन्त्रः कर्त्ता'** अतः स्वतन्त्र होने से परमात्मा का कर्त्ता होना सिद्ध है। परमात्मा की स्वतन्त्रता यह है कि वह सृष्टि के बनाने में किसी नेत्र आदि इन्द्रिय की या किसी दूसरे कर्त्ता की सहायता नहीं लेता।

४. प्रभु में क्रिया-जनकत्व शक्ति विद्यमान है, वह संन्निधिमात्र से दूसरे पदार्थ में क्रिया उत्पन्न कर देता है, इसीलिए उपनिषद् में लिखा है—**'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'** परमात्मा में ज्ञान, बल तथा क्रिया स्वाभाविक है।

शङ्का—जो-जो कर्त्ता होता है, वह-वह सदेह—देहधारी होता है, अतः यदि परमात्मा सृष्टि का कर्त्ता है तो उसे सदेह मानना पड़ेगा। यदि वह सदेह है तो हमारी भाँति सुख-दुःख का भोक्ता होने से अनीश्वर ठहरेगा।

समाधान—इसके उत्तर निम्न हैं—

१. इस बात को तो पौराणिक भी मानते हैं कि सृष्टि के बनाने से पूर्व परमात्मा निराकार-अदेहधारी था। यदि वह अदेह होता हुआ अपने देह का निर्माण कर सकता है तो अशरीर होता हुआ सृष्टि का निर्माण क्यों नहीं कर सकता?

२. यदि मान भी लेवें कि उसका देह है तो भी यह आकांक्षा होती है कि उसकी देह कितनी बड़ी है, यदि बड़ी मानें तो मच्छर के अण्डे के अन्दर उसकी आँख नहीं बना सकता और सूक्ष्म मानें तो

इतने बड़े सूर्य को नहीं बना सकता, अतः मानना पड़ेगा कि वह परमेश्वर अदेह होता हुआ भी सम्बन्धमात्र से सृष्टि की रचना कर देता है।

शङ्का—परमेश्वर सृष्टि की रचना सापेक्ष—किसी साधन को लेकर करता है या निरपेक्ष बिना किसी साधन के करता है। यदि कहो साधन से करता है तो इस साधन का कर्त्ता न होने से कर्त्ता नहीं हो सकता अगर कहो बिना साधन के सृष्टि की रचना करता है तो कर्म की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

समाधान—यह आवश्यक नहीं है कि कर्त्ता जिस कार्य को किसी साधन से करता है, वह साधन भी उसका बनाया हुआ हो और यह भी आवश्यक नहीं है कि कोई भी साधन कर्त्ता का बनाया हुआ न हो, संसार में दोनों प्रकार के उदाहरण पाये जाते हैं। कहीं तो साधनों का निर्माता न होता हुआ भी उनसे काम लेता है, जैसे—कान, नाक, आँख आदि हमारे बनाये हुए नहीं, फिर भी हम उनसे कार्य करते हैं और कहीं पर साधन भी कर्ता के बनाये हुए होते हैं जैसे—लुहार स्वयं अपने साधनों को बनाकर उनसे बहुत-सी वस्तुओं को बनाता है वैसे ही प्रकृति आदि परमात्मा के बनाये हुए नहीं, फिर भी उनके द्वारा सृष्टि की रचना करता है।

शङ्का—कोई भी व्यक्ति बिना किसी प्रयोजन के कार्य नहीं करता, फिर पूर्णकाम होते हुए इतनी बड़ी सृष्टि की रचना परमात्मा ने क्यों की?

समाधान—कई कहते हैं कि खेल के लिए परमात्मा ने सृष्टि की रचना की है, किन्तु यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि रति के लिए और दुःख को दूर करने के लिए क्रीड़ा की जाती है और परमात्मा में दुःख का अभाव है, अतः खेल के लिए संसार-रचना उचित नहीं। दूसरे कहते हैं कि अपनी विभूति बतलाने के लिए ईश्वर ने संसार की रचना की है यह भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्णकाम को क्या आवश्यकता है कि वह अपने-आप को दूसरों पर प्रकट करे। संसार की रचना करना तथा न्याय करना परमात्मा का स्वभाव ही है।

शङ्का—यदि रचना ईश्वर का स्वाभाविक गुण है तो निरन्तर सृष्टि की रचना होनी चाहिए, क्योंकि स्वभाव परमात्मा में निरन्तर रहता है।

समाधान—यह ठीक है कि संसार की रचना करना परमात्मा

का स्वाभाविक गुण है और वह उसमें निरन्तर रहता है, किन्तु वह जड़ का स्वभाव नहीं है, जिससे निरन्तर कार्य हो, किन्तु चेतन या बुद्धिमान् होने से जब चाहता है तभी उसका प्रयोग करता है। जैसे—मनुष्यों में अनेक प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं, किन्तु वे जब चाहते हैं तब उसका प्रयोग करते हैं और जब नहीं चाहते तब शक्ति के होते हुए भी उसका प्रयोग नहीं करते।

शङ्का—ईश्वर द्रव्य है या गुण? यदि कहो द्रव्य है तो विशेष गुणों का आश्रय होने से एक आत्मा ही सिद्ध हो जाएगा।

समाधान—विशेष गुणों के होने से सब वस्तुएँ एक ही नहीं हो जातीं, जैसे जीव में विशेष गुण हैं तथा पृथिवी में भी, किन्तु पृथिवी आत्मा या आत्मा पृथिवी नहीं हो जाता।

वैशेषिक तथा ईश्वर

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्॥ —१.१.३

ईश्वर का वचन होने से वेद को प्रमाण मानना चाहिए।

आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः॥ —वै० ९.२.१३

आर्षज्ञान तथा परमात्मा का दर्शन धर्म से होता है।

योगदर्शन

ईश्वरप्रणिधानाद्वा॥ —१.२३

व्यासभाष्य में लिखा है—

ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परगुरावर्पणं तत् फलसंन्यासो वा॥

सर्व=क्रियाओं का परमात्मा में अर्पण कर देना व फल की इच्छा न करना ईश्वरप्राणिधान है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ —अथर्व० १९.७१.१

भक्त कहता है मैंने वेदमाता-वेद के निर्माता भगवान्-की स्तुति की है। आयु, प्राण, प्रजा, कीर्ति आदि सब पदार्थों के देनेवाले प्रभु ही हैं। परमात्मादेव उपदेश देते हैं—हे मनुष्यो! यदि तुम ब्रह्मलोक—मुक्ति को चाहते हो तो आयु आदि सब पदार्थ मेरे समर्पण कर दो, अर्थात् इनसे ऐसा कार्य करो कि ये सब वस्तुएँ तुमको मुझसे अलग करनेवाली न हों। इसी बात का नाम योग में ईश्वरप्रणिधान है।

सांख्य

प्रायः पण्डितों का विचार है कि सांख्यदर्शन के कर्ता कपिलाचार्य नास्तिक हैं, परमात्मा को नहीं मानते, सांख्यदर्शन में स्पष्ट परमात्मा की सत्ता का निषेध है। ऐसे विचारवाले पुरुषों के विषय में श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि—जो सांख्य को अनीश्वरवादी कहते हैं वे स्वयं अनीश्वरवादी हैं, सांख्य नहीं। नीचे उन सब प्रकरणों पर विचार किया जाता है जो सांख्य के अनीश्वरवादी होने के विषय पर दिये जाते हैं।

वेदों में पुरुष के अर्थ परमात्मा तथा आत्मा दोनों हैं। इसी प्रकार सांख्य में भी पुरुष के अर्थ परमात्मा तथा जीवात्मा दोनों हैं। गीता में भी यही लिखा है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः॥

—गीता १५.१६, १७

इस श्लोक में प्रकृति, परमात्मा और जीवात्मा तीनों को पुरुष शब्द से पुकारा है। प्रथम यह कहा है कि पुरुष दो हैं। एक प्रकृति, दूसरा कूटस्थ जीव तथा परमात्मा। दो पुरुष बतलाकर एक पुरुष के जीवात्मा तथा परमात्मा दो अर्थ कर दिये हैं।

शङ्का—सांख्यदर्शन अध्याय १ के ९२ सूत्र में स्पष्ट है—**'ईश्वरासिद्धेः'**। परमात्मा की असिद्धि होने से। जब कपिलाचार्य स्वयं ईश्वर का निषेध करते हैं फिर उनको ईश्वरवादी कहना ठीक नहीं।

समाधान—सांख्यकार ने प्रत्यक्षप्रमाण का वर्णन करते हुए लिखा है—

यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्॥

—१.८९

जो इन्द्रिय या अर्थ के सम्बन्ध में विषयाकार ज्ञान होता है वह प्रत्यक्षप्रमाण है। इसपर यह शङ्का है कि योगियों को बिना विषय-सम्बन्ध के भी ज्ञान होता है, इसलिए यह लक्षण ठीक नहीं, इसपर लिखा है—

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः॥ —१.९०

योगियों को आन्तरिक प्रत्यक्ष होने से अव्याप्तिदोष नहीं आता, अर्थात् प्रत्यक्ष बाह्य तथा आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का होता है।

शङ्का—जब बाह्य प्रत्यक्ष से काम चल जाता है तो आन्तरिक प्रत्यक्ष के मानने की क्या आवश्यकता है?

समाधान—**ईश्वरासिद्धेः॥** केवल बाह्य प्रत्यक्ष से ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिए आन्तरिक प्रत्यक्ष भी मानना चाहिए।

शङ्का—यदि ईश्वर की सत्ता को न माना जाए तथा अबाह्य प्रत्यक्ष भी न माना जाए तो क्या हानि है?

समाधान—

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत् सिद्धिः॥ —सां० १.९३

मुक्त जीव या बद्धजीव कोई सृष्टि की रचना नहीं कर सकता, अतः ईश्वर की सत्ता मानना आवश्यक है।

वेदान्तदर्शन के चौथे अध्याय में मुक्तों के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए लिखा है—

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्त्वाच्च॥ —४७.१७

मुक्तात्मा सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय नहीं कर सकते, क्योंकि जहाँ सृष्टि-उत्पत्ति का प्रकरण है वहाँ परमेश्वर को ही सृष्टिकर्त्ता लिखा है, जीवों को नहीं। यही बात सांख्य के इस सूत्र में बतलाई है—

उभयथाप्यसत्करत्वम्॥ —१.९४

इसलिए दोनों प्रकार, अर्थात् उभय अवस्था में भी जीव सृष्टि रचना नहीं कर सकता।

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासा सिद्धस्य वा॥ —सां० १.९५

वेदों में भी जहाँ-जहाँ मुक्तात्माओं की प्रशंसा आती है, वहाँ-वहाँ सृष्टि-रचना की सामर्थ्य का वर्णन नहीं आता और यह बात इससे भी सिद्ध नहीं है। जैसे लोहे में जलाने की शक्ति नहीं होती, किन्तु आग के संयोग से आती है। केनोपनिषद् में लिखा है—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ —केन० १.५

जो मन से विचार नहीं करता, किन्तु जिसकी शक्ति से मन विचार करता है, वही ब्रह्म है, उसी की उपासना करनी चाहिए।

इस प्रकरण में कहीं भी प्रभु की सत्ता का निषेध नहीं है, किन्तु

प्रबल मण्डन करते हुए यह बतलाया है कि संसार को रचने की सामर्थ्य किसी भी प्राणी में नहीं है तथा जीव ब्रह्म की उपासना करता है। जीव के विशेषकार्य भी परमात्मा की सहायता के बिना नहीं हो सकते। यहाँ तक कि जीवों के ज्ञान का सबसे उत्तम साधन जो अन्तःकरण है वह भी परमात्मा की शक्ति से कार्य करता है।

इन चार युक्तियों को देकर परमात्मा का मण्डन किया है, न कि खण्डन।

शङ्का—यह प्रकरण तो लग गया, किन्तु पाँचवें अध्याय में जो यह लिखा है कि—

प्रमाणाभावान्न तत् सिद्धिः ॥

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ॥ —सां० ५.१०, ११

प्रमाण के अभाव से ईश्वर सिद्ध नहीं होता, सम्बन्ध के अभाव से अनुमान प्रमाण भी ईश्वर में नहीं है।

यहाँ तो स्पष्ट ही ईश्वर की सत्ता का निषेध है।

समाधान—यहाँ भी समझ की भूल से लोग ईश्वर का निषेध करते हैं। नीचे सम्पूर्ण प्रकरण लिखा जाता है—

शङ्का—जीवों को जो बुरे-भले फल मिलते हैं, वे कर्मों के अधीन नहीं है, किन्तु परमात्मा की इच्छा पर निर्भर हैं। परमेश्वर जिसको चाहे फल देवे जिसको न चाहे न देवे।

दूसरी बात यह है कि मङ्गलाचरण से, अर्थात् ईश्वर का नाम लेने मात्र से जब फल मिल जाता है, पुनः कर्म करने की क्या आवश्यकता है?

समाधान—

नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत् सिद्धेः ॥ —सां० ५.२

फल की सिद्धि ईश्वर की इच्छा पर ही निर्भर नहीं हैं, क्योंकि फल कर्म से मिलता है, बिना कर्म के नहीं।

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ॥ —सां० ५.३

यदि ईश्वरेच्छा पर फल का निर्भर हो तो उसका स्वार्थ भी होगा जैसे संसार में कोई किसी का उपकार करे तो वह भी उसका भला करता है।

लौकिकेश्वरवदितरथा ॥ —सां० ५.४

यदि कहो कि वह अपने उपकार के बिना ही जिसको चाहता

है उसको फल देता है, जिसको नहीं चाहता उसको नहीं देता तो भी लौकिक ईश्वर की भाँति हो जाएगा।

पारिभाषिको वा ॥ —सां० ५.५

अथवा ऐसा ईश्वर तुम्हारा पारिभाषिक है। इसको कोई नहीं मान सकता।

न रागादृते तत् सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ॥ —५.६

जो ईश्वर बिना कर्म के फल देता है उसमें राग-द्वेष अवश्य है, क्योंकि बिना राग-द्वेष के यह नहीं हो सकता कि बिना कर्म के फल एक को देवे तथा दूसरे को न देवे।

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ॥ —सां० ५.७

यदि कहो कि राग से क्या हानि है तो वह नित्य मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि जिसमें राग-द्वेष होता है, वह बद्ध भी अवश्य होता है।

शङ्का—परमात्मा को सृष्टि का निमित्तकारण न मानकर यदि संसार का उपादानकारण माने तो क्या हानि है?

समाधान—प्रधानशक्तियोगाच्चेत् संगापत्तिः ॥ —सां० ५.८

यदि परमेश्वर में प्रधानशक्ति का योग अर्थात् उपादानकारण मानें तो प्रकृति या कार्यजगत् के जड़ता, मूर्खता, दुःख, परिणामी होना आदि सब दोष परमात्मा में मानने पड़ेंगे, क्योंकि जो गुण कारण में होते हैं वही कार्य में आते हैं।

सत्ता मात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ॥ —सां० ५.९

यदि ब्रह्म की सत्तामात्र से सृष्टि की उत्पत्ति मानो तो सम्पूर्ण संसार आनन्दमय होना चाहिए, क्योंकि उसका कारण ब्रह्म आनन्दस्वरूप है।

प्रमाणाभावान्न तत् सिद्धिः ॥ —सां० ५.१०

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ॥ —सां० ५.११

इसलिए प्रमाण के अभाव से ब्रह्म संसार का उपादानकारण सिद्ध नहीं होता और सम्बन्ध के अभाव से अनुमान भी नहीं है, अर्थात् संसार में ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो कि परमात्मा जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण सिद्ध हो।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥ —सां० ५.१२

श्रुति भी संसार को प्रकृति का कार्य बतलाती है, परमात्मा का नहीं।

नाविद्याशक्तियोगो निस्संगस्य ॥ —सां० ५.१३

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसंगः ॥ —सां० ५.१६

यदि कहो अविद्या के योग से ब्रह्म सृष्टि का रूप धारण कर लेता है तो भी ठीक नहीं, क्योंकि वेदों में परमात्मा को निस्संग और अविद्यादि क्लेशों से रहित बतलाया है तथा अविद्या के अर्थ हैं, किसी वस्तु का न जानना या उलटा जानना यदि वे दोनों बातें ब्रह्म में आ जाएँ तो ब्रह्म-ब्रह्म ही नहीं रहता।

सारांश

प्रथम प्रकरण में तो यह सिद्ध किया है कि परमात्मा जीवों को कर्मों के अनुसार फल देता है, बिना कर्म के नहीं तथा दूसरे प्रकरण में यह सिद्ध किया है कि कर्मों का फल देने के लिए जिस संसार की रचना परमात्मा ने की है उसका उपादानकारण प्रकृति है, परमात्मा नहीं। यहाँ कहीं भी अनीश्वरवाद का प्रतिपादन नहीं है।

शङ्का—इन प्रकरणों की व्याख्या जिन लोगों ने दूसरी प्रकार की है वह ठीक नहीं, आपकी ठीक है, इसमें क्या प्रमाण है ?

समाधान—सांख्यदर्शन के तीसरे अध्याय के ५६ सूत्र में लिखा है—

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ॥ —सां० ३.५६

वह परमेश्वर सबको जाननेवाला—सर्वज्ञ तथा सब संसार की रचना करनेवाला है।

यहाँ कपिलाचार्य ने परमात्मा को स्पष्ट सृष्टि का कर्त्ता माना है।

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥ —सां० ३.५७

ऐसे सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की सिद्धि है, अर्थात् जो परमात्मा को राग-द्वेषदि से युक्त सृष्टि का अकर्त्ता आदि दोषों से युक्त मानते हैं, ऐसे परमात्मा की सिद्धि नहीं होती।

२. सांख्यदर्शन अध्याय १ सू० १९ में लिखा है—

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते: ॥

—सां० १.१९

नित्य मुक्त परमात्मा का प्रकृति के योग से दुःख या बन्ध नहीं हो सकता (तत् योगात् ऋते) जीवात्मा के योग के बिना, अर्थात् जीव को ही दुःख या बन्धन होता है, परमात्मा को नहीं।

शङ्का—कतिपय विद्वान् नित्यमुक्तादि शब्द से जीवात्मा का ग्रहण

करते हैं, आपने परमात्मा कैसे किया ?

समाधान—जीवात्मा नित्यमुक्त या नित्यशुद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि कभी वह कुकर्म करने से अशुद्ध हो जाता है, कभी दुःखी, कभी सुखी या मुक्त-बद्ध होता रहता है, अतः नित्य मुक्त या नित्य शुद्ध परमात्मा ही हो सकता है, इसलिए नित्य मुक्तादि विशेषणों से यहाँ परमात्मा का ही ग्रहण करना चाहिए, जीवात्मा का नहीं। इस सूत्र में स्पष्ट कपिलाचार्य ने परमात्मा की सत्ता को स्वीकार किया है।

३. **समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥** —सां० ५.११६

समाधि, सुषुप्ति या मोक्ष में जीवात्मा की ब्रह्मरूपता हो जाती है, अर्थात् परमात्मा के आनन्द को जीवात्मा भोगता है।

यदि सांख्यकार अनीश्वरवादी है तो जीवात्मा के लिए ब्रह्मरूपता क्यों बतलाई, इससे सिद्ध है कि सांख्य ब्रह्म को मानता है।

४. सांख्य के बीसियों सूत्रों में वेद का प्रमाण दिया है, और वेद के सहस्रों मन्त्रों में परमात्मा का वर्णन आता है, पुनः वेद को प्रामाणिक माननेवाला अनीश्वरवादी कैसे हो सकता है ?

५. अध्याय पाँच के प्रथम सूत्र में लिखा है—

मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति ॥

मङ्गलाचरण करना चाहिए, क्योंकि यह शिष्टाचार है, इसका फल भी देखा गया है तथा वेद में भी मङ्गलाचरण करना लिखा है। यदि कपिल जी परमात्मा को नहीं मानते तो मङ्गलाचरण का अर्थ ही क्या है ? इससे सिद्ध है कि वे आस्तिक थे।

६. गीता में आता है—

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ॥ —५.४

बालक=मूर्ख सांख्य या योग को अलग-अलग बतलाते हैं, पण्डित नहीं।

इससे सिद्ध है कि सांख्य या योग की शिक्षा एक ही है, और योग में बड़े बल से परमात्मा का मण्डन किया है फिर सांख्यकार नास्तिक कैसे हो सकते है, इसलिए श्री स्वामी दयानन्दजी ने ठीक लिखा है कि जो कपिलजी को अनीश्वरावादी कहते हैं, वे स्वयं अनीश्वरवादी हैं, कपिलजी नहीं।

७. **व्यावृतोभयरूपः ॥** —सां० १.१६०

व्यावृत्तो निवृत्तोभयरूपो यस्मात् ॥

उभयरूप, अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष दोनों का रूप प्रभु में नहीं

है, वह प्रकृति तथा पुरुष=जीवात्मा दोनों से पृथक् है।

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम् ॥ —१.१६१

उस भगवान् का जीव तथा प्रकृति से साक्षात् सम्बन्ध होने से वह साक्षी है। जैसा कि—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

—ऋ० १.१६४.२०

दो सुपर्ण मित्र तथा व्याप्य-व्यापकभाव से जुड़े हुए हैं, उनमें से एक स्वादुफल को भोगता है तथा दूसरा न्यायाधीश देखता है।

इस मन्त्र में प्रभु को साक्षी बतलाया है।

नित्यमुक्तत्वम् ॥ —सां० १.१६२

वह परमेश्वर साक्षी होने पर भी नित्यमुक्त है।

शङ्का—कई भाष्यकार इस सूत्र को जीव परक लगाते हैं।

समाधान—जीव कभी भी नित्य मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि सांख्यकार स्वयं जीव को बन्धन में मानते हैं।

औदासान्यं चेति ॥ —सां० १.१६३

ईश्वर जीव की तरह बुरे कर्म नहीं करता, किन्तु उनसे उदासीन रहता है।

उपरागात् कर्त्तृत्वं चित् सान्निध्यात् ॥ —सां० १.१६४

परमेश्वर के सम्बन्ध से ही प्रकृति में कर्त्तृत्व आता है, जड़ होने से स्वयं नहीं।

शङ्का—जैसे धेनु का दूध स्वयं वत्स के लिए चलता है, वैसे ही प्रकृति स्वयं संसार की रचना करती है ईश नहीं, यह सांख्य का सिद्धान्त है।

समाधान—इस दृष्टान्त से भी यही सिद्ध है कि परमात्मा जगत् का निमित्तकारण है, क्योंकि जब तक गौ का चेतन जीवात्मा प्रेरणा न करे तब तक दूध नहीं आता।

मीमांसा और ईश्वर

बहुत-से भाष्यकारों का मत यह है कि मीमांसाशास्त्र में परमात्मा का खण्डन है, मीमांसा अनीश्वरवादी शास्त्र है, यह कथन भी भाष्यकारों की लीला का ही द्योतक है। मीमांसा शास्त्र में एक भी ऐसा सूत्र नहीं है जिसमें परमात्मा का निषेध किया हो, इसके विपरीत विधायक

सूत्र मिलते हैं। उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

शङ्का—लोके कर्मणि वेदवत्ततोऽधिपुरुषज्ञानम् ॥

—मी० ६.२.१६

लोक में भी वेद की भाँति कर्म किये जाते हैं, उनसे ही परमात्मा का ज्ञान हो जाएगा फिर वेद के मानने की क्या आवश्यकता है? इसी बात की पुष्टि दूसरे सूत्र से की है—

अपराधेऽपि च तैः शास्त्रम् ॥ —मी० ६.२.१७

अपराध करने पर लौकिक पुरुष भी अपराधी के लिए दण्ड बतला देते हैं फिर वेद के मानने की कोई आवश्यकता नहीं।

समाधान—अशास्त्रात्तूपसम्प्राप्तिः शास्त्रं स्यान्न प्रकल्पकं तस्मादर्थेन गम्येताप्राप्ते शास्त्रमर्थवत् ॥

—मी० ६.२.१८

यदि वेद को न माना जाए तो परमात्मा की प्राप्ति अशास्त्रीय हो जाएगी, इसलिए शास्त्र को मानना चाहिए। इन्द्रियगोचर परमेश्वर के बतलाने से शास्त्र सार्थक है, निरर्थक नहीं।

देवताश्रये च ॥ —मी० ६.२.१९

परमात्मा रूपी देवता के मानने ही से शास्त्र अर्थवाला है, अन्यथा नहीं।

१. इन सूत्रों में पूर्वपक्ष का उत्तर देते हुए महर्षि जैमिनी ने स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा का यथार्थ स्वरूप इन्द्रियों से नहीं जाना जाता, इसलिए वेद की आवश्यकता है, तथा ईश्वर का वर्णन करने से ही वेद अर्थवाला होता है।

२. जब मीमांसा वेद को परम प्रमाण मानता है तथा वेद में स्थान-स्थान पर परमात्मा का कथन किया गया है फिर यह कैसे सम्भव है कि वह परमात्मा को न माने? क्या मीमांसा में यह कहीं लिखा है कि वह ईश्वरपरक वेद के भाग को नहीं मानता?

३. जैमिनीजी महर्षि व्यास के शिष्य हैं तथा व्यासजी ने शीरीरक मीमांसा में विस्तारपूर्वक भगवान् का वर्णन किया है, पुनः वह सुयोग्य शिष्य होते हुए नास्तिक कैसे हो सकते हैं?

४. क्या मीमांसा में कोई ऐसा सूत्र है जिसमें ब्रह्म या परमेश्वर का खण्डन किया हो। यदि कहो कि परमेश्वर का वर्णन भी तो नहीं किया। इसका उत्तर यह है कि अगर कोई अपने प्रधान विषय का

वर्णन करते हुए किसी दूसरे विषय का वर्णन न करे तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह उसको नहीं मानता और मीमांसा में यह बात है भी नहीं, क्योंकि सूत्रकार धर्म-धर्मी शब्द से तथा अधिक पुरुष या देवता शब्द से परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं।

यस्मात्परंनापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

—श्वेता० ३.९

इत्यादि प्रमाणों में पुरुष शब्द से परमात्मा का वर्णन स्पष्ट पाया जाता है।

सर्वशक्तौ प्रवृत्तिः स्यात्तथाभूतोपदेशात्॥ —मी० ६.३.१

सर्वशक्तिमान् परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब कर्मों की प्रवृत्ति होनी चाहिए, ऐसा ही उपदेश शास्त्रों में आता है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

—कठ० २.१५

हे नचिकेतः! जिस पद को सब वेद कहते हैं, जिसके लिए सब कर्मानुष्ठान किये जाते है, जिसकी प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, वह पद ओ३म् है।

अपि वाप्येकदेशे स्यात् प्रधाने ह्यर्थनिवृत्तिर्गुण-
मात्रमितरत्तदर्थत्त्वात्॥ —मी० ६.३.२

कर्म प्रभु के एक देश में होने से कर्मों का प्रधान उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है, अन्य सब बातें गौण हैं।

तदकर्मणि च दोषस्तस्मात्ततो विशेषः स्यात्
प्रधानेनाऽभिसम्बन्धात्॥ —मी० ६.३.३

जो कर्म परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं किया जाता, वेद में उस कर्म को सदोष, निष्फल बतलाया है, अतः वही कर्म उत्तम है जिसका सम्बन्ध प्रधान परमेश्वर से है।

यथा—

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

—ऋ० १.१६४.३९

जिस अक्षर, व्यापक परमेश्वर में वेद है, जिसमें देव—दिव्य पदार्थ या योगिजन हैं, जो उस भगवान् को नहीं जानता वह वेद तथा कर्मों से क्या करेगा, जो उस परमेश्वर को जानते हैं, वे परमपद को पाते हैं।

ब्राह्मणे जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ —वे० ४.४.५

जैमिनि आचार्य का मत है कि मुक्ति में जीव ब्रह्म के आनन्द आदि गुणों को धारण करता है।

इस वेदान्त के सूत्र से सिद्ध है कि जैमिनि महाराज परमात्मा को मानते हैं।

परमात्मा अदेही है

श्री स्वामी दयानन्दजी ने अपने ग्रन्थों में इस वाद का अति प्रबलता से प्रतिपादन किया है कि परमात्मा अवतार, अर्थात् देह धारण नहीं करता। इस वाद की दर्शनशास्त्रों में भली प्रकार पुष्टि पाई जाती है। किसी भी शास्त्र में परमात्मा का शरीर धारण करना नहीं लिखा, किन्तु इसके विपरीत प्रमाण पाये जाते हैं, उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

पत्युरसामाञ्जस्यात् ॥ —वेदान्त २.२.३७

युक्तिशून्य होने से परमात्मा का शरीर नहीं हो सकता।

सम्बन्धानुपपत्तेश्च ॥ —२.२.३८

यदि परमात्मा को देहधारी मानें तो ठीक नहीं, क्योंकि जो देहधारी होगा, वह एकदेशी होगा तथा एकदेशी होने से सम्पूर्ण सृष्टि के साथ उसका सम्बन्ध नहीं हो सकता और सम्बन्ध अभाव से संसार की रचना भी नहीं कर सकता, इसलिए परमात्मा का शरीर मानना ठीक नहीं।

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ —वे० २.२.३९

यदि परमात्मा का शरीर माना जाए तो उसका अधिष्ठान भी मानना पड़ेगा, पुनः यह भी बताना पड़ेगा कि जब सृष्टि की रचना के लिए परमात्मा ने शरीर बनाया तो वह ठहरा कहाँ, क्योंकि पृथिवी तो उस समय थी ही नहीं। दूसरी बात यह है कि शरीर होता है बुरे या भले कर्मों का फल भोगने के लिए, जब परमात्मा में ऐसे कर्म ही नहीं हैं, जिनका वह फल भोगे फिर उसका शरीर कैसे हो सकता है? जीव को तो परमात्मा बुरे-भले कर्मों का फल देता है, परमेश्वर को कौन फल देगा?

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ —वे० २.२.४०

इसपर स्वामी शङ्कराचार्यजी लिखते हैं—

लोकदर्शनानुसारेणेश्वरस्यापि किञ्चित् करणानामायतनं शरीरं कामेन कल्प्येत। एवमपि नोपपद्यते। सशरीरत्वे हि सति संसारीवद्भोगादिप्रसंगादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्येत ॥

यदि लोकदृष्टि के अनुसार परमात्मा की भी इन्द्रियों का अधिष्ठान शरीर मानें तो ठीक नहीं, क्योंकि ईश्वर का शरीर या इन्द्रिय मानने से यह भी मानना पड़ेगा कि वह भी हमारी भाँति सुख-दुःख का भोक्ता है तो फिर जैसे हम अनीश्वर है, वैसे ही परमात्मा भी अनीश्वर हो जाएगा।

अन्तवत्त्वसर्वज्ञता वा ॥ —वे० २.२.४१

यदि परमात्मा को देहधारी मानें तो परमात्मा को अन्तवाला, एकदेशी मानना पड़ेगा और यदि एकदेशी मानो तो उसको असर्वज्ञ, अल्पज्ञ मानना पड़ेगा, और अल्पज्ञ मानने से वह परमात्मा नहीं हो सकता।

उत्पत्त्यसम्भवात् ॥ —२.२.४२

ऐसे एकदेशी या असर्वज्ञ परमात्मा से सृष्टि की उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि इस विशाल संसार की रचना सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परमात्मा ही कर सकता है अल्पज्ञ, एकदेशी नहीं।

न च कर्तुः करणम् ॥ —वे० २.२.४३

इससे सिद्ध है कि जगत्कर्त्ता परमात्मा के करण=इन्द्रिय या शरीर नहीं है!

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॥ —वे० २.२.४४

यदि कहो कि परमात्मा में ज्ञानादि गुणों के होने से वह अपना शरीर बना लेगा तो भी ठीक नहीं, क्योंकि देहधारी में सृष्टि की रचना का सामर्थ्य हो ही नहीं सकता।

विप्रतिषेधाच्च ॥ —वे० २.२.४५

यदि परमात्मा को शरीरधारी माना जाए तो वेद से विरोध आएगा, क्योंकि वेद में परमात्मा को अकाय लिखा है, पुनः परमात्मा सकाय कैसे हो सकता है ? उपर्युक्त वेदान्त के युक्तियुक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि ईश्वर शरीर धारण नहीं करता।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥

—योग० १.२४

इस सूत्र का भाष्य करते हुए व्यासजी लिखते हैं—

अविद्यादयः क्लेशाः कुशलाकुशलानि कर्माणि तत्फलं विपाकः तदनुगुण वासना आशया यो हि अनेन भोगेन अपरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः ॥

अविद्या, राग-द्वेषादि क्लेश तथा धर्म-अधर्मरूपी कर्म और उन कर्मों का फल भोगने से जो वासनाएँ उत्पन्न होती हैं इन सबसे जो रहित है, वह ईश्वर है।

शङ्का—कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति बहवः केवलिनः।

मुक्तपुरुषों में भी क्लेश, कर्मों का फल भोगना आदि बातें नहीं होती, फिर उनमें तथा परमात्मा में क्या भेद है ?

समाधान—ते हि त्रीणि बन्धनानि छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ता ईश्वरस्य तत् सम्बन्धो न भूतो न भावी स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः।

जो मुक्त पुरुष होते हैं वे तीन बन्धनों को काटकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं, इसलिए उनके साथ सुख-दुःख का सम्बन्ध होता है, किन्तु परमात्मा के साथ क्लेश, कर्मादि का सम्बन्ध भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान किसी भी काल में नहीं होता, वह सदैव मुक्त सदा ही ईश्वर होता है।

इस सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने कितना स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा शरीर धारण नहीं करता, क्योंकि जो शरीरधारी होगा उसमें ये बातें अवश्य होंगी।

न्याय

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानमुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायादपवर्गः ॥ —न्याय १.१.२

मिथ्याज्ञान, अर्थात् उलटा ज्ञान आत्मा को अनात्मा जानना, सुख को दुःख जानना, अशुद्ध को शुद्ध जानना आदि इससे राग-द्वेष होता है तथा राग-द्वेष से धर्माधर्म होता है और धर्माधर्म से जन्म अर्थात्—

देहेन्द्रियबुद्धिमनोनिकायविशिष्टः प्रादुर्भावः।

देह, इन्द्रिय, बुद्धि, मन इनके साथ जीवात्मा के सम्बन्ध को जन्म कहते हैं। यह जन्म होता है और जन्म से सुख या दुःख होता है। इस क्रम से परमात्मा में मिथ्या ज्ञान का अभाव होने से उसमें राग-द्वेष नहीं हो सकते और उनके अभाव से उपभोग के योग्य धर्माधर्म नहीं हो सकते और उनके अभाव से जन्म शरीर का धारण

करना भी नहीं हो सकता।

शङ्का—विश्वतश्चक्षुः ? इत्यादि इस मन्त्र में स्पष्ट रूप में परमात्मा के मुख आदि अवयव लिखे हैं, पुनः वेद के आगे इन दर्शनों का कथन प्रामाणिक नहीं हो सकता।

समाधान—उदयनाचार्य जो न्याय के बड़े भारी पण्डित हैं, उन्होंने न्याय कुसुमाञ्जलि में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया है—

अत्र प्रथमेन सर्वज्ञत्वं चक्षुषादृष्टेरुपलक्षणात्। द्वितीयेन सर्ववक्तृत्वं, मुखेन वागुपलक्षणात्, तृतीयेन सर्वसहकारित्वोपलक्षणात्, चतुर्थेन व्यापकत्वं पदा व्याप्तेरुपलक्षणात्। पञ्चमेन धर्माधर्मलक्षणप्रधानकारणत्वं, ते हि लोकयात्रावहनाद्बाहू। षष्ठेन परमाणुरूपप्रधानाधिष्ठेयत्वं ते हि गतिशीलत्वात् पतत्त्रव्यपदेशाः पतन्तीति।

इस मन्त्र में जो 'विश्वतश्चक्षुः' पद है, उसका अर्थ है सर्वज्ञ तथा 'विश्वतोमुख' का अर्थ है—सर्ववक्ता, 'बाहु' का अर्थ है—सहकारि। 'विश्वस्तपात्' का अर्थ है—सर्वव्यापक, 'बाहुभ्याम्' का अर्थ है—धर्म तथा अधर्म। यहाँ पर कहीं भी परमात्मा के मुख आदि का वर्णन नहीं है।

शङ्का—यदि इस मन्त्र में आये हुए मुखादि शब्दों का अर्थ परमात्मा के मुखादि अवयव करें, तो इससे क्या हानि है ?

समाधान—यदि इस मन्त्र में आये मुखादि शब्दों का अर्थ मुखादि अवयव करें तो मन्त्र का अर्थ किसी प्रकार से सङ्गत नहीं हो सकता क्योंकि 'विश्वतोमुख' के अर्थ हैं जिसके चारों ओर मुख हैं तथा चारों ओर आँखें, चारों ओर पैर हैं या चारों ओर हाथ हैं। यदि चारों ओर मुख हों तो चारों ओर हाथ नहीं हो सकते। यदि चारों ओर हाथ हैं तो चारों ओर पैर नहीं हो सकते, तथा लिखा है 'बाहूभ्याम्'—यह द्विवचन है। अब यदि यह माना जाए कि उसके चारों ओर हाथ हैं तो हाथ अनेक हुए, पुनः दो हाथ कहना असङ्गत हो जाएगा। इसलिए इस मन्त्र का अर्थ उदयनाचार्य का ही सङ्गत है।

शङ्का—लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥ —वे० २.१.३३

अवतार लेकर जो भगवान संसार में कार्य करते हैं वह तो केवल उनकी लीला है, वास्तव में परमात्मा को सुख-दुःखादि कुछ भी नहीं होता—

इस वेदान्तसूत्र का अर्थ पण्डित गिरिधर शर्मा या पण्डित

कालुरामादि सर्वथा अशुद्ध करते हैं, इसका यह अर्थ नहीं है। उदाहरण के लिए इसी सूत्र का स्वामी शङ्कराचार्य का भाष्य नीचे दिया जाता है—

यथा चोच्छ्वासप्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्य किञ्चित् प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति, एवमीश्वरस्य इत्यादि।

जैसे लोक में श्वास-प्रश्वास का लेना स्वाभाविक है तथा उसके लेने में किसी प्रकार का कोई भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता इसी प्रकार ईश्वर का सृष्टि की रचना करना स्वभाव ही है उसको सृष्टि की रचना करने में किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता।

इस सूत्र का यह उचित अर्थ है, इसमें अवतारवाद की गन्ध भी नहीं है।

इस प्रकार छह दर्शन इस सिद्धान्त की पुष्टि समानरूप से करते हैं कि परमात्मा का देह नहीं है।

जीव-सत्ता

षड् दर्शनों में जीव की सत्ता का प्रतिपादन आता है, सब दर्शनकार जीवात्मा को नित्य, अल्पज्ञ, ज्ञानादि गुणों से युक्त एकदेशी, कर्मफलों का भोक्ता मानते हैं, तथापि स्वामी शङ्कराचार्यजी ने वेदान्तदर्शन के सूत्रों का भाष्य करते हुए अद्वैतवाद का वह भाव जिसकी वेदान्त के सूत्रों में गन्ध भी नहीं है, अपनी ओर से डाल दिया है, जिसके कारण दार्शनिक-संसार में एक बड़ा भारी मौलिक भेद उत्पन्न हो गया है। कहीं तो स्वामी शङ्कर लिखते हैं कि जीव ब्रह्म का प्रतिविम्ब है, कहीं कहते हैं जीव ब्रह्म का कार्य है, किसी जगह लिखा है—जीव ब्रह्म का प्रदेश है। कहीं-नित्य कहीं-अनित्य। हमारा विश्वास है कि **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** इस सूत्र से लेकर **'अनावृत्ति'** सूत्रपर्यन्त कहीं भी महर्षि व्यासजी ने जीव को ब्रह्म का कार्य या जीव ब्रह्म को एक नहीं बतलाया, किन्तु इसके विपरीत जीव और ब्रह्म के भेद का बड़े बल से प्रतिपादन किया है, जिसके कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

आनन्दमयोऽभ्यासात्॥ —वे० १.१.१२

परमात्मा आनन्दमय है, क्योंकि उसी को बार-बार आनन्दमय बतलाया है, जैसे—

एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः॥ —तैत्ति० २.५.१

इस जीवात्मा से अन्य, परमात्मा आनन्दमय है।

तद्धेतुव्यपदेशाच्च ॥ —वे० १.१.१४

मुक्त जीव को आनन्द मिलता है, उसका हेतु भी परमात्मा ही है—

रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ॥ —तैत्ति० २.७.१

उस आनन्दस्वरूप परमेश्वर को पाकर यह जीव आनन्दी होता है, इससे सिद्ध है कि जीवात्मा आनन्दस्वरूप नहीं।

मन्त्रवार्णिकमेव च गीयते ॥ —वे० १.१.१५

वेदमन्त्रों में भी परमात्मा को आनन्दस्वरूप बतलाया है—

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कम् ॥ ऋ० ६.९.५

वह परमेश्वर '**ध्रुवं सत् ज्योतिचित् कं**' सुख, अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप है।

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ —वे० १.१.१६

इतर जीवात्मा आनन्दस्वरूप नहीं हो सकता, क्योंकि यह बात युक्ति से शून्य है। यदि जीवात्मा आनन्दमय होता तो संसार में कोई भी दुःखी न होता।

शङ्का—जीवात्मा है तो आनन्दमय किन्तु अविद्या का आवरण आने से उसको अपना आनन्द प्रतीत नहीं होता। जब अविद्या का पर्दा हटेगा तब आनन्द प्रतीत होगा।

समाधान—आवरण, पर्दा भिन्न-भिन्न दो द्रव्यों के मध्य में हो सकता है, गुण-गुणी या स्वरूप-स्वरूपवान् में नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ आवरण का अवकाश नहीं होता, अतः यह बात मूर्खतापूर्ण है।

भेदव्यपदेशाच्च ॥ १.१.१७

वेदों में जीवात्मा तथा परमात्मा का भेद बतलाया है, जैसाकि ऋ० १.१६४.२१ में कहा है—

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवश॥

जिस परमेश्वर में मुक्त जीव मुक्ति का आनन्द भोगते हैं, जिस भगवान् में निरन्तर विचरण करते हैं, जो इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का स्वामी है, उसी के जानने से कल्याण होता है।

इस मन्त्र में स्पष्ट ही जीव और परमेश्वर का भेद वर्णन किया है, अतः जीव आनन्दमय नहीं हो सकता।

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ —वे० १.१.१९

और इस ब्रह्म ही में वेद जीव का योग बतलाता है, अर्थात् ब्रह्म ही में जीव मुक्ति का आनन्द भोगते हैं।

ऋ० १०.८२.२ में लिखा है—

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः॥

हे मनुष्यो! जो संसार के अन्दर अनेक प्रकार के कर्म कर रहा है, जो विविध प्रकार के विज्ञान से युक्त है, जो पोषक तथा सृष्टि का निर्माता, विविध पदार्थों में व्यापक, सबको देखनेवाला परमेश्वर, जिसमें पाँच प्राण सूत्रात्मा धनञ्जय को प्राप्त होकर मुक्तात्मा इच्छापूर्वक आनन्द भोगते हैं, उस भगवान् की उपासना करो।

इस मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि जीवात्मा परमात्मा के अन्दर ही आनन्द भोगता है।

यहाँ पर महर्षि व्यास ने जीवात्मा को परमात्मा से भिन्न कहा है तथा परमात्मा आनन्दमय है, जीव नहीं, ईश्वर ही से जीव आनन्द लेता है स्वयं आनन्दस्वरूप नहीं है, मुक्ति में भी जीव परमात्मा से अलग रहता है। इस बात के सिद्ध करने के लिए छह हेतु दिये हैं—

१. श्रुति ने ब्रह्म को बार-बार आनन्दमय बतलाया है जीव को नहीं।

२. प्रभु को ही आनन्द का हेतु कथन किया है।

३. वेदों में भी ईश्वर को आनन्दमय बतलाया है।

४. युक्ति से भी जीवात्मा सुखस्वरूप सिद्ध नहीं होता।

५. जीव और आनन्दमय ईश्वर का वेदों में भेद बतलाया है।

६. मुक्ति में भी परमात्मा के योग ही से जीव को आनन्द मिलता है, अन्यथा नहीं।

इस आनन्दमयाधिकरण में कितने प्रबल प्रमाणों से सूत्रकार ने जीव ब्रह्म का भेद प्रतिपादन किया है। इसको पाठक स्वयं विचारें।

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्॥ —वे० १.१.२०

यजुः० ४०.५ में लिखा है—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

मूर्ख कहते हैं कि परमेश्वर कम्पायमान होता है, परन्तु वह है स्थिर, अज्ञानियों के लिए वह दूर है, योगियों के लिए समीप है। वह

परमेश्वर इस सब संसार के भीतर-बाहर विद्यमान् है।

इस मन्त्र में अन्तर् पुरुष का जो वर्णन किया है वह परमात्मा है या जीवात्मा, इसपर महर्षि व्यास कहते हैं कि यह परमेश्वर है जीव नहीं, क्योंकि सर्वव्यापक ब्रह्म ही हो सकता है, जीव नहीं। तथा—

'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्' इस मन्त्र में जो धर्म वर्णन किये गये हैं, वे जीव के नहीं हो सकते।

भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ —वे० १.१.२१

वेद जीव तथा ब्रह्म का भेद बतलाता है। यथा—ऋ० २.१२.५ में लिखा है—

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवामिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥

जिसको कई पूछते हैं कि वह कहाँ रहता है। कई कहते हैं कि उसकी कोई सत्ता नहीं है। कतिपय कहते हैं कि वह बड़ा भयानक है, किन्तु वह न्यायकारी पिता की भाँति पालना करनेवाला है। हे संसार के जनो, जीवो! उस भगवान् के लिए श्रद्धा धारण करो, वह इन्द्र आनन्द देनेवाला है।

इस मन्त्र में जीव और परमेश्वर का स्पष्ट भेद बतलाया है, अतः जीव ब्रह्म नहीं हो सकता।

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ —वे० १.२.१

सब वेदों में प्रसिद्धतया परमात्मा ही को उपास्यदेव वा सृष्टिकर्त्ता बतलाया है, जड़ प्रकृति को नहीं।

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॥ —वे० १.२.२

सृष्टिकर्त्ता, आनन्द, सर्वज्ञतादि गुण परमात्मा में ही पाये जाते हैं प्रकृति में नहीं, अतः प्रकृति या उसका कार्य ब्रह्म तथा सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकते।

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः —वे० १.२.३

युक्तिशून्य होने से जीवात्मा भी सृष्टिकर्ता या उपास्यदेव नहीं हो सकता, जीवात्मा के बुद्धि आदि साधन किसी दूसरे के बनाये हुए हैं, अतः वह भी सृष्टिकर्ता ब्रह्म नहीं हो सकता।

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॥ —वे० १.२.४

कर्म और कर्त्ता भेद से भी वेद ने जीव तथा ब्रह्म का भेद कथन किया है, इसलिए जीव या ब्रह्म एक नहीं हो सकते। ऋग्वेद में

लिखा है—

तद्विष्णोः परं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। —ऋ० १.२२.२०

उस विष्णु=व्यापक परमेश्वर के परमपद को विद्वान् देखते हैं।

यहाँ ब्रह्म को देखना कर्म तथा विद्वान् द्रष्टा है, अतः देखनेवाले कर्त्ता=विद्वान् तथा दीखने वाला कर्म=ब्रह्म एक नहीं हो सकते, इसलिए ब्रह्म और जीव अलग-अलग हैं।

यहाँ जीव और ब्रह्म का भेद प्रतिपादन करने के लिए व्यासजी ने पृथक्-पृथक् तीन बातें लिखी हैं—प्रथम यह कि वेदों में ईश्वर को सृष्टिकर्ता बतलाया है, प्रधान=प्रकृति या जीव को नहीं। दूसरा यह कि सर्वज्ञत्वादि गुण ब्रह्म में ही हैं, जीव में नहीं, और तीसरी यह कि कर्म या कर्त्ता का भेद होता है यहाँ ब्रह्म को कर्म तथा जीव को कर्ता बतलाया है, इसलिए जीव और ईश एक नहीं।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥ —वे० १.२.११

गुहा=प्रकृति या अन्तःकरण में दो आत्मा प्रविष्ट है।

ऐसा ही वेद शास्त्रों में लिखा है—

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳस ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु॥

—यजुः० ३२.८

विद्वान् उस ब्रह्म को गुफ़ा=बुद्धि या प्रकृति में देखता है, जिसमें प्रलयकाल में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समान स्थानवाला होता है, वही विभु परमेश्वर इस संसार में व्यापक है।

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे।
छायापतौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥

—कठ० ३.१

हृदयरूपी गुहा में प्रविष्ट दो आत्मा हैं। एक कर्मों का फल भोगता है, दोनों छाया और आतप की भाँति हैं, अर्थात् जीव अज्ञानी तथा परमात्मा सर्वज्ञ है, इस बात को ब्रह्मज्ञानी और कर्मकाण्डी सब कहते हैं।

यहाँ पर कितने स्पष्ट शब्दों में महर्षि व्यास ने वेद का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि आत्मा दो हैं। शङ्कर ने लिखा है कि अन्तःकरण या अविद्या उपाधियुक्त ब्रह्म का ही नाम जीव है, किन्तु यहाँ लिखा है कि अन्तःकरण के अन्दर दो आत्मा विद्यामान् हैं, इससे सिद्ध

है कि शङ्कर का सिद्धान्त वेद या वेदान्तसूत्र के सर्वथा विरुद्ध है।

विशेषणाच्च ॥ —वे० १.२.१२

जीव तथा ब्रह्म के भिन्न-भिन्न विशेषण होने से भी जीव और ब्रह्म एक नहीं हैं। यजुर्वेद ४०.४ में लिखा है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।

वह परमेश्वर कम्पायमान नहीं होता। एक है। उसको इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं कर सकतीं। वह सर्वत्र विद्यमान होता है।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

—कठ० २.१२

उस दुर्विज्ञेय हृदय-आकाश में व्याप्त ब्रह्म को योगी योग द्वारा जानकर हर्ष और शोक से अलग हो जाता है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥

—मु० ३.१.२

प्रकृति में निमग्न जीवात्मा चिन्ता के सागर में डूबा हुआ जब अपने से भिन्न परमात्मा को देखता है तब शोक से रहित हो जाता है।

यहाँ वेदमन्त्र और उपनिषदों में जीव ईश्वर के विशेषण और उन दोनों का अलग-अलग वर्णन करने से जीव और ब्रह्म एक नहीं हो सकते।

अन्तर उपपत्तेः ॥ —वे० १.२.१३

वह परमेश्वर सबके अन्दर व्यापक है, यह युक्ति से सिद्ध है।

स्थानादिव्यपदेशाच्च ॥ —वे० १.२.१४

स्थान व्यपदेश होने से भी जीव ब्रह्म से भिन्न है, क्योंकि अन्तर व्यापक परमेश्वर है। यथा—

योऽग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये ॥

—अथर्व० ७.८७.१

जो परमेश्वर अग्नि, ओषधि आदि सब स्थानों में व्यापक है, जो सब भुवनों को रचता है, उसको नमस्कार है।

यहाँ अग्नि आदि स्थानों में परमात्मा को व्यापक बतलाया है, जीव को नहीं।

सुखविशिष्टाभिधानादेव च॥ —वे० १.२.१५

परमात्मा को आनन्दस्वरूप बतलाया है जीव को नहीं, अत: जीव ब्रह्म नहीं।

अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतर:॥ —वे० १.२.१७

जीवात्मा अणु होने से उसकी स्थिति सब जगह नहीं हो सकती तथा जीव का सर्वव्यापक होना असम्भव है।

यहाँ जीव ब्रह्म का एक होना असम्भव बतलाया है।

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्॥ —वे० १.२.१८

पृथिवी आदि सब देवों में परमात्मा का अन्तर्यामीरूप से वर्णन किया है, अत: जीव ब्रह्म एक नहीं हैं।

य: पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं य: पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत:॥

—बृ० ३.७.३

जो पृथिवी में विद्यमान् है, परन्तु पृथिवी से अलग है, जिसको पृथिवी नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है जो पृथिवी को नियम में रखता है, वह तेरा अन्तर्यामी परमात्मा है।

इस अन्तर्यामी ब्राह्मण में ब्रह्म ही को अन्तर्यामी बतलाया है, जीव को नहीं।

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते॥ —वे० १.२.२०

जीवात्मा को काण्व तथा माध्यन्दिनी दोनों शाखाओं में ब्रह्म से अलग बतलाया है।

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽ न्तरो यमात्मा न वेद यस्य आत्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत:॥

—बृ० ३.७.२२

जो आत्मा में विद्यमान है, जिसको आत्मा नहीं जानता, जो आत्मा से अलग है, जिसका आत्मा शरीर है, जो आत्मा को वश में रखता है, वह ब्रह्म है।

काण्वशाखा में आत्मा के स्थान पर विज्ञान शब्द है।

यहाँ व्यासजी ने यह सिद्ध किया है कि परमात्मा जीवात्मा में भी व्यापक है। इस बात को सब मानते हैं।

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्ते:। —वे० १.२.२१

ब्रह्म अदृश्यत्वादि गुणयुक्त है, उसके धर्मों का सर्वत्र ऐसा ही

कथन है।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुरश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

—मु० १.१.६

वह परमेश्वर अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, वर्णरहित, अनेत्र, बिना हाथ-पैर के है, नित्य, विभु=सर्वव्यापक, अतिसूक्ष्म तथा अव्यय है। उसको धीर पुरुष देखते हैं।

इसमें जो अदृश्यादि धर्म बतलाये हैं, वे जीव के नहीं हो सकते।

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः॥ —वे० २.१.२१

जीव सृष्टि का कर्त्ता नहीं अथवा ब्रह्म जीव नहीं, क्योंकि यदि ऐसा होता तो सृष्टि को जीव या ब्रह्म कभी भी दुःखमय न बनाता।

अधिकं तु भेदनिर्देशात्॥ —वे० २.१.२२

भेद का निर्देश होने से ब्रह्म जीव से अधिक बड़ा व भिन्न है। इसपर शङ्कराचार्य लिखते हैं—

यत् सर्वज्ञं सर्वशक्ति ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं शारीराधिकमन्यत्, तद्वयं जगतः स्रष्टृ ब्रूमः, इत्यादि॥

जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, नित्य, शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ब्रह्म जीवात्मा से भिन्न है, उसको हम सृष्टिकर्त्ता कहते हैं, जीव को नहीं।

ऋ० १०.८२.७ और यजुः० १७.३१ में लिखा है—

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥

अज्ञानी मनुष्य आत्मा में व्यापक होने पर भी उस ब्रह्म को नहीं जानते, जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को रचा है, तथा जो जीव, प्रकृति तथा कार्यजगत् से भिन्न है।

इस मन्त्र में स्पष्ट जीव ब्रह्म का भेद कथन किया है।

इसी प्रकार ऋग्वेद १०.८२.५ में जीव से ब्रह्म को अधिक बड़ा भी बतलाया है—

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः सम्पश्यन्त विश्वे॥

जो सूर्यादि लोक से उत्तम या बड़ा है तथा पृथिवीलोक से भी बड़ा है, देव, विद्वान् तथा असुर, दुष्ट, अविद्वानों से भी बड़ा या उत्तम है, जिसको बुद्धिमान् भली प्रकार ज्ञानचक्षु से देखते हैं, उसी ब्रह्म

की उपासना करनी चाहिए।

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ —वे० २.१.२३

जैसे जड़ पाषाण, मृत्तिका आदि का चेतन होना असम्भव है वैसे जीव का ब्रह्म होना या सृष्टिकर्त्ता होना असम्भव है।

यहाँ कितने बल से व्यासजी ने जीव का ब्रह्म होना असङ्गत सिद्ध किया है।

इस सूत्र का शङ्करस्वामी ने यह व्याख्यान किया है कि जैसे एक ही पत्थर के मणि आदि अनेक भेद होते हैं वैसे ही ब्रह्म के जीव, प्राज्ञ आदि अनेक भेद हैं।

शङ्करस्वामी का यह अर्थ अत्यन्त असङ्गत है, क्योंकि ब्रह्म के अपरिणामी होने से उसके विकार नहीं हो सकते।

परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ॥ —वे० ३.२.३१

जीवात्मा परमात्मा से भिन्न हैं। हेतु निम्नलिखित हैं—

१. परमात्मा को शास्त्रों में सेतु बतलाया है, संसार में यह प्रसिद्ध है कि सेतु भिन्न होता है तथा उसके द्वारा तैरनेवाला भिन्न होता है।

२. जीवात्मा को अणुपरिमाणवाला बतलाया है तथा परमात्मा को विभुपरिमाणवाला बतलाया है। इससे सिद्ध है कि जीव तथा ईश्वर भिन्न हैं।

३. वेद में लिखा है 'सयुजा', जीव तथा परमेश्वर व्याप्य-व्यापक भाव से जुड़े हुए हैं। इससे भी सिद्ध है कि जीव और ईश भिन्न हैं।

४. जीव तथा ईश्वर का वेद में स्पष्ट भेद पाया जाता है, अतः जीव प्रभु से भिन्न है।

सामान्यात्तु ॥ —वे० ३.२.३३

यदि कहो कि जीव तथा ब्रह्म की एकता बतलाई है, तब भी ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ केवल समानता आती है यथा—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

समानता के होने से दो वस्तु एक नहीं हो जाती, मनुष्य और पशु दोनों के कान हैं तो क्या वे दोनों समान हैं?

बुद्ध्यर्थः पादवत् ॥ —वे० ३.२.३३

पुरुषार्थ ज्ञान पादवत् '**पादोऽस्य विश्वा भूतानि**'[1] अल्प होने से जीव ब्रह्म नहीं। जीव अल्पज्ञ है तथा ब्रह्म सर्वज्ञ है।

स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ॥ —वे० ३.२.३४

मृत्यु समय योगी की स्थानविशेष सुषुम्नानाड़ी से जो प्रकाशयुक्त होती है, निकलना—गति करना लिखा है, इससे भी सिद्ध है कि जीव ब्रह्म नहीं।

उपपत्तेश्च ॥ —वे० ३.२.३५

युक्ति से भी सिद्ध है कि जीव ब्रह्म नहीं।

तथान्यप्रतिषेधात् ॥ —वे० ३.२.३६

'**न तं विदाथ**' इस मन्त्र में यह बतलाया है कि जीव इस ब्रह्म को जानता नहीं, इस अज्ञान से भी जीव ब्रह्म नहीं है।

अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥ —वे० ३.२.३७

आयाम शब्दादि से ब्रह्म सर्वव्यापक है, 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः'। आकाश की भाँति ब्रह्म सर्वव्यापक है। जीव एकदेशी है। इससे सिद्ध है जीव ब्रह्म से भिन्न है।

ऊपर जो थोड़े से प्रकरण हमने दिखलाये हैं इनसे पाठकों को यह भली प्रकार पता लग गया होगा कि वेदान्तदर्शन के कर्ता महर्षि व्यास जीव ब्रह्म की एकता या जीव को ब्रह्म से बना हुआ या सृष्टिकर्त्ता कदापि नहीं मानते। इन प्रकरणों में एकबार नहीं, किन्तु अनेक बार सभी सूत्रों में जीव का ब्रह्म या सृष्टिकर्ता होने को पुनः-पुनः असम्भव ठहराया है, तथा यह भी सिद्ध किया है कि जो ब्रह्म के आनन्दमयादि गुण या अकाय आदि धर्म हैं, वे जीव में कदापि नहीं घट सकते। इतना होने पर भी जो लोग वेदान्तसूत्रों से जीव ब्रह्म की एकता या जीव की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाते हैं, उन्हें परमेश्वर ही सुबुद्धि प्रदान करे।

शङ्का—इन भेदप्रतिपादक सूत्रों के भाष्य में स्वामी श्री शङ्कराचार्य ने बार-बार लिखा है—

अविद्याप्रत्युपस्थापितनामरूपकृतकार्यं कारणसंघातोपाधि अविवेककृता हि भ्रान्तिर्हिता करणादि संसारो न तु परमार्थतोऽस्ति ॥

अविद्या या अविवेक के कारण ही यह कार्य-कारण, पाप-

१. यजुः० ३१.३

अमाप, जीव-ब्रह्म आदि का भेद प्रतिपादन किया है। जब ज्ञान से अज्ञान हट जाता है तब यह भेद-व्यवहार भी नष्ट हो जाता है। इसलिए सूत्रकार ने जो यह जीव-ब्रह्म का भेद वर्णन किया है, वह परमार्थ में नहीं है।

समाधान—इस शङ्का के नीचे लिखे समाधान ध्यान से पढ़ने योग्य हैं—

१. क्या शङ्कराचार्य के अनुयायी इन प्रकरणों में से या सम्पूर्ण वेदान्त में से कोई ऐसा सूत्र दिखला सकते हैं कि महर्षि व्यास ने जो सैकड़ों सूत्रों में भेद का इतने प्रबल प्रमाण या युक्तियों से प्रतिपादन किया है, वह सब भेद व्यवहार अविद्याकृत है, यदि नहीं तो यह कल्पना कपोलकल्पित होने से प्रामाणिक नहीं है।

२. इन भेदप्रतिपादक सूत्रों में इस बात का नाम भी नहीं है कि यह द्वैत व्यवहार अविद्याकृत है, अतः शङ्करस्वामी का अर्थ सूत्रों के विरुद्ध होने से माननीय नहीं है।

३. यदि द्वैतवाद के प्रतिपादक सहस्रों वेदमन्त्र, उपनिषदों की श्रुतियाँ अविद्या-विषयक या मिथ्या भेद को बतलानेवाली हैं तब महर्षि व्यास को अपने सूत्रों में इनको सत्य सिद्ध करने की क्या आवश्यकता थी? केवल इतना ही लिख देते कि भेदप्रतिपादक श्रुतियाँ अविद्या-विषयक है, अतः माननीय नहीं।

४. व्यासजी को कर्मकाण्ड नहीं बतलाना था, वह तो पूर्वमीमांसा में आ चुका, फिर अपने सम्पूर्ण वेदान्तदर्शन में इन भेदप्रतिपादक प्रकरणों को छेड़ने की क्या आवश्यकता थी?

५. जब सृष्टिरचना, कार्य-कारणभाव आदि सब अविद्या का विषय है तब व्यासजी ने ब्रह्म का यह लक्षण क्यों किया कि जो सृष्टि की रचना, पालना, प्रलय करता है वह ब्रह्म है? कोई दूसरा लक्षण करना चाहिए था।

६. जब वेद का बहुत बड़ा द्वैतवाद का प्रतिपादक भाग अविद्या-विषयक या मिथ्या है, तब तुम्हारे मत से अद्वैतवाद प्रतिपादक थोड़ा भाग जो वास्तव में है नहीं, सच्चा है। यदि भेदप्रतिपादक मिथ्या है तो दूसरा भी मिथ्या है।

७. क्या व्यासजी का कोई ऐसा सूत्र दिखला सकते हो जिसमें यह लिखा हो कि वेद का द्वैतप्रतिपादक भाग मिथ्या है?

८. जब वेद, शास्त्र, गुरु, शिष्य, पढ़ना, लिखना आदि व्यवहार

मिथ्या है तो झूठ से सत्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? और तुम्हारा कथन भी असत्य है। बस, तुम्हारा कथन असत्य होने से द्वैतवाद सत्य है।

शङ्का—शङ्कराचार्य ने लिखा है कि—

जैसे विष की झूठी आशङ्का से सत्य ही-वास्तव में मृत्यु हो जाती है, स्वप्न के मिथ्या होने से भी स्वप्न की कई बातें जाग्रत् में सत्य हो जाती हैं तथा स्वप्न में मिथ्या भय देखने से सत्य जागना हो जाता है, वैसे ही मिथ्या व्यवहार या शास्त्र से सत्य ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

समाधान—प्रथम तो स्वामी शङ्कराचार्य का यह दृष्टान्त ही विषम है, क्योंकि उनके मत में सर्प का भय भी मिथ्या है, तथा मृत्यु भी असत्य है। स्वप्न भी असत्य है और उससे मिलनेवाले फल भी असत्य हैं, इसलिए एक को सत्य या दूसरे को असत्य कहना उनके अपने सिद्धान्त को असत्य सिद्ध कर देता है। हमारे पक्ष से इसका उत्तर यह है कि स्वप्न के संस्कार भी सत्य हैं, तथा उनसे उत्पन्न होनेवाला भय या भय के परिणाम भी सत्य हैं। इसी प्रकार जीव ब्रह्म, संसार, उनका भेदादि सब सत्य हैं। इनमें कोई भी झूठ नहीं। इनको मिथ्या समझनेवाले की बुद्धि का ही फेर है।

ब्रह्म से जीव कैसे बना ?

ब्रह्म शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है, अपाप है, सृष्टि का कर्त्ता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वाधार है, फिर वह बद्ध, पापी, अल्पज्ञ, मूर्ख एकदेशी, दुःखी जीव कैसे बन गया, इस बात को सिद्ध करने के लिए वेदान्तियों ने चार सिद्धान्तवाद कल्पित किये हैं, जिनकी समालोचना नीचे की जाती है—

१. प्रतिबिम्बवाद

जैसे सहस्र घटों में एक सूर्य के सहस्र ही प्रतिबिम्ब दिखाई देते है, वास्तविक सूर्य एक ही है। यदि घड़ों को फोड़ दिया जाए तब सब प्रतिबिम्ब सूर्य में जाकर मिल जाएँगे। घटों के फूटने से, घड़ों का पानी मलिन या कल्पित होने से सूर्य को कोई हानि नहीं होती, इसी प्रकार अन्तःकरणोपाधियुक्त ब्रह्म का नाम जीव है। अन्तःकरण में भी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अन्तःकरण के सुखी दुःखी होने से ब्रह्म की कुछ भी हानि नहीं होती। जब ज्ञान से अन्तःकरण नष्ट हो जाता है, तब ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पुनः ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसी

का नाम मुक्ति है।

समाधान—बिम्ब का किसी वस्तु में प्रतिबिम्ब पड़ने के लिए कतिपय बातों की आवश्यकता होती है। प्रथम यह कि जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है या जिसमें पड़ता है वे दोनों वस्तुएँ साकार होनी चाहिए जैसे घड़ा या सूर्य दोनों साकार है। दूसरी बात यह है कि जिस का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह एकदेशी वस्तु होनी चाहिए सर्वव्यापक नहीं, यथा सूर्य एक देशी है। तीसरी बात यह है कि जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है वह तथा जिसमें पड़ता है, वे दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ होने चाहिएँ यथा सूर्य या घड़ा दोनों अलग-अलग पदार्थ हैं। चौथी बात यह है कि प्रतिबिम्ब वहाँ पड़ता है जहाँ असली वस्तु न हो, क्योंकि प्रतिबिम्ब बिम्ब की प्रतिच्छाया होती है। जब ये चार बातें होंगी तभी प्रतिबिम्ब पड़ सकता है अन्यथा नहीं। ये चारों ही बातें ब्रह्म में नहीं घट सकती, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, पूर्ण, निराकार तथा सर्वदेशी है और नवीन वेदान्तियों के मत में ब्रह्म के सिवाय और कोई पदार्थ नहीं है, इसलिए ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता, क्योंकि असली ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण है।

२. परिच्छेदवाद

जब इस वाद से वेदान्तियों की सन्तुष्टि नहीं हुई तब एक दूसरे वाद की रचना की और उसका नाम रक्खा—परिच्छेदवाद। जैसे घटाकाश, मठाकाश में घड़े की उपाधि से घिरा हुआ जो आकाश होता है यह घड़े या मकान के दूषित होने से दूषित नहीं होता और न ही वह महद् आकाश से अलग होता है। घड़े के फूट जाने से पुनः महा आकाश में मिल जाता है, इसी प्रकार अन्तःकरण की उपाधि से युक्त जो ब्रह्म है वही जीव है। अन्तःकरण के दुःखी या मलिन होने से ब्रह्म को कोई भी हानि नहीं होती। जब ज्ञान से अन्तःकरण नष्ट हो जाता है तब जीव ब्रह्म ही हो जाता है, यही मुक्ति है।

समाधान—१. अन्तःकरण ब्रह्म से भिन्न हैं या अभिन्न? यदि कहो भिन्न है तो ब्रह्म के सिवाय एक दूसरा पदार्थ होने से तुम्हारे अद्वैत सिद्धान्त की हानि है। यदि कहो अभिन्न है तो वह भी ईश्वर हुआ। पुनः उसको अशुद्ध तथा ब्रह्म को शुद्ध क्यों कहते हो? और ब्रह्म का स्वरूप होने से उसका नाश भी नहीं होगा। पुनः तुम्हारी मुक्ति भी नहीं होगी।

२. जो ब्रह्म अन्तःकरण की उपाधि से युक्त होकर जीव बना

हुआ है उसको बाहर का शुद्ध ब्रह्म जानता है तो अन्तःकरण का ब्रह्म अज्ञानी नहीं रह सकता, क्योंकि दोनों का वास्तविक भेद तो है ही नहीं, यदि कहो फिर भी अज्ञानी है तो शुद्धब्रह्म कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि शुद्ध ब्रह्म यह जानता है कि जीव मुझसे अभिन्न है और वह दुःखी है, अतः सम्पूर्ण ब्रह्म ही दुःखी या अज्ञानी हो जाएगा।

३. लाहौर का रहनेवाला मनुष्य जब देहली जावे तब उसको लाहौर की बातें स्मरण नहीं रहनी चाहिएँ, क्योंकि जिस ब्रह्म के प्रदेश को अन्तःकरण ने लाहौर में घेरा हुआ था वह अब देहली में नहीं है यदि कहो कि ब्रह्म के एक होने से याद रहती है तब पुनः एक के दुःखी होने से सब दुःखी या एक की मृत्यु होने से सबकी मृत्यु हो जानी चाहिए।

४. अन्तःकरण के सर्वत्र घूमने से जहाँ-जहाँ वह जाएगा वहाँ-वहाँ के ब्रह्म को अशुद्ध कर डालेगा, अतःशुद्ध ब्रह्म न रह सकेगा। मुक्ति तथा बन्ध भी क्षणभंगुर हो जाएँगे, अतः परिच्छेदवाद ठीक नहीं है।

३. विवर्तवादः

जब परिच्छेदवाद से भी सन्तोष न हुआ तो नवीन वेदान्त के आचार्यों ने विवर्तवाद की कल्पना की, अर्थात् संसार की तीन काल में कोई भी सत्ता नहीं है, क्योंकि ज्ञान से केवल अज्ञान दूर होता है। ज्ञान न किसी वस्तु को नष्ट करता है न बनाता है। बनाना या नष्ट करना क्रिया का धर्म होता है, अतः यदि संसार की सत्ता मान ली जाए तो वह ज्ञान से नष्ट नहीं हो सकती, इसलिए जो कुछ संसार दिखाई देता है, वह अज्ञानमात्र है, इसकी कोई सत्ता नहीं है।

समाधान—१. अज्ञान का अर्थ है न जानना या विपरीत जानना। ईश्वर में ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। कारण यह है कि न तो कोई ऐसा पदार्थ है जिसको वह नहीं जानता और न ही उसका ज्ञान विपरीत ज्ञान है, क्योंकि वह सर्वज्ञ है, इसलिए जिसमें अज्ञान है वह जीव है, ब्रह्म नहीं।

२. जब ईश्वर एक है तथा पूर्णतया अपने आपको जानता है पुनः वह अज्ञानी कैसे हो सकता है? उसके किसी भाग को ज्ञानी या किसी को अज्ञानी बतलाना अर्धजरतीन्याय होने से अमान्य है।

३. परमात्मा में अज्ञान कहाँ से आया? यदि कहो कि अनादि है

तो वह हट नहीं सकता, क्योंकि ईश्वर का गुण है और उससे बड़ा कोई है नहीं जिसकी सहायता से ईश्वर अपने अज्ञान को दूर कर लेवे तथा ब्रह्म के जो प्रदेश मुक्त हो चुके हैं, वे पुनः बद्ध नहीं हो जाएँगे; इसमें तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ? क्योंकि अज्ञान या माया ब्रह्म का स्वाभाविक गुण है और वह उसमें सदैव रहता है, जिस दिन वह न रहेगा उस दिन वेदान्तियों के कथनानुकूल संसार भी नहीं रहेगा।

४. दृष्टि-सृष्टिवाद

चतुर्थवाद वेदान्तियों का दृष्टि-सृष्टिवाद है, जैसे-जैसे जीवात्मा की दृष्टि पड़ती जाती है वैसे-वैसे संसार बनता जाता है, वास्तव में संसार की कोई भी सत्ता नहीं है। जब मनुष्य नेत्र बन्द करता है तब संसार की कोई भी सत्ता नहीं रहती।

समाधान—इनका यह वाद भी कल्पित है, अतः मानने के योग्य नहीं, क्योंकि यदि एक नेत्रान्ध मनुष्य किसी पदार्थ को नहीं देखता है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उस पदार्थ की कोई सत्ता नहीं है।

उपर्युक्त प्रमाण या युक्तियों से यह सिद्ध हो गया है कि जीवात्मा ब्रह्म, कार्य, परिमाण या प्रतिबिम्ब नहीं है। ईश्वर की ही भाँति जीव भी अपनी एक अलग सत्ता रखता है।

जीव नित्य है

जैसे ईश्वर नित्य है वैसे ही जीवात्मा, अनादि और नित्य है, इस बात को छह दर्शन एक स्वर से मानते हैं। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

वेदान्त

नात्माश्रुतेनित्यत्वाच्च ताभ्यः॥ —वे० २.३.१७

जीवात्मा उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उसकी उत्पत्ति श्रुति में नहीं लिखी, किन्तु श्रुतियों से वह नित्य सिद्ध होता है। जैसे ऋ० ६.९.४ में लिखा है—

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः॥

यह होता परमेश्वर है, प्रथम इसको देखो। ज्योति तथा मरणशील पदार्थों में यह अमृत, नित्य है, जो इस शरीर के साथ सम्बन्ध रखता है।

'नित्यो नित्यानाम्' इस उपनिषद्वाक्य में भी जीव को नित्य बतलाया है।

इस सूत्र से शङ्कराचार्य का वह सिद्धान्त निर्मूल हो जाता है कि जीव उत्पन्न होता है तथा ब्रह्म का परिणाम है।

शङ्का—जिन श्रुतियों में जीव को नित्य बतलाया है, उनका प्रयोजन परिणामी नित्य से है, कूटस्थ से नहीं।

समाधान—इस सूत्र में स्पष्ट लिखा है कि जीवात्मा की उत्पत्ति वेदों में नहीं लिखी। यदि वेदान्तियों में सत्य का लेश भी है तो वे वेदान्त का कोई ऐसा सूत्र उपस्थित करें जिसमें यह लिखा हो कि जीव का नित्यत्व परिणामी नित्यत्व है। जब व्यासजी स्वयं जीव को उत्पत्तिरहित मानते हैं पुनः तुम्हारी बात मुद्दई सुस्त गवाह चुस्तवाली कहावत के सदृश है।

मीमांसा

नित्यत्वाच्चानित्यैर्नास्ति सम्बन्धः ॥ —मी० ६.७.५

जीवात्मा के नित्य होने से उसका अनित्य भूतों से कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है, अर्थात् जीव उत्पन्न नहीं होता।

न्याय

तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ॥ —न्या० ३.१.५

इस सूत्र में महर्षि गौतम ने स्पष्टरूप से जीवात्मा के नित्यत्व का प्रतिपादन किया है।

वैशेषिक

तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ —वै० ३.२.५

जैसे कारणरूप वायु नित्य तथा गन्धगुण के होने से द्रव्य है इसी प्रकार जीवात्मा किसी कारण से उत्पन्न न होने से नित्य है तथा ज्ञानादि का आश्रय होने से द्रव्य है।

सांख्य

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ॥ —सां० ५.७२

प्रकृति या पुरुष–जीवात्मा और परमात्मा को छोड़कर अवशिष्ट सब अनित्य है।

इस सूत्र में जीव की सत्ता को नित्य माना है।

योग

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत् प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥

—योग० ४.१८

चित्त की वृत्ति सदा ही जानी जाती है, क्योंकि जीवात्मा नित्य और अपरिणामी है।

इस सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने जीव को नित्य माना है।

चेतन या ज्ञाता

षड्दर्शनकर्त्ता जीवात्मा को चेतन या ज्ञाता मानते हैं।

वेदान्त

ज्ञोऽत एव॥ —वे० २.३.१८

जीवात्मा जहाँ नित्य है, वहाँ वह ज्ञाता भी है। इस सूत्र में व्यासजी ने जीव को ज्ञानवाला माना है।

न्याय

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥

—न्याय० १.१.१०

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान—ये आत्मा के लक्षण हैं। इनमें से ज्ञान या प्रयत्न स्वाभाविक, शेष नैमित्तिक हैं।

शङ्का—साधारण वेदान्ती तथा शङ्कर आदि यह कहते हैं कि नैय्यायिक या वैशेषिक के माननेवाले जीव को जड़ मानकर यह कहते हैं कि उसमें ज्ञानगुण उत्पन्न होता है तथा नष्ट हो जाता है। इसलिए शङ्कराचार्य ने इनको अर्धवैनाशिका लिखा है।

समाधान—जिसने न्याय या वैशेषिक पढ़ा ही नहीं वही यह मान या कह सकता है कि नैय्यायिक या वैशेषिक जीव को जड़ मानते हैं दूसरे नहीं, क्योंकि महर्षि गौतम ने न्याय० ३.२.४२ में स्पष्ट लिखा है—

स्मरणं त्वात्मनो ज्ञस्वाभाव्यात्॥

इसपर वात्स्यायन लिखते हैं—

उपपद्यत आत्मन एव स्मरणं कथं ज्ञस्वभावत्वात्,
ज्ञ इत्यस्य स्वभावः स्वो धर्मः ज्ञास्यति जानाति॥

जीव को ही स्मृति होती है, क्योंकि जानना इसका स्वाभाविक धर्म है। जानेगा, जानना है इत्यादि प्रतीतियों से यह बात सिद्ध है।

महर्षि व्यास ने जीव को 'ज्ञ' बतलाया है, तथा गौतम ने भी 'ज्ञ' बतलाया है। इतने पर भी जो नैय्यायिकों को जड़वादी कहते हैं, वे स्वयं जड़ के समान हैं।

वैशेषिक

प्राणापाननिमेषोन्मोषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकारा सुख-दुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि॥ —वै० ३.२.४

प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन को गति देना, इन्द्रियों का विकार, अर्थात् जिसने आम का फल खाया है, उसके सामने दूसरी बार आम का फल आते ही मुख में पानी आ जाता है। देखा आँख ने, फिर मुख में पानी क्यों आ गया, इससे मानना पड़ेगा कि सब इन्द्रियों से काम लेनेवाला कोई और है, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि आत्मा के चिह्न हैं।

इस सूत्र में महर्षि कणाद ने भी जीव को ज्ञानवाला माना है।

योग

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति॥ —योग० ४.३४

इस सूत्र में पतञ्जलि ने जीव को चितिशक्ति=चेतन, ज्ञानवाला लिखा है।

सांख्य

चिदवसाना भुक्तिस्तत् कर्मार्जितत्वात्॥ —सां० ६.५५

चेतन, ज्ञानवान् जीवात्मा ही कर्त्ता या भोक्ता है।

यहाँ जीव को चेतन और ज्ञानवान् लिखा है।

जीव का परिमाण

जीव का परिमाण क्या है, इस विषय में मूल दर्शनों को छोड़कर दर्शनों के अर्वाचीन टीकाकारों में बड़ा मतभेद है, कोई जीव को विभु=व्यापक मानता है, कोई मध्यम परिमाणवाला कहता है, कोई अणु=परिछिन्न परिमाणवाला कहता है। बड़े-बड़े ग्रन्थ इस विवादास्पद विषय को लेकर लिखे गये हैं। श्री स्वामी दयानन्दजी ने जीव को परिछिन्न=अणुपरिमाणवाला लिखा है। हमारा विश्वास है कि षड् दर्शनकार भी जीव को अणुपरिमाणवाला मानते हैं। कतिपय प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

वेदान्त

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्॥ —वे० २.३.१९

मृत्यु के पश्चात् जीव का शरीर से निकलना, पुनः गति करके दूसरे शरीर में आना-जाना आदि बातों से सिद्ध है कि जीव अणु है, क्योंकि विभु में गमन आदि नहीं हो सकते।

स्वात्मना चोत्तरयोः॥ —वे० २.३.२०

विभु में कथञ्चित उत्क्रान्ति हो सकती है, किन्तु गति, आगति=

गमनागमन विभु में कदापि नहीं हो सकते, क्योंकि परिपूर्ण होने से उसमें गमनागमन नहीं हो सकते।

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात्॥ —वे० २.३.२१

यदि कहो वेदों में जीवात्मा को विभु लिखा है, इसलिए वह अणु नहीं, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जहाँ विभु आदि लिखा है वहाँ परमात्मा का वर्णन है, जीव का नहीं।

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च॥ —वे० २.३.२२

जीववाचक शब्द तथा उन्मान-परिमाणबोधक शब्दों से भी सिद्ध है कि जीव अणुपरिमाणवाला है, विभु नहीं।

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥

—अथर्व० १०.८.२५

एक (जीवात्मा) बाल से भी सूक्ष्म है दूसरा उससे भी सूक्ष्म, न की तरह प्रतीत होता है, वही ज्येष्ट देवता हमारा प्रिया परमात्मा है।

इस वेदमन्त्र में स्पष्ट जीव को अणुपरिमाणवाला लिखा है।

शङ्का—इस मन्त्र में जो 'अणीयस्क' शब्द है, उसका अर्थ सूक्ष्म ब्रह्म करें तो क्या हानि है?

समाधान—प्रथम बात तो यह है कि इसी मन्त्र में एक को बाल से भी सूक्ष्म लिखा है तथा दूसरे को ज्येष्ट देवता। इसी से सिद्ध है कि जीवात्मा और परमात्मा दोनों इस मन्त्र में अलग-अलग हैं। दूसरी बात यह है कि इसी के आगे दूसरे मन्त्र में लिखा है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

—अथर्व १०.८.२७

हे जीव! तू ही स्त्री है, तू ही दूसरा जन्म लेकर मनुष्य हो जाता है तू ही कूमार या कुमारी होता है, तू ही बूढ़ा या जवान होता है। इससे सिद्ध है कि यहाँ अणु का वर्णन है, विभु परमात्मा का नहीं।

तीसरी बात यह है कि इसी बात का वर्णन—श्वे० ५.८ में किया है—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

इस उपनिषद्वाक्य में भी बाल का उदाहरण देकर इसी वेद-मन्त्र

को स्पष्ट किया गया है।

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणा पञ्चधा संविवेश॥

—मु० ३.१.९

इस अणु आत्मा को चित्त से जानना चाहिए, जिसमें प्राण पाँच प्रकार से प्रविष्ट हैं।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जीव अणु है।

अविरोधश्चन्दनवत्॥

—वे० २.३.२३

जैसे चन्दन एक देश में लगाने से सब शरीर में उसकी शीतलता का भान होता है, इसी प्रकार जीवात्मा एक देश में होता हुआ सब शरीर में कार्य करता है।

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद् हृदि हि॥

—वे० २.३.२४

यदि कहो कि चन्दन की अवस्थिति तो एक देश में है, किन्तु जीव की नहीं, यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि शास्त्रों में जीव का स्थान भी हृदय बतलाया है।

तदोकोऽग्रज्वलनं तत् प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेष-गत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया॥ —वे० ४.२.१७

शतं चैका च हृदयस्य नाडयस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृत्वमेति विश्वङ्ङन्या उतक्रमणे भवन्ति॥

—छान्दो० ८.६.६

जो हृदय स्थान में ज्योति है उससे हृदय का द्वार प्रकाशित होता है, तब अपनी विद्या के सामर्थ्य से योगी हृदय से निकलकर मूर्धावाली नाड़ी से शरीर छोड़ता है।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जीव का स्थान हृदय है, अतः एक स्थान में होने से जीव अणु है।

तथाच

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किंस्विद् वक्ष्यामि किमु नु मनिष्ये॥

ऋ० ६.९.६

मेरे कान विरुद्धाचरण करते हैं, मेरी आँखें विरुद्धाचरण करती हैं, मेरे हृदय में स्थित आत्मा भी विरुद्ध आचरण करता है, मेरा मन भी दूर-दूर विचरण करता है, मैं अपने परमेश्वर को क्या उत्तर दूँगा।

इस मन्त्र से सिद्ध है कि जीव का स्थान हृदय है।

गुणाद्वा लोकवत्॥ —वे० २.३.२५

जैसे स्वच्छ मणि में सब पदार्थों का प्रतिबिम्ब पड़ता है अथवा मणि का प्रकाश दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करता है, वैसे ही जीवात्मा ज्ञान गुणवाला होने से सम्पूर्ण शरीर के दुःख को जान लेता है।

व्यतिरेको गन्धवत्॥ —वे० २.३.२६

जैसे पृथिवी का गन्ध गुण से, गुण गुणी सम्बन्ध है, इसी प्रकार जीव या उसके गुण का गुण गुणी सम्बन्ध है।

तथा च दर्शयति॥ —वे० २.३.२७

ऐसा ही गुण गुणी सम्बन्ध वेद बतलाता है—

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥

—ऋ० १.१६४.३७

मैं यह नहीं जानता कि मैं यह हूँ, मन से बँधा हुआ, छुपा हुआ विचरण करता हूँ। जब मुझे परमेश्वर की कृपा से महत्तत्वादि साधन मिलते हैं तब कुछ जानने के योग्य होता हूँ। 'विजानामि' प्रयोग से सिद्ध है कि जीव ज्ञान गुणवाला है।

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशाः प्राज्ञवत्॥ —वे० २.३.२९

विज्ञानगुण की प्रधानता से जीव को ज्ञानस्वरूप भी कहते हैं, जैसे आनन्द की प्रधानता से परमात्मा को आनन्दस्वरूप कहते हैं।

शङ्का—श्री स्वामी शङ्कराचार्य ने तो १० सूत्रों को पूर्वपक्ष में लगाकर इस सूत्र को उत्तरपक्ष में लगाते हुए यह अर्थ किया है कि बुद्धि की प्रधानता से जीव में गति, आगति, अणु आदि व्यवहार होते हैं, ये सब व्यवहार बुद्धि की उपाधि से हैं, वास्तव में जीव परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, इसलिए विभु है, अणु नहीं। ये व्यवहार उपाधिजन्य हैं।

समाधान—स्वामी शङ्कर का अर्थ सर्वथा मिथ्या और सूत्रकार के विरुद्ध है, इसके निम्न कारण हैं—

१. स्वामी शंकर ने जो बुद्धि अर्थ किया है वह ठीक नहीं, क्योंकि इस प्रकरण में कहीं भी बुद्धि शब्द नहीं है।

२. शङ्कराचार्य ने जो यह लिखा है कि बुद्धि की उपाधि से जीव में अणु आदि व्यवहार हैं, यह इस सूत्र में तो क्या व्यासजी ने सम्पूर्ण

वेदान्तसूत्रों में कहीं भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया, अत: यह सिद्धान्त स्वामी शङ्कर का अपना है, व्यास का नहीं, इसलिए अप्रमाण है।

३. सम्पूर्ण वेदान्त में कहीं भी इतना बड़ा पूर्वपक्ष नहीं है इस लिए इतने सूत्रों को पूर्वपक्ष कहना सूत्रकार की शैली के विरुद्ध है।

४. सूत्र में कोई भी ऐसा पद या अर्थ नहीं है जिससे यह सूचित हो कि पूर्वप्रतिपादित सब सूत्र पूर्वपक्ष तथा यह उत्तरपक्ष है। यदि कहो तु शब्द से यह बात सिद्ध है, तो ठीक नहीं, क्योंकि सब जगह 'तु' शब्द पूर्वपक्ष की निवृत्ति के लिए नहीं आता, जैसे 'तत्तु समन्वयात्' में 'तु' शब्द पूर्वपक्ष की निवृत्ति के लिए नहीं है।

५. जब पूर्वपक्ष के लिए इतने वेदप्रमाण या युक्तियाँ दी, तब यहाँ विस्तार से उन सब बातों का उत्तर देना चाहिए था, किन्तु उपर्युक्त युक्तियों या प्रमाणों के उत्तर के लिए उत्तरपक्ष में एक भी पद या सूत्र नहीं है, इससे सिद्ध है कि यह सब महर्षि व्यास का सिद्ध पक्ष है, तथा वे जीव को अणु मानते हैं, विभु नहीं।

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात्॥ —वे० २.३.३०

यदि कहो कि जीव का गुण ज्ञान है, तो उसके उत्पन्न या विनष्ट होने से जीव जड़ ठहरेगा तो ठीक नहीं, क्योंकि ज्ञानगुण यावदात्मभावी, अर्थात् नित्य है, तथा सम्पूर्ण आत्मा में रहता है, इसलिए जीव जड़ नहीं है। जो युक्तियाँ जीव के अणु होने में व्यासजी महाराज ने दी हैं, उन सबको सब दर्शनकार मानते हैं, क्योंकि किसी ने भी इन प्रमाण या युक्तियों का खण्डन नहीं किया, किन्तु सब दर्शनकारों ने जीव का गमनागमन, एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाना, पुर्नजन्म लेना स्वीकार किया है, किसी ने भी जीव को विभु नहीं लिखा। इससे सिद्ध है कि यह जीव का अणुवाद सर्वतन्त्र सबको मान्य है।

न्याय

जैसे वेदान्त में जीव को अणु माना है वैसे ही न्यायदर्शन में भी जीव को अणु माना है। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः॥ —न्याय० १.१.१९

इसपर वात्स्यायनजी लिखते हैं—

पूर्वोपात्तान् देहादीन् जहाति तत् प्रैति यत् तत्र अन्यत्र वा देहादीन् उपादत्ते तद्भवति।

प्रथम देहों को छोड़कर दूसरी जगह शरीरों को धारण करता है,

इसको पुर्नजन्म कहते हैं।

इससे सिद्ध है कि गौतम जीव का एक स्थान से दूसरी जगह आना मानते हैं, और यह विभु में नहीं हो सकता, अणु में ही होता है।

नित्यत्वप्रसङ्गश्च प्रायणानुपपत्तेः ॥ —न्या० ३.२.७३

यदि जीव के कर्मों से शरीर न माना जाए तो प्रायण-एक शरीर को छोड़कर जीव का दूसरी जगह प्रायण-यात्रा न होने से शरीर नित्य बना रहेगा।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि महर्षि गौतम जीव का अन्यत्र जाना मानते हैं। इसी बात को वेद में लिखा है—

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

—यजुः० १९.४७

देव, मनुष्य, पितर आदि सबके दो ही मार्ग हैं, एक यह है कि उनकी मुक्ति हो जाए तथा दूसरा एक शरीर को छोड़कर वहाँ से चलकर दूसरे स्थान पर माता-पिता के द्वारा उत्पन्न होना।

ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ॥ —न्याय ३.१.१७

आत्मा को एक अन्दर के साधन की आवश्यकता है, क्योंकि यदि आन्तरिक साधन मन न हो तो इन्द्रिय अर्थ के सम्बन्ध होने पर भी ज्ञान नहीं हो सकता। इसपर वात्स्यायनजी लिखते हैं—

आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन।

आत्मा का मन से संयोग होता है, मन का इन्द्रियों से तथा इन्द्रियों का अर्थ से तब ज्ञान होता है। यदि आत्मा विभु है तो इन्द्रिय या विषय सब स्थान पर विद्यामान है, पुनः मन की क्या आवश्यकता है, इसलिए मानना होगा कि आत्मा अणु है और वह शरीर के अन्दर हृदय में रहता है, इसलिए मन के बिना ज्ञान नहीं हो सकता।

शङ्का—

ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृत्युत्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ॥

—न्याय० ३.२.२५

मन आत्मा के जिस प्रदेश में जाएगा, वहीं स्मृति होगी, परन्तु अनेक स्मृतियाँ एकसाथ उत्पन्न नहीं होतीं, इससे सिद्ध है कि गौतमजी आत्मा को व्यापक मानते हैं।

समाधान—यह गौतम का मत नहीं किसी दूसरे का है, इसीलिए

इसका खण्डन करते हुए लिखा है—

नान्तःशरीरवृत्तित्वान्मनसः ॥ —न्याय० ३.२.२७

यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि मन शरीर के अन्दर ही रहता है, बाहर नहीं जाता, इससे सिद्ध है कि आत्मा भी शरीर के अन्दर ही है बाहर नहीं, अन्यथा उसे बाहर जाने से रोकने का कोई कारण नहीं।

स्मरतः शरीरधारणोपपत्तेरप्रतिषेधः ॥ —न्याय० ३.२.२८

जब स्मृति होती है तब भी शरीर का पात नहीं होता। इससे सिद्ध है कि मन शरीर को छोड़कर बाहिर नहीं जाता, यदि आत्मा व्यापक होता तो मन के बाहर जाने से शरीर का पात नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर का धारण करनेवाला जीवात्मा शरीर के अन्दर विद्यामान है, इसलिए आत्मा या मन शरीरपात के समय इससे बाहर जाते हैं, इससे पूर्व नहीं।

शङ्का—विभवान् महानाकाशस्तथा चात्मा ॥ —वै० ७.१.२२

विभु होने से आकाश महत्परिमाणवाला है, इसी प्रकार आत्मा विभु होने से महत्परिमाणवाला है, इससे सिद्ध है कि महर्षि कणाद जी जीव को विभु मानते हैं।

समाधान—न्याय तथा वैशेषिक के सिद्धान्त में अन्तर नहीं है, इसको सब मानते हैं, हम न्याय से सिद्ध कर चुके हैं कि जीव अणु है, इसलिए इस सूत्र में आत्मा का अर्थ परमात्मा है, जीवात्मा नहीं, क्योंकि उपनिषदों में परमात्मा के ही लिए आता है 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' वह परमेश्वर आकाश की भाँति सर्वगत, विभु व नित्य है। वेद भी कहता है 'ओ३म् खं ब्रह्म', वह ब्रह्म खम्, अर्थात् आकाश की भाँति व्यापक है।

शङ्का—इससे अगले सूत्र में मन का वर्णन है, इससे सिद्ध है कि आत्मा का अर्थ जीवात्मा है।

समाधान—यह आवश्यक नहीं है कि जहाँ मन का वर्णन हो वहाँ दूसरी वस्तु का वर्णन नहीं हो सकता, योग में लिखा है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १.२

मन की वृत्ति को रोकने का नाम योग है, इसलिए प्रभु में मन लगाने के लिए उसके साथ भी मन का वर्णन आ सकता है।

सांख्य

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्रुघ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव ॥ —सां० १.२८

विषयों के उपराग प्रतिबिम्ब से भी जीव का बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि प्रतिबिम्ब पदार्थ का किसी पदार्थ पर तभी पड़ता है जब मध्य में कोई आवरण न हो। यदि मणि आगरे में हो और फूल पटना में तब उस फूल का प्रतिबिम्ब आगरे की मणि पर नहीं पड़ सकता। इसी प्रकार आत्मा शरीर के अन्दर है तथा विषय शरीर के बाहर, इस लिए उनका प्रतिबिम्ब आत्मा पर नहीं पड़ सकता।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सांख्यकार जीव को विभू नहीं मानते।

योग

द्रष्ट्रीदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ —यो० २.१७

द्रष्टा जीव तथा दृश्य बुद्धि आदि का जो संयोग है, वह दुःख का कारण है।

तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् ॥

—योग० २.२५

अविद्या के अभाव से बुद्धि तथा जीव के संयोग का अभाव हो जाता है, पुनः उसकी मुक्ति हो जाती है।

इस बुद्धि तथा जीव के संयोग-वियोग के कथन से सिद्ध है कि योगदर्शन के कर्त्ता जीव को अणु मानते हैं, अन्यथा विभु=व्यापक से वियोग कभी नहीं हो सकता।

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाऽ विशेषो
भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥ —योग० ३.३४

बुद्धि तथा जीवात्मा जो अत्यन्त असङ्कीर्ण है, अर्थात् मिले हुए नहीं है, उनमें ज्ञान की जो अविशेषता है, वह भोग है, अर्थात् बाह्य विषयों की जो आकृतियाँ है, बद्धि उन सब आकृतियों का रूप धारण कर लेती है, पुरुष उन सबको देखकर सुखी-दुःखी होता है।

इससे सिद्ध है कि पुरुष अणु या बुद्धि से भिन्न है, क्योंकि यदि सर्वव्यापक होता तो यह कहना असङ्गत था कि बुद्धि जब पदार्थों का रूप धारण करती है, तब पुरुष दूर से उनको देखता है, क्योंकि सर्वव्यापक होने से दूर देखना नहीं हो सकता।

विभुवाद के दोष

जीवात्मा को विभु मानकर अनेक मानने से ऐसे दोष आते हैं, जिनका निराकरण करना असम्भव है। नीचे उन दोषों का दिग्दर्शन कराया जाता है—

असततेश्चाव्यतिकरः ॥ —वे० २.३.४९

जीव के विभु न होने से कर्म का व्यतिकार नहीं होता। यदि जीव व्यापक होता तो सबके अन्दर सबके जीव होने से एक के कर्मों का फल दूसरे को मिलता। वह जीव के अणु होने से नहीं मिलता।

आभास एव च ॥ —वे० २.३.५०

अणु होने से जीव खद्योत के समान है, अर्थात् अपने ज्ञान से खद्योत की भाँति प्रकाश या ज्ञानवाला है, सर्वज्ञ नहीं।

स्वामी शङ्कराचार्य ने इसका अर्थ परमात्मा का प्रतिबिम्ब किया है। इसका खण्डन मैंने प्रतिबिम्बवाद में कर दिया है। शङ्कराचार्य का अर्थ असङ्गत है।

अदृष्टनियमात् ॥ —वे० २.३.५१

यदि जीवात्मा को व्यापक माना जाए तो ठीक नहीं, क्योंकि सर्वव्यापक होने से सबके जीवात्मा एक शरीर के अन्दर आने से सब का स्थान एक ही हुआ और एक होने से सबके कर्म भी एक ही स्थान पर होने से किस कर्म का फल किसको मिले यह नियम नहीं रह सकता। कर्मों कि कोई व्यवस्था भी नहीं होगी, क्योंकि अन्तःकरण या इन्द्रियों का सम्बन्ध सब जीवात्माओं के साथ है, पुनः कोई धर्मात्मा भी नहीं रह सकता, क्योंकि यदि एक जीवात्मा किसी अन्तःकरण से पुण्य करेगा तो दूसरा जीव उसी अन्तःकरण से पाप कर डालेगा तथा एक शरीर में एक ही जीव कार्य करे यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि एक शरीर में सब जीव विद्यमान होने से सब उससे काम न लेवें इसमें क्या नियामक है। एक सोएगा, दूसरा इन्हीं इन्द्रियों से कार्य करने लग जाएगा, अतः जीव के विभु होने से कोई भी व्यवस्था नहीं हो सकती, और पिता, पुत्र, भगिनी, मातादि सबका आत्मा एक शरीर में होने से उनके कर्म में भेद करनेवाला कोई भी नियामक नहीं रहेगा, तथा जब सबके अन्दर जीवात्मा व्यापक है तब जब कोई एक कार्य या विचार करे तब सबको जान लेना चाहिए, क्योंकि जिन कारणों से जहाँ विचार हो रहा है वहाँ सब जीव विद्यमान हैं, तथा सुख-दुःख की व्यवस्था भी नहीं हो सकती, क्योंकि एक के दुःख से सब दुःखी होंगे, जिस प्रदेश में दुःख है वहाँ सब जीव विद्यमान हैं। इन अव्यवस्थाओं के होने से जीव अणु है, व्यापक नहीं।

अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम्॥ —वै० २.३.५२

सङ्कल्प आदि में भी ऐसा ही दोष आएगा, क्योंकि सबके सब स्थान पर होने से सङ्कल्प आदि की भी व्यवस्था नहीं रहेगी।

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात्॥ —वै० २.३.५३

यदि कहो कि देशभेद से भेद हो जाएगा तब भी ठीक नहीं, क्योंकि सबके अन्दर सब विद्यमान हैं, अन्यथा विभु नहीं हो सकते। सबसे बड़ा दोष यह है कि यदि सर्वव्यापक हैं, तो वे सब परमात्मा क्यों नहीं हो गये। यदि कहो कि परमात्मा सर्वज्ञादि गुणों से जीव से भिन्न है तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जब दोनों सर्वव्यापक या चेतन हैं तब एक सर्वव्यापक तथा चेतन परमात्मा हो गया दूसरा नहीं, इसमें क्या युक्ति है? जब जीव तथा परमात्मा व्यापक या चेतन है, तब सबको परमात्मा मानना पड़ेगा और अनन्त परमात्मा मानना युक्ति या शास्त्र के विरुद्ध है।

मध्यम परिमाण

अब यह प्रश्न अवशिष्ट रह गया है कि यदि जीव विभु नहीं तो इसको मध्यम परिमाणवाला मानने में क्या हानि है? हमारा पक्ष है कि जीव को मध्यम परिमाणवाला भी नहीं मानना चाहिए। इस वाद के दोष निम्नलिखित हैं—

एवं चात्माऽकार्त्स्न्यम्॥ —वे० २.२.३४

यदि जीव को मध्यम परिमाण—शरीर परिमाणवाला मानें तब भी ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा मानने से भी जीव की पूर्णता नष्ट हो जाती है। जब वह हाथी के शरीर में जाएगा, तब बड़ा होगा तथा जब कीड़ी के शरीर में आएगा तब बाहर लटकता रहेगा, क्योंकि कीड़ी का शरीर छोटा है और हाथी का बड़ा।

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः॥ —२.२.३४

यदि कहो कि दीपशिखा की भाँति जीवात्मा सङ्कोच-विकाशवाला होने से छोटा-बड़ा हो जाएगा, तब भी ठीक नहीं, क्योंकि जो पदार्थ सङ्कोच या विकाशवाला होता है, वह कार्य होता है और कार्य होने से अनित्य तथा विकारी हो जाएगा, पुनः मुक्त-बद्ध की व्यवस्था नहीं हो सकती। दीपशिखा एक विकारी पदार्थ है इसलिए उसके अवयव संकुचित या विकसित हो सकते हैं, यदि ऐसा न मानें तो एक दीपक से सम्पूर्ण संसार में प्रकाश हो जाना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता, अतः सिद्ध है कि दीपशिखा विकारी पदार्थ है तथा जीव

नहीं।

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ —वे० २.२.३५

यदि यह कहो कि जीव का जो परिमाण मुक्ति में होता है वह नित्य होता है तो भी ठीक नहीं, क्योंकि यह मानने से यह भी मानना पड़ेगा कि मुक्ति से प्रथम जो जीव का परिमाण है वह भी नित्य है एक के नित्य तथा दूसरे के अनित्य मानने में कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार जीव नित्य सिद्ध हो जाता है और नित्य मानने से जीव का अणु परिमाण सुतरां सिद्ध हो जाता है।

जीव अनेक हैं

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॥

—वे० २.३.४३

जीव एक देशी है, क्योंकि वेद में अनेक जीव बतलाये हैं, ऐसे ही दाश, पापी आदि अनेक भेद कई शाखाओं में बतलाये हैं, अथवा दाश, स्त्री, कितव, ज्ञानी पुरुष आदि अनेक भेद बतलाये हैं यथा—

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥

ऋ० १.१६४.२२

जिस वृक्ष में बैठे हुए अनेक जीव अपने कर्मफल को भोगते या नये कर्म करते हैं, जो जीव सच्चे पिता परमेश्वर को नहीं जानते वे नित्य सुख को नहीं पा सकते।

इस वेदमन्त्र में स्पष्ट जीव अनेक=नाना बतलाये हैं, एक नहीं।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥

—अथर्व १०.८.२७

इस मन्त्र में स्पष्ट यह लिखा है कि कुमारी, कुमार, स्त्री, पुरुषादि सबमें जीव है, इससे सिद्ध है कि जीव अनेक या नाना है, एक नहीं।

शङ्का—कई विद्वानों ने इस सूत्र का यह अर्थ किया है, कि जीव ब्रह्म का अंश, भाग या अवयव है, पुनः आपने इसका एकदेशी अर्थ कैसे किया?

समाधान—अंश का अर्थ है एकदेश, अवयव, भाग या किसी का कार्य या बूँद। जीव को ब्रह्म का भाग, बूँद, अवयव नहीं माना जा सकता, क्योंकि ब्रह्म निरवयव, एकरस या अखण्ड है तथा उसकी

टुकड़ा भी नहीं, क्योंकि नित्य के टुकड़े भी नहीं होते, अंश का अर्थ कार्य भी नहीं, क्योंकि ब्रह्म अपरिणामी है। बूँद साकार या सावयव की होती है, इसलिए शंकर ने भी अंश का अर्थ 'अंश इव' अंश की भाँति किया है, अंश नहीं। गीता में भी जहाँ अंश लिखा है वहाँ सनातन शब्द भी साथ है, अतः वहाँ पिता-पुत्रादि अर्थ हो सकता है और यह लिखना भी अनुचित प्रतीत होता है कि अनेक जीव बतलाने से जीव ब्रह्म का अंश है, अंश का नाना से क्या सम्बन्ध है? एक भी किसी का टुकड़ा हो सकता है, अतः जैसे पाप शब्द का अर्थ संस्कृत में पाप तथा पापी दोनों होते हैं, इसी प्रकार अंश का अर्थ एकदेशी या एकदेश दोनों ही होते हैं, अतः हमारा अर्थ ठीक है कि अनेक जीव बतलाने से जीव एकदेशी=अणु है, क्योंकि नाना जीव विभु नहीं हो सकते, इसका प्रतिपादन व्यासवचन ही से हम कर चुके हैं।

वैशेषिक

व्यवस्थातो नाना॥ —वै० ३.२.२०

व्यवस्था से जीव अनेक हैं। सुख, दुःख, मरना, जीना, जन्म, मुक्त, बद्ध, पापी, पुण्यात्मा, राजा, चोर आदि की व्यवस्था होने से जीव अनेक हैं। यदि एक जीव हो तो एक में यह व्यवस्था नहीं हो सकती।

शास्त्रसामर्थ्याच्च॥ —वै० ३.२.२१

शास्त्र में भी जीव अनेक बतलाये हैं, एक नहीं। यथा—

ये समाना समनसो जीवा जीवेषु मामकाः॥ —यजुः० १९.४६

जो समान मनवाले अनेक जीव अनेक जीवों में मेरे हैं।

इसी प्रकार कठोपनिषद में लिखा है—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ —कठो० ५.१३

जो नित्य आत्माओं में नित्य है तथा चेतनों में चेतन है, जो अकेला ही कर्मफल का दाता है उसको जो अपने आत्मा में देखते हैं उनको नित्य सुख मिलता है।

इन श्रुतियों में कितने स्पष्ट शब्दों में जीवों का नित्यत्व तथा अनेकत्व प्रतिपादन किया है, अतः महर्षि कणाद लिखते हैं कि

शास्त्र सामर्थ्य से भी जीवन अनेक हैं।

न्याय

वैशेषिक तथा न्याय का एक ही मत है, इसलिए जिस सिद्धान्त को न्याय मानता है उसी को वैशेषिक मानता है, तथापि प्रमाण के लिए एक सूत्र लिखते हैं—

नाकृताभ्यागमप्रसङ्गात्॥ —न्याय० ३.२.७५

यदि बिना कर्म के जन्म माना जाए तो जो कर्म करे, उसको फल न मिले तथा जो कर्म न करे उसको फल मिल जाए, इसलिए कर्म ही से शरीर की उत्पत्ति माननी चाहिए।

इस सूत्र में न्यायकर्त्ता ने अनेक आत्मा स्वीकार किये हैं।

शङ्का—न्यायसूत्रों में प्रायः करके आत्मा शब्द का एकवचन में ही प्रयोग किया है, इससे सिद्ध है कि गौतमजी जीव को एक ही मानते हैं, अनेक नहीं।

समाधान—

ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः॥ —न्याय० ३.२.५८

ज्ञान के एकसाथ न होने से मन एक है और वह अणु है।

क्या इसके ये अर्थ हैं, कि गौतमजी एक ही मन मानते हैं, अनेक नहीं। जैसे मन को एक जाति मानकर एकवचन का प्रयोग करते हैं, इसी प्रकार आत्मत्व जाति मानकर एकवचन का प्रयोग करते हैं। इसके ये अर्थ कदापि नहीं हैं कि वे आत्मा एक ही मानते हैं।

सांख्य

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्॥ —सां० १.१४९

जन्म, मरण, सुख, दुःख आदि की व्यवस्था से जीव अनेक हैं, एक नहीं।

यहाँ सांख्यकार महर्षि कपिल अनेक जीव मानते हैं, एक नहीं।

योग

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्॥ —यो० १.१९

विदेह तथा प्रकृति में लीन जीवों को भवप्रत्यय=असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्॥ —यो० १.२०

अन्य योगियों को श्रद्धा से वीर्य, वीर्य से स्मृति, स्मृति से

समाधि तथा समाधि से प्रज्ञा होती है।

इन दोनों सूत्रों में महर्षि ने जीवों का अनेक होना स्वीकार किया है, एक नहीं। इसी प्रकार सब दर्शनकार जीवों का अनेकत्व स्वीकार करते हैं।

कर्त्ता तथा भोक्ता

इस विषय में भी दर्शनों के आधुनिक भाष्यकर्त्ताओं का मतभेद है। कोई कहता है कि जीवात्मा कर्त्ता है कोई कहता है अन्तःकरण विशिष्टब्रह्म कर्त्ता है, कोई कहता है अन्तःकरण ही कर्त्ता है जीव नहीं, सब दुःखादि अन्तःकरण को ही होते हैं, जीव को नहीं। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज का सिद्धान्त है कि जीव ही कर्त्ता तथा भोक्ता है। नीचे हम दर्शनों के प्रमाण देकर यह सिद्ध करेंगे कि जीव ही कर्त्ता और भोक्ता है—

वेदान्त

कर्त्ता शास्त्रार्थवत्वात्॥ —वे० २.३.३३

जीवात्मा कर्त्ता है, कारण यह है कि वेदों में जीव को कर्त्ता बतलाया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्येथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ —यजुः० ४०.२

हे जीवात्मन्! तू कर्म करता हुआ १०० वर्ष जीने की इच्छा कर, इसी में तेरा कल्याण है।

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर॥

—यजुः० ४०.१५

हे क्रतो कर्त्ता जीवात्मन्! तू ओ३म् का स्मरण कर।

यहाँ क्रतु का अर्थ भी कर्त्ता ही है।

विहारोपदेशात्॥ —वे० २.३.३४

वेद-शास्त्रों में जीव को विहारादि कर्म करनेवाला लिखा है, इससे भी सिद्ध है कि जीव कर्त्ता है।

आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै॥

—अथर्व० १४.२.३१

हे स्त्रि! तू इस पति के घर में विहार करती हुई सन्तान उत्पन्न कर।

इससे भी सिद्ध है, कि जीव कर्त्ता है।

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ —वे० २.३.३६

वेदों में क्रिया करने का उपदेश जीव को दिया गया है, यदि जीव को कर्त्ता न मानें तो सब उपदेश निरर्थक हो जाते हैं।

उद् बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः॥

—ऋ० १०.१०१.१

ऋग्वेद में कहा है—हे मित्रो! समान मनवाले होकर उठो, अग्निहोत्र करो, उषा काल में अपने आत्मा में भगवान् रूपी अग्नि को प्रचण्ड करो। उसी से तुम्हारी रक्षा होगी।

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः॥

—ऋ० १०.१०.१.२

हे मित्रो! सर्वत्र आनन्द की वर्षा करो, नावें बनाओ, शस्त्रास्त्रों का सम्पादन करो, शस्त्रागार बनाओ तथा यज्ञ का सम्पादन करो।

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्॥

—ऋ० १०.१०१.८

गोष्ठ बनाओ उससे तुम्हारी रक्षा होगी, कवच पहनो, लोहे की शतघ्नी आदि बनाकर अपने दुर्गों की रक्षा करो जिससे तुम्हारे सुख को कोई नष्ट न कर सके।

इन मन्त्रों में जितनी क्रियाएँ बतलाई हैं, उन सबका कर्त्ता जीव को कहा है। यदि जीव को कर्त्ता न माना जाए तो ये सब उपदेश निरर्थक हो जाएँगे, इसलिए जीव कर्त्ता है।

शक्तिविपर्ययात् ॥ —वे० २.३.३८

यदि जीव को कर्त्ता न मानकर बुद्धि को ही कर्त्ता माना जाए तो शक्ति विपर्यय हो जाएगा, अर्थात् भोक्ता तो आत्मा को मानें तथा कर्त्ता बुद्धि को, यह ठीक नहीं।

यथा च तक्षोभयथा ॥ —वे० २.३.४०

यदि जीवात्मा कर्त्ता है तो वह सुषुप्ति आदि में कर्म क्यों नहीं करता? इसका उत्तर महर्षि व्यासजी देते हैं कि जैसे तक्षक बढ़ई अपने साधनों से जब चाहे कार्य करे जब चाहे न करे यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, ऐसे ही जीव भी जब चाहे अपने इन्द्रियरूपी साधनों से

कार्य करे जब चाहे न करे, इससे जीव के कर्तृत्व की कोई हानि नहीं।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने सब सूत्रों को पूर्वपक्ष तथा इस सूत्र को उत्तर पक्ष में लगाकर यह सिद्ध किया है कि जीव कर्त्ता, भोक्ता नहीं है।

समाधान—इसके नीचे लिखे समाधान हैं—

१. जब ७ सूत्रों में सूत्रकार ने पूर्वपक्षी के अनुसार जीव को कर्त्ता सिद्ध किया तो इस सूत्र में कोई उत्तरपक्ष सूचक वाक्य या पद आना चाहिए था, किन्तु इसमें कोई भी ऐसा पद नहीं है जिससे पूर्वपक्ष सिद्ध किया जाए तथा इसको उत्तरपक्ष सूत्र, अतः शङ्कर स्वामी का यह कथन ठीक नहीं।

२. इस सूत्र में शङ्कर स्वामी से भी कर्तृत्व का खण्डन नहीं हो सका। उन्होंने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है कि जैसे तक्षक कार्य पर जाता है तब कर्त्ता होता है तथा जब घर में जाता है तब नहीं। इससे जीव के कतृत्व का खण्डन नहीं होता।

३. जब इतने सूत्रों में सूत्रकार ने वेदों के प्रमाण या युक्तियों से जीव को कर्त्ता सिद्ध किया तब उन सब बातों का युक्तियुक्त उत्तर देना चाहिए था, किन्तु एक बात का भी उत्तर नहीं दिया, अतः शङ्कर स्वामी का कथन अयुक्त है।

४. व्यास महाराज का एक भी सूत्र ऐसा नहीं है जिसमें जीव के कर्तृत्व का खण्डन किया हो, इसलिए शङ्कर स्वामी की कपोलकल्पित व्याख्या ठीक नहीं।

५. कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धा वैयर्थ्यादिभ्यः ॥

—वे० २.३.४२

यदि कहो कि परमात्मा किसी को दुःख या किसी को सुख देने से पक्षपाती ठहरेगा तो यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि जीव के अपने किये हुए धर्माधर्म के अनुसार ही परमात्मा जीवों को शुभाशुभ फल देता है। यदि यह माना जाए कि परमात्मा बिना ही कर्म के फल देता है तब जीव के लिए **विहित**—'सत्यभाषण करो' तथा **निषिद्ध**—'असत्य भाषण न करो' इत्यादि सब व्यर्थ हो जाएगा, अतः जीव कर्त्ता है तथा ईश्वर फलदाता है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जीवात्मा कर्त्ता है, अतः शङ्कर स्वामी का कथन मिथ्या है।

मीमांसा

शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात् तस्मात् स्वयं प्रयोगे स्यात्॥

—मी० ३.७.१८

शास्त्र का जो फल होता है वह कर्त्ता को मिलता है, इसलिए स्वयं कर्म करना चाहिए।

इससे सिद्ध है कि मीमांसा के कर्त्ता जीव को कर्त्ता मानते हैं।

न्याय

न कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात्॥ —न्या० २.१.५८

यदि यह कहो कि कतिपय वैदिक कर्मों का फल नहीं मिलता, इससे सिद्ध है कि वेद ठीक नहीं। यह कथन भी असङ्गत है, कारण यह है कि इसमें वेद का दोष नहीं, किन्तु कर्त्ता का या कर्म का है।

इस सूत्र में महर्षि गौतम ने जीव को कर्त्ता माना है।

वैशेषिक

प्रवृत्तिनिवृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्रलिङ्गम्॥

—वै० ३.१.२०

प्रत्येक आत्मा में प्रवृत्ति—अनुकूल कार्य का करना तथा निवृत्ति—प्रतिकूल कार्य में प्रवृत्त न होना दृष्टिगोचर होता है।

इस सूत्र में महर्षि कणाद ने प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का कर्त्ता जीव को माना है।

सांख्य

अविवेकाद्वा तत् सिद्धेः कर्तुः फलावगमः॥ —सां० १.१०६

जब तक मनुष्य मुक्त नहीं होता तब तक जीव कर्त्ता को ही फल मिलता है, अन्य को नहीं।

योग

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः॥ —यो० २.२०

द्रष्टा जीवात्मा शुद्ध होता हुआ भी कर्मों का कर्त्ता है।

भोक्ता

जैसे जीव के कर्तृत्व में मतभेद नूतन भाष्यकारों में पाया जाता है, वैसे ही भोक्तृत्व के विषय में भी मतभेद पाया जाता है। कोई बुद्धि को फल का भोक्ता कहता है, कोई जीव को। वेदान्ती कहते हैं, कि यह सब भ्रममात्र है। श्री स्वामी दयानन्दजी यह मानते हैं कि जीव कर्त्ता है, वही भोक्ता है, प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

मीमांसा

शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात् स्वयं प्रयोगे स्यात् ॥

—३.७.१८

अग्निहोत्रादि कर्मों का फल कर्त्ता को मिलता है, ऐसा ही वेद से सिद्ध है, अतः स्वयं कर्म करना चाहिए।

अथर्ववेद १२.३.४८ में कहा है—

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशति ॥

प्रभु के न्याय में कोई दोष नहीं है, न ही कोई आधार=सिफ़ारिश है, न ही मित्र के कहने से प्रभु मानते हैं। इस न्याय में कोई न्यूनता नहीं है जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही फल मिल जाएगा।

वेदान्त

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत् ॥ —वे० २.१.१३

यदि कहो कि जैसे जड़ शरीर खाता है तथा खाद्य वस्तु भी जड़ है, अतः भोग्य या भोक्ता का विभाग नहीं हो सकता, तब भी ठीक नहीं, क्योंकि लोक में भी जड़ शरीर भोक्ता नहीं किन्तु चेतन आत्मा ही भोक्ता है। यदि जड़ शरीर भोक्ता हो तो मृत्यु के पश्चात् भी शरीर को खाना चाहिए।

इससे सिद्ध है कि चेतन जीव ही भोक्ता है, जड़ शरीर, बुद्धि आदि भोक्ता नहीं। अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में व्यासजी ने जीव को भोक्ता लिखा है, अतः स्वामी शङ्कर का सिद्धान्त अशुद्ध है कि जीव भोक्ता नहीं है। यहाँ स्वामी शंकर ने लिखा है कि जैसे समुद्र के एक होने पर भी उसमें तरङ्ग, बुद-बुद, फेन आदि अनेकत्व दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म के एक होने पर भी भोक्ता या भोग्य का कार्य सम्पन्न हो सकता है, अर्थात् ब्रह्म ही ब्रह्म को खाता है, ब्रह्म ही शाक, ब्रह्म ही नमक, ब्रह्म ही रोटी तथा ब्रह्म ही खानेवाला तथा ब्रह्म ही खाद्य पदार्थ। क्या बच्चों का-सा खेल है, समुद्र तो विकारी पदार्थ है तथा उसमें पानी, वायु, पृथिवी आदि अनेक पदार्थ मिले हुए है, इसलिए तरङ्ग आदि अनेकत्व व्यवहार हो जाएगा, किन्तु ब्रह्म कूटस्थ, एकरस में भोक्ता-भोग्य व्यवहार अत्यन्त असङ्गत है।

न्याय

प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः ॥ —न्या० ४.१.५२

यदि कहो कि जिस शरीर के द्वारा कर्म किया था, वह तो नष्ट

हो सकता, एक दूसरे शरीर को फल कैसे मिलेगा तो ठीक नहीं क्योंकि कर्म का फल जीवात्मा को ही मिलता है, वही कर्ता और भोक्ता है, इसलिए दूसरे शरीर में भी कर्मफल भोग लेगा।

वैशेषिक

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे ॥ —वै० ५.२.१५

आत्मा या इन्द्रिय, मन तथा अर्थ के सन्निधान से जीव को दुःख या सुख होता है।

सांख्य

—सां० १.१४३

भोक्तृभावात् ॥

जीव शरीर से अलग है, शरीर भोक्ता न होने से।

चिद्वसाना भुक्तिस्तत् कर्मार्जितत्वात् ॥ —६.५५

धर्म का भोक्ता जीव है, क्योंकि भोग जीव के अपने किये कर्मों का फल होता है।

इन दोनों सूत्रों में महर्षि कपिल ने जीव को कर्मों का भोक्ता माना है, बुद्धि को नहीं तथा यह भी लिखा है कि कर्म जीव के अपने उपार्जित किये हुए हैं।

योग

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥

—यो० २.१८

तदर्थ एव च दृश्यास्यात्मा ॥ —२.२१

सत्त्व, रज, तम से बना हुआ यह पञ्चभूत तथा इन्द्रिरूप दृश्य संसार जीव के भोग व मोक्ष के लिए परमात्मा ने रचा है।

यह दृश्य जीव के भोग के लिए ही है।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ —योग० २.१४

जो पूर्व कर्म से जीव को जाति, आयु या भोग मिलते हैं, वे पुण्यहेतुक होने से सुख देनेवाले होते हैं, तथा पापहेतुक होने से दुःख देनेवाले होते हैं।

इन सूत्रों में जीव को कर्मफलों का भोक्ता योगसूत्रकार ने माना है।

इस प्रकार सब दर्शनकार जीव को कर्त्ता और भोक्ता मानते हैं, अतः जो लोग कहते हैं कि जीव के भोक्ता तथा कर्त्ता न होने में

दर्शनों का मतभेद है, यह उनकी बुद्धि का भेद है, दर्शनों में कोई मतभेद नहीं है। अथवा जो दर्शनों के नवीन भाष्यकार हुए हैं, यह सब उनकी लीला है, मूल दर्शनों के अवलोकन से उनमें भेदभाव नहीं पाया जाता।

धर्माधर्म

धर्म तथा अधर्म के विषय में भी दर्शनों में मतभेद पाया जाता है। कोई कहता है धर्माधर्म केवल बुद्धि के गुण हैं, उसी में रहते हैं, वही धर्माधर्म के करनेवाली है, जीव से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अपर कहते हैं कि धर्म तथा अधर्म जीव के गुण हैं, बुद्धि के नहीं, इस प्रकार इस विषय में भी दर्शनों में मतभेद पाया जाता है। यह बात भी ठीक नहीं। धर्माधर्म के विषय में भी दर्शनकारों का एक ही मत है, भिन्न-भिन्न नहीं। यह बात उपर्युक्त कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वाद के निर्णय से पर्याप्त निर्णय में पहुँच चुकी है, पुनरपि कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

वेदान्त

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धा वैयर्थ्यादिभ्यः॥

—वे० २.३.४२

परमात्मा जो फल जीव को देता है वह उसके अपने किये हुए धर्म तथा अधर्म की अपेक्षा से होता है अन्यथा यदि बिना कर्म के सब-कुछ परमात्मा अपनी इच्छा से ही फल देवे तो जीवों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य व्यर्थ हो जाएँगे।

इस सूत्र में महर्षि व्यास ने धर्माधर्म जीवों के माने हैं, अन्तःकरण के नहीं॥

न्याय

पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः॥ —न्या० ३.२.६२

वात्स्यायनभाष्य

पूर्वशरीरं या प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भलक्षणा तत् पूर्वकृतं तस्य फलं तज्जनितौ धर्माधर्मौ तयोरनुबन्ध आत्मसमवेतस्यावस्थानं तेन प्रयुक्तेभ्यो भूतेभ्यस्तस्योत्पत्तिः शरीरस्य न स्वतन्त्रेभ्यः॥

पूर्व शरीर में जीवात्मा ने प्रवृत्तिरूप वाणी, मन तथा शरीर से जो कर्म किये थे, उनसे धर्माधर्म उत्पन्न होता है, वही धर्माधर्म आत्मा में रहता है, उसी से शरीर की उत्पत्ति होती है।

यहाँ भी धर्म तथा अधर्म का सम्बन्ध महर्षि गौतम या वात्स्यायन ने आत्मा के साथ बतलाया है।

वैशेषिक

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥ —वै० ६.१.५

उपस्कारभाष्यं

आत्मान्तरगुणानां यागहिंसादिपुण्यपापानां प्रत्यात्मनिष्ठाभ्यामिव धर्माधर्माभ्यां सुखदुःखे न व्यधिकरणाभ्यामन्यथा येन यागहिंसादिकं तस्य तत् फलं स्यात् कृतहानिरकृताभ्यागमश्च प्रसज्यते॥

प्रत्येक आत्मा में रहनेवाले जो धर्म तथा अधर्म हैं उनका फल कर्त्ता-आत्मा को ही मिलता है दूसरे को नहीं, क्योंकि ऐसा न होने से जो करेगा उसको फल नहीं मिलेगा तथा न करनेवाले को मिल जाएगा।

इस सूत्र में तथा उसके भाष्यकार ने धर्म तथा अधर्म आत्मा के माने है, अन्तःकरण के नहीं।

सांख्य

शङ्का—अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ॥ —सां० ५.२५

धर्म आदि अन्तःकरण के धर्म हैं, जीव के नहीं।

इस सूत्र में सांख्यकार धर्म तथा अधर्म को अन्तःकरण के धर्म मानते हैं, जीव के नहीं, अतः वैशेषिक से स्पष्ट विरोध आता है।

समाधान—गुणादीनां च नात्यन्तबाधा ॥ —सां० ५.२६

जो लोग यह जानते हैं कि धर्म तथा अधर्म केवल अन्तःकरण के ही धर्म हैं वे ठीक नहीं कहते, क्योंकि धर्म तथा अधर्म का जीव में अत्यन्त बाध नहीं है। प्रथम भी सांख्यकार ने कर्मों को जीव द्वारा उपार्जित लिखा है, अतः पाप तथा पुण्य को जीव शरीर या अन्तःकरण के द्वारा करता है इसलिए उनके साथ भी उनका जो सम्बन्ध है, वे वास्तव में जीव के हैं। यही बात न्याय में लिखी है। यहाँ गुण का अर्थ धर्म-अधर्म है। वैशेषिक में भी हम दिखला चुके हैं कि गुण का अर्थ धर्म तथा अधर्म है।

शङ्का—न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तश्च ॥ —सां० १.१६

कर्म से भी जीव का बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि कर्मादि बुद्धि के धर्म हैं, अन्य के धर्म से अन्य का बन्ध ठीक नहीं।

इसमें भी सांख्यकार ने कर्मों को बुद्धि का धर्म माना है।

समाधान—विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे॥ —सां० १.१७

यदि धर्मादि को बुद्धि का धर्म माने तो ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा मानने से जीव को विचित्र भोग नहीं मिल सकता, अतः धर्मादि केवल बुद्धि के धर्म नहीं हो सकते।

यहाँ कपिलाचार्य ने धर्मादि को बुद्धि का धर्म होने का स्पष्ट खण्डन किया है।

प्रकृति—उपादानकारण

सृष्टि उत्पत्ति में कितने कारण है तथा कार्यजगत् का उपादान-कारण क्या है? इस विषय में भी दर्शनों के नवीन सम्प्रदाय में बड़ा मतभेद है। किसी का मत है कि वेदान्तदर्शन में परमात्मा को कार्यजगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण माना है, अर्थात् परमेश्वर ही संसार का निमित्तकारण है तथा वही उपादानकारण है, यथा मकड़ी जब जाला तनती है तो वही जाले का निमित्तकारण तथा वही उपादानकारण होती है, ऐसे ही न्याय तथा वैशेषिक में परमाणुओं को सृष्टि का उपादानकारण माना है तथा सांख्य और योग में प्रकृति को कार्यजगत् का उपादानकारण माना है। इस प्रकार छहओं दर्शनों में संसार के कारणों के विषय में मतभेद पाया जाता है। इतने बड़े मौलिक मतभेद के होते हुए यह कहना दुःसाहसमात्र है कि दर्शनों में एकता है।

मेरे विचार में यह भी नूतन दर्शनसम्प्रदाय के प्रवर्त्तकों की लीला-मात्र है, क्योंकि मूल दर्शनों के अवलोकन से पता लगता है कि सभी दर्शनकार प्रकृति परमाणुओं को संसार का उपादानकारण तथा परमात्मा को सृष्टि का निमित्तकारण मानते हैं, प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

वेदान्त

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्॥ —वे० १.४.२३

जैसे संसार का निमित्तकारण ब्रह्म है तथा जीव उससे भिन्न है इसी प्रकार प्रकृति संसार का उपादानकारण है, क्योंकि वेदों में प्रकृति-विषयक प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त पाये जाते हैं। यथा—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमिं जनयन् देव एकः॥

—ऋ० १०.८१.३

सर्वद्रष्टा, सर्ववक्ता, सर्वसहायक, सर्वव्यापक प्रभु ने जीवों के धर्म तथा अधर्म का फल देने के लिए परमाणुओं से संसार की रचना की है।

इस मन्त्र में इस बात की प्रतिज्ञा है कि संसार को प्रभु ने परमाणुओं के द्वारा बनाया है।

किꣳस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः॥
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥

—ऋ० १०.८१.४

वह वन आदि कारण क्या है? तथा वृक्ष=कार्यजगत् क्या है? जहाँ से द्युलोक तथा पृथिवीलोक को बनाया है।

इस मन्त्र में वन या वृक्ष का दृष्टान्त देकर प्रकृति को वेद भगवान् ने सिद्ध किया है कि 'प्रकृति है', इन प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्तों से सिद्ध है कि वेद प्रकृति की सत्ता को मानता है।

अभिध्योपदेशाच्च॥ —वे० १.४.२४

ईक्षण तथा ध्यानपूर्वक सृष्टि की रचना पाये जाने से भी ब्रह्म सृष्टि का निमित्तकारण है तथा प्रकृति उससे भिन्न है, क्योंकि ईक्षण या ध्यान चेतन में हो सकता है जड़ में नहीं और संसार का उपादानकारण जड़ है चेतन नहीं, यह बात संसाररूपी जड़कार्य से ही सिद्ध है कि इसका कारण भी जड़ है।

साक्षाच्चोभयाम्नानात्॥ —वे० १.४.२५

वेदों में परमात्मा तथा प्रकृति दोनों का साक्षात् पृथक्-पृथक् वर्णन पाया जाता है, इससे भी सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति है, ब्रह्म नहीं। यथा—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥

—अथर्व १०.८.२५

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥

—अथर्व १०.४.२६

प्रथम मन्त्र का अर्थ मैंने जीव प्रकरण में कर दिया है, इसमें जीव और ईश दोनों का वर्णन है तथा दूसरे मन्त्र में यह बतलाया है कि यह कल्याणी, अमृत, अजर मनुष्य के घर में जिस जीव के लिए है, वह इसमें सोता है। इस प्रकृति में या इसके कार्य में सोता है, वही वृद्ध होता है, अर्थात् जो जीव प्रकृति के कार्यों में लीन होता है वही

वृद्धादि अवस्थाओं को प्राप्त होता है, इस वेद मन्त्र के साथ इस उपनिषद् श्रुति की तुलना करनी चाहिए—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमाना सरूपाः।
अजा ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

—श्वेता० ४.५

वेद में 'शये' शब्द आया है उपनिषद में 'अनुशेते' शब्द है। अर्थ दोनों का एक ही है। वेद में प्रकृति के लिए 'अजरा' या 'अमृता' शब्द आया है, तथा उपनिषद में 'अजा' शब्द आया है, इन शब्दों से पता लगता है कि यह उपनिषद् श्रुति इसी वेदमन्त्र के आधार पर बनाई गई है।

इस प्रकार वेदमन्त्रों में साक्षात् प्रकृति तथा ब्रह्म का वर्णन आने से सिद्ध है कि प्रकृति उपादानकारण है।

आत्मकृते परिणामात्॥ —वे० १.४.२६

प्रभु की कृति से ही जड़ प्रकृति का कार्यरूप परिणाम होता है, स्वयं नहीं, इससे भी प्रकृति सिद्ध है।

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य। क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥

—अथर्व० १३.३.१

जो इस द्युलोक तथा पृथिवीलोक की रचना करता है तथा संसार के मध्य में व्यापक है, जिसमें सब दिशाएँ तथा लोकलोकान्तर विद्यमान हैं।

इस मन्त्र में स्पष्ट यह लिखा है कि परमात्मा की कृति से संसार की रचना होती है, इससे भी सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति है।

योनिश्च हि गीयते॥ —वे० १.४.२७

उस प्रकृति का नाम योनि भी वेदों में आया है। यथा—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

—यजुः० ३१.१९

वह परमेश्वर सब संसार में विद्यमान है, स्वयं उत्पन्न न होता

हुआ भी प्रकृति से अनेक प्रकार के कार्य उत्पन्न कर देता है। कार्य को तथा उसकी योनि=कारणरूप प्रकृति को धीर लोग देखते हैं।

इस मन्त्र में प्रकृति का नाम योनि आया है।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

—मुं० १.१.६

वह परमेश्वर अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण, अनेत्र, अश्रोत्र, पाणि तथा पाद से रहित है। नित्य, सर्वव्यापक, सूक्ष्म तथा विभु है।

यस्य भूतयोनिं यदभूतयोनिं, उसकी भूतों की योनि, अर्थात् प्रकृति को भी धीर लोग देखते हैं।

इन प्रमाणों से पाया जाता है कि प्रकृति का नाम योनि भी है इससे सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति है।

जहाँ कहीं परमात्मा के लिए योनि शब्द आता है, वहाँ निमित्तकारण या स्थान का वाचक आता है, क्योंकि ब्रह्म सब भूतों का स्थान है। यथा—

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे॥

—ऋ० १.१०४.१

हे राजन्! यह योनि=स्थान-राजसिंहासन आपके लिए बनाया है, इसपर विराजिए तथा प्रजा की रक्षा कीजिए, अग्नि आदि के द्वारा विमानों का निर्माण कीजिए।

इस मन्त्र में योनिशब्द स्थान का वाचक आया है।

सारांश

जैसे सृष्टि का निमित्तकारण परमेश्वर है वैसे ही उपादानकारण प्रकृति है इस बात को छह हेतुओं से महर्षि व्यास ने सिद्ध किया है।

प्रथम हेतु यह है कि वेदमन्त्रों में इस बात की प्रतिज्ञा है कि संसार की रचना परमात्मा ने प्रकृति से की है।

दूसरा हेतु यह है कि दृष्टान्त देकर प्रकृति को वेदों से सिद्ध किया है, इसका यह अर्थ है कि संसार में ऐसा कोई भी दृष्टान्त नहीं पाया जाता है, जिससे यह सिद्ध हो कि निमित्तकारण व उपादनकारण एक होता है। इसके विपरीत जितने भी दृष्टान्त संसार में पाये जाते हैं, उन सबसे यही सिद्ध होता है कि निमित्तकारण तथा उपादानकारण

पृथक्-पृथक् होते हैं।

तीसरा हेतु यह है कि परमात्मा ने ध्यान या ईक्षणपूर्वक संसार की रचना की। इससे सिद्ध है कि परमात्मा चेतन है तथा संसार के अवलोकन से यह सिद्ध है कि वह जड़ है, इसलिए इसका उपादान-कारण भी जड़ ही होना चाहिए।

चौथा हेतु यह है कि साक्षात्, जिससे कोई भी सन्देह का स्थान अवशिष्ट नहीं रहता, ऐसा प्रकृति तथा परमात्मा का वेदों में वर्णन आता है।

पाँचवाँ हेतु यह बतलाया है कि परमात्मा की क्रिया से ही प्रकृति कार्यरूप में परिणत होती है, परमात्मा अपरिणामी होने से संसाररूप नहीं हो सकता।

छठा हेतु यह है कि प्रकृति का योनि=कारण नाम से वर्णन किया है।

इन छह हेतुओं से यह सिद्ध है कि प्रकृति संसार का उपादानकारण है, परमात्मा नहीं।

शङ्का—श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी ने इन सूत्रों से यह सिद्ध किया है कि परमात्मा संसार का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है, अर्थात् वही संसार का निमित्तकारण तथा वही उपादानकारण है।

समाधान—श्री स्वामी शङ्कराचार्य का सूत्रार्थ प्रमाण और युक्ति से विरुद्ध है, इसके लिए निम्नलिखित हेतु हैं—

१. जब शङ्कराचार्य के कहने के अनुसार '**जन्माद्यस्य यतः**' सूत्र में भी परमात्मा को संसार का निमित्तकारण बतलाया है, उपादानकारण नहीं, तब पुनः यह कहने की क्या आवश्यकता है कि ब्रह्म संसार का उपादनकारण भी है, क्योंकि निमित्तकारण तो पीछे किसी सूत्र में बतलाया ही नहीं।

२. नवीनवेदान्ती यह मानते हैं कि शुद्धब्रह्म जगत् का कारण नहीं, किन्तु मायाविशिष्ट ईश्वर संसार का कारण है। व्यासजी ने ब्रह्म की जिज्ञासा के अनन्तर ब्रह्म ही का यह लक्षण किया है कि जो संसार की उत्पत्ति आदि करनेवाला है, वह ब्रह्म है। इसलिए मायावादियों का ब्रह्म संसार का उपादानकारण नहीं हो सकता।

३. स्वामीजी ने यह लिखा है कि उपनिषद् में जो यह प्रतिज्ञा या दृष्टान्त आता है कि सौम्य! जिसके जानने से सब जाना जाता है उसको जानो और दृष्टान्त यह है कि जैसे एक मृत्पिण्ड के जानने से

सब मिट्टी के विकार जान लिये जाते हैं। ब्रह्म संसार का उपादानकारण है, क्योंकि निमित्तकारण होने से सबका ज्ञान नहीं हो सकता। हमें शङ्कराचार्य की यह युक्ति विचित्र मालूम पड़ती है, क्योंकि यहाँ श्रुति का तात्पर्य उपादानकारण या निमित्तकारण का विवेचन करना नहीं है, किन्तु यहाँ तो दृष्टान्त देकर यह बतलाया है कि जैसे मिट्टी के जानने से सब मिट्टी के विकार जान लिये जाते हैं वैसे ही ब्रह्म के जानने से उसके सब गुण या कार्य जान लिये जाते हैं। यहाँ तो स्पष्ट यह लिखा है कि मिट्टी या ब्रह्म अलग-अलग है तथा इस प्रकरण में यह कहाँ लिखा है कि सब संसार ब्रह्म का विकार है, ब्रह्म ही सत्य है, तथा संसार मिथ्या है? यदि यह उपसंहार नहीं तो दृष्टान्त किस काम का? दूसरा भाव यह है कि एक प्रभु के जानने से सब-कुछ जाना गया, पुनः कुछ जानना अवशिष्ट नहीं रहा। जिसने ब्रह्म को जान लिया उसके लिए क्या रह गया? इसका यह शेष अर्थ कदापि नहीं है कि ब्रह्म संसार का उपादानकारण है।

४. ईक्षणपूर्वक कर्तृत्व निमित्तकारण में ही होता है, उपादानकारण में नहीं। संसार में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता, जिससे यह सिद्ध होता हो कि उपादानकारण में ईक्षण होता है।

५. संसार में जो कार्य होता है उसमें नियम से कर्त्ता, उपादान आदि वस्तुएँ अलग-अलग होती है, इससे भी सिद्ध है कि ब्रह्म और प्रकृति भिन्न-भिन्न है।

५. जैसे यह संसार परिणामी, अशुद्ध, जड़ तथा अनेक दोषों से दूषित है, इसका कारण भी वैसा ही होना चाहिए, किन्तु ब्रह्म इसके विपरीत—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्॥ —श्वे० ६.१९

अपरिणामी, निरवयव होने से इस संसार का उपादानकारण नहीं हो सकता।

७. संसार के प्रत्येक पदार्थ में अनेक अवयव दिखाई देते हैं इससे सिद्ध है कि इस संसार का आदिकरण अनेक अवयवों से युक्त है। ब्रह्म के निरवयव होने से वह इस संसार का उपादानकारण नहीं हो सकता।

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात्॥ —वे० २.१.४

संसार के तथा ब्रह्म के परस्पर विलक्षण होने से ब्रह्म संसार का उपादानकारण नहीं हो सकता।

ऐसा ही वेद में लिखा है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

—यजु:० ४०.४

प्रभु कम्पायमान नहीं होता तथा संसार कम्पायमान है। ईश एक है तथा संसार में अनेकत्व है। उसकी गति मन से भी आगे है संसार की नहीं, उसको इन्द्रियाँ नहीं जान सकती, किन्तु संसार को जानती हैं।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते॥

—ऋ० २.१२.१३

जिसके आगे द्युलोक तथा पृथिवीलोक झुकते हैं। जिसके बल से पर्वत भी काँपते हैं, जिसके वज्ररूपी दण्ड को कोई भी नहीं टाल सकता।

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि॥

—ऋ० १०.८९.६

प्रभु के क्रोध को द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष, सोम, पर्वत आदि सहन नहीं कर सकते। परेश्वर का प्रकोप बड़े-बड़े स्थिर पदार्थों को चूर-चूर कर देता है।

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥

—ऋ० १.५२.१४

उस प्रभु की बराबरी द्युलोक, पृथिवीलोक, नहीं कर सकते। समुद्र भी उसके अन्त को नहीं पा सकते। वह अकेला ही सम्पूर्ण संसार का बिना किसी की सहायता के निर्माण करता है।

इत्यादि सैकड़ों मन्त्रों में ब्रह्म तथा संसार की विलक्षणता का वर्णन आता है। ब्रह्म शुद्ध तथा संसार अशुद्ध है। ब्रह्म चेतन तथा संसार जड़ है। ब्रह्म आनन्दस्वरूप तथा संसार दु:खमय है। ब्रह्म अपरिणामी तथा संसार परिवर्तनशील है। ब्रह्म स्वरूप से नित्य और संसार परिणामी नित्य है। ब्रह्म स्वतन्त्र और कार्यजगत् पराधीन है। ब्रह्म सर्वदेशी और संसार एकदेशी है। प्रभु अकार्य और संसार कार्य है। इन विलक्षणताओं के होते हुए वेदान्तियों का ही साहस है जो संसार तथा ब्रह्म को एक मानते हैं, और ब्रह्म को संसार का उपादानकारण बतलाते हैं।

शङ्का—वैशेषिककार यह मानता है कि [illegible] होता है वही कार्य में होता है, परन्तु यह बात उनके अपने ही सिद्धान्त के प्रतिकूल है। परमाणु का परिमाण अणु है, किन्तु उससे दीर्घ, महत् आदि परिमाण उत्पन्न होते हैं, यदि कारणगुणपूर्वक कार्य के गुण होते हैं तब अणु ही उत्पन्न होना चाहिए।

समाधान—वैशेषिक में यह लिखा है कि गुण गुणों का आरम्भ करते हैं, इस सिद्धान्त के अनुसार जो परमाणुगत अणुपरिमाण है उससे दीर्घादि परिमाणों की उत्पत्ति होती है। परिमाणत्वेन सब परिमाणों का समानजातीयत्व सिद्ध है। दूसरी बात यह है कि कारणगत बहुत्व भी महत् परिमाण का उत्पादक है बहुत्त्व भी गुण होने से महत्त्व के साथ समानता रखता है, अतः कारणगुणपूर्वक कार्य का गुण होता है, इस सिद्धान्त को कोई भी क्षति नहीं है, यह बात बुद्धि से भी सिद्ध है कि जब एक अणु आकाश को घेरता है, तब दो अणु मिलकर अधिक आकाश को घेरेंगे, इस प्रकार अनेक अणुओं के मिलने से महत्परिमाण उत्पन्न हो जाएगा।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने लिखा है कि जैसे चेतन शरीर से केश, नख तथा गोबर से बिच्छु उत्पन्न होते हैं, वैसे ही चेतन ब्रह्म से जड़ संसार की उत्पत्ति होती है।

समाधान—यह शङ्कराचार्य का दृष्टान्त विषम है, क्योंकि जड़ शरीर से जड़ केश, नख तथा गोबर से बिच्छु के जड़ शरीर की उत्पत्ति होती है, चेतन की नहीं।

शङ्का—जो संसार को ब्रह्म से विलक्षण बतलाते हैं, क्या वे ब्रह्म के सम्पूर्ण गुणों से संसार को विलक्षण कहते हैं, या किसी एक गुण को लेकर। यदि कहें कि उपादानकारण के सम्पूर्ण गुण कार्य में आने चाहिएँ तब संसार का ही उच्छेद हो जाएगा, क्योंकि यदि कार्यकारण की कुछ भी विलक्षणता न हो तब कार्यकारणभाव ही नहीं हो सकता। यदि किसी एक गुण से प्रयोजन हो तो सत्तारूपी समानता ब्रह्म तथा आकाशादि पदार्थों में पाई जाती है। ब्रह्म भी सत्तावाला है, तथा आकाश भी, सत्ता का होना दोनों की समानता है।

समाधान—यह भी शङ्करस्वामी का दृष्टान्त ठीक नहीं, क्योंकि एक वे धर्म होते हैं, जिनमें अनेक पदार्थों की समानता होती है तथा एक वे धर्म होते हैं, जिनमें पदार्थों का परस्पर भेद होता है, इन्हीं धर्मों को पदार्थों का लक्षण कहते हैं, सत्ता जड़ तथा चेतन सब

वस्तुओं में समानता से पाई जाती है, तथा चेतन और आनन्दगुण ब्रह्म को जड़ वस्तुओं से अलग करनेवाले हैं। यदि संसार ब्रह्म का कार्य होता तब ये दोनों गुण संसार में होने चाहिएँ थे, किन्तु ये दोनों ही संसार में नहीं हैं, अतः संसार का उपादानकारण ब्रह्म नहीं, किन्तु जड़ प्रकृति है।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ —वे० २.१.१४

आरम्भण आदि शब्दों से पाया जाता है कि संसार की तथा इसके कारण प्रकृति की अनन्यता है, अर्थात् जो गुण प्रकृति में हैं, वे ही संसार में है, यदि ब्रह्म संसार का उपादानकारण होता तो उसमें तथा संसार में एकता होती, किन्तु ऐसा नहीं है। इससे सिद्ध है कि ब्रह्म संसार का उपादानकारण नहीं है।

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन् महिना विश्वचक्षाः ॥
—य० १७.१८

उव्वटभाष्यम्

अधितिष्ठन्त्यस्मिन्नित्यधिष्ठानमधिकरणं विश्वकर्मणा द्यावा-पृथिव्यौ सृष्टे। अधिष्ठानरहिता इदानीं जनाः कर्तारो न किञ्चिदपि कुर्वाणा दृश्यन्ते। आरभ्यते अस्मादित्यारम्भणं प्रकृतिद्रव्यं मृद्द्रव्यमिव घटादीनां कथमासीत्। कथासीत् कथं भूता च तत्र क्रिया आसीत्। चक्रसूत्रसलिलादिभिर्हि घटादयो निष्पाद्यन्ते ॥

अर्थ—जिसमें सब ठहरते हैं वह अधिष्ठान=अधिकरण है, विश्वकर्मा भगवान् ने बिना अधिष्ठान के संसार की रचना की है, वह स्वयं सबका अधिष्ठान है, इस समय बिना अधिष्ठान के कोई भी कार्य की रचना नहीं कर सकता। आरम्भण नाम प्रकृत्ति का है, क्योंकि प्रकृति ही कार्य का रूप धारण करती है जैसे घड़े का उपादानकारण मिट्टी तथा निमित्तकारण कुम्भकार तथा साधारण कारण चक्र आदि होते हैं, वैसे ही संसार का निमित्तकारण परमात्मा तथा उपादानकारण प्रकृति है। यहाँ उव्वट ने भी परमात्मा से भिन्न प्रकृति की सत्ता स्पष्ट स्वीकार की है।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने इस सूत्र से यह सिद्ध किया है कि ब्रह्म तथा संसार अनन्य, अर्थात् कार्यकारण भाव से एक ही हैं, क्योंकि श्रुतियों से यह सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण ब्रह्म है।

समाधान—स्वामी शङ्कर का कोई भी ठिकाना नहीं, सैकड़ों

सूत्रों में सिद्ध किया है कि प्रकृति संसार का निमित्तकारण नहीं, क्योंकि वह जड़ है। यहाँ लिखते हैं कि जैसे कार्य या कारण में भेद नहीं होता, एक ही होता है, वैसे ही संसार ब्रह्म का कार्य होने से एक ही है। जब संसार तथा ब्रह्म एक ही हैं तब प्रकृति के निषेध की क्या आवश्यकता है, वह भी तो ब्रह्म ही है तथा संसार को स्वप्नवत् मिथ्या सिद्ध करने के क्या अर्थ हैं, वह भी तो ब्रह्मस्वरूप ही है। कहीं संसार को ब्रह्म का परिणाम माना है। सत्य है, जिसका आधार ही अविद्या पर निर्भर हो उसमें एक स्थिर सिद्धान्त कैसे हो सकता है, जब संसार तथा ब्रह्म एक ही हैं तब संसार में ब्रह्म के अदृश्यादि धर्म, ब्रह्म में संसार के अशुद्धि आदि धर्मों को कौन टाल सकता है? अतः शङ्कर मत अत्यन्त त्याज्य है।

कृतस्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ —वे० २.१.२६

यदि ब्रह्म को संसार का उपादानकारण माने तो ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा मानने से सम्पूर्ण ब्रह्म ही संसाररूप होने से दूषित या विकारमय हो जाएगा। यदि कहो कि ब्रह्म का एक देश संसार का रूप धारण करता है, तब भी ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से निरवयव ब्रह्म को सावयव मानना पड़ेगा तथा सावयव मानने से वह विकारी या अनित्य ठहरेगा और ब्रह्म के अनेक परमाणु मानने पड़ेंगे। तब यह प्रश्न होगा कि अनेक परमाणुओं के समूह का नाम ब्रह्म है या उनसे मिलकर एक आकृति बनती है उसका नाम ईश्वर है या प्रत्येक परमाणु का नाम ब्रह्म है। यदि कहो कि समूह का नाम ब्रह्म है तो उसको एक कहना ठीक नहीं। यदि उनसे निर्मित आकृति का नाम ब्रह्म है तो उसका निर्माण किसने किया? यदि प्रत्येक परमाणु का नाम ब्रह्म है, तब अनन्त ब्रह्म हो जाएँगे, जैसे-जैसे विचारा जाता है वैसे-वैसे युक्ति के आगे किसी प्रकार भी यह ब्रह्मोपादान कारणवाद नहीं ठहर सकता।

असद् व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥

—वे० २.१.१७

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ —वे० २.१.१८

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में स्पष्ट यह लिखा है कि संसार की उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति, परमाणु, आकाश, मृत्यु, अमृत, रात्रि, दिन आदि कोई भी पदार्थ विद्यमान नहीं था, पुनः प्रकृति की सत्ता कैसे हो सकती है, यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं, क्योंकि सूक्त के सब मन्त्र तथा सब शब्दों के विचार से परमात्मा, प्रकृति, जीवात्मा तथा

उनके शुभाशुभ कर्म सब सिद्ध होते हैं। नीचे सम्पूर्ण सूक्त का विचार किया जाता है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥

—ऋ० १०.१२९.१

कार्यसृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व असत्=अभाव नहीं था तथा सत् व्यक्त कार्य भी नहीं था, रज तथा व्योम नहीं था, किन्तु जैसे आकाश में कोहरा फैला होता है वैसे ही सब स्थान पर परमाणु फैले हुए थे।

कत्तिपय जन इस मन्त्र से यह सिद्ध किया करते हैं कि सृष्टि के पूर्व प्रकृति आदि कोई पदार्थ नहीं था। उनकी यह कल्पना अशुद्ध है। इसके हेतु नीचे दिये जाते हैं—

१. इस सूक्त का देवता भाववृत्त है, अभाववृत्त नहीं। सायण ने देवता के विषय में लिखा है—

वियदादिभावानां सृष्टिस्थितिप्रलयादीनामत्र प्रतिपाद्यत्वात् तेषां कर्त्ता परमात्मा देवता।

आकाश आदि भावपदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का प्रतिपादक होने से उनका कर्त्ता परमात्मा इस सूक्त का देवता=विषय है। जब सूक्त का विषय भाव है तब उससे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि सृष्टि से पूर्व प्रकृति का अभाव था?

२. जब यह कह दिया कि असत् नहीं था तब यह सुतरां सिद्ध हो गया कि सत् था, पुनः यह कहने के क्या अर्थ हैं कि सत् भी नहीं था। या सत् था, या असत्। इसके यह अर्थ हैं कि कारणरूप से अव्यक्त संसार था तथा कर्मरूप से व्यक्त संसार नहीं था।

हेतुमदनित्यमव्यापिसक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ —सां० का० १०

जो कार्य अनित्य, अव्यापक, सक्रिय, अनेक द्रव्यों के आश्रित, सावयव, परतन्त्र है वह व्यक्त तथा इसके विपरीत जिसका कोई कारण न हो, जो नित्य हो, व्यापी, निष्क्रिय, निरवयव आदि गुणों से युक्त हो, वह अव्यक्त है।

३. मन्त्र में स्वयं यह कहा है कि कोहरे की तरह एक पदार्थ सर्वत्र फैला हुआ था, पुनः यह नहीं हो सकता कि असत् था।

४. तद्व्यवहारस्यावर्त्तमानाभावात्॥

स्वामी श्री दयानन्दजी महाराज ने लिखा है कि निषेध का भाव

यह है कि उनका व्यवहार नहीं था, जैसे कोई कहे कि देवदत्त यहाँ नहीं है, इसके अर्थ यह नहीं कि देवदत्त है ही नहीं, इसी प्रकार यहाँ कहा है कि उस समय व्यवहार नहीं था।

५. अगले मन्त्रों में स्वयं प्रकृति, आकाश आदि की सत्ता का प्रतिपादन किया है, अतः इस सूक्त से अभाव सिद्ध नहीं होता, किन्तु भाव ही सिद्ध होता है।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास॥ २॥

उस समय मृत्यु नहीं थी, न मरना भी नहीं था, रात तथा दिन व्यक्त नहीं थे, बिना वायु के जीवित प्रकृतिसहित ब्रह्म था, उससे बड़ा कुछ नहीं था।

१. **शङ्का**—इसमें स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्म के सिवाय और कोई पदार्थ नहीं था। इससे शङ्कर का अद्वैतवाद सिद्ध होता है।

समाधान—**'परोदिवा पर एना पृथिव्या,'** इत्यादि मन्त्रों में 'पर' का अर्थ उत्कृष्ट स्वयं वेद करता है। यहाँ भी यही अर्थ है कि परमात्मा से बड़ा दूसरा कोई पदार्थ नहीं था। इसका यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ नहीं था।

२. स्वधा का अर्थ सायण करते हैं—

स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया।

जो परमात्मा के आधार से रहती है, वह माया=प्रकृति स्वधा है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्॥ —श्वे० ४.१०

माया प्रकृति है। इससे सिद्ध है कि सृष्टि से पूर्व प्रकृति—संसार का उपादानकारण विद्यमान था।

३. रात्रि तथा दिन प्रकेत=व्यक्त नहीं थे। यहाँ भी रात का अभाव नहीं बतलाया, किन्तु कारणरूप से भाव माना है।

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ ३॥

सायण कहते हैं—

अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूतभौतिकं सर्वं जगत्तमसा गूढम्। यथा नैशं तमः सर्वपदार्थजातमावृणोति तद्वत्। आत्मतत्त्वस्यावरकत्वान्मायापरसंज्ञमभावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते। निगूढं संवृतं तेन तमसा कारणभूतेन आच्छादितं भवति॥

प्रलय अवस्था में भूत=भौतिक सम्पूर्ण जगत् तम अर्थात् माया=

प्रकृति से आच्छादित था। जैसे रात्रि का अन्धकार सब पदार्थों को ढक लेता है, वैसे ही सब पदार्थ माया से ढके हुए थे।

यहाँ सायण ने भी स्पष्ट रूप से कारणरूप से सब पदार्थों का अस्तित्व माना है।

१. अप्रकेत सलिल का भी यही अर्थ है कि अव्यक्त रूप से परमाणु सर्वत्र फैले हुए थे।

२. तुच्छ्येन—परमाणुओं से अभ्र-आकाश सर्वत्र ढका हुआ था। तम से तम ढका हुआ था, यह उसकी व्याख्या है। इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में परमाणु तथा आकाश की सत्ता को माना है—

इस मन्त्र पर मनुजी कहते हैं—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ —मनु० १.५

यह संसार अन्धकार से ढका हुआ था। अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, चारों ओर से सोये हुए की भाँति था।

सोये हुए मनुष्य में मन, इन्द्रिय, प्राण, आत्मा आदि सब पदार्थ विद्यमान होते हैं, केवल उनका कार्य नहीं होता, इसी प्रकार यह संसार भी अपने प्रकृतिरूपी कारण में लीन था। यह अव्यक्त का लक्षण है। स्वामीजी ने ठीक कहा है कि उसका व्यवहार नहीं था।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥ ४॥

सायणभाष्य का सारांश

अस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः सिसृक्षा आसीत्, ईश्वरस्य सिसृक्षा किं हेतुका मनसो रेतः बीजभूतं अतीते कल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यात्मकं कर्म सर्वस्य जगतो बन्धुं बन्धकं हेतुभूतं कल्पान्तरे प्राणी अनुष्ठितं कर्मसमूहम्॥

कार्य-संसार के उत्पन्न होने से प्रथम परमात्मा के अन्दर कार्य-संसार के रचने की इच्छा थी, क्योंकि प्रथम कल्प में जो जीवों के कर्म अवशिष्ट रह गये थे उनका परमेश्वर ने अपनी न्यायव्यवस्था के अनुसार फल देना था।

इस मन्त्र में स्पष्ट कर दिया गया है कि संसार को रचने से पूर्व जीवों के कर्म भी विद्यमान थे।

रेतोधा आसन् महिमान आसन्,
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥ ५॥

इसपर सायणभाष्य

रेतोधा रेतसो बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्तारो भोक्तारश्च जीवा आसन् अन्ये भावा वियदादयो भोग्या आसन्॥

बीजभूत कर्म के धारण तथा करनेवाले या भोक्ता जीव भी विद्यमान थे तथा आकाशादि भोग्य के साधन भावरूप पदार्थ भी थे।

इस मन्त्र में यह बात सुन्दर रीत्या सायण ने भी स्वीकार की है कि प्रलय अवस्था में जीव तथा आकाशादि पदार्थ विद्यमान थे।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥६॥

इसपर सायणभाष्य

कुतः कस्मात् उपादानकारणात् कुतः कस्माच्च कारणात्॥

यह संसार किस उपादानकारण या किस निमित्तकारण से उत्पन्न हुआ है, इसको कौन जानता है, क्योंकि इन्द्रियाँ पश्चात् कार्यजगत् में उत्पन्न हुई हैं।

यहाँ मन्त्र में उपादानकारण तथा निमित्तकारण की सत्ता को स्वीकार करते हुए संसार की अव्यक्त सत्ता का वर्ण किया है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥७॥

यह संसार जिस उपादानकारण से उत्पन्न हुआ है, उसको इसका अध्यक्ष परमेश्वर जानता है, उसी ने वेद के द्वारा उस संसार की अव्यक्तावस्था का उपदेश जीवों को दिया है।

इसी प्रकार इस संसार के बनाने की सामग्री प्रकृति, ईश्वर, जीव तथा उनके कर्म आदि सब आवश्यक बातों का वर्णन नासदीय सूक्त में आ गया है, इसलिए व्यासजी महाराज अपने वेदान्तसूत्रों के द्वारा यह बात बतलाते हैं कि सूक्त के सम्पूर्ण मनन से संसार का अभाव सिद्ध नहीं होता, किन्तु भाव ही सिद्ध होता है।

पटवच्च॥

—वे० २.१.१९

जैसे खद्दर का थान लेकर यदि कोई प्रश्न करे कि बतलाओं इसमें धोती, कुरता, पाजामा, तौलिया आदि वस्तुएँ हैं या नहीं। यदि उत्तरदाता कहे 'हाँ' तब थान से पाजामे आदि का कार्य नहीं कर सकते। यदि निषेध करते तब पुनः बन कैसे जाते हैं, अतः यही यथार्थ उत्तर है कि धोती आदि हैं भी तथा नहीं भी। कार्यरूप से नहीं

हैं, कारणरूप से हैं, इसी प्रकार की योजना नासदीय सूक्त में है।

इस प्रकार विस्तार से महर्षि व्यास ने वेदान्तसूत्रों में संसार के उपादानकारण=प्रकृति का वर्णन किया है।

सांख्य

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥ —सां० १.६१

सत्त्व, रज तथा तम की साम्यावस्था=समान स्थिति का नाम प्रकृति है उससे महान्, महान् से अहङ्कार, अहङ्कार से पाँच तन्मात्रा, आन्तरिक तथा बाह्य इन्द्रियाँ, तन्मात्राओं से स्थूल भूत और पुरुष। यह २५ वस्तुओं का गण है।

यहाँ सांख्यशास्त्रकार ने प्रकृति की सत्ता स्वीकार की है।

योग

प्रकाशशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम ॥

—यो० २.१८

व्यासभाष्य

प्रकाशशीलं सत्त्वं, क्रियाशीलं रजः, स्थितिशीलं तमः। एते गुणाः परिणामिनः संयोगविभागधर्माणः सन्निधिमात्रोपकारिणः अयस्कान्तमणिकल्पाः प्रधानशब्दवाच्या भवन्ति एतद् दृश्यम् ॥

इन्हीं सत्त्व, रज, तम, परिणामी, संयोग-विभाग धर्मवाले गुणों को प्रधान=प्रकृति कहते हैं।

इस सूत्र में महाराज पतञ्जलिजी ने प्रकृति की सत्ता मानी है।

न्याय

परं वा त्रुटेः ॥ —न्याय० ४.२.१७

इस सूत्र में गौतमजी ने प्रकृति को नित्य स्वीकार किया है।

वैशेषिक

सदकारणवन्नित्यम् ॥ —वै० ४.१.१

जो वस्तु सत्तावाली तथा किसी से जन्य न हो, वह नित्य है।

तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥ —वै० ४.१.२

प्रकृति के नित्य होने में उसका कार्य प्रमाण है, अर्थात् कार्यजगत् को देखकर उससे कारण प्रकृति का अनुमान होता है।

नित्यं परिमण्डलम्॥

परमाणुपरिमाण नित्य है, क्योंकि उसके आश्रयभूत परमाणु नित्य हैं।

इस प्रकार महर्षि कणाद ने परमाणुओं को नित्य माना है। उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि इस जगत् के सूक्ष्मकारण प्रकृति को सब दर्शनकार मानते हैं, इसमें उनका कोई विरोध नहीं है।

शङ्का—प्रकृति तथा परमाणुओं को एक कहना ठीक नहीं। परमाणुओं का लक्षण अन्य है, प्रकृति का दूसरा, यही दर्शनों में मतभेद है, सांख्य प्रकृति को संसार का उपादानकारण मानता है, तथा न्याय या वैशेषिक परमाणुओं को जगत् का कारण मानते हैं।

समाधान—यह भी नवीन दार्शनिकों की लीला है कि प्रकृति भिन्न है तथा परमाणु भिन्न है। यदि विचार से देखा जाए तब दोनों एक ही हैं। परमाणुओं का लक्षण यह है—

सावयवानां द्रव्याणां विभज्यमानानां यतः परो विभागो नास्ति ते परमाणवः।

सावयव द्रव्यों का विभाग करते-करते जब ऐसी अवस्था आ जाए कि जिसके आगे विभाग न हो सके, उसको परमाणु कहते हैं। जब तक पदार्थों में अवयवावयवी भाव रहेगा, तब तक उनका विभाग होता जाएगा, जब यह भाव निवृत्त हो जाएगा, केवल अवयव अवशिष्ट रहेंगे तब उनके खण्ड नहीं होंगे। इसी अवस्था को परमाणु कहते हैं, जब तक पदार्थों में अवयवावयवीभाव विद्यमान है, तब तक इनकी साम्यावस्था नहीं हो सकती, क्योंकि किसी में अधिक अवयव हैं, किसी में न्यून। जब यह न्यूनाधिकभाव दूर होगा तभी परमाणुओं की साम्यावस्था होगी, इसी समानावस्था का नाम सांख्य में प्रकृति आता है, तथा न्याय-वैशेषिक में इनको परमाणु कहते हैं, परमाणु का अर्थ भी साम्यावस्था है, क्योंकि जब तक कार्यजगत् अपनी वास्तविक अवस्था में न जाए तब तक उसमें विषमता बनी रहेगी। इसी बात को महर्षि गौतम कहते हैं—

अवयवावयवीभाव आप्रलयात्। —न्याय०

प्रलय तक पदार्थों में अवयवावयवीभाव रहेगा।

शङ्का—प्रकृति एक पदार्थ है तथा परमाणु अनेक, पुनः प्रकृति और परमाणु एक कैसे हो सकते हैं?

समाधान—प्रकृति को एक पदार्थ कहना मूर्खता है, क्योंकि

प्रकृति नाम भी तो सत्, रज, तम अनेक पदार्थों के समान सम्पात का है।

शङ्का—सत, रज, तम तीन है, वैशेषिक में पाँच तत्त्व माने हैं, पुनः प्रकृति परमाणुओं की एकता कैसे होगी?

समाधान—सत्त्व का अर्थ है प्रकाश। प्रकाश शब्द से अग्नि तथा आकाश का ग्रहण है, क्योंकि आकाश प्रकाश को पहुँचानेवाला है। रज से वायु का ग्रहण है, क्योंकि वह विशेष क्रियाशील है। तम से पृथिवी या जल का ग्रहण है, क्योंकि उनमें आवरणशक्ति अधिक है तथा तेज के आवरण का नाम ही तम है। इस प्रकार गुण या भूत एक ही हैं।

शङ्का—वैशेषिक में गुण भिन्न माने हैं, द्रव्य भिन्न, पुनः सत्त्वादि गुण द्रव्य कैसे हो जाएँगे?

समाधान—शास्त्रों की अपनी कतिपय परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। यथा व्याकरण में 'अदेङ गुणः' यहाँ 'अ', 'ए', 'ओ' अक्षरों की गुण संज्ञा है। वैशेषिक में बुद्धि आदि को गुण कहते हैं, वैसे सांख्य में सत्त्वादि द्रव्य को गुण कहते हैं।

सत्त्व, रज, तम वैशेषिक में बतलाये गुण नहीं, किन्तु द्रव्य हैं, क्योंकि वैशेषिक का सिद्धान्त है—

'गुणो गुणानङ्गीकारात्' गुणों में गुण नहीं होते, किन्तु सांख्यवाले मानते हैं—

सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः गुरुवरणकमेव तमः ॥

सत्त्व में लघुता तथा प्रकाश है। रज में उद्योतक या चलने की शक्ति है। तम में भार या ढकने की शक्ति है। इस प्रकार सत्त्वादि में गुण मानने से यह सिद्ध है कि ये द्रव्य हैं, यही बात विज्ञानभिक्षु ने सांख्य का भाष्य करते हुए लिखी है—**'सत्त्वादीनि द्रव्याणि न तु वैशेषिका गुणाः**। सत्त्वादि द्रव्य हैं, वैशेषिक प्रतिपादित गुण नहीं।

शङ्का—यदि ये गुण नहीं तब इनको गुण क्यों कहा जाता है?

समाधान—गुण नाम रस्सी का भी है। जैसे रस्सी बाँधने का कार्य करती है वैसे ही सत्त्वादि पुरुष को बाँधते हैं, अतः इनको गुण कहते हैं।

शङ्का—क्या कहीं योग या सांख्य में परमाणुओं की सत्ता को स्वीकार किया है?

समाधान—प्रथम बात तो यह है कि सांख्य तथा योग में जिस को प्रकृति के नाम से कहते हैं वही परमाणु हैं, दूसरे योग में लिखा है—

परमाणुपरममहत्त्वान्तोस्य वशीकारः ॥ —योग० १.४०

परमाणु तथा परममहत् तक योगी का वशीकार है।

परममहत् परिमाण भी नित्य होता है तथा परमाणु भी नित्य होता है। पतञ्जलि महाराज उससे आगे भौतिक सत्ता नहीं मानते। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वे परमाणु को नित्य मानते हैं।

शङ्का—**नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ॥** —सां० ५.८७

अणु नित्य नहीं, क्योंकि श्रुति में उसको कार्य बतलाया है। इससे सिद्ध है कि सांख्य परमाणु को अनित्य मानता है।

समाधान—सांख्य ने अणु को अनित्य माना है, किन्तु परमाणु को अनित्य कहाँ माना है? वैशेषिक तो परमाणु को नित्य मानता है। ६० परमाणुओं का एक अणु होता है।

शङ्का—परमाणुओं की सत्ता तथा उनकी नित्यता में क्या प्रमाण है? जब तक प्रमाण न हो उनकी नित्यता या सत्यता स्वीकार नहीं कर सकते।

समाधान—प्रत्येक पदार्थ की बनावट या उसके टुकड़े करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पदार्थ अनेक अवयवों से बना हुआ है, किसी एकरस, एक अवयव से नहीं। उदाहरण के लिए यदि एक तिल के दाने को लेकर उसके टुकड़े किये जाए तो वह कई भागों में विभक्त हो जाएगा। अन्त में एक ऐसी अवस्था आएगी जिसके आगे उसके टुकड़े नहीं हो सकते। उसी को परमाणु कहते हैं।

शङ्का—ऐसा क्यों न माना जाए कि टुकड़े होते-होते अन्त में उस वस्तु का अभाव हो जाएगा, जिसको परमाणु कहते हैं, वह भी शून्य में परिणत हो जाएगा।

समाधान—यह प्रत्यक्ष से सिद्ध है कि तिल के टुकड़े होते हैं तथा टुकड़ों का अर्थ यही है कि इसमें अवयव मिले हुए हैं। इन संयुक्त अवयवों का विभाजन ही टुकड़े हैं। यदि इस अवयवावयवी विभाग को अनन्त माना जाएगा तो ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा होने से एक तो अनवस्थादोष आएगा, दूसरी बात यह है कि यदि तिल के दाने के अवयवों में संख्या नियत न मानी जाए तो इसका अर्थ होगा कि उसमें अनन्त अवयव हैं, यदि अनन्त अवयव हैं तब पुनः तिल

तथा पर्वत के गुरुत्व, भार, परिमाण में कोई भेद नहीं होना चाहिए, क्योंकि तिल में भी अनन्त अवयव हैं, तथा पर्वत में भी अनन्त अवयव हैं। जब दोनों में अनन्त अवयव हैं, तब पर्वत इतना भारी या बड़ा क्यों है तथा तिल इतना छोटा या हल्का क्यों है, क्योंकि दोनों ही अनन्त अवयवों से बने हुए हैं, इसलिए यह मानना पड़ेगा कि तिल या पर्वत के परमाणुओं की संख्या नियत है, बस इसी संख्यायुक्त द्रव्यों को परमाणु कहते हैं। वे निरवयव या नित्य हैं।

२. संसार में यथार्थ में दो ही परिमाण हैं, एक अणु, दूसरा महत्=बड़ा, इन दोनों में ही तारतम्य है।

तिल से चना बड़ा, चने से मनुष्य बड़ा है, मनुष्य से हाथी बड़ा है, हाथी से पर्वत, पर्वत से पृथिवी, पृथिवी से सूर्य। इस प्रकार यह महत् परिमाण का क्रम परमात्मा में जाकर समाप्त हो जाता है। परमात्मा में परम महत् परिमाण है, उससे बड़ा संसार में कोई भी पदार्थ नहीं है। वह परममहत् परिमाण नित्य है। इसी प्रकार अणु छोटे का क्रम चलता है। यह क्रम भी परमाणु में जाकर समाप्त हो जाता है जैसे परमात्मा महत् परिमाण नित्य है वैसे ही परम अणु परिमाण भी नित्य है, इससे भी सिद्ध है कि परमाणु नित्य हैं।

नाशः कारणलयः।

३. किसी वस्तु का अपने कारण में लीन हो जाना ही नाश है। अभाव का नाम नाश नहीं। किसी वस्तु को लेकर उसके टुकड़े करने से उसके अवययों की संख्या उत्तरोत्तर अधिक होती है, न्यून नहीं, अतः परमाणु एक भावपदार्थ है जो भावपदार्थ होता है उसका सर्वथा अभाव नहीं हो सकता।

४. किसी वस्तु का नाश कारण के विभाग से या कारण के अभाव से हो सकता है, तीसरी कोई गति नहीं है। कारणविभाग से परमाणुओं का नाश नहीं हो सकता, क्योंकि उनका कारण है ही नहीं, अभाव से भी नाश नहीं हो सकता, क्योंकि सत् वस्तु का अभाव नहीं होता, यदि कहो कि घी पिघलने की तरह नाश हो जाएगा। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि घी का पिघलना भी कारणद्रव्यों का विभाग ही है।

५. नाश उसी वस्तु का होता है जो किसी कारण से बनी हो जब परमाणु किसी से बने नहीं तब उनका नाश कैसे हो सकता है ? यदि कहो कि परमाणु का भी कारण है तब ठीक नहीं, क्योंकि परमाणु है

ही वह जिसका कोई कारण नहीं होता।

६. परमाणु अनित्य है, इस शब्द से भी सिद्ध है कि परमाणु नित्य है, क्योंकि यदि नित्य कोई वस्तु नहीं है तब उसका निषेध कैसा? इससे भी सिद्ध है कि परमाणु नित्य है।

शङ्का—सृष्टि की उत्पत्ति के समय एक परमाणु का संयोग दूसरे परमाणु के साथ सर्वात्मना होता है, या एकदेश से? यदि कहो सर्वात्मना होता है तब सब संसार परमाणुमात्र हो जाएगा। यदि कहो एकदेश से तब परमाणुओं के देश होने से वे सावयव सिद्ध हो जाएँगे। जो वस्तु सावयव होती है वह अनित्य होती है।

समाधान—१. परमाणु का संयोग न सर्वात्मना होता है न एकदेश से, किन्तु आत्मना होता है। परमाणु आकाश को घेरता है जो वस्तु आकाश को घेरती है, जब वे अनेक मिलेंगी तब अधिक आकाश के घेरने से पृथिवी आदि की उत्पत्ति हो जाएगी।

२. परमाणुओं का परस्पर संयोग होता है। यह कोई नियम नहीं है कि जिन वस्तुओं का परस्पर संयोग होवे वे अनित्य हों। यदि ऐसा माना जाए, तब परमात्मा भी अनित्य हो जाएगा, क्योंकि उसका सब वस्तुओं के साथ सम्बन्ध है।

३. देश के अर्थ सत्ता के हैं या सावयव के? यदि कहो कि सत्ता के, तब परमाणु की भी सत्ता है, जैसे परमात्मा की सत्ता होने पर वह नित्य है, वैसे ही परमाणु भी स्वरूप से सत्तावान् होने पर भी नित्य है। यदि देश के अर्थ सावयव के है तब ठीक नहीं, क्योंकि परमाणु का अर्थ ही निरवयव है, सावयव नहीं।

शङ्का—परमाणु प्रवृत्तिस्वभाववाले हैं, या निवृत्तिस्वभाववाले या दोनों स्वभाववाले या दोनों स्वभावों से रहित हैं? यदि प्रवृत्तिवाले हैं, तब प्रलय नहीं होगी। यदि दोनों स्वभाववाले हैं तब विरोध होने से रचना नहीं होगी, यदि उभय स्वभावरहित हैं तब भी रचना नहीं होगी।

समाधान—यह शङ्का उन नास्तिकों के विषय में हो सकती है जो जड़ कारणवादी हैं, परमात्मा की सत्ता को नहीं मानते। परमाणुवादी यह नहीं मानेत कि सृष्टि की रचना परमाणु बिना किसी की सहायता के स्वयं करते हैं, किन्तु उनका सिद्धान्त है कि परमात्मा परमाणुओं की सहायता से संसार की रचना करता है, अतः यह शङ्का अनुचित है।

शङ्का—जितने रूपादिवाले पदार्थ हैं वे अनित्य है, इसी प्रकार परमाणु भी रूपादिवाले हैं, अतः वे भी अनित्य हैं।

समाधान—कुछ धर्मों के मिलने से दो वस्तुएँ एक नहीं हो सकतीं। पशुओं में भी नेत्रादि इन्द्रियाँ हैं तथा मनुष्यों में भी। इसका यह अर्थ नहीं है कि पशु या मनुष्य एक ही हैं। ऐसे ही कार्यजगत् के या कारणजगत् के कुछ धर्म मिलने से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि कार्य की भाँति परमाणु भी अनित्य हैं। कार्य इसलिए अनित्य नहीं कि वे रूपादिवाले हैं, किन्तु इसलिए अनित्य हैं कि वे कार्य हैं।

शङ्का—परमाणु के साथ छह दिशाओं का सम्बन्ध होने से परमाणु के छह देश सिद्ध हो जाएँगे, तथा प्रदेश के सिद्ध होने से परमाणु अनित्य सिद्ध हो जाएगा।

समाधान—किसी के साथ सम्बन्धमात्र से किसी वस्तु के प्रदेश सिद्ध नहीं हो सकते। परमात्मा का दिशादि सब वस्तुओं के साथ सम्बन्ध है, क्या इसके यह अर्थ हैं कि परमात्मा अनित्य है। शङ्कर स्वामी भी अन्तःकरण के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध मानता है, तथा घटाकाश की भाँति घिरा हुआ मानता है, पुनः सम्बन्धमात्र से या आवृत होने से परमात्मा के भी प्रदेश मानने पड़ेंगे, अतः प्रदेश या नाश उस वस्तु का होगा, जो किसी कारण से बनी होगी जब परमाणु किसी कारण से नहीं बने तब उनका नाश या प्रदेश कैसा?

गुरुत्व, परिच्छिन्न आकारवाली होने से कोई वस्तु अनित्य नहीं होती, कार्य होने से वस्तु अनित्य होती है। इसी प्रकार जो यह कहते हैं कि ओर या दिशाओं से सम्बन्ध होने से परमाणु अनित्य हैं, यह ठीक नहीं। ओर से कोई वस्तु नाशवाली नहीं होती, किन्तु कार्य होने से होती है।

शङ्का—आकाश परमाणु के अन्दर है या नहीं? यदि अन्दर है, तब आकाश के होने से परमाणु अनित्य हो जाएगा, यदि नहीं है तब आकाश विभु नहीं होगा।

समाधान—आकाश उस वस्तु के अन्दर होगा जो कारण से बनी हो या जिसमें अनेक द्रव्य मिले हों। जब परमाणु कार्यद्रव्य है ही नहीं तब यह प्रश्न ही अशुद्ध है कि परमामु में आकाश है। आकाश का विभुत्व यही है कि उसका सब भूत द्रव्यों के साथ सम्बन्ध है।

शङ्का—परमाणु के अन्दर परमात्मा विद्यमान है या नहीं, यदि है तब परमाणु अनित्य हो जाएगा, यदि नहीं तब परमात्मा सर्वव्यापक

नहीं रहेगा।

समाधान—निराकार वस्तु के लिए आकाश या प्रदेश की आवश्यकता नहीं होती, जैसे काल, दिशा, परमात्मा, आकाश आदि सब वस्तुएँ एक स्थान में रहती है, जैसे एक मनुष्य के हृदय में सम्पूर्ण संसार के विचार या विद्या विद्यमान होती है। यदि विचार या विद्याएँ स्थान घेरती, तब कभी भी मनुष्य के हृदय में न समा सकतीं, इसी प्रकार परमात्मा भी अभौतिक वस्तु है, अतः परमाणु के अन्दर होते हुए भी उसे आकाश की आवश्यकता नहीं है।

शङ्का—विज्ञान पहले परमाणु को नित्य मानता था, किन्तु अब अनित्य मानता है, उसके आगे भी इलैक्ट्राञ्ज हैं।

समाधान—विज्ञान के वादों में परिवर्तन होता रहता है, आर्य सिद्धान्तों में नहीं, जिसको विज्ञान अन्त में मानेगा, वही परमाणु है, क्योंकि परमाणु के आगे कोई भी भौतिक वस्तु नहीं है। दूसरी बात यह है कि परमाणु अतीन्द्रिय है, उनका इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

शङ्का—स्वामी दयानन्दजी ने परमाणु को अनित्य माना है।

समाधान—यह विचार सर्वथा अशुद्ध है कि स्वामीजी ने परमाणु को अनित्य माना है, स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लिखा है कि परमाणु के टुकड़े नहीं होते।

भाष्य का एक प्रमाण नीचे दिया जाता है—

तथैव यस्मादव्यक्तात् परमाणुरूपात् कारणात् कार्यं जायते तदप्यनादि नित्यं च। —ऋग्वेद १.१६४.२०

जैसे परमात्मा और जीवात्मा नित्य हैं, वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणुरूप कारण से कार्यजगत् उत्पन्न होता है वह भी नित्य या अनादि है।

यहाँ स्वामीजी ने स्पष्ट ही प्रकृति=परमाणु को एक या अनादि नित्य माना है, इस प्रकार सैकड़ों स्थानों पर स्वामीजी ने परमाणुओं को नित्य माना है।

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत॥ —ऋ० १०.७२.६

इन्द्रियादि सब संसार प्रकृति में विद्यमान था। जब भगवान् ने प्रकृति में गति उत्पन्न की तब नृत्य करनेवाले की भाँति परमाणुओं में गति उत्पन्न हो गई।

इस मन्त्र में वेद ने परमाणु की सत्ता को स्पष्टरूप में स्वीकार किया है।

वेद

१. ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत्॥ —ऋ० १०.७२.२

परमात्मा ने लुहार की भाँति प्रकृति में हलचल उत्पन्न की, इस प्रकार अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त संसार उत्पन्न किया।

यहाँ वेद ने लुहार का उदाहरण देकर यह स्पष्ट कर दिया है, कि संसार में अनादि तीन कारण हैं।

२. सबसे सूक्ष्म टुकड़ा, अर्थात् जो काटा नहीं जा सकता उसका नाम परमाणु, ६० परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक, जो स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पाँच, द्व्यणुक की पृथिवी, अर्थात् तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु, और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं॥

—सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास

३. यद् द्रव्यमविभक्तं विभागानर्हं तस्य परमाणु संज्ञेति व्यवहारः। ते हि विभक्ता अतीन्द्रियाः सन्त आकाशे वर्तन्त एव॥ —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

जिस द्रव्य का विभाग नहीं होता वह परमाणु है,वह अतीन्द्रिय होता है। वे आकाश में रहते हैं।

४. उपादानकारण प्रकृति=परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। —सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास

मुक्ति तथा उसके साधन

मुक्ति क्या है? उसके साधन क्या हैं, इस विषय में भी नूतन दर्शन-सम्प्रदाय में बहुत मतभेद पाया जाता है। कोई कहता है कि दुःखों से छुटने को मुक्ति कहते हैं। दूसरा कहता है कि ज्ञान से अज्ञान के आवरण के हटने से अपने-आपको ब्रह्म मानना मुक्ति है। अपर कहता है—जीव का स्वरूप में स्थिर होना मुक्ति है। अन्य स्वर्ग में जाना ही मुक्ति मानते हैं। जैसे मुक्ति के विषय में मतभेद है वैसे ही उसके साधनों के विषय में भी मतभेद हैं। कोई ज्ञान से मुक्ति मानता है कोई कर्म से, अपर स्वरूपज्ञान से, इस प्रकार नूतन लोगों ने दर्शनों में बड़ा भारी भेद उपस्थित कर दिया है। मेरे विचार में मूल

दर्शनों में मुक्ति तथा उसके साधनों में कोई भी मतभेद नहीं है। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

न्याय

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥ —न्याय १.१.२२

दुःखों से अत्यन्त छूटकर परमानन्द को प्राप्त होना मुक्ति है। यहाँ गौतम ने दुःखों से छूटना मुक्ति माना है।

वेदान्त

ब्राह्मेन जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ —वे० ४.४.५

मुक्त जीव दुःखों से छूटकर ब्रह्म के आनन्द के साथ रहता है।

यहाँ इस बात को स्पष्ट किया है कि जीव मुक्ति में ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है।

सांख्य

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ —सां० १.१

तीन प्रकार के दुःखों से अत्यन्त छूट जाने को मुक्ति कहते हैं। यहाँ कपिल ने भी दुःखों से छूटना मुक्ति माना है।

योग

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं, स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ —यो० ४.३४

जब गुणों के द्वारा जीव को सांसारिक सुख-दुःख मिलना बन्द हो जाता है तथा जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो जाता है, उसे मुक्ति कहते हैं।

यहाँ योगकार ने भी दुःखाभाव तथा ब्रह्म-प्राप्ति को कैवल्य माना है।

वैशेषिक

आत्मगुणकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ॥ —वै० ६.२.६

परमात्मा के जो गुण हैं, अर्थात् दुःखों से पृथक् होकर आनन्द का भोगना, वही मोक्ष=मुक्ति है।

मुक्ति के साधन

जैसे दर्शनकारों का मुक्ति-विषय में परस्पर कोई विरोध नहीं है वैसे ही उसके साधनों में भी विरोध नहीं है। प्रमाण नीचे दिये जाते

हैं—

न्याय

अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशात्॥ —४.२.४१

अरण्य, गुहा, पुलिन आदि में मुक्ति के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।

तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः॥ —न्याय० ४.२.४५

मुक्ति के लिए यम-नियम के द्वारा आत्मसंस्कार उत्पन्न करना चाहिए तथा अन्य भी ब्रह्मचर्यादि उपायों का आवलम्बन करना चाहिए।

सांख्य

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः॥ —सां० ६.२९

ध्यान, धारण, अभ्यास, वैराग्य आदि से मन का निरोध करना चाहिए।

वैशेषिक

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदान-प्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय॥ —वै० ६.२

अभिषेचन, उपवास, ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, मन्त्रों का जप आदि धर्म मुक्ति के लिए होते हैं।

वेदान्त

शमदमाद्युपेतस्स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्य-मनुष्ठेयत्वात्॥ ३.४.२७

मुमुक्षु को चाहिए कि शम, दम आदि साधनों से मुक्ति प्राप्त करे क्योंकि वे मुक्ति के अङ्ग हैं, अतः उनका अवश्य अनुष्ठान करना चाहिए।

योग

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽ-ष्टावङ्गानि॥ —यो० २.२९

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये योग के आठ अङ्ग हैं।

इस प्रकार सब दर्शनकार मुक्ति के साधन समान ही मानते हैं, परस्पर कोई भी विरोध नहीं है।

शङ्का—वेदान्तदर्शन में यह लिखा है कि मुक्ति में जीव ब्रह्म ही हो जाता है, क्या यह सत्य है?

समाधान—वेदान्त में एक भी सूत्र ऐसा नहीं है, जिसमें यह लिखा हो कि जीव ब्रह्म हो जाता है, इसके विपरीत सूत्र आते हैं, जैसेकि अध्याय चार में लिखा है—

जगद् व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च ॥ —वे० ४.४.१७

मुक्त जीव में संसार की रचना, पालना तथा प्रलय का सामर्थ्य नहीं होता, क्योंकि यह सामर्थ्य परमात्मा ही में होता है, जीव में कदापि नहीं।

मुक्त जीव में केवल परमात्मा के साथ इतनी ही समानता होती है कि वह ईश्वर के आनन्द का उपभोगमात्र करता है।

इस सूत्र में महर्षि व्यास ने इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया है कि जीव मुक्ति में भी ईश्वर नहीं बन सकता।

संसार

यह कार्यजगत् क्या है? इसमें भी दार्शनिकों का मतभेद है, जो नवीनवेदान्तियों ने उत्पन्न किया है। उनका कथन है कि संसार स्वप्न के विषयों की भाँति मिथ्या है जैसे स्वप्न के विषय सत्य नहीं होते वैसे ही यह संसार भी नहीं है, मिथ्या प्रतीत हो रहा है। मेरे विचार में यह नवीनवेदान्तियों का असत्य विचार किसी भी दर्शन में नहीं पाया जाता। प्रमाण अधोलिखित हैं—

वेदान्त

नाभाव उपलब्धेः ॥ —वे० २.२.२८

बौद्ध मानते हैं।

यथा हि—स्वप्नमायामरीच्युदकगन्धर्वनगरादिप्रत्यया विनैव बाह्येनार्थेनग्राह्यग्राहकाकारा भवन्ति। एवं जागरितगोचरा अपि स्तम्भादिप्रत्ययाः।

जैसे स्वप्न, माया, मरीचि, उदक, मृगतृष्णा, गन्धर्वनगर, आदि ज्ञान विना अर्थ के होते हैं, इसी प्रकार जो संसार के पदार्थ हैं वे भी असत्य, भ्रममात्र हैं, उनकी कोई भी सत्ता नहीं है। इसपर शङ्कर लिखते हैं—

न खल्वभावो बाह्यस्यार्थस्याध्यवसातुं शक्यते। कस्मात् उपलब्धेः। उपलभ्यते हि प्रति प्रत्ययं बाह्योऽर्थः स्तम्भ कुड्यं घटः

पट इति। न चोपलभ्यमानस्यैवाभावो भवितुमर्हति। यथाहि कश्चिद्भुञ्जानो भुजिसाध्यायां तृप्तौ स्वयमनुभूयमानायामेवं ब्रूयान्नाहं भुञ्जे न वा तृप्यामीति। तद्वदिन्द्रियसन्निकर्षेण स्वयमुपलभमान एव बाह्यमर्थं नाहमुपलभे न च सोऽस्तीति ब्रुवन् कथमुपादेयवचनः स्यात्।

बाह्य पदार्थों का अभाव नहीं कर सकते, क्योंकि प्रत्येक ज्ञान के प्रति घट आदि सब पदार्थ विद्यमान है, जब प्रत्येक पदार्थ विद्यमान है तब यह कैसे कह सकते हैं कि ये वस्तुएँ नहीं हैं। जैसे कोई स्वादिष्ट पदार्थ को खाता हुआ उसके स्वाद का अनुभव करता हुआ यह कहे कि मैं खाता भी नहीं तथा उसकी तृप्ति को भी अनुभव नहीं करता, वैसे ही जिन पदार्थों का हम इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव कर रहें हैं, पुनः उनके विषय में यह कहनेवाला कि ये वस्तुएँ नहीं हैं, श्रद्धा का पात्र कैसे हो सकता है? इसपर बौद्ध कहता है कि मैं यह नहीं कहता कि पदार्थ नहीं है, किन्तु यह कहता हूँ कि ज्ञान के सिवाय नहीं है। इसपर शङ्कर कहते हैं—

बाढमेवं ब्रवीषि निरङ्कुशत्त्वात्ते तुण्डस्य नतु युक्त्युपेतं ब्रवीषि।

ठीक ऐसा कहता है, तेरे मुख पर कोई चपेटिका मारनेवाला नहीं है, अन्यथा तुमको पता लग जाए कि बाह्य अर्थ है या नहीं है।

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्॥ —२.२.२९

संसार स्वप्र की तरह असत्य नहीं है, क्योंकि स्वप्र तथा जागरित में बड़ा भेद है।

इसपर स्वामी शङ्कर ने कई युक्तियाँ दी हैं—प्रथम यह है कि स्वप्र के पदार्थों का जाग्रत् में बाध हो जाता है तथा जाग्रत् के पदार्थों का किसी भी अवस्था में बाध नहीं होता, अतः जाग्रत् के पदार्थ स्वप्रवत् असत्य नहीं।

दूसरी युक्ति यह है कि स्वप्न स्मृति है तथा जाग्रत् उपलब्धि है, पुत्र को स्मरण करता हूँ, देखता नहीं। इस प्रकार स्मरण तथा उपलब्धि में बड़ा भारी अन्तर है, अतः जाग्रत् के पदार्थ स्वप्रवत् असत्य नहीं।

तीसरी युक्ति यह है कि कुछ धर्मों के समान होने से सब पदार्थ एक नहीं हो जाते, जैसे अग्नि तथा जल द्रव्यत्वेन समान है, इसका यह अर्थ नहीं है कि आग तथा जल एक ही हैं, इसी प्रकार यदि स्वप्र या जाग्रत् के कुछ धर्म समान हैं तब इसके ये अर्थ नहीं हैं कि स्वप्र या जाग्रत् एक ही हैं।

जो जिसका स्वयं धर्म नहीं होता वह साधर्म्य से उसका धर्म नहीं हो सकता, इस प्रकार बड़े बल के साथ महर्षि व्यास ने इस बात का खण्डन किया है कि संसार स्वप्नवत् असत्य है। स्वामी शङ्कर से भी यहाँ कोई मार्ग नहीं बन पड़ा। उन्होंने भी सूत्रकार की हाँ-में-हाँ मिलाई है। वेदान्ती जिन स्वप्न या मृगतृष्णादि दृष्टान्तों को देते थकते नहीं, वे सब बौद्धों के दृष्टान्त हैं, तथा स्वामी शङ्कर ने यहाँ भली-भाँति उनके धुर्रे उड़ाये हैं। इस सूत्र पर रामानुज लिखते हैं—

ज्ञानमात्रमेव परमार्थ इति साधयन्तः सर्वलोकोपहासोपकरणं भवन्तीति। वेदवादछद्मप्रछन्नबौद्धनिराकरणे निपुणतरं प्रपञ्चितम्।

यहाँ जो लोग यह मानते हैं कि ज्ञान के सिवाय बाह्य पदार्थ नहीं है, वे सब लोगों के उपहास के पात्र हैं। इसी प्रकार मायावादी नवीनवेदान्ती जो अज्ञान के सिवाय बाह्य पदार्थों को स्वीकार नहीं करते वे भी छिपे हुए बौद्ध हैं, केवल उन्होंने वेद का बहाना बनाया हुआ है।

न्याय

पूर्वपक्ष उपस्थित करते हुए महर्षि गौतम लिखते हैं—

स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः ॥

—न्या० ४.२.३१

मायागन्धर्वनगरमृगतृष्णिकवद्वा ॥ —न्या० ४.२.३२

यह प्रमाण प्रमेय का व्यवहार स्वप्न, गन्धर्वनगर तथा मृगतृष्णावत् असत्य है। इसके उत्तर में लिखा है—

हेत्वभावादसिद्धिः ॥ —न्या० ४.२.३३

जब तक प्रमाणों से यह सिद्ध न किया जाए कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है तब तक केवल दृष्टान्त से यह बात सिद्ध नहीं हो सकती, इसलिए यह सिद्धान्त त्याज्य है कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है।

सांख्य

नासदुत्पादो नृशृङ्गवत् ॥ —सां० १.११४

मनुष्य के सींग की भाँति असत्य उत्पन्न नहीं होता।

यदि संसार असत्य होता तब मनुष्य सींग की तरह इसकी भी उत्पत्ति हो सकती। इससे सिद्ध है कि कार्यजगत् असत्य नहीं है।

इस प्रकार सब दर्शनकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि

संसार स्वप्रवत् मिथ्या नहीं है।

पुनर्जन्म

इस सिद्धान्त में भी सब दर्शनकार एकमत हैं कि धर्म के अनुसार जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

न्याय

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥ —न्याय० १.१.१९

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के साथ जीवात्मा के पुनः सम्बन्ध को पुनर्जन्म कहते हैं।

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धजातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः ॥

—न्याय० ३.१.१७

प्रथम जन्म की स्मृति के अनुसार बच्चे को हर्ष, भय, शोकादि होते हैं, इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि न्यायकर्त्ता गौतम पुनर्जन्म मानते हैं।

योग

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ॥ —यो० २.१३

क्लेशों के होने पर पाप-पुण्य का फल जाति, आयु तथा भोग मिलता है।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ —यो० २.१४

वे जाति, आयु तथा भोग पुण्यहेतुक होने से आनन्द के देनेवाले तथा पापहेतुक होने से दुःख देनेवाले होते हैं।

सांख्य

ऊर्ध्वं सत्त्वविशालाः ॥ —सां० ३.४८

सत्त्वप्रधान पुरुष ऊँची योनियों में जन्म लेते हैं।

तमोविशाला मूलतः ॥ —सां० ३.४९

तमोगुणी पुरुष नीच योनियों में जाते हैं।

मध्ये रजोविशालाः ॥ —सां० ३.५०

रजोगुणप्रधान जीव मध्य योनियों में जाते हैं।

इस प्रकार सांख्य में पुनर्जन्म का वर्णन आता है।

वेदान्त

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धा वैयर्थ्यादिभ्यः ॥

—वे० २.३.४२

जीव को स्वकर्म के अनुसार ही शुभ-अशुभ फल तथा दूसरा

शरीर मिला है। यदि ऐसा न हो तब ... सब कर्म निष्फल हो जाते हैं।

वैशेषिक

तदभावे संयोगाभावऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ॥ —वै० ५.२.१८

शुभाशुभ कर्म का अभाव होने से जीव का पुनर्जन्म नहीं होता तथा पुनर्जन्म के न होने से मोक्ष हो जाता है।

इस प्रकार सब दर्शनकारों ने पुनर्जन्म माना है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

वेदान्त

शास्त्रयोनित्वात् ॥ —वै० १.१.३

इसपर शाङ्करभाष्य

ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंतिस्य प्रदीपवत् **सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति यद्यद्विस्तारार्थं शास्त्रं यस्मात् पुरुष-विशेषात् सम्भवति यथा व्याकरणादिपाणिन्यादेर्ज्ञेयैकदेशार्थमपि स ततोऽप्यधिकतरविज्ञान इति प्रसिद्धं लोके।**

अनेक विद्याओं से युक्त प्रदीपवत् सब अर्थों का प्रकाश करनेवाला सर्वज्ञ शास्त्र का कारण ब्रह्म है। ऐसे सर्वज्ञ गुणों से युक्त शास्त्र को सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं बना सकता। महर्षि पाणिनि आदि ने एक-एक विद्या को लेकर जो शास्त्र रचा है, जब उसकी इतनी महिमा है तब जिसमें सब विद्याएँ विद्यमान हैं, उसका कहना ही क्या है।

शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥

—वे० १.३.२८

यदि कहो कि वेद में अनित्य व्यक्तियों के नाम आने से वह अनित्य वा इतिहासवाला है, तब ठीक नहीं, क्योंकि वेद ही में से लेकर ऋषियों ने पदार्थों के नाम रक्खे हैं। ऐसा ही वेद तथा स्मृति से सिद्ध है। यथा—

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम्।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवोचे ॥

—ऋ० ९.९५.२

परमात्मा जब संसार को उत्पन्न करता है, तब ऋषियों के हृदय

में सब गुप्त नामों का प्रकाश करता है।

इस वेदमन्त्र से सिद्ध है कि वेदों में से शब्द लेकर वस्तुओं के नाम रक्खे जाते हैं।

मनुजी ने भी यही बात लिखी है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ —मनु० १.२१

अत एव च नित्यत्वम्॥ —वे० १.३.९

परमात्मा का ज्ञान होने से वेद नित्य हैं।

शङ्का—जब संसार का प्रलय हो जाता है तब वेद भी नष्ट हो जाते हैं, पुनः नित्य कैसे हुए?

समाधान—

समाननामरूपत्वाच्चावृतावप्यविरोधा दर्शनात् स्मृतेश्च॥
—वे० १.३.३०

जब-जब परमात्मा संसार की रचना करता है तब-तब वैसी ही करता है, जैसी पूर्वकल्प में करता है।

यही बात वेद तथा स्मृति में लिखी है—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्॥ —ऋ० २०.१९०.३

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥ —मनु० १.२१

मीमांसा

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धेः तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्॥
—मी० १.१.५

शब्द का अर्थ के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है। इसका ज्ञान वा उपदेश परमात्मा ने किया है। जो अर्थ किसी भी प्रमाण से उपलब्ध न हो उसका उपदेश भी वेद द्वारा परमात्मा ने किया है, अतः ऋग्वेद स्वतःप्रमाण है।

शङ्का—वेदों में अनित्य, गङ्गा, यमुनादि नदियों के नाम आते हैं। इससे सिद्ध है कि वेद भूगोल है तथा निरुक्त में लिखा है—**'पाशा अस्यां व्ययाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः तस्माद्विपाडुच्यते पूर्वमासीदुरुञ्जिरा'।**

व्यास नदी का नाम प्रथम उरुञ्जिरा था। जब वसिष्ठ के बन्धन इससे टूटे तब से इसका नाम विपाश हो गया।

इससे भी सिद्ध है कि वेद में अनित्य इतिहास है। वेद इस वसिष्ठ की घटना के पश्चात् बना है।

समाधान—**उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्॥** —मी० १.१.२९

यह हम प्रथम कह चुके हैं कि ऋषियों ने वेदों में से शब्द लेकर सांसारिक पदार्थों के नाम रक्खे हैं। गङ्गा, यमुना का मन्त्र नीचे लिखकर उसका समाधान किया जाता है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥

—ऋ० १०.७५.५

इस मन्त्र में गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जिकीया, सुषोमा इस प्रकार १० नाम आये हैं। ये नाम गङ्गादि किसी विशेष नदी के नहीं हैं, किन्तु आध्यात्मिक अर्थ में जो शरीर के अन्दर मुख्य १० नाड़ियाँ हैं, उनके ये नाम हैं। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

नाभिस्थानगकन्दोर्ध्वमंकुरादेव निर्गता।
द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिता॥
तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमाः॥

नाभिकन्द से ७२ हज़ार नाड़ियाँ निकलती हैं। उनमें १० उत्तम हैं तथा १० में भी तीन उत्तम हैं।

इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी।
मध्ये सरस्वती विद्यात् प्रयागादि समस्तथा॥

इडा नाड़ी का नाम गङ्गा है तथा पिङ्गला का यमुना है, मध्य नाड़ी सुषुम्णा का नाम सरस्वती है।

२. ऋग्वेद में आता है—

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः॥ —ऋ० १.१३.९

तीन देवियाँ सुख देनेवाली हैं।

इसपर ऐतरेयब्राह्मण में लिखा है—

तिस्रो देवीर्यजति प्राणो वा अपानो व्यानश्चेति इडा सरस्वती मही॥ —ऐ० ६.४

प्राण, अपान, व्यान ये तीन देवियाँ हैं।

अथर्ववेद में आता है—

तिष्ठादिद् धमनिर्मही॥ —अथर्व० १.१७.२

शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्॥ —अथर्व० १.१७.३

यहाँ भी मही नाम नाड़ी का आया है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश॥

—ऋ० ६.७.१८

इस मन्त्र में भी जीव की ११० नाड़ियों का वर्णन आता है, जिनके द्वारा वह विशेष कार्य करता है।

इसपर छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है—

शतं चैका च हृदयस्य नाडयस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥

—छान्दो० ८.६.६

हृदय से १०१ नाड़ियाँ निकलती हैं, उनमें से एक नाड़ी मूर्धा की ओर जाती है, जो उसके द्वारा अपने प्राणों को छोड़ता है, वह मुक्ति को प्राप्त होता है।

४. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में श्री स्वामी दयानन्दजी लिखते हैं—

सितासित्ते सरिते यत्र सङ्गथे तत्रासुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते।
इडा पिंगला सुषुम्ना कूर्म नाड्यादीनां गङ्गादिसंज्ञास्तीति,
तासां योगसमाधौ परमेश्वरस्य ग्रहणात्।

इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों की गङ्गा, यमुना आदि संज्ञा है, क्योंकि वे योगसमाधि में परमात्मा की प्राप्ति में सहायक होती हैं।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि गङ्गादि नाड़ियों के नाम हैं, किसी विशेष नदी के नहीं।

निरुक्त का भी अभिप्राय यही है कि वसिष्ठ नाम योगी का है। जब तक योगी अभ्यास नहीं करता तब तक इड़ादि नाड़ियाँ उरुञ्जिरा अनेक प्रकार से जीवात्मा को जीर्ण-शीर्ण करनेवाली होती है, किन्तु जब वह अभ्यास के द्वारा नाड़ियों को वश में कर लेता है तब उसके लिए वह विपाशा—बन्धन के काटनेवाली हो जाती है।

शङ्का—वेदों में गौतम, वसिष्ठ, भरद्वाज, विश्वकर्मा आदि ऋषियों के नाम स्पष्ट आते हैं, इससे सिद्ध है कि वेद में ऐतिहासिक पुरुषों के

नाम हैं। और इन नामों के होते हुए वेद प्रभु का ज्ञान नहीं हो सकता।

समाधान—परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्। —वै० १.१.३१

वेदों में जो गौतमादि नाम आते हैं, वे किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के (Proper Noun) नहीं हैं, किन्तु सामान्य नाम (Common Noun) हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

१. **अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।**
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेहं कविरुशना पश्यता मा॥

—ऋ० ४.२६.१

परमेश्वर कहता है मनु, सूर्य, कक्षीवान्, ऋषि, विप्र, कुत्स, कवि, उशना आदि सब मेरे ही नाम हैं।

शङ्का—इस मन्त्र में परमात्मा का वर्णन नहीं है, किन्तु वामदेव ऋषि को जब ज्ञान हुआ तब वह कहता है कि मनु आदि सब मेरे ही नाम हैं।

समाधान—

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्॥

—ऋ० ४.२६.२

मैंने आर्य के लिए यह भूमि प्रदान की है। मैं ही संसार के लिए वर्षा करता हूँ। सब देव मेरे पीछे चलते हैं।

ये कार्य किसी जीव के नहीं हो सकते, किन्तु परमात्मा के हैं।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽ जायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥

—ऋ० १.३१.१

हे अग्ने! परमात्मन्! आप प्रथम अङ्गिरा ऋषि हैं, आप ही विद्वानों के सच्चे सखा हैं, आप ही के आदेश का पालन करके मनुष्य ऊँचा होता है।

शङ्का—इस मन्त्र में आङ्गिरा नाम ऋषि का है परमात्मा का नहीं।

समाधान—इसी सूक्त के सातवें मन्त्र में लिखा है—

त्वं तमग्ने अमृतत्त्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये॥

—ऋ० १.३१.७

हे अग्ने! आप ही उस पुरुष को अमृतपद पर पहुँचाते हो, जो प्रतिदिन आपके गुणों का कीर्तन करता है, जो आपका पिपासु है, उसके लिए आप आनन्द की वर्षा करते हैं।

इस मन्त्र में जो गुण वर्णन किये हैं वे प्रभु के सिवाय दूसरे में नहीं हो सकते।

अयं स देवोऽप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद्वेपय रोहित प्रक्षिणाही ब्रह्मज्यस्य प्रतिमुञ्च पाशन्॥ —अ० १३.३.१५

वह प्रभु देव है, वह जो जलों में व्यापक है, सहस्रों वस्तुओं का मूल है, इसी का नाम अत्रि है, उस भगवान् का उस व्यक्ति पर क्रोध है जो विद्वान् ब्राह्मण को सताता है।

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या विवासताम्।
अभीदुः शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥

—ऋ० ७.१०४.२१

इन्द्र राक्षसों का पराशर—काटनेवाला है। जैसे कुल्हाड़ा वन को काटता है, वैसे ही प्रभु पापियों को दण्ड देता है।

उपर्युक्त प्रमाणों से मनु, सूर्य, विप्र, कक्षीवान्, उशना, अङ्गिरा, पराशर, अत्रि आदि सब नाम परमात्मा के आये हैं, पुनः यह नाम वेद में ऐतिहासिक व्यक्ति वाचक (Proper Noun) कैसे हो सकते हैं?

२. इन्द्रियवाचकः।

यजुः० १३.५४ में वशिष्ठ प्राण का नाम तथा भरद्वाज मन का नाम, विश्वामित्र कान का नाम और जमदग्नि आँख का नाम आता है—

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे।

शरीर में सात ऋषि हैं। इस प्रकार वशिष्ठ आदि नाम वेद में इन्द्रियों के वाचक हैं, पुनः यह व्यक्तिवाचक नाम कैसे हो सकते हैं?

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसि वेद्याभिः।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि॥

—ऋ० ६.९.१

रात्रि **कृष्ण**=काली है, तथा दिन **अर्जुन**=श्वेत है।

इस मन्त्र में कृष्ण नाम रात का तथा अर्जुन नाम दिन का आता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में आया है—

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।

—अथर्व० १३.३.[illegible]

यदि यहाँ ऐतिहासिक अर्थ किया जाए तब इसका यह अर्थ होगा कि अर्जुन द्रौपदी का पुत्र था जो असम्भव है। वास्तविक अर्थ इसका यह है कि काली रात्रि का पुत्र अर्जुन=श्वेत दिन है।

इस प्रकार वेद में कहीं भी कृष्ण शब्द ऐतिहासिक व्यक्तिवाचक नहीं आता।

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥

—ऋ० १०.३.३

इसपर सायणभाष्य

रामं कृष्णां शार्वरं तमोऽभिभूय तिष्ठति।

राम काली रात्रि का अन्धकार।

इस प्रकार वेद में राम, कृष्ण शब्द का अर्थ अन्धकार आता है। राम तथा कृष्ण के नाम भी इसीलिए रक्खे थे कि वे काले थे।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि वेदों में सामान्य नाम आते हैं, ऐतिहासिक व्यक्तिवाचक नहीं।

शङ्का—वेदमन्त्रों पर तथा सूक्तों पर जो ऋषियों के नाम आते हैं वे ऋषि वेदों के कर्त्ता थे।

समाधान—आख्याप्रवचनात्॥ —वै० १.१.३०

वेद में मन्त्रों पर ऋषियों के जो नाम आते हैं, या काठक आदि नाम हैं वे वेदों का प्रवचन करने से या मन्त्रों के द्रष्टा होने से आते हैं, कर्त्ता होने से नहीं। सर्वानुक्रमणिकाओं में ऐसा ही लिखा है। बृहद्देवता के कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

मन्त्रा नाना प्रकाराः स्युर्दृष्टा वै मन्त्रदर्शिभिः।
स्तुत्या चैव विभूत्या वाक्प्रभावेण चात्मनः॥ १.३४॥

प्रभु की स्तुति से विभूति तथा वाणी के प्रभाव से ऋषियों ने नाना प्रकार के मन्त्रों का अर्थ देखा।

यथा नानाविधैः शब्दैरपश्यन्नृषयः पुरा॥ १.४६॥

अनेक प्रकार के शब्दों के द्वारा ऋषियों ने वेदार्थ को देखा।

ऋग्वेदमखिलं ये हि द्रष्टारो मुनिपुङ्गवाः।
तदनुक्रमणायाहं नमामि परमेश्वरीम्॥ १। आ०॥

जिन ऋषियों ने सम्पूर्ण ऋग्वेद देखा है, उनकी अनुक्रमणिका बतलाने के लिए मैं भगवान को नमस्कार करता हूँ।

यैर्वेदमन्त्राः सकलाः सुद्रष्टा येनार्षानुक्रमणी प्रदिष्टाः।

नमोऽस्तु तेभ्यो मुनिपुंगवेभ्यो भवन्तु ते चापि मयि प्रसन्नाः॥

जिन्होंने सब वेदमन्त्रों को देखा है, उनको नमस्कार है।

ऋग्वेद आर्षानुक्रमणी में लिखा है—

अवत्सार ऋषिरन्ये च दृष्टलिंगा ऋषयः।

इस मन्त्र का ऋषि अवत्सार है और भी जिन्होंने इस मन्त्र का अर्थ देखा है, वे इसके ऋषि हैं।

इससे सिद्ध है कि ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं, अन्यथा जब एक ऋषि कर्त्ता है तब यह क्यों लिखा कि अन्य भी इसके द्रष्टा हैं? उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि ऋषि वेदों के कर्त्ता नहीं हैं।

वैशेषिक

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। —वै० १.१.३

ईश्वर का वचन होने से वेदचतुष्टय का प्रमाण है।

न्याय

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्॥

—न्या० २.१.६८

मन्त्रविचार तथा आयुर्वेदवत् वेदों का प्रमाण है। ऐसा ही सब आप्तों ने माना है।

योग

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ —यो० २.१.२६

वह भगवान् सर्वप्रथम ऋषियों का भी गुरु है, क्योंकि वह सर्वकाल में ज्ञानी है।

सांख्य

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत् पौरुषेयम्॥

—सां० ५.५०

जिसमें कर्त्ता के न देखने पर भी कृतबुद्धि हो वह पौरुषेय है। इस सूत्र में यह बतलाया है कि वेद **पौरुषेय**=मनुष्यकृत नहीं है।

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्॥ —सां० ५.५१

वेद परमात्मा की अपनी शक्ति से प्रकट हुआ है, अतः स्वतःप्रमाण

है, उसमें कोई त्रुटि नहीं।

शङ्का—न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ॥ —सां० ५.४५

वेद नित्य नहीं हैं, क्योंकि वेद में उनको कार्य लिखा है, इससे सिद्ध है कि वेद अनित्य हैं।

समाधान—न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ॥

—सां० ५.४६

वेद अनित्य वा मनुष्यकृत नहीं हैं, क्योंकि उनका कर्त्ता कोई पुरुष नहीं है।

मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ॥ —सां० ५.४७

मुक्त तथा अमुक्त किसी में भी वेद के रचने की शक्ति नहीं है।

शङ्का—नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमंकुरादिवत् ॥ —सां० ५.४८

अपौरुषेय होने से वेद नित्य नहीं, जैसे अंकुर अपौरुषेय होने पर भी नित्य नहीं।

समाधान—तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ॥

—सां० ५.४९

यदि वेदों का कर्त्ता माना जाए वा उन्हें अनित्य माना जाए तब प्रत्यक्ष का बाध है, क्योंकि प्रत्यक्ष से वेदों का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता तथा जो जिसका स्वाभाविक गुण है वह नष्ट नहीं होता। वेद परमात्मा का स्वाभाविक ज्ञान है, अतः वह अनित्य नहीं। इस प्रकार सब दर्शनकार वेदों को नित्य, अपौरुषेय तथा परमात्मा का ज्ञान मानते हैं।

प्रसिद्ध विरोधाभास परिहार

शङ्का—वैशेषिक तथा न्याय में बुद्धि तथा अहंकार को जीव का गुण माना है तथा सांख्य में यह लिखा है कि प्रकृति से बुद्धि, तथा बुद्धि से अहंकार उत्पन्न हुआ, और अहंकार से पाँच तन्मात्रा वा पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवाँ मन उत्पन्न हुआ। जब बुद्धि गुण है तब उससे द्रव्य कैसे उत्पन्न हो सकता है। यह प्रत्यक्ष विरोध है।

समाधान—इस शङ्का के निम्नलिखित समाधान हैं—

जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है, उसकी प्रथम अवस्था में जो परम सूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम महत्तत्त्व, और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहंकार और अहंकार से

भिन्न-भिन्न पाँच सूक्ष्मभूत; श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा। ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और ग्यारहवाँ मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। उन पंचतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पाँच स्थूलभूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं, उनसे नाना प्रकार की ओषधियाँ, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर उत्पन्न होता है। —सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास

इस लेख से सिद्ध है कि श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज महत्तत्त्व तथा अहंकार को द्रव्य मानते हैं।

२. **लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम्॥**

—सां० १.९३

लघु आदि धर्मों से गुणों का साधर्म्य तथा वैधर्म्य है।

यहाँ सांख्यकार ने जैसे गुणों को द्रव्य स्वीकार किया है वैसे ही बुद्धि आदि धर्म तथा गुणोंवाले होने से द्रव्य हैं, गुण नहीं।

३. प्रकृति जब अपनी अवस्था से च्युत होकर कार्यरूप में परिणत होती है तब उस प्रथम कार्य-अवस्था को बुद्धि तथा दूसरी अवस्था को अहंकार इसलिए कहते हैं कि प्रकृति अव्यक्तावस्था में बुद्धि में आने के योग्य नहीं होती। इसी अवस्था को वेद के नासदीय सूक्त में अप्रकेत के नाम से तथा मनु में अविज्ञेय, अप्रतर्क्य के नाम से पुकारा है, जब वह प्रकृति अपनी अवस्था को छोड़कर कार्यरूप में परिणत होती है तब उसको विचार के योग्य होने से बुद्धि नाम से पुकारते हैं।

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः॥ —सां० १.७१

इस प्रमाण में यह बतलाया है कि प्रकृति का जो प्रथम कार्य है वह मन है तथा आगे जाकर यह लिखा है कि अहंकार से मन उत्पन्न होता है। इससे परस्पर विरोध प्रतीत होता है, किन्तु विचार से पता लगता है कि यह विरोध नहीं, परन्तु प्रथम जो कार्य है वह प्रकृति की प्रथम अवस्था है। उसे मन वा बुद्धि इसलिए कहते हैं कि अव्यक्त से व्यक्त हो प्रकृति मन अर्थात् मनन के योग्य होती है, अतः महत् द्रव्य है गुण नहीं।

४. **अभिमानोऽहंकारः॥ १६॥**
एकादश पञ्चतन्मात्रं यत्कार्यम्॥ १७॥
सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्॥ १८॥

—सा० २.१६-१८

अभिमान का नाम अहंकार है, अर्थात् प्रकृति का जब दूसरा कार्य तथा उसके कार्य इन्द्रियादि उत्पन्न होते हैं, तभी अहं, ममादि भाव उत्पन्न होते हैं, इसलिए प्रकृति के दूसरे कार्य को अभिमान कहते हैं, वह द्रव्य है। विकृत अहंकार से इन्द्रिय तथा मन उत्पन्न होता है, इससे सिद्ध है कि जैसे प्रकृति के विकृत होने पर उससे कार्यजगत् पैदा होता है, इसी प्रकार विकृत अहंकार से इन्द्रियादि कार्य उत्पन्न होते हैं, इसलिए अहंकार द्रव्य है।

अध्यवसायो बुद्धिः ॥ १३ ॥ तत्कार्यं धर्मादि ॥ १४ ॥

—वै० १.१३-१४

अध्यवसाय का नाम बुद्धि है, धर्मादि उसके कार्य हैं।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥

—वै० १.१५

जिसमें क्रिया हो, गुण हों तथा जो किसी वस्तु का उपादान-कारण हो, उसको द्रव्य कहते हैं।

ये सम्पूर्ण लक्षण महत्तत्त्व तथा अहंकार में घटते हैं। अहंकार में अभिमान गुण है तथा वह विकृत होकर इन्द्रिय वा मन का तथा सूक्ष्म भूतों का उपादानकारण होता है, इसलिए क्रियावाला समवायिकारण है। इसी प्रकार बुद्धि अध्यवसाय गुणवाली तथा अहंकार का उपादानकारण होने से द्रव्य है, गुण नहीं।

शङ्का—न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ॥

—सां० १.२५

हम वैशेषिकादि की भाँति छह पदार्थों के माननेवाले नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि सांख्य वैशेषिक के विरुद्ध है।

समाधान—अनियतत्त्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्त्वम् ॥

—सां० १.२६

जिस सूत्र का प्रमाण प्रतिपक्षी ने दिया है वह पूर्वपक्ष का सूत्र है, क्योंकि उत्तरपक्ष में यह कहा है कि यदि नियत पदार्थ न मानें तब भी युक्तिशून्य बात को नहीं मान सकते अन्यथा उन्मत्त तथा बच्चों की भाँति जो भी किसी बात को बतलाएगा उसको मानना पड़ेगा। पुनः सत्य तथा असत्य का कोई भी नियम नहीं रहेगा।

शङ्का—मीमांसा में शब्द को नित्य माना है तथा न्याय में शब्द को अनित्य माना है। यह दर्शनों का प्रत्यक्ष विरोध है, इसका क्या

परिहार है ?

समाधान—मैवं मन्यताम्। शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात्। ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाः सन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति। येऽस्मदादीनां वर्तन्ते ते तु कार्याश्च। कुतः ? यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादीस्तस्तस्य सर्वसामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति। तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामनित्यत्वं नैव घटते॥

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वदेनित्यत्वविषयः

इस लेख से सिद्ध है कि शब्द नित्य तथा अनित्य भेद से दो प्रकार के हैं। जो हमारे अन्दर हैं वे अनित्य हैं तथा जो प्रभु के ज्ञान में स्थित हैं वे ज्ञानमय शब्द नित्य हैं। दूसरी बात यह है कि जो ध्वन्यात्मक शब्द हैं वे अनित्य हैं तथा जो वर्णात्मक शब्दज्ञान में स्थित हैं वे नित्य हैं। मीमांसा में भी वैदिक शब्दों को ही नित्य सिद्ध किया है, क्योंकि उनका अधिकरण प्रभु नित्य ज्ञानवाला है, उसका ज्ञान कदापि नष्ट नहीं होता, इस प्रकार से शब्द के विषय में दर्शनों में कोई भेद नहीं है।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने वेदान्त के अनेक सूत्र लिखकर वैशेषिकादि दर्शनों का खण्डन किया है, इससे सिद्ध है कि दर्शनों में विरोध है।

समाधान—वेदान्त के किसी भी सूत्र में वैशेषिकादि दर्शनों का खण्डन नहीं किया। यह शङ्कराचार्य की अपनी कल्पनामात्र है। प्रमाण के लिए परमाणुवादविषयक सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्॥ —वे० २.२.११

यथा ह्रस्व परिमण्डल से महत् तथा दीर्घ उत्पन्न होते हैं वैसे ही विशेष गुणवाले प्रभु से संसार उत्पन्न होता है।

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः॥ —वे० २.२.१२

कारणरूप तथा कार्यरूप दोनों प्रकार से भी परमात्मा की सहायता के बिना प्रकृति में स्वयं कर्म उत्पन्न नहीं हो सकता, अतः निमित्तकारण ब्रह्म है।

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनस्थितेः॥ —वे० २.२.१३

जैसे कार्यरूप जगत् में जड़तादि गुण समवायसम्बन्ध से रहते हैं, वैसे ही कारणप्रकृति में, अतः उनसे संसार की स्थिति नहीं हो सकती।

नित्यमेव च भावात्॥ —वे० २.२.१४

यदि प्रकृति को संसार का निमित्तकारण मानें तब सृष्टि नित्य होनी चाहिए, क्योंकि वह जड़ है।

रूपादिमत्वाच्च विपर्ययो दर्शनात्॥ —वे० २.२.१९

जो संसार में रूपादिवाले पदार्थ हैं, वे किसी भी वस्तु के निमित्तकारण चेतन की सहायता के बिना नहीं हो सकते, अतः संसार का निमित्तकारण ब्रह्म है।

उभयथा च दोषात्॥ —वे० २.२.१६

यदि प्रकृति में रचने की शक्ति है तब प्रलय नहीं हो सकती, यदि नाश की शक्ति है तब रचना नहीं हो सकती। यदि दोनों हैं तब कुछ भी नहीं हो सकता, अतः चेतन होने से ब्रह्म ही संसार का निमित्तकारण है।

एतेन योगः प्रत्युक्तः। —वे० २.१.३

इससे इस बात का खण्डन जानना चाहिए कि ईश की सहायता के बिना भूतों के योग से सृष्टि की रचना हो सकती है।

शङ्का—स्वामी शङ्कर ने तो इन सूत्रों से परमाणूपादानवाद का खण्डन किया है।

समाधान—रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्॥ —वे० २.२.१

इस सूत्र से लेकर व्यासजी ने यह प्रकरण आरम्भ किया है कि ब्रह्म संसार का निमित्तकारण है।

पयोऽम्बुवच्चेत्तन्नापि। —वे० २.२.३०

इस सूत्र में स्वामी शङ्कर ने भी यही स्वीकार किया है कि ब्रह्म ही संसार का निमित्तकारण है। इसलिए शङ्कर की यह बात प्रमाण के विरुद्ध है कि इन सूत्रों में परमात्मा का खण्डन है।

इस प्रकार वेदान्त के मूल सूत्रों में वैशेषिकादि दर्शनों का कहीं भी खण्डन नहीं है।

कर्मफलदाता

इस विषय में भी दर्शन एक मत हैं कि कर्मों का फल देनेवाला परमेश्वर है। प्रमाण निम्नलिखित हैं—

वेदान्त

फलमत उपपत्तेः॥ —वे० ३.२.३८

जीवों का कर्मफलदाता परमात्मा है, क्योंकि वह सर्वव्यापक है। युक्ति से भी यही सिद्ध है। कोई भी जीव दुःख नहीं चाहता,

किन्तु प्रत्येक को दुःख मिलता है, इससे सिद्ध है कि फलदाता परमात्मा है।

श्रुतत्वाच्च॥ —वे० ३.२.३९

श्रुति में भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है कि परमात्मा कर्मों का फल देनेवाला है। यथा—

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि संजयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्॥

—ऋ० १०.४८.१

परमेश्वर कहते हैं कि मैं ही इस संसार का पति वा उत्पादक हूँ मेरी ही मनुष्य पिता की भाँति प्रार्थना करते हैं, मैं ही कर्म करनेवालों को कर्मानुसार भोग देता हूँ।

धर्मं जैमिनिरत एव॥ —वे० ३.२.४०

जैमिनि भी इसी बात को मानते हैं कि धर्म के अनुसार परमात्मा जीवों को फल देता है।

पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात्॥ —वे० ३.२.४१

व्यासजी महाराज का भी यही मत है कि परमात्मा जीवों को कर्म के अनुसार फल देता है।

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति॥

—वे० ३.२.४१

यदि कहो कि परमात्मा किसी को दुःख देता है, किसी को सुख देता है, किसी को राजा के घर उत्पन्न करता है किसी को रङ्क के घर। इस प्रकार वह न्यायकारी नहीं ठहरता, तब ठीक नहीं, क्योंकि दुःख-सुख कर्मों की अपेक्षा से मिलते हैं। ऐसा ही वेद में लिखा है—

न किल्बिषमत्र नाधारोऽस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति॥

—अथर्व० १२.३.४८

परमात्मा के राज्य में कोई अन्याय नहीं है, न वहाँ किसी की सिफारिश चलती है, न मित्र कोई सहायता कर सकते हैं। वहाँ तो पूर्ण न्याय है जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही फल मिलेगा।

शङ्का—शरीर के बिना कर्म नहीं तथा कर्म के बिना शरीर नहीं, पुनः प्रलय के पश्चात् परमात्मा बिना कर्मों के जीवों के शरीर कैसे

बनाएगा ?

समाधान—न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥

—वे० २.१.३५

यह शङ्का ठीक नहीं, क्योंकि संसार, जीवात्मा तथा उसके कर्म अनादि हैं। जैसे सोया हुआ मनुष्य प्रातःकाल उठकर पूर्व दिनवत् अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाता है, इसी प्रकार प्रलय के पश्चात् परमात्मा पूर्वकर्म के अनुसार पुनः सृष्टि की रचना करता है।

शङ्का—कर्म करने की क्या आवश्यकता है ? परमात्मा जिसको चाहे दुःख देवे जिसको चाहे सुख देवे, यह परमात्मा के अधीन है।

समाधान—कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥

—वे० २.३.४२

परमेश्वर जीवों के शुभाशुभ कर्मों की अपेक्षा से सुख-दुःख देता है। यदि ऐसा न माना जाए तब विहित तथा प्रतिषिद्ध सब कर्म व्यर्थ हो जाते हैं, क्योंकि जब परमात्मा की इच्छा पर ही बिना कर्म के फल निर्भर है तब कर्म करने की क्या आवश्यकता है ?

न्याय

तत् कारितत्वादहेतुः। —न्या० ४.१.२१

जीवात्मा कर्म करनेवाला तथा ईश्वर उस कर्म के अनुसार फल देनेवाला है।

सांख्य

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता। —सा० ३.५६

वह परमेश्वर सबके जाननेवाला तथा सर्वकर्त्ता, अर्थात् सबके बनानेवाला और सबका कर्मफलदाता है।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा। —यो० १.२३

ईश्वर की भक्तिविशेष से समाधि का लाभ होता है, अर्थात् समाधि कर्मों का फल है, अतः प्रभु ही समाधि प्रदान करता है।

इस प्रकार सब दर्शनकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि फल देनेवाला परमात्मा है।

आकाश तथा काल की नित्यता

वेदान्त

न वियदश्रुतेः ॥ —वे० २.३.१

आकाश की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि उसकी उत्पत्ति वेद में

नहीं लिखी।

—वे० २.३.२

शङ्का—अस्ति तु॥

'**एतस्मादात्मन आकाश सम्भूतः**' इत्यादि प्रमाणों में आकाश की उत्पत्ति लिखी।

—वे० २.३.३

समाधान—गौण्यसम्भवात्॥

जहाँ कहीं आकाश की उत्पत्ति का वर्णन आता है, वह गौण है क्योंकि जो पदार्थ प्रलय के समय सर्वत्र आकाश में विस्तृत होता है उसके इकट्ठा करने से जो अवकाश निकलता है वह आकाश है, उसकी उत्पत्ति असम्भव है।

—वे० २.३.४

शब्दाच्च॥

शब्द से भी आकाश नित्य है, क्योंकि शब्द आकाश का गुण है, वह सदा रहता है।

शङ्का—स्वामी शङ्कर ने इन सूत्रों से आकाश को अनित्य सिद्ध किया।

समाधान—स्वामी शङ्कर ने जो आकाश की उत्पत्ति में युक्ति कथन की है वह अत्यन्त हास्यास्पद है। स्वामी शङ्कर कहते हैं कि जो पदार्थ परस्पर भिन्न होते हैं वे अनित्य हैं, जैसे घट-पट आदि परस्पर विभन्न हैं, अतः अनित्य है, ऐसे ही आकाश पृथिवी आदि से भिन्न है, अतः अनित्य है

यदि शङ्कर की युक्ति ठीक है तब ईश्वर=ब्रह्म को भी अनित्य मानना पड़ेगा, क्योंकि वह भी तो पृथिवी आदि से भिन्न है। यदि कहो कि ब्रह्म स्वयं सिद्ध है, तब मैं कहता हूँ कि आकाश भी स्वयं सिद्ध है, यतः आकाश प्रमाणों से जाना जाता है, अतः आकाश नित्य है।

स्वामी दयानन्द

जगत् उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश= अवकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इनमें से एक भी न हो तो जगत् भी न हो॥ २२६॥

—सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश, अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न-सा होता है, वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि बिना

आकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें॥

—सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास

इन प्रमाणों से यह सिद्ध है कि श्री स्वामीजी आकाश तथा काल को नित्य मानते हैं।

न्याय

अव्यूहाविष्टम्भविभुत्वानि चाकाशधर्माः। —न्या० ४.२.२३

इकट्ठा न होना, बाधा न डालना, विभु, सर्वगत होना आकाश के धर्म हैं

सर्वगतत्व से सिद्ध है कि आकाश नित्य है।

वैशेषिक

आकाश द्रव्य है तथा नित्य है, यह वायु की भाँति जानना चाहिए।

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते॥ —वै० २.२.७

वायु की भाँति काल भी द्रव्य तथा नित्य है।

सांख्य

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्॥

—सां० १.१२

काल के योग से भी जीव का बन्धन नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यापी तथा नित्य है।

इस प्रकार सब दर्शन आकाश तथा काल को नित्य मानते हैं।

शङ्का—सब दर्शनों में प्रत्येक बात का विस्तार से वर्णन क्यों नहीं आता?

समाधान—प्रत्येक दर्शन का एक मुख्य विषय है, अधिक विस्तार उसी विषय का आता है। न्याय का मुख्य विषय प्रमाण है, अतः अधिक विस्तार से वर्णन महर्षि गौतम ने प्रमाणों ही का किया है। वैशेषिक का मुख्य विषय प्रमेय है, अतः उसमें प्रमेय का विस्तार है। सांख्य का प्रधानविषय प्रकृति-पुरुष का विवेचन तथा दुःख के कारण की अन्वेषणा करना है। मीमांसा का कर्म तथा वेदान्त का ब्रह्मविचार है। इस प्रकार से सब दर्शनकारों ने प्रधान विषय का मुख्यतया वर्णन और दूसरे विषयों का गौणतया वर्णन किया हैं।

इन विषयों के अन्दर दर्शनों का क्रम भी छिपा हुआ है। किसी पदार्थ को जानने के लिए प्रथम प्रमाणों की आवश्यकता होती है, अतः न्याय में प्रमाण विस्तार है। प्रमाण के अनन्तर प्रमेय की

आवश्यकता है, अतः वैशेषिक में क्रमागत प्रमेय का विस्तार है। प्रमाण प्रमेय के पश्चात् दुःख उसके कारण तथा किस पदार्थ से दुःख मिलता है, इसका सांख्य में विवेचन है। दुःख तथा उसके कारण जानने के पश्चात् उसके हटाने के साधनों की आवश्यकता है, इस बात का वर्णन योग में किया है।

जो योग के साधनों का अनुष्ठान नहीं कर सकता उसके लिए मीमांसा में सकाम-निष्काम कर्मों का विस्तार से विवेचन है इन सब बातों से जब मनुष्य के चित्त के मल, विक्षेप, आवरण आदि दोष दूर हो जाते हैं तब सच्चे प्रभु के दर्शन होते हैं, इसलिए वेदान्त में महर्षि व्यासजी ने ब्रह्म का सविस्तर वर्णन किया है। इस विषयभेद से तथा क्रम से यदि दर्शनों का विवेचन किया जाए तब प्रतीत होगा कि दर्शनों में कोई भी मतभेद नहीं है।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

१. सब दर्शनकार मुक्ति को योगाभ्यासादि कर्मों का फल मानते हैं, परिमित कर्मों का फल अपरिमित नहीं हो सकता, अतः फल के परिमित होने से सब दर्शनों का यह सिद्धान्त ठहरता है कि मुक्तिरूपी कर्मफल भोगने के पश्चात् जीव पुनरपि संसार में लौट आता है।

२. सब दर्शनकार संसार को अनादि मानते हैं, इसकी कोई भी गणना नहीं कर सकता कि इसको बने कितने वर्ष व्यतीत हो गये, जब इतने लम्बे अनन्त काल में अनन्त पवित्र युगों के बीतने पर भी यदि जीवों की मुक्ति नहीं हुई, पुनः आगे के लिए मुक्ति की आशा करना दुराशामात्र है, इसलिए मानना पड़ता है कि अनेक बार हमारी मुक्ति तथा अनेक बार बन्ध हुआ है।

३. इस बात को सब स्वीकार करते है कि स्वर्ग से जीव लौटता है। अब विचारणीय यह है कि स्वर्ग क्या है ? स्थानविशेष तो इसको मान नहीं सकते, क्योंकि इसमें प्रमाण की न्यूनता है। दूसरी बात यह है कि स्थानविशेष मानें तब जिस स्थान में भी सुख होगा वह प्रत्येक स्थान स्वर्ग हो जाएगा, इसलिए मानना पड़ेगा कि यह स्वर्ग जिससे पुनरावृत्ति मानते हैं जीव की अवस्थाविशेष है और यह मुक्ति है, जैसाकि वेद में लिखा है—

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्या ँ्रे रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारꣳ सुविद्वा ँ्रे सो वितेनिरे॥

स्वर्ग को प्राप्त होने... ... प्रकाशमान
प्रभु को प्राप्त होते है, जो विद्वान् सर्वोपकारी यज्ञ करते हैं।

इस मन्त्र में स्वर्ग नाम मुक्ति का है।

वेदान्त

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्॥

—वे० ४.३.१०

शरीर के नष्ट होने पर जीवात्मा मुक्ति में परमात्मा के साथ रहता है, इससे पर, अर्थात् मुक्ति के अनन्तर परजन्म का विधान भी वेदों में पाया जाता है। जैसाकि ऋग्वेद में लिखा है—

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्त्वमानशे।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥

—ऋ० १०.६२.१

जिन्होंने यज्ञादि शुभ कर्म किया तथा परमात्मा की मैत्री में अमृतपद=मुक्ति प्राप्त की है, प्राणायाम करनेवाले मुक्तपुरुषो! तुम पुनरपि मनुष्य का शरीर धारण करो, तुम्हारे लिए कल्याण हो।

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि।
सुप्रजास्त्वमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥

—ऋ० १०.६२.३

जिन्होंने सत्य के द्वारा परमात्मा को प्राप्त किया, तुम्हारी प्रजा श्रेष्ठ हो, हे मुक्त पुरुषो! तुम फिर मनुष्य-शरीर धारण करो।

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वोऽस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥४॥

—ऋ० १०.६२.४

यह तुम्हारे घरों में भगवान् का श्रेष्ठ वेदोपदेश है, इसको हे प्रभु के पुत्रो, ऋषियो! ध्यान से सुनो, तुम्हारे घरों में प्रति-दिन ब्रह्म की चर्चा हो। हे मुक्तपुरुषो! तुम पुनरपि मानव-शरीर को धारण करो।

इत्याद अनेक वेदमन्त्रों में मुक्ति से पुनरावृत्ति की चर्चा है।

कृतात्ययेनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च॥

—वे० ३.१.८

जिस कर्म के द्वारा जीव को मुक्ति प्राप्त हुई थी, उसके क्षय होने पर अनुशयवान जीव का उपभुक्तशिष्ट कर्मानुशय जो कर्म अवशिष्ट रहता है उसके द्वारा पुनरपि पुनर्जन्म होता है।

श्री स्वामी दयानन्दजी ऋ० १.२४.२ पुनरावृत्ति विषयक मन्त्र का अर्थ करते हुए लिखते हैं—

अयमेव मुक्तानामपि जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पाप-पुण्यतुल्यतया पितरि मातरि च मनुष्यजन्म कारयतीति च॥

वह परमेश्वर पुण्य-पाप के सम होने पर पुनः मुक्त जीवों का माता-पिता द्वारा पुनर्जन्म कराता है।

कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः॥ —वे० ४.३.७

बादरायण कहते हैं—कि मुक्ति कार्य है, अतः अनित्य है।

विशेषितत्वाच्च॥ —वे० ४.३.८

'यावदायुषम्' जब तक उसकी अवधि है तब तक मुक्ति में जीव रहता है।

सामीप्यात्तु तद् व्यपदेशः॥ —वे० ४.३.९

ब्रह्म की समीपता से जीव में ब्रह्मवत् व्यपदेश है।

शङ्का—शङ्कराचार्य आदि इस सूत्र का ऐसा अर्थ करते हैं कि जीव कर्मों के करने से ब्रह्मलोकादि लोकों में उस लोक के अध्यक्ष के साथ रहता है, मुक्ति उससे भी उत्कृष्ट है।

समाधान—मैं पूर्व ही लिख चुका हूँ कि स्वर्ग, ब्रह्मलोक, अमृतादि सब मुक्ति ही के नाम है, जिससे लौटना सब शास्त्राकार मानते हैं। जो लोग ब्रह्मलोकादि को स्थानविशेष मानते है, वे कदापि उसको युक्ति-प्रमाण से सिद्ध नहीं कर सकते।

शङ्का—अनावृत्तिशब्दात्॥ —वे० ४.४.२२

वेदान्त के इस सूत्र में स्पष्ट मुक्ति से न लौटना लिखा है।

समाधान—प्रथम तो शङ्कराचार्य भी इस सूत्र को मुक्तिपरक नहीं मानते, किन्तु ब्रह्मलोकपरक मानते हैं तथा इसी सूत्र से जीव का लौटना मानते हैं। दूसरी बात यह है कि जिस छान्दोग्य के आधार पर यह सूत्र बना है उसमें लिखा है—

'यावदायुषम्' जितनी मुक्ति की अवधि है, उससे पूर्व नहीं लौटता, यह सूत्र का अर्थ है।

पौराणिक यह मानते हैं कि राम, कृष्णादि सब ब्रह्म के अवतार हैं, जब ब्रह्म स्वयं संसार में शरीर धारण करता है, पुनःतुम्हारे मत में मुक्त जीव भी तो ब्रह्म ही हो जाता है, अतः उसकी भी पुनरावृत्ति सिद्ध है।

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ —सां० १.१५९

जैसे इस समय बन्ध का अत्यन्त उच्छेद नहीं है, इसी प्रकार अत्यन्त उच्छेद कभी भी नहीं होता, मुक्ति के पश्चात् पुनरपि जीव संसार में आ जाता है।

शङ्का—न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः ।

—सां० ६.१७

मुक्त का पुनः बन्ध के साथ योग नहीं होता, क्योंकि श्रुति से अनावृत्ति सिद्ध है। इस सूत्र में सांख्यकार मानते है कि मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती।

समाधान—मैं प्रथम ही लिख चुका हूँ कि जिस छान्दोग्य के प्रमाण पर यह सूत्र बना है, उससे पुनरावृत्ति सिद्ध है, प्रमाण निम्नलिखित है—

शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ —छा० ८.१५.१

पवित्र देश में स्वाध्याय करता हुआ, अपने आत्मा में धार्मिक भावों को धारण करता हुआ सब इन्द्रियों के संयम वा अहिंसा के द्वारा ब्रह्मलोक=मुक्ति को प्राप्त होता है, जब तक मुक्ति की आयु=अवधि है तब तक उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। शङ्कर आदि ने भी इस प्रमाण से यह सिद्ध किया है कि पुनरावृत्ति होती है।

सांख्य के इस सूत्र से एक बात यह भी सिद्ध होती है कि सांख्यकार शङ्कर की भाँति छान्दोग्य के इस प्रमाण से किसी स्थानविशेष ब्रह्मलोक को सिद्ध नहीं करते, किन्तु इस प्रमाण को मुक्तिविषयक मानते है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मलोक, मुक्ति, स्वर्ग आदि सब एक ही हैं, जिनसे सब पुनरावृत्ति मानते हैं।

मन अणु है

इस विषय में भी छह दर्शनों का एक ही मत है कि मन का परिमाण अणु है। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

वेदान्त

पञ्चवृत्तिर्मनोवद् व्यपदिश्यते ॥ —वे० २.४.१२

मन की भाँति प्राण की पाँच वृत्तियाँ हैं। यथा—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान।

—वे० २.४.१३

अणुश्च॥

जैसे मन के समान प्राण की पाँच वृत्तियों हैं, वैसे ही मनकी भाँति प्राण अणु भी है।

इस अतिदेश से सिद्ध है कि महर्षि व्यास मन को अणु मानते हैं।

न्याय

ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः॥ —न्या० ३.२.५६

एक साथ अनेक ज्ञान न होने से सिद्ध है कि मन एक है।

यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु॥ —न्या० ३.२.५६

पूर्वोक्त हेतु से सिद्ध है कि मन अणु है, क्योंकि यदि विभु होता तब एक साथ अनेक ज्ञान हो जाते।

वैशेषिक

तदभावादणु मनः॥ —१.१.२३

विभु न होने से मन महत् परिमाण नहीं, किन्तु अणु परिमाण है।

इसी प्रकार सब दर्शनकार मन को अणु परिमाणयुक्त मानते हैं।

लिङ्गशरीर

तीन शरीरों का वर्णन शास्त्रों में आता है। एक भौतिक शरीर है जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त हैं, दूसरा सूक्ष्मशरीर है, इसके दो भेद हैं, एक भौतिक, दूसरा अभौतिक, जो जीवात्मा के अपने गुण हैं। तीसरा कारणशरीर है। यह प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों से बनता है तथा सर्वत्र विद्यमान होता है, इसके द्वारा प्रकाश, गमन आदि अनेक कार्य होते हैं। सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं। प्रमाण निम्नलिखित हैं—

वेदान्त

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तप्रश्ननिरूपणाभ्याम्॥

—वे० ३.१.१

जब जीवात्मा दूसरे देह में जाता है तब लिङ्गशरीर से युक्त होता है। ऐसा ही निरूपण प्रश्नोत्तर द्वारा श्रुतियों में आता है। इससे यह भी सिद्ध है कि जीव अणु है, क्योंकि एक शरीर को छोड़कर अन्य शरीर में जाता है।

सांख्य

सप्तदशैकं लिङ्गम्॥ —सां० ३.९

१७ तत्त्व—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, पाँच तन्मात्रा, बुद्धि, और मन—इनका लिङ्गशरीर होता है।

इस प्रकार सब दर्शनकार लिङ्गशरीर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। न्यायदर्शन का भाष्य करते हुए महर्षि वात्स्यायन ने तथा वेदान्त २।४।१२ का भाष्य करते हुए स्वामी शङ्कर ने न्याय का एक प्रमाण दिया है।

परमतमप्रतिषिद्धमनुमतं भवति।

जो मत किसी दर्शन में प्रतिपादित किया गया हो यदि अन्य दर्शनकार उसका निषेध न करें तब यह मानना चाहिए कि वह मत उसको अनुमत है।

इस न्याय के अनुसार यदि किसी दर्शन में एक मत का प्रतिपादन किया गया हो तथा दूसरे दर्शन में न उसका प्रतिपादन हो और न निषेध तब यह जानना चाहिए कि वह सिद्धान्त उसको स्वीकार है।

पाँच भूतों की सत्ता

पाँच भूतों की सत्ता को भी सब दर्शनकार स्वीकार करते हैं। प्रमाण अधोलिखित हैं—

न्याय

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि ॥—न्या० १.१.१३

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये भूत हैं।

वैशेषिक

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशम् ॥ —वै० १.१.५

पृथिवी आदि द्रव्य तथा भूत हैं।

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ॥ —सां० १.६२

स्थूलभूतों से पाँच सूक्ष्म भूतों का अनुमान होता है।

योग

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

—यो० २.१८

प्रकाश, क्रिया, स्थितिवाला भूत तथा इन्द्रियात्मक दृश्य है।

वेदान्त

त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ॥ —वे० ३.१.२

जीवात्मा जब देहान्तर में जाता है, तब पाँचों भूतों से परिवेष्टित होता है।

मुक्ति में जीव की दशा

मुक्ति में जीव की क्या दशा होती है? इस सिद्धन्त पर भी आधुनिक दार्शनिकों का मतभेद है, कतिपय कहते हैं कि जीव ब्रह्म हो जाता है। कई कहते हैं कि जीव जड़वत् हो जाता है, कई कहते है सर्वथा नष्ट होता है। मेरे विचार में जीव न ब्रह्म होता है, न नष्ट होता है, किन्तु अपने स्वरूप से ब्रह्म के आनन्द को भोगता है। प्रमाण निम्नलिखित हैं—

वेदान्त

सम्पद्याविर्भावः स्वेनशब्दात्॥ —वे० ४.४.१

एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते॥ —छां० ८.३.४

परमात्मा को प्राप्त होकर जीवात्मा अपने रूप से प्रकट होता है, ऐसा वेदादि शास्त्रों में लिखा है, अर्थात् जब तक जीव मुक्त नहीं होता तब तक शरीर से कार्य करता है, तथा मुक्त होकर स्वयं अपनी शक्तियों से कार्य करता है।

स्वामी दयानन्दजी ने नवमसमुल्लास में जीव की चौबीस स्वाभाविक शक्तियाँ लिखी हैं।

मुक्तः प्रतिज्ञानात्॥ —वे० ४.४.२

मुक्त का ऐश्वर्य साधारण जीवों से अधिक होता है।

आत्मा प्रकरणात्॥ —वे० ४.४.३

जीवात्मा जिस ज्योति को प्राप्त होता है, वह भौतिक नहीं किन्तु परमात्मा है।

अविभागेन दृष्टत्वात्॥ —वे० ४.४.४

मुक्ति में जीव प्रभु के सङ्ग रहता है, प्रकृति के सङ्ग नहीं।

शङ्का—स्वामी शङ्कर इसका यह अर्थ करते हैं कि जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं।

समाधान—ब्राह्मणे जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः। —वे० ४.४.५

जैमिनि आचार्य कहते हैं कि अविभाग या समानता जीव ब्रह्म की यही है कि जीव मुक्ति में ब्रह्म के आनन्दादि का उपभोग करता है। यथा—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥
—मुं० ३.२.३

जब देखनेवाला ज्योतिःस्वरूप, संसारकर्त्ता, निराकार, रागादि रहित परमात्मा का दर्शन करता है, तब उसकी समता को प्राप्त होता है।

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलौमिः ॥ —वे० ४.४.६

औडुलौमि कहते हैं कि चेतनता से भी समानता होती है।

एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥

—वे० ४.४.७

व्यासजी कहते हैं कि इन दोनों ही बातों की मुक्ति में समानता होती है।

संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ —वे० ४.४.८

मुक्ति में जीव सङ्कल्प ही से सब कार्य करता है।

अत एव चानन्याधिपतिः ॥ —वे० ४.४.९

इसलिए उसका कोई अन्य सांसारिक राजादि अधिपति नहीं होता।

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ —वे० ४.४.१०

बादरी कहते है कि मुक्ति में शरीर नहीं रहता।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ —वे० ४.४.१२

व्यासजी कहते है कि दोनों ही पक्ष ठीक है भौतिक शरीर नहीं रहता तथा जीवका अपना स्वाभाविक शरीर रहता है।

यही बात महर्षि दयानन्दजी ने लिखी है।

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः ॥ —४.४.१३

भौतिक शरीर के न होने पर भी जीव स्वप्नवत् ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है।

इससे सिद्ध है कि व्यासजी स्वप्न को नवीन वेदान्तियों की भाँति तुच्छ नहीं समझते।

शङ्का—पूर्व सूत्रों में, जीव ब्रह्म की जो समानता बतलाई है, उसके ये अर्थ क्यों नहीं किये जाते कि जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं?

समाधान—जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च ॥

—वे० ४.४.१७

जीव में यह सामर्थ्य कदापि नहीं हो सकता कि वह ब्रह्म की भाँति संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय कर सके, अतः मुक्ति में जीव ब्रह्म नहीं होता।

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः ॥

—वे० ४.४.१८

यदि कहो कि जीव तथा ब्रह्म की प्रत्यक्ष एकता बतलाई है तब जीव ब्रह्म एक क्यों नहीं ? इसका उत्तर यह है कि जीव का ऐश्वर्य माण्डलिक राजा की भाँति होता है, नि:सीम नहीं।

विकारावर्ति च तथाहि स्थितिमाह ॥ —वे० ४.४.१९

जीव की मुक्ति वा ऐश्वर्य जन्य होता है।

दर्शयते चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॥ —वे० ४.४.२०

ऐसा ही श्रुति-स्मृति में लिखा है।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॥ —वे० ४.४.२१

जीव तथा ब्रह्म की केवल भोगमात्र में समानता होती है, जीव ब्रह्म के आनन्द का केवल उपभोगमात्र करता है।

शङ्का—सूत्र में जो अविभाग शब्द आया है उससे जीव ब्रह्म का एकत्व सिद्ध होता है।

समाधान—यह बात ठीक नहीं, क्योंकि संसार में अनेक पदार्थ अविभक्त संयुक्त होते हैं, इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि दो पदार्थों के संयुक्त होने से वे एक होते हैं। जल, वायु, पृथिवी, आकाश आदि सब पदार्थ संयुक्त हैं, किन्तु वे एक नहीं हैं। अनेक गाड़ियाँ इञ्जन के साथ संयुक्त होती हैं, किन्तु वे एक नही होतीं।

योग

'क्लेशकर्मविपाकाशयैः', इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास लिखते हैं—

कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति बहवः केवलिनः। हि त्रीणि बन्धनानि छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ता ईश्वरस्य च तत् सम्बन्धो भूतो न भावी स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः।

यदि क्लेशादि के रहित होने से परमात्मा है तब अनेक मुक्त जीव भी क्लेशादि से रहित हैं, पुनः वे ईश्वर क्यों नहीं ? इसका उत्तर व्यासजी यह देते हैं कि मुक्त जीव तीन बन्धनों को काटकर मुक्त होते हैं, किंन्तु परमात्मा सर्वदा मुक्त तथा सर्वदा ईश्वर है,उसका क्लेशादि के साथ सम्बन्ध भूत, भविष्यत् किसी भी काल में नहीं होता। इस बात से स्पष्ट सिद्ध है कि योग के भाष्यकार तथा वेदान्त के कर्त्ता व्यासजी मुक्ति में भी जीव तथा ईश्वर की सत्ता को भिन्न-

भिन्न मानते हैं।

मूर्त्तिपूजा

बहुत-से पौराणिक पण्डित यह कहा करते हैं कि मूर्त्तिपूजा परमात्मा की प्राप्ति का साधन है, परन्तु छह दर्शनों में कहीं भी मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं आता, किन्तु इसके विपरीत खण्डन आता है। प्रमाण अधोलिखित हैं—

आवृत्तिरसकृदुपदेशात्॥ —वे० ४.१.१

शास्त्रों में अनेक बार इस बात का उपदेश है कि ब्रह्म का उपदेश करना चाहिए, अतः आवृत्ति—पुनः-पुनः योगाभ्यास करना चाहिए।

लिङ्गाच्च॥ —वे० ४.१.२

वेद में भी ऐसा ही विधान आता है। यथा—

एकः सुपर्णः ससमुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यम्॥ —१०.११४.४

जो एक प्रभु सब संसार में व्यापक है, उसी प्रभु की उपासना पवित्र मन के द्वारा करनी चाहिए।

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च॥ —वे० ४.१.३

जिसकी उपासना करनी चाहिए वह परमात्मा है, ऐसा ही शास्त्रों में लिखा है।

न प्रतीके न हि सः —वे० ४.१.४

प्रतीक अर्थात् पाषाण आदि की मूर्त्ति में ध्यान नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि वह परमात्मा नहीं है। इस सूत्र में स्पष्ट महर्षि व्यास ने प्रतीकोपासना का खण्डन किया है।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्॥ —वे० ४.१.५

सम्पूर्ण वेदों में ब्रह्मदृष्टि, अर्थात् ब्रह्म के ध्यान का ही उत्कर्ष आता है।

आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः॥ —वे० ४.१.६

जो यज्ञ में आदित्य आदि मति है, वहाँ भी आदित्य नाम परमात्मा का ही है।

ध्यानाच्च॥ —वे० ४.१.८

अतः उस एक परमेश्वर का ही ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकरण में व्यासजी ने स्पष्ट रूप से पार्थिवादि पाषाणपूजा

का निषेध किया है।

मुक्तों की कर्म-व्यवस्था

जीवन्मुक्तों के कर्म रहते हैं या नहीं तथा मुक्ति में कर्मों का सर्वथा अभाव होता है, या भाव, इस सिद्धान्त पर भी दर्शनों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। नीचे विवेचना की जाती है—

तदधिगम उत्तरपूर्वाधयोरश्लेषविनाशौ तद् व्यपदेशात्॥

—वे० ४.१.१३

परमेश्वर की प्राप्ति के अनन्तर जीव के सञ्चित तथा भावी पाप कर्मों का असम्बन्ध तथा विनाश हो जाता है, ऐसा ही शास्त्र में आता है।

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते॥ —छां० ४.१४.३

जैसे कमल पत्र को पानी स्पर्श नहीं करता वैसे ही मुक्त जीव को पाप कर्म स्पर्श नहीं करता।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

—मुं० २.२.२७

प्रभु दर्शन के अनन्तर जीव के कर्म क्षीण हो जाते हैं।

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु॥ —वे० ४.१.१४

पुण्यकर्म का भी शरीरपात के अनन्तर जीव से सम्बन्ध नहीं रहता।

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः॥ —वे० ४.१.१५

तस्य तावदेव चिरं यावन्न मोक्ष्येऽथ संपत्स्ये॥ —छां० ६.१४.२

मुक्त जीव के सञ्चित तथा क्रियाण कर्म ही क्षीण होते हैं प्रारब्ध कर्म नहीं, वे तो भोगकर ही क्षीण होते हैं।

शङ्का—इस प्रकरण में व्यासजी ने विस्पष्ट कर्मों का नष्ट होना लिखा है, पुनः मुक्ति से पुनरावृत्ति कैसे होगी?

समाधान—इस प्रकरण में कर्मों का क्षीण होना तथा जीव से असम्पर्क लिखा है, अत्यन्ताभाव नहीं।

शङ्का—जीवन्मुक्त को कर्म करने चाहिएँ या नहीं? वेदान्ती तो यह मानते हैं कि—

निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां कोऽधिको निषेधः।

जीवन्मुक्त के लिए विधि-निषेध कुछ भी नहीं है।

समाधान—आ प्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम्॥ —वे० ४.१.१२

मरणपर्यन्त जीवन्मुक्त को प्रभु का ध्यान करना चाहिए।

अग्निहोत्रादि तु तत् कार्यायैव तद्दर्शनात् ॥ —वे० ४.१.१६

अग्निहोत्रादि भी मुक्ति के लिए ही होते हैं, ऐसा ही शास्त्र में लिखा है।

तमेतं ब्रह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन ॥ —बृ० ४.४.२२

उस परमेश्वर को ब्राह्मण लोग यज्ञ, दानादि से प्राप्त करना चाहते हैं।

इनसे सिद्ध है कि जीवन्मुक्त को भी कर्म करने चाहिएँ।

सांख्य

जीवन्मुक्तश्च ॥ —सां० ३.७८

जीवन्मुक्त पुरुष भी संसार में होते हैं। युक्ति अधोलिखित है—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत् सिद्धिः ॥ —सां० ३.७९

यदि संसार में जीवन्मुक्त न हों तब मुक्ति आदिका यथार्थ अनुभव कौन बतलाएगा, अतः जीवन्मुक्त की सत्ता स्वीकार करनी चाहिए।

श्रुतिश्च ॥ —सां० ३.८०

वेद से भी जीवन्मुक्तों की सत्ता सिद्ध होती है।

इतरथान्धपरम्परा ॥ —सां० ३.८१

यदि जीवन्मुक्तों की सत्ता स्वीकार न की जाए तब संसार में अन्धपरम्परा चल जाए।

चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः ॥ —सां० ३.८२

जैस कोई मनुष्य किसी चक्र को घुमाकर छोड़ देवे तो पूर्ण वेग से छोड़ने पर भी वह बड़ी देर तक घुमता रहेगा, इसी प्रकार जीवन्मुक्तों का शरीर भी प्रारब्ध-कर्मों से बना रहता है।

संस्कारलेपतस्तत् सिद्धिः ॥ ३.८३ ॥

संस्कारों के लेप से जीवन्मुक्तों का शरीर रहता है।

मृत्यु के पश्चात्

मृत्यु के पश्चात् जीव की क्या गति होती है, इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है, कतिपय विद्वान् कहते हैं कि जीव मरने के पश्चात् सूर्योदि लोकों में जाता है, पुनः वर्षा के द्वारा ओषधियों में आ कर पुरुष के वीर्य के द्वारा जन्म ग्रहण करता है। अपर विद्वानों का कथन है कि मरने के उपरान्त जीव उसी समय जन्म ग्रहण करता है, इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डाला जाता है—

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥ —वे० ४.२.१

जब मनुष्य मरता है तब प्रथम उसकी वाणी मन में लीन होती है पुरुष बोलना बन्द कर देता है। ऐसा ही उपनिषद् में लिखा है—

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणो प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ —छां० ६.८.६

हे सौम्य! जब यह मनुष्य मरता है तब इसकी वाणी मन में लीन हो जाती है, मन प्राण में तथा प्राण तेज में और तेज जीवात्मा में प्राप्त होता है।

अत एव च सर्वाण्यनु ॥ —वे० ४.२.२

वाणी के पश्चात् सब इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं।

तन्मनः प्राणा उत्तरात् ॥ —वे० ४.२.३

मन प्राण को प्राप्त होता है।

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॥ —वे०४.२४

वह प्राण जीवात्मा में लीन हो जाता है, ऐसा ही शास्त्र में लिखा है।

एवमेवात्मानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति ॥

—बृ० ४.३.३८

इस प्रकार सब प्राण आत्मा में प्राप्त होते हैं।

समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ॥ —वे० ४.२.७

विद्वान् तथा अविद्वान् की वाणी आदि का मन आदि में लीन होना समान है, केवल नाड़ी प्रवेश में विशेषता है।

तदोकोऽग्रज्वलनं तत् प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेष-गत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीताः शताधिकया ॥ —वे० ४.२.१७

ब्रह्मविद्या के बल से, ब्रह्मप्राप्ति के स्मृतियोग से जिसके लिए मोक्षमार्ग का द्वार प्रकाशित हो गया है, जिसपर परमात्मा की पूर्ण कृपा है, जिसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है वह योगी सुषुम्णा नाड़ी द्वारा प्राण छोड़ता है तथा अन्य साधारण पुरुष दूसरी नाड़ियों द्वारा प्राण छोड़ते है, यही दोनों की विशेषता है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्ङन्ये उत्क्रमणे भवन्ति ॥

एक सौ एक हृदय की नाड़ियाँ हैं, उनमें से एक नाड़ी मूर्धा को

जाती है उसी नाड़ी द्वारा योगी उत्क्रमण करता है तथा मुक्ति को प्राप्त होता है, अन्य संसारी जीव दूसरी नाड़ियों से उत्क्रमण करते हैं।

—वे० ४.२.१८

रश्म्यनुसारी ॥

देह-त्याग के समय में योगी सूर्य की रश्मियों के द्वारा उत्क्रमण करता है।

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च ॥

—वे० ४.२.१९

यदि कहो कि रात्रि को सूर्य के न होने से किरणें कहाँ से आएँगी तब ठीक नहीं, क्योंकि शरीर के साथ सर्वदैव किरणों का सम्बन्ध रहता है। ऐसा ही लिखा है—

अमुष्मादादित्यात् प्रतायन्ते ता आसु नाडीसु सृप्ताः।
आभ्यो नाड़ीभ्यःप्रतायन्ते ते अमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥

—छां० ८.६.२

ये किरणें सूर्य से निकलकर नाड़ियों में प्रविष्ट होती हैं। नाडियों से निकलकर शरीर में प्रवेश करती हैं। शरीर से पुनः सूर्य में प्रवेश करती हैं।

मुक्त पुरुषों की गति

अर्चिरादिना तत् प्रथितेः ॥ —वे० ४.३.१

मुक्तपुरुषों को अग्नि आदि लोक द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ऐसा ही लिखा है—

स एतं देवयानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम्।

—कौ० १.३

मनुष्य विद्वानों के मार्ग का अनुसरण करता हुआ, प्रथम अग्निलोक=ज्ञान को प्राप्त होता है, पश्चात् वायुलोक—कर्म करता है। तदनन्तर वरुणलोक—श्रेष्ठता को प्राप्त होता है, उस श्रेष्ठता के द्वारा इन्द्रलोक, अणिमादि सिद्धियों के ऐश्वर्य को प्राप्त होता है, उसके पश्चात् ब्रह्मलोक=मुक्ति को प्राप्त होता है।

शङ्का—कतिपय विद्वान् अग्निलोकादि शब्दों का अर्थ स्थानविशेष करते हैं पुनः आपने अवस्था विशेष कैसे किया है?

समाधान—'लोक्यत इति लोकः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार लोक शब्द का अर्थ है—अनुभवविशेष, जैसेकि कठोपनिषद् में

लिखा है—

यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके यथाप्सु परीव दृश्यते तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके।

—कठो० ६.५

जैसे दर्पण में मुख की स्पष्ट प्रतीति होती है, इसी प्रकार शुद्धान्तःकरण पुरुष को परमात्मा की स्पष्ट प्रतीति होती है, जैसे स्वप्न में पदार्थ यथार्थ नहीं होते वैसे ही केवल कर्मी लोगों को परमात्मा स्पष्ट प्रतीत नहीं होता तथा जैसे जल में भली प्रकार मुख दिखाई नहीं देता वैसे ही गन्धर्वलोक रसिकों को परमात्मा की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। ब्रह्मज्ञानियों को ही परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होता है।

यहाँ भी लोक शब्द का अर्थ स्थाविशेष नहीं है। स्वामी शङ्कर ने भी अनेक स्थानों पर '**ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकः**' अर्थ किया है, अतः इस प्रकरण में लोक शब्द का अर्थ अवस्थाविशेष है।

सांख्य

सम्प्रति परिमुक्तो द्वाभ्याम्॥ —सां० ६.६

शरीरपात के अनन्तर जब तक जीव दूसरा शरीर धारण नहीं करता तब तक उसको सुख वा दुःख नहीं होता।

चार अवस्था

सन्ध्ये सृष्टिराह हि॥ —वे० ३.२.१

उपनिषदों में स्वप्न में भी सृष्टि लिखी है—

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति।
अथ रथान् रथयोगान् रथपथः सृजते॥ —बृ० ४.३४

स्वप्न में रथ, रथ-मार्ग आदि के न होने पर भी इनकी रचना होती है।

निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च॥ —वे० ३.२.२

कइयों का कथन है कि वहाँ निर्माता तथा पुत्रादि भी होते हैं।

मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्॥

—वे० ३.२.३

स्वप्न में बुद्धिमात्र—ज्ञानमात्र होता है, क्योंकि पूर्णतया सब पदार्थ अभिव्यक्त रूप में नहीं होते।

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः॥ —वे० ३.२.४

स्वप्न शुभ तथा अशुभ संस्कारों का सूचक होता है। जैसे शुभ तथा अशुभ मनुष्य के विचार होते हैं, वैसा ही स्वप्न आता है।

शङ्का—जीव को विपरीत ज्ञान तथा मिथ्या स्वप्नादि क्यों होते हैं?

समाधान—पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ।

—वे० ३.२.५

परमात्मा के ध्यान, भजन, भक्ति से तिरोहित=छिपा हुआ, अर्थात् प्रभु की भक्ति से जीव जब तक ओझल रहता है, जब तक उसकी भक्ति नहीं करता, तब तक इसको बन्ध व विपरीत ज्ञान होते रहते हैं।

देहयोगाद्वा सोऽपि ॥ —वे० ३.२.६

पूर्वकृत कर्म द्वारा इसको जो देह मिलता है, उससे भी इसका बन्ध होता है।

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ॥ —वे० ३.२.७

पुरीतत् नाड़ी में स्वप्न का अभाव होने से आत्मा में सुषुप्ति होती है।

अतः प्रबोधोऽस्मात् ॥ —वे० ३.२.८

सुषुप्ति के अनन्तर जाग्रत् अवस्था होती है।

स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्याम् ॥ —वे० ३.२.९

जो जीव सुषुप्ति आदि में होता है वही जाग्रत् का भोक्ता होता है।

१. यदि सम्पूर्ण अवस्थाओं का जीव भिन्न-भिन्न माना जाए तब कर्म की कोई भी व्यवस्था नहीं रह सकती, क्योंकि कर्म का कर्त्ता भिन्न तथा भोक्ता भिन्न, इससे कृतहान तथा अकृताभ्यगम दोष भी आता है।

२. जाग्रत् में जीव कहता है मैं अत्यन्त आनन्द से सोया इस अनुस्मृति से सिद्ध है कि सुषुप्ति वा जाग्रत् का जीव एक ही है।

इति
सम्मतियाँ

श्री स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ महाराज

मैंने श्रीयुत पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी का लिखा 'छह दर्शनों का अविरोध' नामक महानिबन्ध पण्डितजी से सुना। सांख्यदर्शन के अनीश्वरवाद परतया प्रसिद्ध प्रकरणों की संगति पण्डितजी ने बड़ी योग्यता से लगाई है। जीव परिच्छन्नवाद को पण्डितजी ने एक नया रंग दिया है।

प्रकृति का नित्यत्ववाद गम्भीर चिन्तन का परिणाम है। ईसाइयों ने 'षड्दर्शन दपर्ण' नामक एक पुस्तक लिखी थी। दिवङ्गत महामहोपाध्याय पण्डित श्री आर्यमुनिजी ने इसका उत्तर लिखा था। श्री मीरपुरीजी का यह महानिबन्ध उस ईसाई पुस्तक का साक्षात् खण्डन न होते हुए भी उसके समस्त विषयों का खण्डन करता है और यदि यह अनुचित न समझा जाए, तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि श्री महामहोपाध्यायजी की पुस्तक से यह महा-निबन्ध अधिक उत्तम एवं सुसङ्गत है। ऐसा उत्तर लिखने के लिए श्री मीरपुरीजी को भूयो भूयः साधुवाद।

श्री पण्डित मुक्तिरामजी उपाध्याय

पण्डित श्री बुद्धदेवजी मीरपुरी का 'षड्दर्शन समन्वय' नामक बृहत् निबन्ध मैंने उन्हीं के श्रीमुख से सुना। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए आर्यसमाज के क्षेत्र में यह प्रथम ही प्रयत्न है। पण्डितजी महाराज ने अपने इस निबन्ध में विवादास्पद सभी विषयों पर प्रकाश डाला है। दर्शनों के विवादास्पद स्थलों के समन्वयार्थ आपने जो कल्पनाएँ की है और सूत्रार्थ किये हैं, वे सर्वथा नवीन हैं। विशेष रूप से ब्रह्मसूत्रों पर से मायावाद के आवरण को दूर करने में तो आप सर्वथा सफल हुए हैं। यह आपके गभ्भीर स्वध्याय का परिणाम है। मुझे यह लिखने में कोई सङ्कोच नहीं है कि आपके इस निबन्ध ने समन्वय का मार्ग खोल दिया है। आपने परमाणुवाद, प्रकृतिवाद, जीववाद, ईश्वरवाद आदि विषयों को प्रत्येक दार्शनिक की परिभाषा में अक्षुण्ण रखते हुए समन्वित किया है। आप का यह समन्वय आर्यसमाज के सिद्धान्त को दृष्टिकोण में रखते हुए सम्पादित हुआ है। ऐसे सुन्दर निबन्ध के लिए मैं आपको बार-बार साधुवाद देता हूँ। इस निबन्ध का प्रकाशन जहाँ सिद्धान्त-दृष्टि से आर्यसमाज के लिए हितकर होगा, वहाँ विद्वानों को इस विषय के परिशीलन में सहायक भी होगा।

मूर्त्तिपूजा–मीमांसा

समर्पणम्

जिनके हृदय में आर्यसमाज के सिद्धान्त तथा
महर्षि दयानन्द के लिए अगाध श्रद्धा है, जो
प्रभु के अनन्य भक्त हैं, प्रत्येक समय,
प्रत्येक अवस्था में आर्यसमाज की
उन्नति का ही चिन्तन करते हैं, जो
सुख-दुःख, लाभालाभ सम्पूर्ण
परिस्थितियों में प्रसन्नचित्त
रहते हैं, जिनके मुखमण्डल
को देखकर दुःखी-से-दुःखी मनुष्य
का भी हृदय-कमल खिल जाता है उन श्रद्धेय
लाला खुशहालचन्दजी 'खुर्सन्द' की सेवा में
यह छोटा-सा उपहार सादर समर्पित
करता हूँ।

भवदीयोः

—बुद्धदेवः

भूमिका

प्रभु-भक्ति किसी बाह्य वस्तु के अधीन नहीं है। यह तो हृदय के भीतर की बात है और वेद भगवान् से लेकर आधुनिक काल के मनुष्यकृत ग्रन्थों तक सब इस सत्य को प्रकट करते हैं कि परमात्मा की मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा करना किसी प्रकार भी परमात्मा की प्राप्ति अथवा आत्म-दर्शन का साधन नहीं है। परमात्मा की पूजा के नाम पर यह जो कुछ प्रचलित हो गया है, यह वेद की शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध है। एक दिन जब महर्षि स्वामी दयानन्दजी महाराज कानपुर में थे तब श्री गंगासहायजी ने स्वामीजी से पूछा कि प्रतिमा-पूजन में क्या दोष है? इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि वेदों की आज्ञा पर चलना धर्म है। वेदों में प्रतिमा-पूजन की आज्ञा नहीं है, न ही इसका वेद में विधान है, इसलिए उनके पूजन में आज्ञाभंग करने का दोष है।

पुराणों में जो मूर्त्तियों का पूजना लिखा है वह सब गप्प तथा असार है। जो यह कहते हैं कि अपनी भावना का फल होता है, उनका कथन भी सत्य नहीं है। तुम बैठे चक्रवर्ती राजा बनने की भावना करते रहो, इतने से सार्वभौम राजा नहीं बन सकोगे, भावना भी सच्ची होनी चाहिए; और यह एक अटल सत्य है कि मूर्त्तिपूजा के कारण आर्य-[हिन्दू]-जाति सन्मार्ग से भटक गई और नाना प्रकार के वहमों में फँस गई।

स्वामी दयानन्द ने अपने तप द्वारा इस सत्य को देख लिया था और जाति तथा संसार के कल्याण के लिए उन्होंने भयंकर कष्ट सहन करते हुए और अन्त में अपने प्राणों की आहुति देकर भी एक ईश्वर की भक्ति का प्रचार और प्रतिमा-पूजन का विरोध किया; परन्तु इस संसार में अत्यन्त आश्चर्यजनक बातें होती हैं। प्रतिमा-पूजकों ने यही सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया कि स्वामीजी महाराज प्रतिमा-पूजन मानते थे।

जो पुस्तक आपके हाथ में है इसमें यह दिखलाया गया है कि स्वामीजी पर इस विषय में जो आक्षेप किये जाते हैं, वे सर्वथा निराधार हैं। पं० श्री बुद्धदेवजी आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा के विख्यात उपदेशक हैं। आपने ही यह पुस्तक लिखी है। पहले अध्याय में उन

हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्त्ति नित्य बनानी पड़ती है, यह बात दूसरी है कि—सनातनधर्मी चार अंगुल या दो बालिश्त की मूर्त्ति बनाते हैं और आर्यसमाजी सौ दो सौ मील लम्बी और पचास साठ मील चौड़ी बनाते हैं, परन्तु बिना मूर्त्ति के इनकी सन्ध्या हो ही नहीं सकती। जब यह प्रतिदिन परमात्मा की मूर्त्ति बनाकर उसकी परिक्रमा करते हैं तब क्या कोई विचारशील मनुष्य कह सकता है कि ये मूर्त्तिपूजा नहीं करते?

उत्तर १—न्यायदर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है—

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्॥

—न्याय० १.२.१२

जहाँ विशेष अर्थ न किया हो, जो बात साधारणतया कही हो वहाँ वक्ता के अभिप्राय (तात्पर्य) को न लेकर उससे उलटा परिणाम निकालना वाक्छल, अर्थात् वाणी का छल होता है।

जितने भी प्रमाण महर्षिकृत पुस्तकों में से पौराणिक मूर्त्तिपूजा की पुष्टि में प्रस्तुत करते हैं, उन सबमें वाक्छल होता है। इस बात को हम स्थान-स्थान पर दर्शाएँगे, जिससे पाठकों को पता लग जाए कि ये किस ढंग से अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

मनसा-परिक्रमा के मन्त्रों के विषय में ऋषि संस्कारविधि में लिखते हैं—नीचे लिखे मन्त्रों से "सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना करे। इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर-भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय, निःशङ्क, उत्साही, आनन्दित, पुरुषार्थी रहना।"

उपर्युक्त लेख में कितने स्पष्ट शब्दों में परमात्मा की सर्वव्यापकता वा पूर्णता दिखलाई है। कभी साकार मूर्त्तिवाला सर्वव्यापक हो सकता है? ऋषि का ऐसा स्पष्ट लेख होने पर भी उससे मूर्त्तिपूजन सिद्ध करना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? यहाँ परिक्रमा के अर्थ परमात्मा के चारों ओर चक्कर लगाना नहीं है, किन्तु जो मनुष्य सन्ध्या करता है, उसकी अपेक्षा से चारों ओर नीचे-ऊपर भागना है। जब अघमर्षणमन्त्र में मन परमात्मा की महिमा को देखता है तब पाप की इच्छा से घबराकर चारों ओर भागता है, किन्तु जिधर भी जाता है उधर ही सर्वव्यापक भगवान् को विद्यमान पाता है, परिणामस्वरूप थककर उसी ब्रह्म में स्थित हो जाता है। बस, यह सिद्ध हो गया कि—परिक्रमा के अर्थ हमारे शरीर की अपेक्षा से चारों ओर नीचे-

ऊपर भागने के हैं, परमात्मा के चारों ओर घूमने के नहीं।

बलिवैश्वदेव और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न २—'पञ्चमहायज्ञविधि' में बलिवैश्वदेव प्रकरण में स्वामी दयानन्दजी ने नीचे लिखे मन्त्र बोल-बोलकर ईश्वर के खाने के लिए बलि रखने की आज्ञा दी है। नीचे लिखे मन्त्रों से बलि रखकर ईश्वर को भोग लगाया जाता है—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः, सानुगाय यमाय नमः, सानुगाय वरुणाय नमः इत्यादि।

स्वामी दयानन्दजी ने इन्द्र, यम, वरुण, सोम, मरुत, भद्रकाली—ये सब नाम परमात्मा के मानकर लिखे हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि जब आर्यसमाजी ईश्वर को भोग लगावें तब तो ईश्वर गट्ट-गट्ट खा जाए और स्वामी दयानन्द भोग लगानेवालों को धार्मिक कहें, किन्तु जब सनातनधर्मी ईश्वर को भोग लगाएँ, तब ईश्वर निराकार हो जाए। ईश्वर को ही नहीं बल्कि "वनस्पतिभ्यो नमः" इससे समाजी वृक्षों को भी दाल-भात-रोटी खिलाते हैं, तब भोग लगाना निःसन्देह मूर्त्तिपूजा है और आर्यसमाजी मूर्त्तिपूजा करते हैं।

उत्तर २—

इमे त इद्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभुवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः॥

—अथर्व० २०.१५.४

हे अत्यन्त स्तोतव्य, प्रभूतैश्वर्यसम्पन्न, विघ्नविनाशक परमात्मन्! जो हम तेरा आरम्भ करके, अर्थात् प्रत्येक सत्कर्म में तेरा ध्यान करके व्यवहार करते हैं, वे हम तेरे ही हैं, तुझसे भिन्न कोई और उपासक की पुकार को नहीं सुनता। जैसे पृथिवी वस्तुओं को अपनी ओर खेंच लेती है उसी प्रकार आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें।

इस मन्त्र में भगवान् ने इस बात का उपदेश दिया है कि—प्रत्येक कार्य के आरम्भ में परमात्मा का नाम अवश्य लेना चाहिए। बलिवैश्वदेवयज्ञ में जो परमात्मा के इन्द्र, वरुण आदि नाम लेकर बलियाँ रक्खी जाती हैं, वह परमात्मा को भोग नहीं लगाया जाता, किन्तु इस वेदमन्त्र के अनुसार कर्म से प्रथम भगवान् का नाम स्मरण करके कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी आदि को अन्न दिया जाता है। शेष रही वृक्षों को भोग लगाने की बात यह आपके समझ की भूल है। जैसे कोई मनुष्य दान देते समय कहता है—१० रुपये धर्मशाला के

लिए वा १० रुपये मन्दिर के लिए। इसका अर्थ यह नहीं कि धर्मशाला वा मन्दिर की ईंटों के लिए दान है, अपितु इसका अर्थ यह है कि मन्दिर वा धर्मशाला में रहनेवालों के लिए यह दान है। इसी प्रकार वनस्पतियों के लिए अन्न देने के अर्थ हैं वृक्षों पर रहनेवाले पक्षियों के लिए अन्न देना चाहिए। आजकल भी आर्य वा आर्यदेवियाँ गर्मियों में वृक्षों के नीचे पानी के बर्तन लटकाते हैं और कबूतर आदि जानवरों को अन्न डालते हैं। यह बलिवैश्वदेव का बिगड़ा हुआ रूप है, इसमें मूर्त्तिपूजा की गन्ध भी नहीं है।

सोमपान

प्रश्न ३—स्वामी दयानन्द ने—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधि हवम्॥

इस मन्त्र से आर्याभिविनय पुस्तक में ईश्वर को भोग लगाया है। आप इस मन्त्र के अर्थ में लिखते हैं कि—हे जगदीश्वर! आप आओ। यह सोमादि समस्त रस आपके लिए बहुत उत्तम रीति से तैयार किया है, सर्वात्मा से आप इसका पान करो। जब आर्याभिविनय में ईश्वर सोमरस के कटोरे भर-भरकर पीता है तो हमारा भोग क्यों नहीं खाता? आर्यसमाज की यह नई फ़िलासफी [दार्शनिकता] हमारी समझ में नहीं आती।

उत्तर ३—ऋग्वेद १.२.१ मन्त्र का अर्थ महर्षि करते हैं—"हे अनन्तबल परेश वायो! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त होओ, हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है, और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं, वे सब आपके लिए, अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं, और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं, उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो)।"

इस मन्त्र के अर्थ में पान शब्द के अर्थ 'रक्षा' हैं, न कि पीना। वक्ता के अभिप्राय से उलटा अर्थ करना विद्वानों का काम नहीं है। देखिए, ऋग्वेदभाष्य में महर्षिकृत इसी मन्त्र का अर्थ "जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं वैसे ही ईश्वर का रचा हुआ भौतिक वायु है, उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा है"। कहिए, अब भी आपकी समझ में आया या नहीं कि—पाहि वा पान का अर्थ रक्षा वा पालन है। दूसरी बात यह है कि—यहाँ सर्वात्मा से पान है कि मुँह से, इससे भी पान

का अर्थ रक्षा है, और आप तो पान से भी मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं कर सकते। तुलसीदासजी ने लिखा है—

बिन पग चले सुने बिन काना,
कर बिन कर्म करे विध नाना।
आननरहित सकल रस भोगी,
बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी॥

इससे पान करते हुए भी परमात्मा की आँख, नाक, कानवाली मूर्त्ति सिद्ध नहीं होती, किन्तु तुलसीदास के कथनानुकूल बिना ही इन्द्रियों के परमात्मा सब काम करता है। कहिए अब आपकी समझ में आया या नहीं कि परमात्मा बिना मुँह के कटोरे भर-भरकर कैसे पीता है।*

पटेले (सुहागे) की पूजा

प्रश्न ४—स्वामी दयानन्दजी अपने बनाये यजुर्वेदभाष्य में पटेले (सुहागे) का पूजन लिखते हैं। अपने खेत में चलनेवाले लकड़ी के पटेले पर घी, दूध, शक्कर, शहद चढ़ाना लिखा है। मन्त्र और स्वामी का अर्थ नीचे देखिए—

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान् सीते पयसाभ्या ववृत्स्व॥[1]

अर्थ—अन्नादि सब पदार्थों की इच्छा करनेवाले विद्वान् मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जल या दुग्ध से पराक्रम सम्बन्धी सींचा या सेवन किया हुआ पटेला घी तथा शहद या शक्कर आदि से संयुक्त करो। पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा। इस हेतु से जल से बार-बार बर्ताओ।

---

* यदि पान का अर्थ पीना भी मान लिया जाए, तब भी ऋषि के इन शब्दों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती। पौराणिकों के ठाकुरजी को भोग लगाने में तो ठाकुरजी के मुँह आदि अङ्ग होते हैं। यहाँ महर्षि स्पष्ट लिख रहे हैं—"सर्वात्मा से पान करो।" महर्षि इन शब्दों में स्पष्ट ही परमात्मा को निराकार और सर्वव्यापक बता रहे हैं, तो फिर परमात्मा का मुँह और मूर्त्ति की कल्पना कैसे? अतः मूर्त्तिपूजा के साथ तो इन शब्दों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं, इस मन्त्र के सारे अर्थ आर्याभिविनय से पढ़ जाओ, प्रभु के साथ स्नेह का अतिशय द्योतित हो रहा है। प्रभु-प्रेम की मस्ती है। सच्चे भगवद्भक्त के हृदय के सच्चे समर्पण के भाव हैं। —**वाचस्पति**

१. यजुः० १२।७०

वेद का मन्त्र और स्वामी दयानन्दजी का अर्थ पाठक देख चुके, अब पाठक विचार लें कि—खेत के पटेला पर दूध, घी, शक्कर चढ़ाना क्या मूर्त्तिपूजन नहीं ? और फिर पटेला से घी, दूध की प्रार्थना करना, जड़ पदार्थों से माँगना भी मूर्त्तिपूजा नहीं ? समाजियों में यही अद्‌भुतता है कि अनेक जड़ पदार्थों को पूजते हुए भी मूर्त्तिपूजा से घबराते हैं। विचित्र लीला है।

उत्तर ४—यजुर्वेद के बारहवें अध्याय में ६७ मन्त्र से लेकर ७१ मन्त्र तक कृषिविद्या का भली प्रकार वर्णन किया है। बोने के साधन कैसे हों, खाद कैसी डालनी चाहिए, बीज कैसा हो इत्यादि बातों का वर्णन खोलकर किया है। ऋषिकृत मन्त्रभाष्य में से कुछ अर्थ देता हूँ।

इन खेतों में विष्ठा आदि मलिन पदार्थ नहीं डालने चाहिएँ, किन्तु बीज सुगन्ध आदि से युक्त करके ही बोवें, जिससे अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावें।

—यजुः० अ० १२ मं० ६९

सब विद्वानों को चाहिए कि—किसान लोग विद्या के अनुकूल घी, मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करेवाली करें। जैसे बीज को सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कारयुक्त करें।

—यजुः० १२।७०

कैसा अच्छा वेद का उपदेश है कि—भूमि में अच्छी खाद डालकर उसको उत्तम करना, बीज को भी अच्छी तरह देखकर या श्रेष्ठ बनाकर बोना चाहिए। जिस आम को सौंफ़ के अर्क में भिगोकर बोया जाता है, उसका नाम सौंफ़िया और उसमें से सौंफ की सुगन्धि आती है। इसी प्रकार यदि शहद आदि में भिगोकर बोया जाए तो अवश्य उसका प्रभाव होता है। इस विद्या की बात को न समझकर पौराणिक पण्डितों को यहाँ पर भी मूर्त्तिपूजा ही दिखती है। दीखे क्यो नहीं, कृषिविद्या से उनका क्या बने, मूर्त्तिपूजा से तो उनका पेट भरता है। कहो! बुद्धि में आया या नहीं। यहाँ पटेले की पूजा नहीं किन्तु बीजों को मधु आदि में सींचकर बोना लिखा है।

ऊखल-मूसल

प्रश्न ५—संस्कारविधि नामक पुस्तक में जातकर्म संस्कार में स्वामी दयानन्द ने ओखली-मूसल को भोग लगवाया है। ओखली

और मूसल दोनों को भोग लगाकर भी मूर्त्तिपूजन का खण्डन, यह उन्हीं से हो सकता है, जो भेड़चाल से स्वामी दयानन्द की माया में पूरे फँस गये हैं। यदि इस मामले को पंचायत में दे दिया जाए कि—ओखली-मूसल की पूजा करनेवाला दयानन्दीसमुदाय मूर्त्तिपूजक है या नहीं, तो ऐसा कोई कारण नहीं दिखता, जिस कारण से आर्यसमाज पर मूर्त्तिपूजक होने की डिगरी न मिले।

उत्तर ५—मैं तमाम पौराणिक पण्डितों को चैलेंज देता हूँ कि—अगर तुममें हिम्मत है, तो तुम संस्कारविधि में इतना शब्द दिखा दो कि—ओखली या मूसल की पूजा करनी चाहिए। क्यों झूठ पर कमर बाँध ली है? जिस मन्त्र को पौराणिक पेश करते हैं, वह यह है—

ओं शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः।
मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥

इस मन्त्र में कई कीड़ों के नाम या उनको मारने का उपदेश है, जिससे प्रसूता या उसके बच्चे को कोई हानि न पहुँचा सके। उलूखलादि ये सब कीड़ों के नाम हैं। कहिए, क्या आप भी मूर्त्तिपूजा के अर्थ मूर्त्तियों को मारना करते हैं? अगर नहीं करते तो क्यों कहते हैं कि यहाँ ओखली की पूजा है। यहाँ तो उलूखल को मारना लिखा है। हाँ आपके भविष्यपुराण में अवश्य लिखा है—

राजतं मूसलं चैव हलं पार्श्वेषु विन्यसेत्।

सुन्दर मूसल की पूजा करनी चाहिए।

कहिए! अब डिगरी पौराणिक सभा पर होगी या आर्यसमाज पर? कहो तो यह मामला पंचायत में दे देवें?

कुश, दर्भ और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न ६—संस्कारविधि में मुण्डन-संस्कार में कुश=दर्भ की पूजा लिखी है। क्या घास पूजनेवाले मूर्त्तिपूजक नहीं? पूजना ही नहीं किन्तु उससे प्रार्थना भी करते हैं—

ओषधे त्रायस्वैनꣳ मैनꣳ हिꣳ सीः।

अर्थ—हे ओषधि कुश! इस बालक की रक्षा कर, इसको मत मार। लीजिए कुश से बालक के बचाने की प्रार्थना करना क्या मूर्त्तिपूजा नहीं है? अवश्य है, किन्तु पक्षपात में उलझे हुए आर्यसमाजियों को ये बातें नहीं सूझतीं।

उत्तर ६—व्याकरण का एक नियम है कि वचन, विभक्ति,

पुरुष, काल आदि सब बातों में व्यत्यय (परिवर्तन) होता है। इसी नियम के अनुसार इस मन्त्र के दो अर्थ होते हैं। जब परमात्मा के पक्ष में लगाते हैं तब मध्यम पुरुष का एक वचन होता है, और ओषधि का अर्थ है परमात्मा—हे ओषधे! सर्वरोग-नाशक परमात्मन्! इस बालक की आप रक्षा कीजिए।

जब इस मन्त्र का अर्थ ओषधि परक होता है तब व्याकरण के नियम से प्रथम पुरुष का एक वचन होता है, और अर्थ होता है यह ओषधि अपने गुणों से इस बालक के अनेक रोगों को दूर करती है। भला, बतलाइए पाठकगण! इस मन्त्र में मूर्त्तिपूजा कहाँ है, किन्तु पौराणिक पण्डितों को तो हर बात में मूर्त्तिपूजा ही सूझती है।

उस्तरा और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न ७—संस्कार विधि में मुण्डन-संस्कार में छुरे को विष्णु की डाढ़ बताना, उससे प्रार्थना करना, नमस्ते करना, आदि बहुत-सी बातें लिखी हैं। अगर नाई का छुरा विष्णु की डाढ़ है तो वह निराकार कैसे रहा? जब निराकार नहीं तो उसकी मूर्त्ति भी है और जब मूर्त्ति है तो उसकी पूजा भी करनी चाहिए। अगर आर्यसमाजी जड़पूजक नहीं तो जड़ को नमस्ते, नमस्कार आदि क्यों करते हैं। जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। जो लोग इतना शोर मचाते थे कि जड़ की पूजा नहीं करना चाहिए, वे सचाई के आगे झुक गये और जड़ छुरे को नमस्कार आदि करके मूर्त्तिपूजक नहीं तो उस्तरापूजक तो बन ही गये।

उत्तर ७—जो मन्त्र पौराणिक छुरे की पूजा सिद्ध करने के लिए देते हैं, वह यह है—

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा मा हिꣳसीः।
निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय
सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ —यजुः० ३.६३

अर्थ—हे जगदीश्वर! आप अविनाशी वज्रमय है, आपका सुख-स्वरूप विज्ञान देनेवाला है। आप मेरे पालन करनेवाले पिता हैं। आपको हमारा सत्कारपूर्वक नमस्कार हो। आप मुझको अल्पमृत्यु से युक्त न कीजिए। आयु, अन्न, प्रजनन—अच्छी प्रजा, धन की रक्षा, बल, पराक्रम आदि सम्पूर्ण पदार्थ आपकी ही भक्ति से मिल सकते हैं, इसलिए आस्तिक होकर मैं आपकी भक्ति करता हूँ।

मैंने वेदमन्त्र का प्रमाण देकर सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक

कार्य भगवान् की प्रार्थना करके करना चाहिए। मुण्डन में भी ईश्वर की प्रार्थना के पश्चात् ही पिता अपने पुत्र के बालों को काटता है। यह उसकी आस्तिकता है। इस मन्त्र में स्वधिति आदि सम्पूर्ण नाम परमात्मा के हैं और परमात्मा ही से प्रार्थना या उसी को नमस्ते अर्थात् नमस्कार किया गया है, किसी जड़ छुरे, उस्तरे को नहीं। महर्षि दयानन्दजी ने भी इस मन्त्र को ईश्वर या विद्वान्परक ही लगाया है, उस्तरा अर्थ नहीं किया। यह पौराणिक पण्डितों का छल है जो इस मन्त्र से छुरे की पूजा सिद्ध करते हैं।

हाँ, भविष्यपुराण में अवश्य लिखा है—

क्षुरिके रक्ष मां नित्यम्।

हे छुरे! तू मेरी रक्षा कर।

इसपर कई पौराणिक कह देते हैं कि हम तो छुरे की पूजा इसलिए करते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप है। इन पण्डितों का भी विचित्र मस्तिष्क है। कभी यह सिद्ध करते हैं कि हम जड़ मूर्त्ति की पूजा नहीं करते, किन्तु उसमें व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं और कभी कहते हैं कि छुरे की पूजा इसलिए करते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप है। यह वदतोव्याघात है, इसलिए मानने के योग्य नहीं। यदि सारा संसार परमात्मा है तो फिर आप भी परमात्मा हुए। जब सब-कुछ ब्रह्म-ही-ब्रह्म है तब किसकी कौन पूजा करेगा?

''**विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि**''—इसका अर्थ यह नहीं कि छुरा परमात्मा की डाढ़ है, किन्तु ''**यज्ञो वै विष्णुः**'' इस ब्राह्मणवचन के अनुसार विष्णु नाम यज्ञ का है और उस्तरा उसका साधन, अर्थात् हथियार है।

इसपर कई पण्डित कहते हैं कि इस वाक्य का अर्थ यह नहीं कि यज्ञ का नाम विष्णु है, किन्तु यज्ञ विष्णु, अर्थात् परमात्मा का नाम है, जब यह सिद्ध हो गया कि यह नाम परमात्मा का है तब छुरा ईश्वर की डाढ़ ही रहा। यहाँ इनका यह अर्थ शतपथ की शैली के विरुद्ध है, क्योंकि ''**राष्ट्रं वै अश्वमेधः, ज्योतिर्वै पुरिषम्**'' इत्यादि सम्पूर्ण वाक्य हमारे अर्थ को पुष्ट करते हैं। दूसरी बात यह कि यदि विष्णु का नाम यज्ञ है, तो इसमें हमारी कोई हानि नहीं। विष्णु का अर्थ यज्ञ है। विष्णु यज्ञ को इसलिए कहते हैं कि इसमें डाले हुए सब पदार्थ जल, वायु में व्याप्त हो जाते हैं, इसलिए यहाँ उस्तरा यज्ञ का साधन है। यही अर्थ उपयुक्त है। ''**स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः॥**'' इस श्रुति का अर्थ भी परमात्मपरक है। हे स्वधिते! अविनाशी, अखण्डनीय

परमात्मन्! आप इस बालक की आयु को लम्बा कीजिए। इसमें उस्तरे से नहीं किन्तु परमात्मा से ही प्रार्थना है।

रीढ़ की हड्डी और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न ८—स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में लिखा है कि हृदय, नाभि, रीढ़ की हड्डी, नासिकाग्रभाग या किसी अन्य स्थान का ध्यान करना चाहिए। हम इन आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है? आप तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते थे और यहाँ तो स्वामीजी ने हड्डी की पूजा लिखी है। हड्डीपूजक बुरे होते हैं या मूर्त्तिपूजक?

उत्तर ८—इस विषय में महर्षि दयानन्द का जो लेख है वह नीचे दिया जाता है, जिससे पाठकों को पता लग जाए कि क्या यह हड्डी की पूजा है या परमात्मा की। स्वामीजी लिखते हैं—

"जब उपासना करना चाहें तब एकान्त, शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में या हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवें।"

मन एक देशी है सर्वदेशी नहीं, उसने शरीर के किसी एक हिस्से में रहना है, सबमें नहीं, इसलिए न्यायदर्शन में लिखा है कि मन एक समय में एक काम करता है, अनेक नहीं, अतः शरीर के किसी-न-किसी एक ही प्रदेश में ठहरता है, परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या यह हृदय आदि की पूजा है? कभी नहीं। जैसे वेद में लिखा है कि—

उपह्वरे गिरीणाᳫं सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत॥

पर्वतों की गुफाओं में या नदियों के सङ्गम पर, किसी एक स्थान पर बैठकर भगवान् की उपासना करनी चाहिए।

इसका यह अर्थ नहीं कि यह स्थान की पूजा है। आसन पर बैठकर सन्ध्या करने से आसन की पूजा नहीं होती। इसी प्रकार से मन नाभि आदि चाहे किसी प्रदेश में रहे। स्वामीजी लिखते हैं कि मनुष्य को चाहिए अपने आत्मा से परमात्मा में लीन हो जाए। यहाँ आत्मा परमात्मा का चिन्तन है, नकि हड्डी या हृदय का।

जो लोग यह उपहास करते हैं कि आर्यसमाजी हड्डीपूजक हैं, उन्हें कुछ बुद्धि से कार्य लेना चाहिए। क्या इस हिसाब से पौराणिक

बिच्छुपूजक, सर्पपूजक, पत्थरपूजक, वृक्षपूजक आदि नामोंवाले नहीं होंगे ? कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसकी पूजा पुराणों में न लिखी हो।

कुरानी और पौराणिक मूर्त्तिपूजा

सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का खण्डन करते हुए स्वामीजी लिखते हैं कि "हे मुसलमानो ! तुम जो हिन्दुओं को बुत्परस्त कहते हो, क्या तुम मस्जिदुल् हरम की पूजा नहीं करते हो ? आप हिन्दुओं से भी बड़ी मूर्त्ति की पूजा करते हैं। अगर आप कहें कि हम तो मक्के की तरफ मुँह करके परमात्मा की पूजा करते हैं, तो हिन्दू भी तो यही कहते हैं कि हम मूर्त्ति के आगे परमात्मा की पूजा करते हैं।" इस स्वामीजी के लेख से मूर्त्तिपूजा ही सिद्ध नहीं होती, किन्तु युक्ति देकर स्वामी मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करते हैं। इस लेख की विद्यमानता में आर्यसमाजी कैसे कह सकते हैं कि हम मूर्त्तिपूजक नहीं है।

उत्तर ९—जो लेख स्वामीजी ने लिखा है, उसे यहाँ लिखना आवश्यक है। मैंने कई शास्त्रार्थों में देखा है कि पौराणिक सम्पूर्ण लेख नहीं पढ़ते, किन्तु भ्रम में डालने के लिए बीच-बीच में से पढ़कर सुना देते हैं। लेख यह है—

"**समीक्षक**—क्या यह छोटी बुत्परस्ती है ? नहीं बड़ी।

पूर्वपक्षी—हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं हैं, किन्तु बुत्शिकन, अर्थात् मूर्त्तों को तोड़नेहारे हैं। हम किबले को खुदा नहीं समझते।

उत्तरपक्षी—जिनको तुम बुत्परस्त समझते हो वे भी उन-उन मूर्त्तों को ईश्वर नहीं समझते, किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि तुम बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस बड़े बुत् किबले को क्यों नहीं तोड़ते ?

प्रश्न—वाहजी हमारे तो किबले की ओर मुँह करने का कुरान है हुक्म है और इनके वेद में नहीं।

उत्तर—जैसे तुम्हारे लिए कुरान में हुक्म है वैसे इनके लिए पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को खुदा का हुक्म समझते हो, वैसे ही पुराणी पुराणों को खुदा के अवतार व्यासजी का वचन समझते हैं। तुम और इनमें बुत्परस्ती का कुछ भिन्न भाव नहीं है, प्रत्युत तुम बड़े बुत्परस्त और ये छोटे हैं, क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उसके घर में ऊँट प्रविष्ट हो जाए वैसे ही मुहम्मद साहिब ने छोटे बुत्

को मुसलमानों में से निकाला, परन्तु बड़े बुत् जोकि पहाड़-सदृश मक्के की मस्जिद है, वह मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी? क्या यह छोटी बुत्परस्ती है? हाँ, जो हम लोग वैदिक हैं, वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ, तो बुत्परस्ती आदि बुराइयों से बच सको अन्यथा नहीं। तुम जब तक अपनी बड़ी बुत्परस्ती को न निकाल दो तब तक दूसरी छोटी बुत्परस्ती के खण्डन से लज्जित हो निवृत्त रहना चाहिए और अपने आपको बुत्परस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिए।

पाठक! यदि आप ध्यान से महर्षि का लेख पढ़ेंगे तो आपको भली प्रकार विदित हो जाएगा कि ऋषि ने इस लेख में मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया है या मण्डन? महर्षि तो मुसलमानों को सच कहते हैं कि हम जैसे वैदिक बनकर ही मूर्त्तिपूजा आदि बुराइयों से बचोगे, अन्यथा नहीं। जब स्वामीजी मूर्त्तिपूजा को बुरा बतलाते हैं तब इस लेख में मूर्त्तिपूजा बतलाना क्या अत्यन्त अनुचित नहीं? और अन्त में उन्होंने लिखा है कि मूर्त्तिपूजा छोड़कर पवित्र हो जाओ। इस लेख का अभिप्राय इतना ही है कि मूर्त्तिपूजक को मूर्त्तिपूजा के खण्डन का अधिकार नहीं, जब तक कि वह स्वयं मूर्त्तिपूजा न छोड़े, जैसे पौराणिक मूर्त्तिपूजक वैसे मुसलमान मूर्त्तिपूजक। इन दोनों को मूर्त्तिपूजा छोड़कर ईश्वरपूजा या वैदिक धर्म को मानना चाहिए।

प्रत्यक्ष ब्रह्म और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न १०—सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ ही में स्वामीजी लिखते हैं—

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, इत्यादि। इसमें स्वामीजी ने ब्रह्म को प्रत्यक्ष लिखा है। यदि वह मूर्त्तिवाला साकार नहीं है तो उसका प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है, क्योंकि वह स्वामीजी के लेख के अनुसार प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्ष मूर्त्तिवाला होता है, इसलिए मूर्त्तिपूजा सिद्ध है।

उत्तर १०—ऋग्वेद में यह लिखा है कि ब्रह्म का प्रत्यक्ष कैसे या किस वस्तु से किया जाता है—

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळिह स उ रेळिह मातरम्॥

—ऋ० १०.११४.४

अर्थ—वह परमात्मा एक है, वही सम्पूर्ण संसार में व्यापक है।

मैं उस ब्रह्म को परिपक्क मन या आत्मा से देखता हूँ।

प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है एक बाह्य इन्द्रियजन्य दूसरा आभ्यन्तर, अर्थात् जो मन या आत्मा से किया जाता है, उसी को मानसिक या आत्मिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे लिखा है—"**दृश्यते त्वग्र्यया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**", उस प्रभु के दर्शन सूक्ष्म बुद्धि से होते हैं, इसलिए परमात्मा को प्रत्यक्ष कहने से उसकी मूर्त्ति सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उसका आत्मा से प्रत्यक्ष किया जाता है, और आत्मा परमात्मा दोनों निराकार हैं।

डण्डा, जूता और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न ११—संस्कार-विधि के समावर्तनसंस्कार में स्वामीजी ने डण्डे वा जूते की पूजा लिखी है। अब तो आपको पता लगा या नहीं? आप तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते थे, किन्तु यहाँ डण्डे या जूते की पूजा निकल आई। चौबेजी गये छब्बेजी बनने रह गये दूबे जी। अच्छी हुई।

उत्तर ११—इस शङ्का पर तो पौराणिक पण्डित अपनी बुद्धि का दिवाला ही निकाल देते हैं। मैं तो इन पण्डितों को कहता हूँ कि जिन की पूजा तुम संस्कार-विधि आदि पुस्तकों में बतलाते हो, वहाँ पर हमें इतना ही बतला दो कि इन वस्तुओं में से किसी एक के लिए यह लिखा हो कि इस वस्तु की पूजा करनी चाहिए। अगर नहीं दिखला सकते तो आपका यह कथन असत्य है कि संस्कार-विधि में डण्डे आदि की पूजा लिखी है। जूते या डण्डे की पूजा की वास्तविकता नीचे लिखी जाती है। समावर्तन-संस्कार में स्नातक जूता पहनते समय कहता है—

"**प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।**"

इन सुदृढ़ जूतियों को पैर की रक्षा के लिए पहनता हूँ।

"**ओं विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः।**"

यह डण्डा प्रत्येक प्रकार से रक्षा करनेवाला है।

इस मन्त्र से हाथ में डण्डा ग्रहण करता है। मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि ब्रह्मचारी जूता पैर में पहनकर चलता है? क्या यह जूते की पूजा है? क्या जिन चीजों की पूजा की जाती है उनकी यही दशा की जाती है? क्यों भ्रम में पड़े हो? ये तो रक्षा के लिए धारण किये जाते हैं, नकि पूजा के लिए। हाँ, डण्डे से अवश्य पूजा मिलती है, पापियों को ठीक करने के लिए।

मूर्त्तिपूजक लोग ये ही शङ्काएँ आर्यसमाज की पुस्तकों पर किया करते हैं, जिनका उत्तर हमने दे दिया। कई पौराणिक लोगों ने ऐसे ट्रैक्ट पञ्चमहायज्ञविधि आदि पुस्तकों के नाम से छाप रखे हैं जिनसे मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने की कोशिश किया करते हैं। ऐसे अवसरों पर उनसे कहना चाहिए कि क्या यह अजमेर की छपी पंचमहायज्ञविधि आदि पुस्तक है, यदि तुममें हिम्मत है तो जिस बात को तुम कहते हो वह इस पुस्तक में दिखलाओ, यदि नहीं दिखला सकते तो जो पुस्तक तुम ऋषि दयानन्द के नाम से प्रस्तुत करते हो वह ऋषिकृत नहीं, अपितु तुम्हारी कपोलकल्पित है, हम इसको नहीं मानते। जाली पुस्तक बनाना तुम्हारे लिए कोई नई बात नहीं। प्रथम भी व्यासादि ऋषियों के नाम से तुमने अनेक जाली पुस्तकें बना रक्खी हैं।

द्वितीयोऽध्यायः

पुराण और मूर्त्तिपूजा

जिन पुराणों को पौराणिक लोग वेद से भी प्रथम मानते हैं और परमात्मा के अवतार व्यासजी का वचन कहते हैं, अब मैं उन्हीं पुराणों से बतलाऊँगा कि मूर्त्तिपूजा करना ठीक नहीं है। कई पौराणिक पण्डित कह दिया करते हैं कि जब तुम समाजी पुराणों को नहीं मानते तो उनका प्रमाण क्यों देते हो? इन पण्डितों को इस बात का ध्यान बिल्कुल नहीं रहता कि ये लोग सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकों को न मानते हुए भी अपनी पुस्तक, भाषण, शास्त्रार्थ आदि में मूर्त्तिपूजा आदि अवैदिक सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिए ऋषि दयानन्दकृत पुस्तकों का प्रमाण क्यों उपस्थित कर देते हैं? भाई! शास्त्रार्थ का यह नियम है कि जिस सिद्धान्त को मनुष्य सिद्ध करना चाहे अगर उसी सिद्धान्त को सिद्ध करने के प्रमाण प्रतिवादी की पुस्तक से निकाल देवे तो वह सिद्धान्त सबसे अधिक दृढ़ हो जाता है। यदि आर्यसमाजी पुनर्जन्म का प्रमाण कुरान से या मूर्त्तिपूजा के निषेध का प्रमाण पुराण से निकाल देवे तो इससे बढ़कर और क्या प्रमाण पुनर्जन्म के होने में या मूर्त्तिपूजा के खण्डन के लिए हो सकता है? कोई आदमी किसी मनुष्य से कहता है कि तुमने मेरे दस रुपये देने हैं, और प्रमाण के लिए उसी कर्जजार की बही में से रुपये देने का लेख प्रस्तुत कर देवे तो कर्ज के देने में सबसे बड़ा प्रमाण माना जाएगा।

आर्यसमाज परमात्मा को निराकार मानता है इसमें कोई झगड़ा नहीं, क्योंकि पौराणिक भी परमात्मा को निराकार मानते हैं, यह सिद्धान्त उभयपक्ष सम्मत है और निराकार की मूर्त्ति भी नहीं होती, यह भी दोनों पक्ष मानते हैं, इसलिए आर्यसमाज का सिद्धान्त तो सिद्ध है।

मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने के लिए पौराणिक परमात्मा का दूसरा स्वरूप साकार मानते हैं। यह साध्य है, क्योंकि आर्यसमाज इसको नहीं मानता। जितनी मूर्त्तियाँ मन्दिरों में पूजी जाती हैं, पौराणिक पण्डितों का कहना है कि वे सब इसी साकार देहधारी परमात्मा की

हैं। जिन पौराणिक परमात्माओं की मूर्त्तियाँ मन्दिरों में पूजी जाती हैं, वे परमात्मा नहीं थे और उनके पूजनेवालों को मुक्ति नहीं, किन्तु दुःख मिलता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए पाँच युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

१. जिन पौराणिक देवताओं की मूर्त्तियाँ मन्दिरों में पूजी जाती है वे किसी दूसरे की उपासना, भक्ति और नाम-स्मरण करते हैं।

२. परमात्मा के निराकार, पूर्णकाम, सर्वज्ञ, सृष्टिकर्त्ता आदि जो गुण बतलाये हैं, वे इन पौराणिक ईश्वरों में नहीं घटते।

३. इनकी पूजा करनेवालों के लिए दुःख लिखा है, ईश्वर की भक्ति दुःख से छूटने के लिए की जाती है, न कि दुःख के लिए।

४. जो आचार इन परमात्माओं का पुराणों में बतलाया है उससे तो यह सिद्ध होता है कि ये साधारण मनुष्य भी नहीं थे।

५. इनके आपस में झगड़े या एक-दूसरे की निन्दा से यह सिद्ध होता है कि इनमें से कोई भी ईश्वर नहीं है।

इन सब युक्तियों के लिए नीचे पुराणों के प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। उनका अर्थ भी वही देता हूँ, जो पौराणिकों ने किया है।

ब्रह्मा आदि अन्य के उपासक हैं

पौराणिक परमात्माओं में से ब्रह्मा, विष्णु, महेश मुख्य परमात्मा हैं। इनके लिए यदि सिद्ध हो जाए कि ये परमात्मा नहीं हैं तो दूसरे देवों का अनीश्वरत्व अपने आप सिद्ध हो जाएगा। देवीभागवत के स्कं० ३ अ० ४ में तीनों देवता अपनी अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं—

वयं युवतयो जाता सुरूपाश्चारुभूषणाः।
विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत् सन्निधिं पुनः॥ ७॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, शिव हम तीनों नवयुवति स्त्रियाँ हो गईं, हमारे भूषण या वस्त्र स्त्रियोंवाले थे। यह दशा देखकर हमें परम विस्मय हुआ। देवी के चरणों के समीप जाकर विष्णु कहने लगा—

विष्णु

अकर्ता— **ज्ञातं मयाऽखिलमिदं त्वयि संनिविष्टं,**
त्वत्तोऽस्य संभवलयावपि मातरद्य।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा,
ज्ञाताऽधुना सकललोकमयीति नूनम्॥ ३०॥

अर्थ—हे जननि! मैंने आज ही यह जाना कि इस संसार को बनाने या प्रलय करनेहारी आप ही हैं। आप ही के अन्दर इस ब्रह्माण्ड को बनाने की शक्ति है, अन्य में नहीं, यह इस समय मैंने जाना है।

वेद कहता है "**द्यावाभूमी जनयन् देव एकः**" उसी एक परमात्मा ने प्रकाशमयलोक तथा पृथिवी आदि लोक बनाये, किन्तु यहाँ विष्णु कहता है कि मैं संसार का बनानेवाला नहीं हूँ।

अज्ञानी— **नाहं भवो न च विरिंचि विवेद मातः,**
कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम्।
कानीह सन्ति भुवनानि महाप्रभावे,
ह्यस्मिन् भवानि चरिते रचनाकलापे॥ ३५॥

अर्थ—हे मातः! मैं विष्णु, शिव, ब्रह्मा तेरे चरित्र को नहीं जानते। जब हम ही तेरे चरित्र को नहीं जानते तो दूसरा कौन जान सकता है? इस संसार में कौन-कौन-से लोक हैं, इस बात को हम नहीं जानते।

वेद कहता है कि परमात्मा सर्वज्ञ है, किन्तु यहाँ विष्णु अपने को ही नहीं किन्तु शिव आदि सबको अज्ञानी बतलाता है, इससे सिद्ध है कि ये परमात्मा नहीं।

अनेक— **अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव,**
दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न सन्ति किं ते,
किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम्॥ ३६॥

अर्थ—हमने इस संसारलोक में ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी दूसरे ही देखे हैं, क्या दूसरे लोकों में शिवादि नहीं है, अवश्य हैं, लेकिन हम तेरे इस विस्तृत प्रभाव को नहीं जानते।

वेद में बतलाया है—

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥

—अथर्व० २.१.१

सम्पूर्ण संसार का अधिष्ठाता परमात्मा है और वह एक ही है। वही नमस्कार करने और प्रशंसा करने योग्य है। वेदज्ञान द्वारा उसको प्राप्त कर सकते हैं।

वेद परमात्मा को एक कहता और विष्णु के कहने से परमात्मा अनेक सिद्ध होते हैं, इससे सिद्ध है कि विष्णु परमात्मा नहीं है।

स्मरण— **याचेऽम्ब तेंऽघ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं,**
चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत्।
नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव,
सन्दर्शनं तव पदांबुजयोः सदैव ॥ ३७ ॥

अर्थ—मैं आपके चरणों में गिरकर आपसे यही माँगता हूँ कि हमेशा मेरे चित्त में आपका यह मनोहर रूप सदा बसता रहे। मेरी मुखरूपी गुहा में आपका ही नाम रहे। मैं सदा आपके चरणों का दर्शन करता रहूँ।

इस श्लोक में विष्णु ने तीन बातें माँगी हैं—मन में देवी का रूप, जुबान पर नाम और चरणों का दर्शन। कहिए पाठक! इस प्रकार दूसरे की भक्ति करनेवाला परमात्मा क्योंकर हो सकता है?

नौकर— **भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं,**
त्वं स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि।
एषाऽऽवयोरविरता किल देवी भूयाद्,
व्याप्तिः सदैव जननिसुतयोरिवार्ये ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे जननि! मैं आपका भृत्य=दास हूँ, निरन्तर मुझमें ऐसी भावना दीजिए। मैं मन से यही चिन्तन करता हूँ कि आप मेरी स्वामिनी हैं। हे आर्ये! आप मुझे अपने बच्चे की भाँति जानो।

परमात्मा किसी का ग़ुलाम नहीं है, किन्तु सब परमात्मा के दास हैं। यहाँ विष्णु अपने आपको दास बतलाता है, इस लिए विष्णु परमात्मा नहीं।

पामर— **त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं,**
सर्वज्ञतापरिसमाप्तिनितान्तभूमिः।
किं पामरेण जगदम्ब निवेदनीयं,
यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात् ॥ ३९ ॥

अर्थ—तू इस सम्पूर्ण संसार प्रपञ्च को जानती है। आपमें सर्वज्ञता समाप्त हो जाती है। हे जगम्दबे! मैं पामर आपसे क्या निवेदन कर सकता हूँ कि जो ठीक हो वही आप कीजिए, जिससे आपका इच्छित सिद्ध हो।

यहाँ विष्णु अपने को पामर बतलाता है, जिसके अर्थ अत्यन्त नीच

के हैं। अत्यन्त नीच परमात्मा कैसे हो सकता है। वेद कहता है—

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु॥

—ऋ० ८.९५.७

अर्थ—हम सब शुद्ध, पवित्र ईश्वर की स्तुति पवित्र वेदमन्त्रों द्वारा करें। वह पवित्र आश्रयदाता सबको सुख देता है।

इस मन्त्र में स्पष्ट ईश्वर को शुद्ध-पवित्र बतलाया है।

अनित्य— **ब्रह्माऽहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्,**
सर्वे वयं जनि युता न यदा तु नित्याः।
केऽन्येऽसुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्याः,
नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा॥ ४२॥

मैं विष्णु, ब्रह्म, शिवजी आपकी कृपा से उत्पत्तिवाले हैं। जो उत्पन्न होते हैं, वे नित्य कैसे हो सकते हैं? जब हम नित्य नहीं तो दूसरे इन्द्रादि देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? इसलिए केवल आप ही नित्य रहनेवाली शक्ति हैं।

कहिए पाठक! अब विष्णु के अनीश्वर होने में कोई सन्देह रहा? वेद तो परमात्मा को नित्य, अजर बतलाता है—

भाग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम्॥ —अथर्व १०.८.२२

अर्थ—जो मनुष्य अनेक गुणयुक्त सनातन परमात्मा की उपासना करता है वह भाग्यशाली है। ईश्वर की कृपा से वह अनेक भोग्य पदार्थों को प्राप्त होता है।

अन्त में विष्णु कहता है—

नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव।
सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे॥ ४९॥

अर्थ—हे महाविद्ये! आपको नमस्कार है, आपके चरणों को नमस्कार करता हूँ। आप मुझे ज्ञान और प्रकाश दीजिए।

जो दूसरे से ज्ञानप्रकाश माँगता है, वह भगवान् कभी नहीं हो सकता।

शिवजी

जब इतना कहकर विष्णुजी बैठ गये तब झट शिवजी खड़े हो गये और कहने लगे—

जननि देहि पदाम्बुजसेवनं,
युवतिभावगतानपि नः सदा।
पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्,
विरहिताः क्व लभेम सुखं स्फुटम्॥

—देवी० ३.५.१३

अर्थ—हे जननि! स्त्री बने हुए भी हमको अपने चरणों का सेवन दीजिए। अगर हम मनुष्य भी बन जाएँ तो भी आपके चरणकमल से रहित होकर सुखी नहीं हो सकते।

तपनिन्दा— **तपसि ये निरता मुनयोऽमलास्,**
तव विहाय पदाम्बुजसेवनम्।
जननि ते विधिना किल वञ्चिताः,
परिभवो विभवे परिकल्पितः॥ १८॥

अर्थ—जो ऋषि लोग आपके चरणकमल को छोड़कर तपश्चर्या में लगे रहते हैं, वे ठगे गये हैं। उन्होंने दुःख को ऐश्वर्य, निरादर को सत्कार समझा है, तप, इन्द्रियदमन, समाधि, अनेक यज्ञ आदि किसी से मुक्ति नहीं होती। आपके चरण-सेवन से ही मुक्ति हो सकती है।

ब्रह्मा

शिवजी के पश्चात् ब्रह्माजी कहने लगे—

अद्याहं तव पादपङ्कजपरागादानगर्वेण वै,
धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते।
याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं,
हित्वा मोहमयं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु॥ २८॥

अर्थ—मैं आज आपके चरणकमल को देखकर आपकी कृपा से कृतकृत्य हो गया हूँ। हे मुक्तिप्रदे! संसार-दुःख को दूर करनेवाली! मेरी आपसे बार-बार यही प्रार्थना है कि इस संसार के मोहजाल को छोड़कर मैं सदा आप ही की भक्ति में लगा रहूँ।

इस प्रकार महामोह में फँसा हुआ दूसरे से मुक्ति माँगनेवाला ईश्वर नहीं हो सकता। जगदीश नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है। मैं प्रभु नहीं हूँ—

न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति
प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम्॥ ३०॥

जो मनुष्य मुझे प्रभु=परमात्मा कहता है, वह अज्ञानी तेरे चरित्र को नहीं जानता।

यहाँ ब्रह्माजी अपने मुख से कहते हैं कि मैं परमात्मा नहीं हूँ।

दास— **अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां**
सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद् वै।
तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीति नूनं,
शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥ २९ ॥

अर्थ—इस संसार से मैं मुक्त कैसे होऊँ? मैं आपका आज्ञाकारी दास हूँ। हे शिवे! इस संसाररूपी समुद्र में मोह में मग्न मेरी रक्षा कीजिए।

योगनिन्दा— **श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः,**
प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौ स्थिता वै।
न जानन्ति ते नाम मोक्षप्रदं वा
समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो मूर्ख आदमी अष्टाङ्गयोग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि में परिश्रम करते हैं, वे बहाने से उच्चारण करने से मुक्ति देनेवाले तेरे नाम को नहीं जानते।

जिस योग या योगियों की प्रशंसा, योगदर्शन या योगिराज कृष्ण ने स्थान-स्थान पर गीता में की है, उसकी इतनी निन्दा! हम पौराणिकों से पूछते हैं कि क्या १६ कलापूर्ण आपके कृष्ण अवतार की बात सच है या ब्रह्मा की जो योग की निन्दा करते हैं।

प्रायः इन्हीं तीन देवताओं की पूजा पौराणिक मन्दिरों में होती है। ये स्वयं अपने आपको परमात्मा नहीं बताते, इसलिए इनकी मूर्त्तियों की पूजा ईश्वरपूजा नहीं हो सकती।

कृष्ण

पौराणिक लोग केवल श्रीकृष्ण को ही पूर्ण अवतार मानते हैं, शेष सबको अंशावतार मानते हैं। अब तनिक उनकी कथा भी सुनिए। देवीभागवत स्कं० ४ अ० २४ में लिखा है कि श्रीकृष्ण के घर लड़का पैदा हुआ और उसको कोई चुराकर ले-गया। जब महाराज को उसका कुछ पता नहीं लगा तब वे विलाप के साथ कहने लगे—

मातर्मयातितपसा परितोषिता त्वं,
प्राग् जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चिताऽसि।
धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये,
किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः॥
—देवी० ४.२४.४८

अर्थ—हे मातः! मैंने प्रथम जन्म में अत्यन्त उग्र तप किया था, और बदरीवन में फूल आदि से आपकी पूजा करके आपको प्रसन्न किया था। हे जननि! क्या आप मेरे उस भक्तिभाव को भूल गई हैं? आप मेरी सुध क्यों नहीं लेतीं?

सूतीगृहादपहृतः किमु बालको मे,
केनापि दुष्टमनसाऽप्यथ कौतुकाद्वा।
मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं,
लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता॥ ४९॥

अर्थ—प्रसूतागार से कोई दुष्ट मेरे बालक को उठाकर ले-गया है, इसमें मेरी कितनी मानहानि है। हे मातः! यह मेरी हानि नहीं है किन्तु सबसे अधिक आपकी हानि है। मैं आपका भक्त हूँ और भक्त का सङ्कट दूर न किया तो आपको ही लज्जा आएगी।

अज्ञानी— **नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं,**
को वेद मन्दमतिरल्पविदेव देही।
क्वासौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा,
हर्ताऽम्बिके जवनिका तव कल्पितेऽयम्॥ ५२॥

अर्थ—जननि! मैं तेरे गुप्त चरित्र को नहीं जानता। जब मैं भी तेरे चरित्र को नहीं जानता तो दूसरा कौन जान सकता है? मेरे किसी भी योद्धा को बालक चुरानेवाले का पता नहीं लगा, यह सब आपकी ही लीला है।

माताऽस्य रोदिति भृशं कुररीवा बाला,
दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव।
कष्टं न वेत्सि ललितेऽप्रमितप्रभावे,
मातस्त्वमेव शरणं भव पीडितानाम्॥ ५६॥

अर्थ—इस चुराये गये बालक की माता तेरे पास आकर रोज कुररी की भाँति विलाप करती है। क्या आप इस महाकष्ट को नहीं जानती हैं। जननि! संसार के दुःखों से पीड़ित जनों का आप ही

उद्धार करनेहारी हैं।

लीजिए पाठक! जिन कृष्णजी को पौराणिक १६ कलापूर्ण अवतार मानते हैं, वे स्वयं दुःखी या अपने बालक का पता लगाने के लिए किसी दूसरे की स्तुति कर रहे हैं, फिर क्योंकर उनको परमात्मा मान सकते हैं। यहाँ तक ही नहीं प्रत्युत सन्तान के लिए शिवजी का तप किया और जब शिवजी ने दर्शन दिया तो लिखा है—

पपात पादयोस्तस्य दण्डवत् प्रेमसंयुतः। —देवी० ४.२५.३८

अर्थ—कृष्ण प्रेम से युक्त होकर शिवजी के चरणों में गिर गये और प्रार्थना करने लगे—

लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो॥ ५२॥

सोऽहं माया विमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो॥

—देवी० ४.२५.५३

अर्थ—हे देव! मुझे प्रार्थना करते शर्म आती है, मैं माया से मूढ़ होकर आपसे पुत्र की याचना करता हूँ। आप कृपया मुझे पुत्र दीजिए।

इस बात को सुनकर शिवजी ने वर दिया—

बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्राः शत्रुनिषूदन।

स्त्रीणां षोडशसाहस्त्रं भविष्यन्ति शतार्धकम्॥ ५७॥

तासु पुत्रा दशदश भविष्यन्ति महाबलाः॥ ५८॥

अर्थ—हे कृष्ण! तू चिन्ता मत कर। तेरे १६ हज़ार स्त्रियाँ होंगी और एक-एक में दश-दश पुत्र होंगे। तुम्हारी यह कामना पूर्ण हो जाएगी।

वेद कहता है—

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः।

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

—अथर्व० १०.८.४४

परमात्मा अकाम=निष्काम, धैर्यवान्, अमर, स्वयभू—उत्पन्न न होनेवाला है। आनन्दमय, नित्य तृप्त, पूर्णकाम है, कहीं से भी न्यून नहीं, उसकी कोई इच्छा नहीं। उसी सर्वव्यापक परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु से बच सकता है और कोई रास्ता नहीं है।

प्रिय पाठक! इस मन्त्र में परमात्मा को पूर्णकाम बतलाया है

और कृष्णजी पुत्र के लिए विलाप, तप या प्रार्थना करते हैं। वे परमात्मा कैसे हो सकते हैं? जब वे ईश्वर नहीं तो उनकी मूर्त्ति को परमात्मा समझकर पूजना अज्ञता नहीं तो और क्या है?

वरुण आदि देवता

इन चार बड़े पौराणिक परमात्माओं को छोड़कर जो शेष वरुण आदि देवता रह गये, उनकी पूजा भी पौराणिक लोग करते हैं, इसलिए इस विषय में भी लिखना आवश्यक है। उसी देवीभागवत के स्कं० ५ अ० १९ में लिखा है—

ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढा,
मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान्।
शुभ्रांशुवह्नि-यम-वायुगणेशमुख्यान्,
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये॥ ६॥

अर्थ—हे जननि! जो मनुष्य आपके मायाजाल में फँसकर देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चाँद, आग, यम, वायु, गणेश जिनमें प्रधान है, उन देवताओं की पूजा करते हैं, वे भी मूर्ख है। क्या तेरी शक्ति के बिना ये कुछ कर सकते हैं?

यहाँ समस्त देवपूजकों को मूढ़, अज्ञानी और मूर्ख बतलाया है।

अन्धकूप में गिरते हैं—

ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च,
ये वै भजन्ति भुवि भावयुता विभग्नान्।
धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते,
कूपे पतन्ति मनुजा विजलेऽतिघोरे॥ १३॥

अर्थ—यह जानकर भी कि सब देवता आपके वश में हैं और प्राणों के सङ्कट में पड़कर आपकी शरण में आते हैं, जो भी इन टूटे हुए देवताओं में परमात्मा की भावना करके इनको पूजते हैं, वे हाथ में विमल दीपक लेकर जानबूझकर अँधेरेवाले जलरहित कुएँ में गिरते हैं।

'करघा छोड़ तमाशे जाए, नाहक चोट जुलाहा खाय।'

एक तो इन देवताओं की पूजा करें; अपने तन, मन, धन, समय को व्यर्थ नष्ट करें और इतना होने पर भी इसका फल यह मिले कि—अँधेरे कुएँ में गिरें। इससे तो यही अच्छा है कि इनकी पूजा ही न की जाए।

मूर्त्तिपूजकों को दुःख

हमने पुराण के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कृष्ण आदि स्वयं अपने मुँह से यह मानते हैं कि हम परमात्मा नहीं हैं। जब वे स्वयं अपने-आपको अनीश्वर कहते हैं तब अपने स्वार्थ के लिए उन्हें बलात् परमात्मा बनाना क्या **'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्तवाली'** कहावत को चरितार्थ नहीं करता ? इनको अनीश्वर ही नहीं लिखा किन्तु जो इनकी पूजा करेंगे उनको दण्ड भी लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिए नीचे प्रमाण दिये जाते हैं—

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं,
मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां,
तान् सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात्॥

—दे० ५.१९.१८

अर्थ—जिस हरि ने भृगु के शाप से मीन=मछली, कमठ=कछुआ, नृसिंह के अवतार धारण किये और पीछे वामनादि बनकर संसार में छल किया, जो उस विष्णु के अवतारों की भक्ति करेंगे हे जननि! उनको क्यों नहीं मृत्यु का भय होगा, अर्थात् अवश्य होगा।

वेद कहता है—**तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः।**

उस भगवान् को जानकर उसका भक्त मौत से नहीं डरता, किन्तु अवतारों के भक्त को अवश्य भय होगा।

शंभो पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं,
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य।
तं ये नराः भुवि भजन्ति कपालिनं तु,
तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः॥ १९॥

अर्थ—भृगु के शाप से जिस शिवजी का लिङ्ग गिर गया था, और जो हाथ में मनुष्यों की खोपड़ियाँ रखता है, उस शिवजी की जो उपासना करते हैं। हे मातः! उनको इस लोक या परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलेगा।

चढ़ा लो शिवजी पर पानी और बिल्व पत्तियाँ और जाओ नरक में। एक तो उनकी पूजा करें और इससे दोनों लोकों में दुःख मिले।

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।

कीचड़ के धोने से यही अच्छा है कि उसको छुआ ही न जाए।

योऽभूद् गजाननगणाधिपतिर्महेशात्,
तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः।
जानन्ति ते न सकलार्थकलावदात्रीं,
त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम्॥ २०॥

अर्थ—जो गणों के अधिपति शिवजी से पैदा हुआ है, जो मूर्ख मनुष्य उस गणेश की पूजा करते हैं, वे भी सकल कला देनेवाली आपको नहीं जानते, इसलिए मूर्खता से गणेश की पूजा करते हैं।

क्लिश्यन्ति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं,
पादाम्बुजं नहि भजन्ति विमूढचित्ताः।
सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं,
ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम्॥ २३॥

अर्थ—वे मुनि भी नरक में जाएँगे जो आपके चरणामृत को छोड़कर सूर्य और अग्नि की पूजा करते हैं। उन्होंने सैकड़ों वेदमन्त्र पढ़कर भी उनके सार को नहीं जाना।

उपर्युक्त उदाहरणों से भली प्रकार सिद्ध हो गया कि जो गणेश, सूर्य, अग्नि आदि अवतारों की पूजा करेंगे वे नरक में जाएँगे। वे मूढ़ और अज्ञानी हैं।

मूर्त्तिपूजकों को पदवी

मूर्त्तिपूजकों को जो पदवी प्रदान की गई है अब तनिक उसे भी ध्यान से सुनिए। श्रीमद्भागवत, स्कं० १०। अ० ८४ में लिखा है—

नाम्बुमयानि तीर्थानि न देवाः मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः॥ ११॥

अर्थ—पानीवाले तीर्थ नहीं होते, मृत्=मिट्टी और पत्थरों की मूर्त्तियाँ देवता नहीं होतीं। वे बड़े लम्बे काल में भी पवित्र नहीं करते। साधु-महात्मा दर्शन ही से पवित्र करते हैं।

इस श्लोक में स्पष्ट यह बतलाया है कि तीर्थों में नहाने से और मूर्त्तिपूजा से मनुष्य पवित्र नहीं होता। कई पौराणिक इसके अर्थ में गड़बड़ करके यह कहते हैं कि इसका यह अर्थ नहीं जो तुम करते हो, किन्तु यह है—

तीर्थ या मूर्त्तिपूजा देर से पवित्र करती है और साधु लोग शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं।

इनका यह अर्थ ठीक नहीं। **गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां**

शतैरपि। जो आदमी चार सौ कोस से भी गङ्गा-गङ्गा कहता है, वह सब दुःखों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है। कहिए कहाँ तो इस श्लोक में गङ्गा का इतना माहात्म्य और तुम कहते हो कि—वह देर से पवित्र करती है।

यह श्लोक देवीभागवत् में दूसरे प्रकार से आता है—

नह्यम्बुमयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णुभक्ता क्षणादहो॥

—दे० भा० स्कं ९ अ० ७ श्लो० ४२

अर्थ—पानी के तीर्थ नहीं होते, मिट्टी और पत्थरों के देवता नहीं होते, वे किसी काल में भी पवित्र नहीं करते, विष्णु के भक्त तो क्षणमात्र में पवित्र कर देते हैं।

अब श्लोक का अर्थ कैसे उलटा करोगे? यहाँ तो स्पष्ट ही लिख दिया है कि मूर्त्तिपूजा मनुष्य को पवित्र नहीं करती॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारकाः,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया॥

—भागवत १०.८४.१२

अर्थ—अग्नि, सूर्य, चाँद, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु, वाणी, मन आदि पदार्थों की उपासना करने से पाप दूर नहीं होता, क्योंकि ये परमात्मा से भेद करानेवाले हैं। इनकी उपासना करने से परमात्मा की उपासना नहीं होती।

जो नवग्रह की पूजा करनेवाले लोग हैं वे इस श्लोक पर भली प्रकार विचार करें। इस श्लोक में स्पष्ट सूर्यादि ग्रहों की पूजा का निषेध है। उनकी पूजा परमात्मा से अलग करानेवाली बतलाई है।

गोखरः— **यस्यात्मबुद्धि कुणपे त्रिधातुके,**
स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥ १३॥

अर्थ—जो वात, पित्त, कफ़—तीन मलों से बने हुए शरीर में आत्मबुद्धि करता है, स्त्री आदि में स्वबुद्धि, पृथिवी से बनी हुई मूर्त्तियों में पूज्यबुद्धि और पानी में तीर्थबुद्धि कभी भी करता है, वह

गोखर अर्थात् गौओं का चारा ढोनेवाला गधा है।

उपर्युक्त दो श्लोकों में मूर्त्तिपूजा का निषेध करने पर भी जो मूर्त्तिपूजा करता है, उसको भागवत ने गोखर की पदवी दी है। इससे बढ़कर मूर्त्तिपूजा का खण्डन या उनका निरादर क्या हो सकता है?

कई पौराणिक सलिल शब्दों को सप्तमी विभक्ति मानकर ऐसा अर्थ करते हैं कि पानी में जो तीर्थबुद्धि नहीं करता वह गोखर है। यह अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा अर्थ मानने से श्लोक का यह अर्थ होगा कि जो शरीर को आत्मा नहीं मानता, स्त्री आदि में स्वबुद्धि नहीं करता वह गोखर है। अगर ऐसा अर्थ करोगे तो नास्तिक ठहरोगे, क्योंकि शरीर को आत्मा माननेवाला नास्तिक होता है, अतः हमारा ही अर्थ ठीक है।

देवी

अब एक बात रह गई और वह यह कि अगर ब्रह्मादि ईश्वर नहीं तो न सही, देवी की मूर्त्ति तो परमात्मा है। इसकी ही पूजा कर लेंगे, फिर भी मूर्त्तिपूजा तो रह ही गई।

इनका यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि देवी भी परमात्मा नहीं है। देवीभागवत स्कं ५ अ० १२ में लिखा है—

नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः।
सर्वकर्त्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः॥ ६॥
निर्गुणो निर्ममोऽनन्तो निरालम्बो निराश्रयः।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः॥ ७॥

—देवी० ५.१२.६-७

स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा॥ ३६॥
तत् सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम्।
जाडाऽहं तस्य संयोगात् प्रभवामि सचेतना॥ ३७॥
अयस्कान्तस्य सान्निध्यादायसश्चेतना यथा॥ ३८॥

—देवी० ५.१६.३६-३८

अर्थ—अयि राक्षस! मैं पति चुननेवाली स्त्री नहीं हूँ, मेरा पति सर्वकर्त्ता, सर्वसाक्षी, निष्काम, निर्गुण, अनन्त, सबका आश्रयदाता, सर्वव्यापक, पूर्ण परमात्मा विद्यमान है। वही मेरा सच्चा पति है, मैं तो जड़ प्रकृति हूँ, उसी के संयोग से मुझमें चेतनता आती है। जैसे चुम्बक के संयोग से लोहे में गति आती है, वैसा ही मेरा हाल है, मैं स्वयं जड़ वस्तु हूँ।

यहाँ देवी स्वयं कहती है कि मैं परमात्मा नहीं, परमात्मा दूसरा है। वही मेरा स्वामी है मैं तो जड़, बेजान वस्तु हूँ। अगर कोई शंका करे कि जड़ कैसे है, तो कहती है, उसी से मैं चेतन हूँ, स्वयं मुझमें कोई चेतनता नहीं है।

जिस देवी के लिए सम्पूर्ण देवताओं की निन्दा की, अन्त में वह देवी भी जबाब दे गई और कहती है कि मैं परमात्मा नहीं हूँ।

मूर्त्तिपूजा किसने चलाई

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां
सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम्॥ १२॥

—देवी० ५.१९.१२

अर्थ—इस घोर कलयुग में पुराणों के बनानेवाले, धूर्त, चतुर लोगों ने शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि की पूजा अपने पेट भरने के लिए चलाई है।

लीजिए, इस बात का भी निर्णय कर दिया कि इन देवताओं की पूजा क्यों चलाई है।

परस्पर विरोध

पौराणिक लोग कहा करते हैं कि हम मूर्त्तियों में सर्वव्यापक एक परमात्मा की पूजा करते हैं, उनको इस प्रकरण का अध्ययन अच्छी प्रकार करना चाहिए। यदि ब्रह्मा, विष्णु आदि एक ही परमात्मा हैं तो शिवादी का आपस में इतना विरोध या लड़ाई-झगड़े क्यों है? वास्तव में जब किसी देवता की भक्ति एक पुराण में बतलाई जाती है तब शेष सम्पूर्ण देवताओं की निन्दा, अनीश्वरत्व या कथाएँ बनाकर सब देवताओं से उनकी स्तुति कराई जाती है। यही अवस्था सम्पूर्ण पुराणों की है।

भागवत में कृष्ण को परमात्मा सब देवताओं को नीच और कृष्ण का भक्त लिखा है।

भविष्यपुराण में सूर्य को परमात्मा तथा ब्रह्मा, विष्णु और कृष्ण को उसका दास लिखा है। देवीभागवत में देवी को परमात्मा अन्य सब देवताओं को नीच या अपूज्य लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिए भी कुछ प्रमाण देता हूँ—

यहाँ देवी स्वयं कहती है कि मैं परमात्मा नहीं, परमात्मा दूसरा है। वही मेरा स्वामी है मैं तो जड़, बेजान वस्तु हूँ। अगर कोई शंका करे कि जड़ कैसे है, तो कहती है, उसी से मैं चेतन हूँ, स्वयं मुझमें कोई चेतनता नहीं है।

जिस देवी के लिए सम्पूर्ण देवताओं की निन्दा की, अन्त में वह देवी भी जबाब दे गई और कहती है कि मैं परमात्मा नहीं हूँ।

मूर्त्तिपूजा किसने चलाई

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां
सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम्॥ १२॥

—देवी० ५.१९.१२

अर्थ—इस घोर कलयुग में पुराणों के बनानेवाले, धूर्त, चतुर लोगों ने शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि की पूजा अपने पेट भरने के लिए चलाई है।

लीजिए, इस बात का भी निर्णय कर दिया कि इन देवताओं की पूजा क्यों चलाई है।

परस्पर विरोध

पौराणिक लोग कहा करते हैं कि हम मूर्त्तियों में सर्वव्यापक एक परमात्मा की पूजा करते हैं, उनको इस प्रकरण का अध्ययन अच्छी प्रकार करना चाहिए। यदि ब्रह्मा, विष्णु आदि एक ही परमात्मा हैं तो शिवादी का आपस में इतना विरोध या लड़ाई-झगड़े क्यों है? वास्तव में जब किसी देवता की भक्ति एक पुराण में बतलाई जाती है तब शेष सम्पूर्ण देवताओं की निन्दा, अनीश्वरत्व या कथाएँ बनाकर सब देवताओं से उनकी स्तुति कराई जाती है। यही अवस्था सम्पूर्ण पुराणों की है।

भागवत में कृष्ण को परमात्मा सब देवताओं को नीच और कृष्ण का भक्त लिखा है।

भविष्यपुराण में सूर्य को परमात्मा तथा ब्रह्मा, विष्णु और कृष्ण को उसका दास लिखा है। देवीभागवत में देवी को परमात्मा अन्य सब देवताओं को नीच या अपूज्य लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिए भी कुछ प्रमाण देता हूँ—

शिवपुराण विद्येश्वरीसंहिता अ० ६—

एक समय विष्णु जी लेटे हुए थे और ब्रह्माजी आ गये। विष्णु ने उनका कोई आदर नहीं किया, तब ब्रह्मा बोले—

आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो दृप्तवच्चरेत्।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते॥ ४॥

अर्थ—जो दुष्ट मनुष्य गुरु को आता देख, उसका आदर न करे, उस द्रोही के लिए शास्त्र में प्रायश्चित लिखा है।

यह सुनकर विष्णु ने कहा—

मन्नाभिकमलाज्जातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा॥ ८॥
अहमेव वरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः॥
परस्परं हन्तुकामौ चक्रतुः समरोद्यमम्॥ ९॥

अर्थ—तू मेरी नाभि से पैदा हुआ है, मेरा बेटा होकर बकवास करता है। विष्णु कहता है—मैं परमात्मा हूँ। ब्रह्मा कहता है, नहीं मैं परमात्मा हूँ। एक दूसरे को मारने के लिए तैयार हो गये।

हथियार लेकर आपस में लड़ने लगे। इतने में उन दिनों के मध्य में ज्योतिर्मय लिङ्ग पैदा हुआ, दोनों उसका अन्त लेने के लिए चले। जब अन्त न मिला तब ब्रह्मा ने आकर विष्णु के आगे झूठ बोला कि मैं इसका अन्त ले-आया हूँ। शिवजी को क्रोध आया और भैरव को पैदा किया।

स वै गृहीत्वैककरेण केशं,
तत् पञ्चमं दृप्तमसत्यभाषिणम्।
छित्वा शिरांस्यस्य निहन्तुमुद्यतः,
प्रकम्पयन् खड्गमतिस्फुटं करैः॥ ४॥

—शिव० विद्येश्वर० ८.४

अर्थ—भैरव ने ब्रह्मा के बालों को हाथ से खैंचकर जिस मुँह से ब्रह्मा ने झूठ बोला था उसके शिर को तलवार से काट डाला और दूसरे शिर भी काटने के लिए तैयार हो गया।

यह अवस्था देखकर ब्रह्मा गिड़गिड़ा कर भैरव के चरणों में गिर गया। विष्णु ने शिव से प्रार्थना करके बड़ी कठिनता से ब्रह्म की जान बचाई। अन्त में शाप दिया कि तुमने झूठ बोला है, इसलिए तुम्हारी पूजा नहीं होगी।

जिस ब्रह्मा को भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में इतना बड़ा बतलाया,

उसे यहाँ झूट बोलनेवाला बतलाया है, उसका सिर काटा गया और शिव को सबसे बड़ा बतलाया, परन्तु तनिक भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व अ० १५३ को देखिए, शिव की भी क्या दुर्गति होती है।

एक बार शिव, ब्रह्मा और विष्णु में आपस में झगड़ा हो गया। शिव कहने लगा मैं सबसे बड़ा परमात्मा हूँ, मैंने ही सारा संसार बनाया है। विष्णु कहने लगा मैंने बनाया है, ब्रह्मा ने कहा तुम दोनों झूठे हो मैंने ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बनाया है।

एवं तेषां प्रवदन्तां क्रुद्धानां च परस्परम्।
समाविशत्तदाऽज्ञानं तमो मोहात्मकं विभो॥ ९॥

अर्थ—इस प्रकार जब वे आपस में क्रोध करके लड़ने लगे, तब उनको महामोह नामवाला बड़ा अज्ञान हो गया और शिवजी कहने लगे—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो क्व गतस्त्वं महामते।
ब्रह्म च क्व गतो वीर नाहं पश्यामि वां क्वचित्॥

—भवि०ब्रा०प० १५३.१५

अर्थ—हे महाबाहो! कृष्ण! तुम कहाँ चले गये और ब्रह्मा कहाँ गया। मैं तुम दोनों को नहीं देखता हूँ।

मोहेन महताहं वै तमसा च विमोहितः।
किं करोमि क्व गच्छामि क्व चाहमधुना स्थितः॥ १६॥

अर्थ—मैं बड़े भारी मोहरूपी अज्ञान में डूब गया हूँ, क्या करूँ कहाँ जाऊँ, मुझे पता नहीं कि मैं इस समय कहाँ हूँ।

यह सुनकर कृष्णजी कहने लगे—

भीमभीम न जानेऽहं क्व भगवान् वर्ततेऽधुना।
ममापि मोहितं चेतस्तमसातीव शंकरः॥ २०॥

अर्थ—शिव मैं नहीं जानता आप कहाँ हैं। मेरा चित्त भी अत्यन्त अज्ञान में डूब गया है। मुझे संसार में कुछ नहीं दिखता।

यह सुनकर ब्रह्माजी बोले—

न शृणोमि न पश्यामि निद्रावशमहं गतः॥ २६॥

मैं कुछ नहीं देखता व सुनता हूँ, मोह के प्रभाव से निद्रा के वश में चला गया हूँ।

अन्त में तीनों ने मिलकर सूर्य की स्तुति की और सूर्य ने उनका अज्ञान दूर किया तथा वरदान दिया।

यद्वाचि तन्त्र्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः॥

—स्कं० ५। अ० १। श्लो १४

अर्थ—गुण-कर्मरूपी रस्सी में बँधे हुए मैं, ब्रह्मा, शिवादि सब उसी की भक्ति करते हैं या उसी के पीछे चलते हैं। जैसे नाक में नकेल डालकर किसी पशु को मनुष्य जिधर चाहे ले-जाए, वही हमारी दशा है।

यहाँ विष्णु को पूज्यदेव बाकी सबको उसका दास बतलाया है, और लीजिए—

लिङ्गपुराण में लिखा है—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य योऽन्यां देवतामुपासते।
स राजा सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥

—उत्तर० ११.३६

अर्थ—जो शिवलिंग की पूजा छोड़कर दूसरे देवता की पूजा करता है, वह राजा अपने देश के सहित रौरव नरक में जाता है।

प्रिय पाठक! तनिक विचारकर देखिए पौराणिक पण्डित कहा करते हैं कि हम मूर्त्ति की पूजा नहीं करते, किन्तु ब्रह्मादि की मूर्त्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं और वह सब मूर्त्तियों में एक ही है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव एक ही ईश्वर है तो आपस में लड़ाई-झगड़ा और एक-दूसरे को छोटा-बड़ा कहना कैसे हो सकता है? इससे तो पता लगता है कि इनमें एक भी परमात्मा नहीं। यदि ये परमात्मा होते तो इनमें आपस में इतना विरोध न होता। शिवपूजक के सिवाय दूसरे देवताओं की पूजा करनेवाले नरक में जाएँगे, यह क्यों लिखा, जबकि आप सब मूर्त्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। यह आपका निरा ढकोसला है, जो आपने आर्यसमाज की अकाट्य युक्तियों से डरकर बनाया है।

फूट ने आर्यों का राज्य, धन, दौलत, देश, यौवन आदि सम्पूर्ण सम्पत्तियों को नष्ट कर डाला। फिर आर्यलोग इस हत्यारी को छोड़ते नहीं, इसका क्या कारण है? मुझसे कोई पूछे तो मैं यही कहूँगा कि जिनके उपास्यदेवों में आपस में लड़ाई-झगड़ा या फूट हो, उनके उपासकों में फूट क्यों न हो।

जब आर्यों ने एक परमात्मा की पूजा छोड़कर अनेक उपास्यदेव बनाये, तब उनको ईश्वर सिद्ध करने के लिए एक-एक देवता के लिए अलग-अलग पुराण बनाने पड़े और उनकी शकलें, कपड़े, भोग, मन्दिर, पूजा की विधि, तिलक, स्तुतियाँ, सवारी आदि भी सब अलग-अलग बनाने पड़े। यही आर्यों की फूट का सबसे बड़ा कारण है, इसलिए आर्यसमाज का यह कार्य है कि वह इन सब झूठे परमात्माओं की पूजा को छुड़ाकर एक ईश्वर की पूजा में प्रवृत्त करावे। जब तक एक उपास्यदेव और पूजा की एक विधि, वेश, भाषा, भूषा आदि न हो तब तक इस फूट का आर्यजाति से निकलना कठिन है।

समर्थ को दोष और देवाचार

श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज के आचार के विषय में श्रीमद्भागवत में जो मिथ्या दूषण लगाये हैं उनसे भी सिद्ध होता है कि श्रीकृष्णजी परमात्मा नहीं थे। स्वयं भागवतकार ने यह शंका उठाई है—

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम्॥ २८॥

—भा० १०.३३.२८

अर्थ—राजा परीक्षित शुकदेवजी से बोले कि हे ब्रह्मन्! धर्म-मर्यादा के बाँधनेवाले, उसकी रक्षा करनेवाले होकर श्रीकृष्ण ने धर्म के विरुद्ध पर-स्त्री-गमनरूप आचरण क्यों किया?

इसका जो उत्तर भागवत में शुकदेवजी की ओर से दिया गया है वह पाठकों को विशेष ध्यान से पढ़ने योग्य है। वहाँ लिखा है—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥ —भा० १०.३३.३०

अर्थ—जो समर्थ पुरुष होते हैं वे धर्म से उलटा चलते हैं, इससे उनको कोई दोष नहीं होता, जैसे आग में डाला हुआ सब-कुछ भस्म हो जाता है।

जो पौराणिक लोग कहा करते हैं कि कृष्ण ने रासलीला में कोई अधर्म नहीं किया वे इन श्लोकों को ध्यान से पढ़ें। यहाँ भागवतकार ने स्पष्ट माना है कि उन्होंने (धर्म के विरुद्ध आचरण) किया जो लोग कहते हैं समर्थ को दोष नहीं, उनसे नीचे लिखे प्रश्न पूछने चाहिएँ—

१. अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है या उसको तोड़ने के लिए? अगर धर्म की रक्षा के लिए होता है तो यह पाप क्यों किया?

२. जब पौराणिक पण्डित कहते हैं कि निराकार परमात्मा भी सब-कुछ कर सकता है, किन्तु अवतार इसलिए होता है ताकि मर्यादा बाँधने से लोग भी वैसा ही करें, क्या जैसे पाप अवतार करते हैं, वैसे अन्य लोग भी करें।

३. जब कृष्ण परमात्मा के अवतार थे तब पाप क्यों किया, परमात्मा तो पाप से रहित है।

४. शास्त्र के नियम-भंग का जितना दोष शास्त्रज्ञ को होता है उतना शास्त्र से अनभिज्ञ मूर्ख को नहीं होता। कानून के विरुद्ध चलने का जितना दण्ड एक वकील को होता है उतना एक पाँच वर्ष के बच्चे को नहीं होता, दोष तो होता ही समर्थ को है।

जूआ

वेद में लिखा है "**अक्षैर्मा दीव्यः**"[१] जुआ मत खेलो, परन्तु पद्मपुराण में शिव-पार्वती का जूआ खेलना, जूआ खेलने की विधि बताना आदि अनेक बातें पुराणों में ऐसी लिखी है जो अवतार या देवताओं को आचार से भ्रष्ट सिद्ध करती हैं। जिसका स्वयं का आचार भ्रष्ट हो, उसकी मूर्त्ति की पूजा करने से मनुष्य कैसे पवित्र हो सकता है?

हमने सप्रमाण पाँच युक्तियाँ देकर यह सिद्ध कर दिया कि पुराणों के दृष्टिकोण से भी मूर्त्तिपूजा ठीक नहीं हैं।

तृतीयोऽध्यायः

शंका समाधान

परमात्मा का मुख आदि

प्रश्न—वेद में लिखा है—

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भवा।[१]

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।[२] इत्यादि

अर्थ—अथर्ववेद काण्ड ११ इत्यादि और यजुर्वेद के अनेक मन्त्रों में परमात्मा के मुँह, नाक, आँख, पाँव, शरीर आदि का स्पष्ट वर्णन आता है। परमात्मा का शरीर बतानेवाले इन स्पष्ट मन्त्रों की विद्यमानता में कौन कह सकता है कि परमात्मा की मूर्त्ति नहीं है।

उत्तर—सनातनधर्मी पण्डितों को यह बीमारी है कि जहाँ कहीं वेदमन्त्रों में मुख, कान, नाक आदि शब्दों को देखते हैं, झट कह देते हैं कि इन मन्त्रों में परमात्मा के मुखादि का विधान है। इन लोगों को इस बात का ध्यान नहीं रहता कि राजा, प्रजा, जीवात्मा, प्रधानपुरुष आदि का वर्णन भी तो वेद में आता है। सब मन्त्रों में केवल परमात्मा का ही वर्णन तो नहीं आता, इसलिए वेदमन्त्रों का अर्थ करते समय इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए; जैसाकि मीमांसा दर्शन में लिखा है—

श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्य-मर्थविप्रकर्षात्।[३]

अर्थ—श्रुति, मन्त्र, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्या आदि के समवाय में उत्तरोत्तर दुर्बल होता है।

इस सूत्र के अनुसार प्रकरणादि का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। जो मन्त्र पौराणिकों की ओर से प्रस्तुत किये जाते हैं उनका अर्थ परमात्मा नहीं, किन्तु उनमें राजा को नमस्कार आदि करना लिखा है, कई पौराणिक कहा करते हैं कि यहाँ स्पष्ट पशुपति शब्द आता है,

---

१. अथर्व० ११.२.५   २. यजुः० १६.२

३. मी०

हँसती हैं, गाती हैं, नाचती हैं। अगर देवताओं की मूर्त्तियाँ न होतीं तो उनकी पूजा न होती। इस पाठ की संगति कैसे हो सकती है?

उत्तर—मूर्त्तिपूजा के लिए पौराणिकों के विचार में यह अकाट्य प्रमाण है। यह प्रमाण देकर सनातनी फूले नहीं समाते, किन्तु इससे भी मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। इसके विषय में नीचे लिखी युक्तियाँ हैं।

१. इस प्रमाण में लिखा है कि देवताओं की प्रतिमाएँ=मूर्त्तियाँ हँसती, नाचती, गाती, रोती हैं। बस, जिस दिन पौराणिक इन मन्दिरों में रखी हुई पीतल, लोहे, मिट्टी, पत्थर आदि की मूर्त्तियों को हँसते, रोते, गाते, नाचते दिखला देंगे उस समय हम मूर्त्तिपूजा को मान लेंगे। हम पूजारी या दूसरे मूर्त्तिपूजकों से पूछते हैं कि क्या कभी आपने इन मूर्त्तियों को ये काम करते देखा है? अगर नहीं देखा तो आपको भी इस प्रमाण के अनुसार मूर्त्तिपूजा छोड़ देनी चाहिए, जब तक ये मूर्त्तियाँ हँसने आदि का कार्य न करें।

२. इस प्रमाण में मूर्त्तियों का हँसना आदि लिखा है, परन्तु मन्दिरों में रक्खी हुई मूर्त्तियों में इन कामों में से कोई भी कार्य दिखाई नहीं देता। इससे पता लगता है कि वे मूर्त्तियाँ या देवता जो हँसते-रोते हैं, कोई दूसरे ही हैं।

३. यदि पौराणिक मूर्त्तियों में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं जैसेकि उनकी बनाई मूर्त्तिपूजा-मण्डन की पुस्तकों में लिखा है तो फिर बतलाएँ कि परमात्मा किसके भय से रोता है या काँपता है। यह रोना, काँपना परमात्मा में नहीं हो सकता। टूटना, रोना, डरना आदि सांसारिक जीवों में हो सकता है, नकि परमात्मा में। वेद तो कहता है '**तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः**', उस ईश्वर को जाननेवाला मौत से नहीं डरता। जब उसका भक्त भी डरता-काँपता नहीं तो परमात्मा कैसे डर या काँप सकता है?

विराट् स्वरूप

प्रश्न—वेद में लिखा है—

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥[१]

भूमि परमात्मा के पैर, अन्तरिक्ष पेट, द्युलोक शिर इत्यादि है,

१. अथर्व० १०.७.३२

परमात्मा के मुँह, कान, नाक, पेट, आँख आदि सब अवयवों का वर्णन किया है, फिर आर्यसमाजी क्यों मूर्त्तिपूजा से इनकार करते हैं।

उत्तर—इस मन्त्र में रूपक अलंकार है। मुझे इन पौराणिकों की बात पर बड़ा आश्चर्य होता है। ये शास्त्र को पढ़ते हुए भी अपने स्वार्थ के लिए उसपर लेपन फेरने का प्रयत्न करते हैं। अगर कोई आदमी किसी को शेर कहता है तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसके पूँछ भी है, प्रत्युत उसका अर्थ यह है कि वह शेर की भाँति बलवान् है। पैर की भाँति चलने का साधन होने से पृथिवी को पैर, पेट की भाँति पोला होने से अन्तरिक्ष को पेट, आँखों की भाँति दिखानेवाला होने से सूर्य या चाँद को आँख कहा है। शास्त्र के इस मर्म को न समझकर ये पौराणिक ऐसी ऊटपटाँग बातें कहते हैं।

अग्नि और ईश्वर

प्रश्न—जैसे आग लकड़ी, पत्थर, कोयले आदि में प्रथम निराकार होता है, पीछे साकार हो जाता है और सबको दिखाई देता है, इसी प्रकार परमात्मा पहले निराकार होता है, पीछे साकार हो जाता है।

उत्तर—शास्त्रों में लिखा है कि रूप अग्नि का स्वाभाविक गुण है, जिसका स्वाभाविक गुण रूप हो वह कभी निराकार नहीं हो सकता। शास्त्रों में अग्नि की दो अवस्थाएँ बतलाई हैं—एक उद्भूत और दूसरी अनुद्भूत। जब अग्नि के अवयव अलग-अलग होते हैं, तब वह दिखाई नहीं देता। इसका यह अर्थ नहीं कि वह निराकार है, यदि दूध में घी नहीं दीखता या तिल में तेल नहीं दिखता तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह घी या तेल पहले नहीं था और पीछे से आ गया। जो वस्तुएँ निराकार हैं वे कभी साकार नहीं हो सकतीं। जीवात्मा निराकार है वह किसी अवस्था में साकार नहीं होता। आकाश निराकार है वह किसी भी अवस्था में साकार नहीं होता।

ब्रह्म के दो रूप

प्रश्न—"**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च**", ब्रह्म के दो रूप हैं—एक मूर्त्त और दूसरा अमूर्त्त। जब श्रुति परमात्मा के दो रूप मूर्त्त और अमूर्त्त, अर्थात् साकार और निराकार बतलाती है तब आप मूर्त्तिपूजा से क्यों घबराते हैं?

उत्तर—इस मन्त्र का अर्थ यह नहीं है जो तुम करते हो, किन्तु यहाँ प्रकरण पढ़ने से यह अर्थ होता है कि ब्रह्म के दो रूप हैं। यहाँ स्वस्वामीभाव सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है। जैसे कोई कहता है कि

रामदेव के दो लड़के हैं। इसका यह अर्थ नहीं होता कि रामदेव या लड़के एक हैं। इसी श्रुति को आगे चलकर खोला है—अन्तरिक्ष या वायु अमूर्त्त और पृथिवी, जल, अग्नि मूर्त्त हैं। परमात्मा इन दोनों प्रकार के भूतों का स्वामी है। कई लोग कहते हैं कि रूप शब्द का अर्थ ब्रह्म का स्वरूप है, यह ठीक नहीं। रूप शब्द रूपवान् या रूप दोनों का वाचक है। आगे चलकर जो रूपवानों का रूप मूर्त्त-अमूर्त्त भेद बतलाया है, वह ब्रह्म का नहीं किन्तु भूतों का बतलाया है। कई पौराणिक पण्डित कहा करते हैं कि अग्नि, वायु, पृथिवी आदि भी तो ब्रह्म ही हैं। इन पौराणिकों की बुद्धि भी विचित्र ही है, भला, यदि सब-कुछ ब्रह्म है तो मूर्त्तिपूजा कौन करेगा? भोग कौन लगाएगा? क्योंकि पूज्य, पूजा करनेवाला और जिन साधनों से पूजा करते हैं, सब ब्रह्म ही है।

अक्षरज्ञान और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—जैसे ज्ञान निराकार है, अथवा क, ख, ग आदि अक्षर निराकार हैं, किन्तु उस निराकार ज्ञान तथा अक्षरों की प्राप्ति के लिए वेद की पुस्तक साकार या निराकार अक्षरों की प्राप्ति के लिए साकार अक्षर होते हैं, इसी प्रकार निराकार परमात्मा की प्राप्ति के लिए कल्पित बनावटी साकार मूर्त्तियाँ होती हैं।

उत्तर—यहाँ भी पौराणिकों का वदतोव्याघात दोष है, कभी तो ये कहते हैं निराकार परमात्मा स्वरूप से साकार हो जाता है, इसलिए शास्त्र में उसके साकार और निराकार दो रूप बतलाये हैं। कभी कहते हैं वह है तो निराकार, किन्तु जैसे जीवात्मा निराकार होता हुआ भी जब शरीर धारण करता है तब उसके शरीर की मूर्त्ति बनाई जाती है। यहाँ इन दोनों बातों से विरुद्ध यह बात है कि न तो वह शरीर धारण करता है और न साकार है, किन्तु जैसे अक्षर के निराकार होने पर भी उसकी प्राप्ति के लिए कल्पित, बनावटी साकार अक्षर होते हैं इसी प्रकार परमात्मा की कल्पित साकार बनावटी मूर्त्तियाँ हैं। इसका उत्तर नीचे लिखते हैं—

१. जो साकार अक्षर होते हैं वे निराकार अक्षरों की शकल नहीं हैं, अगर निराकार अक्षरों की शकल होती तो एक-जैसी होनी चाहिए थी, किन्तु संस्कृत, फ़ारसी, अंग्रेजी, अरबी, जापानी आदि भाषाओं में इन अक्षरों की आकृतियाँ अलग-अलग पाई जाती हैं, इससे पता लगता है कि ये आकृतियाँ निराकार अक्षरों की नहीं हैं।

२. साकार अक्षरों से निराकार अक्षरों या शब्दों का बोध नहीं होता; किन्तु निराकार अक्षरों या शब्दों से साकार का बोध होता है। जब तक किसी बालक को निराकार अक्षर या शब्दों से साकार अक्षरों का ज्ञान बार-बार न करा दिया जाए तब तक लिखे होने पर भी अक्षर या शब्द-बोध नहीं होता।

३. यह बात ग़लत है कि साकार अक्षरों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। कई प्रज्ञाचक्षु जन्मान्ध बिना साकार अक्षरों के निराकार अक्षरों से ही बड़े-बड़े पण्डित हो जाते हैं।

४. अलग-अलग स्वरूपवाले, अलग-अलग लक्षणवाले नित्य या अनित्य, साकार या निराकार अक्षर भिन्न-भिन्न होते हैं, कोई किसी की मूर्त्ति या शकल नहीं होती। स्याही से कागज पर लिखे अक्षर अलग होते हैं और मुख से हम जिनका उच्चारण करते हैं, वे अक्षर अलग होते हैं।

५. यदि कहो कि "**एक नहीं हैं, तो साकार अक्षरों से निराकार अक्षरों का बोध क्यों होता है।**" इसका उत्तर यह है—किसी की आकृति होना कुछ और बात है और बोध होना दूसरी बात है, जैसे देवदत्त का बूट देखकर कोई आदमी कहता है कि देवदत्त घर में है। यहाँ बूट को देखकर देवदत्त का बोध होने से यह नहीं सिद्ध होता कि बूट देवदत्त की शक्ल है।

६. सम्पूर्ण संसार को देखकर भगवान् का ज्ञान या बोध होता है, इससे ईश्वर की मूर्त्ति या शकल या संसार की पूजा सिद्ध नहीं होती।

७. जितनी मूर्त्तियाँ पौराणिक लोगों ने मन्दिरों में रक्खी हैं, उनमें से निराकार आत्मा की कल्पित मूर्त्ति कोई भी नहीं है; किन्तु सब साकार ब्रह्मा आदि की मूर्त्तियाँ हैं और उनको हम पुराण या वेद का प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं कि वे परमात्मा नहीं थे।

योगदर्शन और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—योगदर्शन में लिखा है—'**यथाभिमतध्यानाद्वा**'[1] जो वस्तु किसी मनुष्य को अभिमत या वाञ्छित हो उसी का ध्यान कर लेना चाहिए, इसमें कोई हानि नहीं। इस सूत्र के अनुसार हम ब्रह्मा आदि की मूर्त्तियों की पूजा करते हैं।

१. योग० १.३९

उत्तर—योगदर्शन को हम दो विभागों में बाँट सकते हैं—एक वह भाग है जिसमें अनेक प्रकार की सिद्धियाँ बतलाई हैं, दूसरा वह भाग जिसमें परमात्मा की प्राप्ति के साधन बताये गये हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिए यह बतलाया गया है कि अणिमा आदि सम्पूर्ण सिद्धियाँ समाधि या योग में बाधक हैं, इनको परमात्मा की प्राप्ति के इच्छुक को छोड़ देना चाहिए। प्रमाण यह है—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥

—यो०पा० ३। सू० ३६

ये समाधि में विघ्न हैं, व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं।

इसीलिए योग या सांख्य में ध्यान के दो लक्षण किये हैं। जो परमात्मा का ध्यान है उसके विषय में लिखा है—'**ध्यानं निर्विषयं मनः**'[१] सम्पूर्ण सांसारिक विषयों से मन को हटाकर परमात्मा में लगाना ध्यान है। यह केवल इश्वरविषयक ध्यान है। दूसरा—'**तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्**'[२] किसी एक देश में चित्त को बाँधना और उसी विषय में एकाग्रता का नाम ध्यान है। इस ध्यान के द्वारा अनेक प्रकार की विद्याओं का साक्षात्कार किया जाता है, इसीलिए योगदर्शन में लिखा है—

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥[३]

नाभिचक्र में ध्यान, धारणा, समाधि करने से शरीर की बनावट का ज्ञान होता है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥[४]

सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥[५]

कण्ठकूप नाड़ी में संयम करने से भूख और प्यास की निवृत्ति होती है, इत्यादि अनेक सूत्रों में ध्यान, धारणा, समाधि का फल परमात्मा की प्राप्ति नहीं लिखा, किन्तु अनेक प्रकार की विद्या या सिद्धियों का फल बतलाया है। जैसे आजकल के वैज्ञानिक लोग आकाश में उड़ना, दूर के शब्दों को सुनना आदि कार्य भौतिक यन्त्रों के द्वारा करते हैं, वैसे ही योगी भी अनेक भूतों में संयम करके उनके गुणों से लाभ उठाकर दूर के शब्दों को सुनना आदि अनेक कार्य कर

१. सां० ६.२५
२. योग० ३.२
३. यो० ३.२८
४. यो० ३.२५
५. यो० ३.२९

सकता है, किन्तु ये सब सिद्धियाँ परमात्मा-प्राप्ति की साधक नहीं, किन्तु बाधक हैं, इसीलिए योग में इनके छोड़ने का उपदेश है।

दूसरी बात यह है कि पौराणिक यह धोखा देते हैं कि हम मूर्त्ति का ध्यान करते हैं, किन्तु वे मूर्त्ति को परमात्मा मानकर उसकी पूजा करते हैं, यह हम आगे चलकर लिखेंगे। जैसे मनुष्य अपने शरीर के किसी भाग में मन को लगाकर उस-उस भाग या उससे प्राप्त होनेवाली विद्या या उस अङ्ग के फल को प्राप्त होता है, इसी प्रकार वनस्पतियों में ध्यान, धारणा, समाधि से मन को एकाग्र करनेवाला वनस्पतिविद्या या पक्षियों में मन को लगानेवाला पक्षिविद्या, जलजन्तुओं में ध्यान करनेवाला जलजन्तुविद्या या पहाड़, धातु आदि में मन लगानेवाला सुवर्ण आदि धातुविद्या, आकाश में ध्यान लगानेवाला ज्योतिष्विद्या का साक्षात्कार करता है। इस ध्यान का फल अनेक प्रकार की विद्याओं का साक्षात्कार है, परमात्मा की प्राप्ति नहीं।

मूर्त्ति में व्यापक की पूजा

प्रश्न—हम मूर्त्ति की पूजा नहीं करते, किन्तु उसमें व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। हम यह नहीं कहते कि हे पत्थर! तुझको नमस्कार है या तू परमात्मा है, प्रत्युत सर्वव्यापक भगवान् की ही स्तुति करते हैं।

उत्तर—यदि मूर्त्तियों की पूजा नहीं करते और सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान करते हो तो नीचे लिखी युक्तियों का उत्तर दो—

(१) भविष्यपुराण मध्यमपर्व प्रथमभाग अ० ७ में लिखा है—

वासुदेवाग्रतश्चापि रुद्रमाहात्म्यवर्णनम्।
रुद्राग्रे वासुदेवस्य कीर्तनं पुण्यवर्धनम्॥ ३०॥
दुर्गाग्रे शिवसूर्यस्य वैष्णवाख्यानमेव च।
यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत्॥ ३१॥

अर्थ—जो मनुष्य वासुदेव की मूर्त्ति के आगे शिवजी की स्तुति करता है, शिवजी के आगे वासुदेव की स्तुति करता है, दुर्गा के आगे शिव, सूर्य या विष्णु की स्तुति करता है, वह मूर्ख आदमी गधे की योनि में जाता है।

कहिए श्रीमान्! कैसी सर्वव्यापक की पूजा रही? अगर आप मूर्त्तियों में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो वह सब मूर्त्तियों में एक ही व्यापक है, फिर यह क्यों? और सुनिए—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य योऽन्यां देवमुपासते।
स राजा सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥

—लिं० पु० उ० अ० १२, श्लो० ३५

अर्थ—जो राजा शिवलिङ्ग की पूजा छोड़कर दूसरे देवताओं की पूजा करता है वह रौरव नरक में जाता है।

क्या इन श्लोकों की विद्यमानता में भी आप यह कहने का साहस करेंगे कि आप मूर्त्ति में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं?

(२) **देवालयेषु सर्वेषु वर्जयित्वा शिवालयम्।**
देवानां पूजनं राजन्नग्निकार्येषु वा विभो॥

—भविष्य०, ब्राह्मपर्व अ० २१०, श्लोक ५५

अर्थ—हे राजन्! शिवालय को छोड़कर शेष सब मन्दरों में देवताओं की पूजा या हवन करना चाहिए।

यदि मूर्त्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो शिवालय की निन्दा क्यों की?

(३) अगर आप सर्वव्यापक का ध्यान करते हैं तो नीचे लिखी बात का उत्तर देवें। नीचे लिखी बात से यह सिद्ध होगा कि आप मूर्त्ति में व्यापक परमात्मा का ध्यान नहीं करते, किन्तु मूर्त्ति की पूजा करते हैं।

मूर्त्ति में व्यापक की पूजा

पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम्।
खण्डलड्डुकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिका॥ ९३॥
फलानि चैव पक्वानि लग्नखण्डगुडानि च॥ ९४॥

—भवि० ब्रा० प० अ० १७।

अर्थ—फूल, धूप, दीपक, नैवेद्य, खाँड, लड्डू, बत्ती, फल, गुड़ आदि से पूजा करे। इसमें फूलादि से पूजा है, न कि ध्यान—

ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं वरम्।
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम्॥ ७०॥

—भवि० ब्रा० १७.७०

अर्थ—ब्रह्म का दर्शन पुण्य है, दर्शन से भी स्पर्शन पुण्य है, और छूने से भी पूजना श्रेष्ठ है, और घृतस्नान अतिश्रेष्ठ है।

नैरन्तर्येण यः कुर्यात् पक्षं संमार्जनार्चनम्।
युगकोटीशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते॥

—भ०बा०अ० १७.३६

अर्थ—यदि कोई निरन्तर एक पक्ष तक ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ू देवे तो वह एक अरब युग तक ब्रह्मलोक में रहता है।

कई बार पौराणिक कह दिया करते हैं कि यह फल श्रद्धा से भक्ति करने से मिलता है। यह भी इनका कहना ठीक नहीं। अगले श्लोक में लिखा है—

कपटेनापि यः कुर्याद् ब्रह्मशालां सुमानद।
संमार्जनादि वै कर्म सोऽपि तत् फलमाप्नुयात्॥ ३७॥

अर्थ—जो कोई छल-कपट से भी ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ू देता, लेपन आदि करता है, उसको भी वही फल मिलता है जो श्रद्धा से करनेवाले को मिलता है।

इससे पौराणिकों का यह कथन ग़लत है कि श्रद्धावाले को ही फल मिलता है।

कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितम्।
पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥ ५३॥

—भवि० ब्रा० १७.५३

अर्थ—करोड़ों कल्पों में जो पाप संचित किया है, ब्रह्मा को घी से स्नान कराने पर वह सब दूर हो जाता है।

इसी प्रकार पुराणों में अनेक स्थानों में स्नान, मार्जन, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, मन्दिर बनाना, दीपक जलाना आदि बातों का बड़ा माहात्म्य लिखा है। इन माहात्म्यों के होते हुए पौराणिकों का यह कहना कि हम मूर्त्ति की पूजा नहीं करते, उसमें व्यापक परमात्मा की पूजा, अर्थात् ध्यान करते हैं, ठीक नहीं। अगर ये मूर्त्ति का ध्यान करते तो लेपन आदि का इतना माहात्म्य नहीं लिखना चाहिए था, किन्तु ध्यान का लिखना था।

(४) यदि आप सर्वप्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो फूल आदि में भी परमात्मा है, फिर ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए मूर्त्ति पर फूल क्यों चढ़ाते हैं? हाथ, मत्थे आदि में भी ईश्वर है, उसको क्यों जोड़ते या झुकाते हैं? इसपर कई पौराणिक कहा करते हैं कि

रोटी में भी परमात्मा है और दाँतों में भी, फिर दाँत से रोटी क्यों चबाते हैं ? सामग्री में भी परमात्मा है, ऊखल-मूसल में भी फिर उसको क्यों कूटते हैं ? यहाँ भी पौराणिक लोग छल से काम लेते हैं। जैसे पौराणिक मूर्त्ति के परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए उसपर फूल चढ़ाना आदि कार्य करते हैं, यदि आर्यसमाजी भी रोटी को दाँत पर दाँतों के परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए चढ़ाते, तब उनके लिए यह शंका हो सकती है कि जब रोटी या दाँत दोनों में परमात्मा है तब तुम रोटी को दाँतों पर क्यों चढ़ाते हो ?

उपर्युक्त युक्तियों से सिद्ध है कि पौराणिक मूर्त्ति में व्यापक ईश्वर का ध्यान या पूजा नहीं करते, किन्तु मूर्त्ति की पूजा करते हैं।

प्रश्न—ईश्वर के सर्वव्यापक होने से मूर्त्ति में भी है, फिर मूर्त्तिपूजा से आर्यसमाजी क्यों घबराते हैं ?

उत्तर—जब हमारे सम्पूर्ण शरीर या हृदय में भगवान् विद्यमान है तब हमें क्या आवश्यकता है कि हम मूर्त्ति की पूजा करें ? दूसरी बात यह है कि मूर्त्ति में परमात्मा होने पर भी ईश्वर का साक्षात्कार करनेवाला हमारा आत्मा उसमें नहीं है; इसलिए मूर्त्तिपूजा ठीक नहीं।

करैन्सी नोट और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—जैसे एक क़ाग़ज के टुकड़े पर किसी राजा, महाराजा की मुहर, अर्थात् तस्वीर आदि देने से वह मूल्यवान् नोट हो जाता है, उसी प्रकार मूर्त्ति पर परमात्मा की मुहर होने से वह पूजनीय हो जाती है।

उत्तर—(१) जितने कागज के नोट निकाले जाते हैं उतना ही सोना, चाँदी सरकार को जमा करना पड़ता है। जब कोई चाहे उन क़ाग़जों का सोना-चाँदी ले-सकता है, इसलिए वह कागजों की कीमत नहीं, किन्तु सोने-चाँदी की है। इतने पर भी लोग इनका विरोध करते है।

(२) आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि मन्दिरों में रक्खी हुई मूर्त्तियों पर परमात्मा की मुहर लगी हुई है ? जब तक आप यह सिद्ध नहीं करते कि परमात्मा ने इन मूर्त्तियों पर मुहर लगाई है तब तक आपकी बात मानने के योग्य नहीं।

(३) जाली नोट बनानेवाला जेलखाने में डाल दिया जाता है। पौराणिक लोगों ने भी देवीभागवत के कथानानुसार ये सब जाली

नोट मूर्त्तियाँ अपना पेट भरने के लिए बनाई हैं, इसलिए अवश्य जेलखाने में डाले जाएँगे।

—देखो पुराणप्रकरण

बादशाही के बदलने से उनके क़ाग़ज के नोट नहीं चलते जैसे टांगानिका से जर्मन राज्य में जाने पर बण्डल-के-बण्डल क़ाग़जों के नोट निकम्मे हो जाते हैं।

परमात्मा के शरीर की पूजा

प्रश्न—मूर्त्ति परमात्मा का शरीर है, देह की पूजा से देही प्रसन्न होता है, इसलिए मूर्त्तिपूजा ठीक है।

उत्तर—न्यायदर्शन में लिखा है—

चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्।[1]

जो चेष्टा करना, न करना, उलटा करने की चेष्टा, इन्द्रिय या विषयों के ग्रहण करने की शक्ति का अधिष्ठान हो, उसे शरीर कहते हैं।

मूर्त्तियों में शरीर का कोई भी लक्षण नहीं पाया जाता, इसलिए वह शरीर नहीं और मूर्त्ति परमात्मा का शरीर है, इसके लिए तुम्हारे पास क्या प्रमाण है? कई कह दिया करते हैं **पृथिवी यस्य शरीरम्** पृथिवी परमात्मा का शरीर है। हम सिद्ध कर आये हैं कि जहाँ पृथिवी आदि परमात्मा का शरीर बतलाया है वहाँ रूपकालङ्कार है। दूसरी बात यह है कि यहाँ पृथिवी को शरीर कहा है न कि मूर्त्ति को। यदि कहो मूर्त्ति भी तो पृथिवी है तो इससे सर्वपूजा का प्रसंग आएगा। संसार में जितने भले-बुरे पार्थिव पदार्थ हैं उन सबकी पूजा क्यों नहीं करते? इसलिए यह निरा ढकोसला है।

सर्वव्यापक परमात्मा और चूहे

प्रश्न—आर्यसमाजी जो यह कहते हैं कि अगर मूर्त्ति परमात्मा का शरीर है तो उसपर जब चूहे आदि चढ़ते हैं तो उनको मारती क्यों नहीं? जब आर्यसमाजियों के सर्वव्यापक परमात्मा में सब-कुछ होता है और वह किसी को कुछ नहीं कहता तो मूर्त्तियों के विषय में यह शंका क्यों?

उत्तर—आर्यसमाजियों का परमात्मा पौराणिक शिव की भाँति नहीं। किसी राक्षस को वरदान देना, वही राक्षस पार्वती को लेने का

१. न्याय० १.१.११

आग्रह करता है तो उससे लड़ाई करना, डरके मारे भागकर नेपाल में छिपना, जब स्वयं उसको न मार सके तो विष्णु की सहायता लेना, कभी प्रसन्न होकर वर देना, कभी बैल पर चढ़कर हाथ में त्रिशूल लेकर लड़ना आदि कार्य नहीं करता; इसलिए आर्यों की यह शंका ठीक है कि जब वह अपने शत्रुओं को मारता है तब उन चोरों को जो मूर्त्तियों या मूर्त्तियों के जेवरों को चुराते हैं, क्यों नहीं मारता ? चूहे कौन से योगिराज हैं जो उनको कुछ नहीं कहता ?

निराकार का ध्यान

प्रश्न—जब परमात्मा निराकार है, उसकी कोई मूर्त्ति नहीं तो उसका ध्यान कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर—ध्यान नाम है चिन्तन का। चिन्तन निराकार वस्तुओं का भी होता है। शब्द निराकार है, किन्तु उसको सुनकर सब मनुष्य चिन्तन करते हैं; जितने भी सांसारिक पदार्थ हैं, उनके द्वारा जो आनन्द, सुख या दुःख मिलता है वह निराकार होता है, किन्तु सम्पूर्ण संसार उसका चिन्तन करता है। परमात्मा आनन्दस्वरूप है तो वह भी निराकार ही होगा और उसका चिन्तन भी हो सकेगा।

स्वामीजी का फोटो

प्रश्न—यदि आर्यसमाजी मूर्त्तिपूजा नहीं मानते तो दयानन्दजी की मूर्त्तियाँ क्यों समाजमन्दिरों में लगाते हैं, क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं ?

उत्तर—आर्यसमाज जड़ मूर्त्तिपूजा का विरोधी है, न कि चित्रकला या मूर्त्ति-निर्माणविद्या का। कहीं आर्यसमाज की पुस्तकों में यह नहीं लिखा कि स्वामी दयानन्द आदि महापुरुषों की मूर्त्तियों पर धूप-दीपादि चढ़ाने से मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—यदि स्वामीजी की मूर्त्ति नहीं पूजते तो उसकी बेइज्जती-अपमान करने से क्यों घबराते हैं ?

उत्तर—जो महापुरुषों की मूर्त्तियाँ होती हैं वे हमारी सम्पत्ति हैं, अगर कोई मनुष्य हमारी किसी वस्तु को बिगाड़ता है तो स्वाभाविक ही है, हम उसपर क्रोधित होते हैं। यदि कहें कि यदि कोई दूसरा आदमी करे तो उसकी भी मूर्खता है। जो अपनी सम्पत्ति को व्यर्थ नष्ट करता है ऐसे मूर्ख को शिक्षा देना भी हमारा काम है। दूसरी बात यह है कि जब घर में रक्खी किसी महापुरुष की मूर्त्ति या चित्र को बालक देखेंगे तब उसका जीवन-चरित्र पढ़ने या उसकी बनाई पुस्तकों को देखने से उनको लाभ होगा।

नक़्शा और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—जैसे नकशे को देखकर असली पहाड़ या नदी आदि का ज्ञान बालकों को हो जाता है, इसी प्रकार मूर्त्ति को देखकर परमात्मा का ज्ञान होता है।

उत्तर—पहाड़, नदी, जंगल आदि सब वस्तुएँ साकार हैं, इसलिए उनका चित्र, नक़्शा बन सकता है, किन्तु परमात्मा के निराकार होने से उसका चित्र नहीं बना सकते।

काल और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—जैसे काल के निराकार होने पर भी साकार घड़ी से निराकार काल का ज्ञान होता है, इसी प्रकार मूर्त्ति से परमात्मा का ज्ञान होता है।

उत्तर—सम्पूर्ण संसार की विचित्र रचना को देखकर यह ज्ञान होता है कि इस संसार के बनानेवाला सर्वज्ञ परमात्मा है। इससे मूर्त्तिपूजा या परमात्मा की मूर्त्ति सिद्ध नहीं होती। ईश्वर की कृति को देखकर परमात्मा का ज्ञान होता है, मूर्त्ति को देखकर जिस साकार ब्रह्मा आदि मनुष्य की मूर्त्ति है, उसका या कारीगर का ज्ञान होता है, परमात्मा का नहीं। दूसरी बात यह है कि जैसे टकटक करके घड़ी काल का ज्ञान कराती है वैसा ज्ञान मूर्त्ति नहीं कराती। बन्द घड़ी से काल का ज्ञान नहीं होता।

साकार की मूर्त्ति

प्रश्न—हम साकार परमात्मा की मूर्त्ति बनाते हैं निराकार की नहीं।

उत्तर—मूर्त्ति दो ही अवस्थाओं में हो सकती है।

(१) किसी वस्तु के अणु पहले अलग-अलग हों, फिर उनको इकट्ठा कर दिया जाए तो उसकी स्थूल शकल बन जाती है।

(२) जीव की तरह अगर परमात्मा शरीर धारण करे तो उसकी मूर्त्ति बन सकती है।

अगर परमात्मा के अणु माने जाएँ और वे अणु मिलकर साकार परमात्मा बना, तब उन अणुओं को किसने मिलाया? अणु मिलकर साकार परमात्मा बनने से पहले परमात्मा नहीं था। बनी हुई वस्तु बिगड़ती है। जब अणु अलग-अलग हो जाएँगे तब परमात्मा भी नहीं रहेगा, इत्यादि युक्तियों से अणुओं से परमात्मा का बनना सिद्ध

नहीं होता। शरीर-धारण वही करता है जिसके शुभ-अशुभ कर्म हों, तब फल भोगने के लिए शरीर मिलता है। परमात्मा के ऐसे कर्म नहीं होते जिनके लिए उसको शरीर धारण करके उसका फल भोगना पड़े और उसको फल कौन भुगतावेगा? वेद में स्पष्ट लिखा है कि वह कर्मों के फल को नहीं भोगता। जो शरीरधारी होगा वह हमारे समान सुख-दुःख भोगनेवाला होने से परमात्मा नहीं हो सकता। इस बात को अधिक विस्तार से 'अवतार-मीमांसा' पुस्तक में लिखूँगा। प्रायः इतनी ही युक्तियाँ पौराणिक पेश किया करते हैं जिनका उत्तर मैंने दे दिया है।

वेद और मूर्त्तिपूजा

परमात्मा के नाम

शास्त्रार्थों में पौराणिक पण्डित कह दिया करते हैं कि आर्यसमाजियों को पुराण के प्रमाण न देकर वेद के प्रमाण मूर्त्तिपूजा के खण्डन करने के लिए देने चाहिएँ, इसलिए मैं इस प्रकरण में वेद के प्रमाण देकर यह सिद्ध करूँगा कि वेद में कहीं भी जड़ मूर्त्तिपूजा के प्रमाण नहीं मिलते। इसके विरुद्ध, अर्थात् मूर्त्तिपूजा खण्डन के अनेक प्रमाण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

—य० अ० ३२ मं० १

अर्थ—वही ब्रह्म ज्ञानस्वरूप होने से अग्नि, प्रलयकाल में सबका ग्रहण करनेवाला होने से आदित्य, अनन्तबल या सबका धारण करनेवाला होने से वायु, आनन्दस्वरूप होने से चन्द्रमा, शुद्ध होने से शुक्र, सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वव्यापक होने से आपः, सब प्रजाओं का स्वामी होने से प्रजापति है।

अग्नि आदि नाम मुख्यतया परमात्मा के हैं तथा गौणतया आग आदि जड़ पदार्थों के हैं, क्योंकि जैसा प्रकाशादि परमात्मा कर सकता है, वैसा भौतिक अग्नि आदि नहीं कर सकते। इसी बात को ऋग्वेद में स्पष्ट किया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

—ऋ० १.१६४.४६

अर्थ—एक होने पर भी विद्वान् लोग इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, दिव्य आदि अनेक नामों से परमात्मा को पुकारते हैं।

इस मन्त्र में भौतिक अग्नि आदि को परमात्मा नहीं बतलाया, किन्तु अग्नि आदि ईश्वर के नाम हैं। वेदान्तदर्शन के प्रथम अध्याय

में इस बात को भली प्रकार से सिद्ध किया है कि आकाशादि परमात्मा के नाम हैं। कुछ उदाहरण नीचे देता हूँ—

आकाशस्तल्लिंगात्॥ —वे० १.१.२२

जिन श्रुतियों में यह लिखा है कि आकाश से सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति हुई है वही आनन्दमय है, वहाँ आकाश का अर्थ जड़ आकाश नहीं, किन्तु परमात्मा है, क्योंकि यह लक्षण ईश्वर में ही घट सकता है।

''अत एव प्राणः'' —वे० १.१.२३

जहाँ प्राण को सृष्टिकर्ता कहा हो, वहाँ उसका अर्थ जड़ प्राण नहीं, किन्तु परमात्मा है।

इसी प्रकार इस प्रकरण में सिद्ध किया है कि जहाँ-जहाँ अग्नि, वायु आदि को सृष्टि का कर्त्ता, हर्त्ता, आनन्दमय आदि बतलाया है, वहाँ-वहाँ इन नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है, अग्नि आदि जड़ पदार्थों का नहीं, इसलिए पौराणिक लोगों का यह कथन ठीक नहीं कि इस मन्त्र में भौतिक अग्नि आदि नामों से परमात्मा के साकार रूप का वर्णन किया है।

परमात्मा का स्वरूप

अब यह प्रश्न होता है कि अग्नि आदि नामवाले परमात्मा का स्वरूप क्या है? अतः दूसरे मन्त्र में कहा है—

उसको पकड़ा नहीं जा सकता—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥ —यजु० ३२.२

अर्थ—प्रकाशमान परमात्मा से कालावयव प्रकट होते हैं, ऊपर नीचे या बीच में कोई भी उसको पकड़ नहीं सकता।

अब प्रश्न पैदा होता है कि उसको ऊपर, नीचे, बीच में से क्यों नहीं पकड़ सकते? इस बात का उत्तर तीसरे मन्त्र में दिया है—

उसकी मूर्त्ति नहीं है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥
—यजुः० ३२.३

अर्थ—जिस परमात्मा का नाम सबसे बड़ा या यशस्वरूप है उसकी कोई प्रतिमा, मूर्त्ति, शकल या तोलने का साधन नहीं है। इस

बात को सिद्ध करने के लिए इसी मन्त्र में य० अ० २५.१०—१३, य० अ० १२.१०२ तथा य० अ० ८ मं० ३६, ३७ के प्रमाण प्रतीक रूप से दिये हैं, जिनका पूर्ण मन्त्र देकर नीचे व्याख्या की जाती है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजुः० २५.१०

अर्थ—जो सम्पूर्ण कार्यजगत् के उत्पन्न होने से प्रथम एक ही संसार का पति विद्यमान था, जिसमें सूर्य, विद्युत् आदि सम्पूर्ण पदार्थ विद्यमान हैं, जो पृथिवी व द्युलोक को धारण करता है, उस भगवान् की हम भक्ति करें।

यजुर्वेद के ३२वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में इस मन्त्र का प्रतीकरूप से प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि परमात्मा की मूर्त्ति नहीं होती। यदि परमात्मा की मूर्त्ति होती तो उसको स्थूल, साकार, तथा भारवाली होने से किसी-न-किसी आधार की अवश्य आवश्यकता होगी। वह द्युलोक व पृथिवीलोक को धारण नहीं कर सकती, किन्तु जितनी मूर्त्तियाँ मन्दिरों में रखी हैं वे सब पृथिवी के आश्रित हैं। इस मन्त्र में परमात्मा को पृथिवी आदि लोकों का धारण करनेवाला बतलाया है। मूर्त्ति किसी समय में उत्पन्न होती है, उत्पन्न होने से प्रथम नहीं होती, इस मन्त्र में परमात्मा को सब भौतिक पदार्थों से प्रथम विद्यमान बतलाया है, इससे सिद्ध है कि परमात्मा की मूर्त्ति नहीं होती।

तीसरी बात इस मन्त्र में यह कही है कि सूर्यादि पदार्थ परमात्मा के अन्दर हैं। हमारी पृथिवी जैसे १३ लाख गोले बनें तब एक सूर्य बनता है। ऐसे अनन्त सूर्य जिस परमात्मा में विद्यमान हैं, उसकी मूर्त्ति नहीं हो सकती।

मा मा हिꣳ सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजुः० १२.१०२

अर्थ—जिसने द्युलोक या पृथिवीलोक को उत्पन्न किया है, जिसके नियम अटल हैं, जो चन्द्रादि लोकों को उत्पन्न करके उनमें व्याप्त हो रहा है, उस भगवान् की हम भक्ति करें, वह हमें अपने से पृथक् न करे।

इस मन्त्र में यह बताया है कि परमात्मा सब लोक-लोकान्तरों में व्यापक है। उसी ने सब लोक उत्पन्न किये हैं। मूर्त्ति या मूर्त्तिमान्

पदार्थ सम्पूर्ण लोकों में व्यापक नहीं हो सकता, इसलिए परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥

—यजुः० ८.३६

अर्थ—जो किसी कारण से उत्पन्न नहीं हुआ अथवा जिससे उत्तम कोई वस्तु नहीं है, जो सम्पूर्ण लोकों में व्यापक है, जो सम्पूर्ण संसार को अनेक प्रकार के पदार्थ दान देता है। इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, लोक, नाम—ये १६ कलाएँ उसी परमात्मा में विद्यमान हैं।

इस मन्त्र में यह बतलाया है कि वह परमेश्वर पैदा नहीं हुआ, उससे उत्तम और उत्कृष्ट कोई नहीं है।

जितनी मूर्त्तियाँ मन्दिरों में रक्खी हैं, उनसे उत्तम रूप, रंग, वस्त्र, आभूषण, लम्बाई, चौड़ाई आदि बातों में अनेक मूर्त्तियाँ मिल सकती हैं और ये सब पैदा हुई हैं, इसलिए परमात्मा की कोई मूर्त्ति, आकार, शकल नहीं है।

यदि कोई प्रश्न करे कि जब परमात्मा की कोई मूर्त्ति नहीं है तब उसका ध्यान या चिन्तन कैसे हो सकता है? इस बात का उत्तर इसी मन्त्र में दिया है। 'यस्य नाम महद्यशः' जिसका नाम-स्मरण, आज्ञा पालन ही महायश है। योगदर्शन में लिखा है "**तज्जपस्तदर्थभावनम्**" परमात्मा के ओम् नाम का जप, अर्थात् उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए। मन्त्र ने स्पष्ट कर दिया कि उसका चिन्तन नाम-स्मरण है, न कि मूर्त्तिपूजा।

प्रतिमा का अर्थ

प्रश्न—इस मन्त्र में प्रतिमा का अर्थ उपमान या मान, सदृश है। परमात्मा के बराबर संसार में कोई नहीं। इसलिए आर्यसमाजियों का इस मन्त्र से मूर्त्तिपूजा का निषेध बतलाना ठीक नहीं।

उत्तर—प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति होता है, इस बात को पौराणिक मानते हैं '**दैवतप्रतिमा हसन्ति**' इस प्रमाण में सब पौराणिकों ने प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति किया है। आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि प्रतिमा का अर्थ मूर्त्ति न किया जाए। यदि आप कहें कि महीधर आदि ने इसका ऐसा अर्थ नहीं किया तो महीधार आदि का भाष्य हमारे लिए प्रमाण नहीं। दूसरी बात यह है कि यदि आपके

कथनानुसार प्रतिमा का अर्थ उपमान, सदृश लिया जाए तो भी परमात्मा की मूर्त्ति सिद्ध नहीं होती। आपने मन्दिरों में जितनी मूर्त्तियाँ रक्खी हैं, उनके सदृश वा उनसे अच्छी अनेक मूर्त्तियाँ मिल सकती हैं। उनके लिए सैकड़ों उपमाएँ दे सकते हैं। आपके शरीरधारी अवतारों के लिए घनश्याम, अर्थात् बादल की भाँति काला आदि अनेक उपमाएँ पुराणों में विद्यमान् हैं। जो देहधारी या मूर्त्तिमान् हो, उसके तुल्य कोई नहीं होता, यह बात ग़लत है, यह बात केवल निराकार परमेश्वर में ही घट सकती है।

क्या परमात्मा गर्भ में आता है?

प्रश्न—यजुर्वेद के ३२ अ० के चौथे मन्त्र में स्पष्ट ही लिखा है कि परमात्मा गर्भ में आता है या प्रकट होता है।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर हम विस्तारपूर्वक 'अवतार मीमांसा' पुस्तक में देंगे। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि 'जातः' का अर्थ पैदा होना नहीं है, किन्तु परमात्मा संसार को बनाकर उसके द्वारा मनुष्यों के हृदय में प्रकट होता है, अर्थात् उसका ज्ञान होता है।

अयं होता प्रथमं पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आनिषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः॥

—ऋ० ६.९.४

अर्थ—यह परमेश्वर सम्पूर्ण संसार को दान देनेवाला है। प्रथम इसी अमृत, नाशरहित ज्योति को देखो। दूसरा जीवात्मा है जिसके होने से शरीर बढ़ता है।

इन मन्त्र में यह स्पष्ट कहा है कि जीव के शरीर होता है परमात्मा के जब शरीर ही नहीं तो उसकी मूर्त्ति नहीं बन सकती।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृश्ये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवा समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु॥

—ऋ० ६.९.५

अर्थ—परमेश्वर ध्रुव, सत्य ज्योति, चित् 'कं'=सुखस्वरूप, अर्थात् सच्चिदानन्द है। समस्त विद्वान् उस एक ही की उपासना करते हैं।

इस मन्त्र में परमात्मा को सच्चिदानन्द बतलाया है मूर्त्ति या मूर्त्तिमान् कभी सच्चिदानन्द नहीं होता।

अन्य की उपासना न करो

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥

—ऋ० ८.१.१

अर्थ—हे मित्रो! इन्द्र परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे की स्तुति मत करो। दूसरे की स्तुति करके मत मरो, उसी भगवान् की बारम्बार स्तुति करो।

इन मन्त्र में स्पष्ट इस बात का वर्णन है कि परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे की स्तुति मत करो। पौराणिक जिन अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, वे परमात्मा नहीं, इसलिए मूर्त्तिपूजा अनुचित है।

ईश्वर निराकार

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत् सूर्याय।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद् गोःपतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः॥

—ऋ० १०.१११.३

अर्थ—वही परमात्मा भक्त की स्तुति को सुनता है, जयशील है, विद्वान् के लिए रास्ता दिखलानेवाला है। वही वेदवाणी का देनेवाला, निर्विकार, इन्द्रियागोचर, अर्थात् इन्द्रियों से नहीं दीखता।

मूर्त्ति विकारी या इन्द्रियों से दीखती है, इसलिए वह परमात्मा नहीं।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि वेदों में मूर्तिपूजाविधायक मन्त्र नहीं हैं, किन्तु मूर्त्तिपूजा के खण्डन के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

॥ इति शम् ॥

मूर्त्तिपूजा परिशिष्ट

मूर्त्तिपूजा और स्वामी शंकर

स्वामी शंकराचार्य पौराणिकों में अवतार माने जाते हैं। उपनिषदों तथा शारीरक सूत्रों पर उन्होंने भाष्य भी किया है। वे भी मूर्त्तिपूजा के समर्थक नहीं थे। उन्होंने परापूजा या आत्मपूजा में लिखा है—

आनन्दे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीये भावे वै कथं पूजा विधीयते॥ १॥

जब वह परमात्मा सच्चिदानन्द है, तब उसकी कोई भी मूर्त्ति नहीं बन सकती। कारण यह है कि परमात्मा सत्, चित् तथा आनन्दस्वरूप है और मूर्त्ति नाश होनेवाली, जड़ और आनन्दरहित है। जब मूर्त्ति नहीं बनती, पुनः उसकी पूजा कैसे हो सकती है।

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥ २॥

भगवान् सर्वत्र परिपूर्ण हैं, पुनः उनका आह्वान क्यों करते हो? जब वह सबका आधार है, उसको आसन पर कैसे बैठा सकते हैं? मलरहित के पाँव कैसे धो सकते हो? शुद्ध को आचमन कराना कैसे सङ्गत हो सकता है?

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
निरालम्बस्योपवीतं रम्यस्याभरणं कुतः॥ ३॥

परमात्मा सर्वथा निर्मल है, फिर उसको स्नान आदि क्यों कराते हो, सारा संसार उसके मध्य में है, उसे वस्त्र कैसे पहना सकते हैं, परमात्मा आलम्बन रहित है, फिर उसके लिए यज्ञोपवीत कैसा? परमात्मा स्वयं रमणीय है, पुनः उसके लिए आभूषण कैसे?

निर्लेपस्य कुतो गन्धं पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्गन्धस्य कुतो धूपं स्वप्रकाशस्य दीपकम्॥ ४॥

निर्लेप भगवान् को चन्दन का लेप क्यों लगाते हो, जब वह सुगन्ध की इच्छा से रहित है, पुनः उसको पुष्प क्यों चढ़ाते हो, निर्गन्ध को धूप क्यों जलाते हो तथा स्वयं प्रकाशमान के आगे दीपक क्यों जलाते हो?

नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं निष्कामस्य फलं कुतः।
नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं निष्कामस्य फलं कुतः।
ताम्बूलं च विभो कुत्र नित्यानन्दस्य दक्षिणा ॥ ५ ॥
प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य चाद्वितीयस्य नो नतिः ॥ ६ ॥

नित्यतृप्त को भोग क्यों लगाते हो, निष्काम को फल कैसे, विभु को ताम्बूल क्यों, जब परमात्मा अनन्त है पुनः उसकी प्रदक्षिणा कैसे करते हो?

उपर्युक्त श्लोकों में स्वामी शंकराचार्य जी ने कैसी प्रबल युक्तियों से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया है। सर्वत्र परिपूर्ण, पूर्णकाम, फल—इच्छारहित, परमात्मा को भोग लगाना, स्नान कराना, कपड़े पहनाना, दीपक दिखलाना आदि अत्यन्त असङ्गत तथा बुद्धिरहित कार्य है।

शिवगीता

वेदैरशेषैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्मदेहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥
—अ० ६.५५

सम्पूर्ण वेद परमात्मा का गान करते हैं, वेदों का उपदेश परमात्मा ने ही किया है, उस परमात्मा में देह के कारणभूत पाप तथा पुण्य भी नहीं हैं तथा उसका नाश भी नहीं होता। उसका जन्म नहीं होता, देह, इन्द्रिय, बुद्धि आदि का सम्बन्ध भी उससे नहीं है।

इस श्लोक में यह सिद्ध किया है कि जिस परमात्मा ने वेदों का उपदेश किया है तथा जिसका वर्णन चारों वेदों में किया है वह परमात्मा जन्म-मरण के बन्धन से रहित है तथा उसका शरीर आदि भी नहीं है। जब वह शरीर से रहित है फिर उसकी मूर्त्ति कैसे बन सकती है?

अज्ञानमूढा मुनयो वदन्ति पूजोपचारादिबलिक्रियाभिः।
तोषं गिरीशे भजतीति मिथ्या कुतस्त्वमूर्तस्य तु भोगलिप्सा ॥ ३१ ॥

अज्ञानी तथा मूढ़ यह कहते हैं कि धूप-दीपादि द्वारा पूजा करने से परमात्मा प्रसन्न हो जाते हैं, यह सब मिथ्या प्रलाप है। जब शरीराभाव से परमात्मा की मूर्त्ति नहीं है, फिर उसको भोग की इच्छा कैसे हो सकती है?

किंचिद् दलं वा चुलुकोदकं वा यस्त्वं महेश प्रतिगृह्य दत्से।
त्रैलोक्यलक्ष्मीमपि यज्जनेभ्यः सर्वं त्वविद्याकृतमेव मन्ये ॥ ३२ ॥

जो परमात्मा हमें सम्पूर्ण संसार का ऐश्वर्य प्रदान करता है, पुनः

उस परमेश्वर को एक चुल्लु पानी चढ़ाना या उसे पत्ते चढ़ाना क्या अज्ञान नहीं है।

शिवगीताकार कहते हैं ये सब अविद्या की बातें हैं।

उत्तरगीता का प्रमाण

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् पाषाणमृण्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मज्ञानपरायणः ॥ ६ ॥

सब तीर्थ पानी से परिपूर्ण है, सिवाय जल के वहाँ मुक्ति देनेवाली कोई भी बात नहीं है तथा पौराणिक लोगों ने मन्दिरों में जितने भी देवता स्थापित किये हुए हैं वे सब पत्थर या मिट्टी या धातुओं के बने हुए हैं। जो परमात्मा की पूजा करनेवाले योगिजन हैं वे कभी भी इन पाषाणों की पूजा नहीं करते।

अग्निर्देवं द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥ —अ० ३.७

अग्निहोत्र करना द्विजमात्र का धर्म है तथा मुनियों का कर्त्तव्य है कि वे हृदय में परमात्मा का स्मरण करें। अल्पबुद्धि लोग मूर्त्तिपूजा करते हैं। जो बुद्धिमान् हैं वे तो परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हुए कभी पाषाणपूजा नहीं करते।

इन प्रमाणों द्वारा उत्तरगीता में मूर्त्तिपूजा का कैसा प्रबल खण्डन किया है। जैसे शिवगीता तथा उत्तरगीता में पाषाण आदि की मूर्त्तियों का खण्डन किया है, वैसे अन्य गीताओं में भी मूर्त्तिपूजा का खण्डन आता है, विस्तार भय से नहीं लिखते।

त्र्यम्बक पूजा

शंका

यजुर्वेद में परमात्मा को त्र्यम्बक—तीन नेत्रोंवाला बतलाया है। वे शिवजी हैं, इसलिए उनकी मूर्त्ति बनाकर पूजा करनी चाहिए।

समाधान

तिस्रो देव्यो यदा चैनं भजन्ते परमेश्वरम्।
द्यौरापः पृथिवी चैव त्र्यम्बकस्तु ततः स्मृतः॥

—महा० द्रोण० अ० २०३.१२८

अर्थ—द्युलोक, पृथिवीलोक तथा जलीयलोक ये तीनों शक्तियाँ परमात्मा के अधीन हैं, अतः इन तीनों शक्तियों का अधिपति होने से परमात्मा को त्र्यम्बक कहते हैं।

महाभारत का यह प्रमाण पौराणिक लोगों के तीन नेत्रवाले अर्थ पर वज्रपात है। इस प्रमाण में कितना स्पष्ट बतालाय गया है कि द्युलोक, अर्थात् प्रकाशमयलोक आदि की तीन शक्तियों का स्वामी होने से ईश्वर को त्र्यम्बक कहते हैं, न कि तीन नेत्रोंवाला होने से।

शंका

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि।

इस अथर्ववेद के मन्त्र में परमात्मा को पत्थर बतलाया है। इस प्रमाण से मूर्त्तिपूजा सिद्ध है।

समाधान

धन्य हो महाराज! वेद का प्रमाण देकर नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव चेतन परमात्मा को जड़ तथा चेतनारहित पाषाण बना दिया। इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है जो आप करते हैं, किन्तु इसका सत्यार्थ कौशिकसूत्र में किया है, जो नीचे लिखा जाता है—

दर्भाणामुपादाय ऋषीणां प्रस्तरोसीति।
दक्षिणतो ब्रह्मा सम निदधाति॥ —कौ० अ० १.१८

अर्थ—इस मन्त्र को पढ़कर कुशा का बना हआ आसन ब्रह्मा के लिए वेदी के दक्षिणभाग में स्थापित करता है।

इस कौशिकसूत्र के प्रमाण से यह सिद्ध है कि प्रस्तर का अर्थ यहाँ पाषाण नहीं है, किन्तु आसन है और वह आसन यज्ञ के सर्व प्रधान ऋत्विज ब्रह्मा के लिए स्थापित किया जाता है।

शंका

एहि अश्मानमातिष्ठ अश्मा भवतु ते तनुः।
कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्॥ —अ० २.१३.४

हे परमात्मन्! आप आइए, इस पाषाण की मूर्त्ति में प्रवेश करें, यह आपका शरीर है। इत्यादि।

इस अथर्ववेद के मन्त्र में परमात्मा का आवाहन करना लिखा है तथा यह भी लिखा है कि पाषाण उसका शरीर है। इस प्रमाण से स्पष्ट ही मूर्त्तिपूजा सिद्ध है॥

समाधान

आपका किया हुआ अर्थ सर्वथा अशुद्ध है, इसके लिए सायणभाष्य का ध्यान से अवलोकन कीजिए, जो इस प्रकार है—

हे माणवक एहि आगच्छ अश्मानं आतिष्ठ दक्षिणपादेन आक्रम ते तव तनुः अश्मा भवतु अश्मवद् रोगादि विनिर्मुक्तं दृढं भवतु। विश्वे देवाः ते तव शतसंवत्सरपरिमितं आयुः कुर्वन्तु॥

यज्ञोपवीत संस्कार के समय आचार्य ब्रह्मचारी से कहता है—हे ब्रह्मचारिन्! आओ तथा इस पत्थर पर दायाँ पाँव रक्खो और इस पाषाण की भाँति अपनी देह को दृढ़ तथा बलशाली बनाओ और विद्वानों के कथन के अनुकूल अपने आचरण को बनाओ, जिससे तुम्हारी सौ वर्ष की दीर्घ आयु हो जावे।

वेदमन्त्र का अर्थ कितना स्पष्ट है। यहाँ पर मूर्त्तिपूजा की गन्ध भी नहीं है। इस मन्त्र में पत्थर की पूजा नहीं लिखी, किन्तु इसपर पाँव रखना लिखा है। क्या पौराणिक पाँव रखकर मूर्त्तिपूजा करते हैं। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि ये मूर्त्तिपूजक अपने आचार्यों के भाष्यों को भी ध्यान से नहीं पढ़ते, अन्यथा ऐसी शंका करने का अवकाश ही नहीं है।

शङ्का

बृहदारण्यक उपनिषद् में परमात्मा के दो रूप मूर्त्त तथा अमूर्त्त लिखे हैं, पुनः आर्यसमाजी ईश्वर के मूर्त्तरूप की पूजा करने से क्यों इनकार करते हैं?

समाधान

स्वामी शङ्कराचार्यजी इस उपनिषद्वचन का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

पंच भूतानां सत्यानां कार्यकारणात्मकानां स्वरूपावधारणार्थमिदं ब्राह्मणमारभ्यते। मूर्तं मूर्च्छितावयवमितरेतरानु प्रविष्टावयवं धनसंहतमित्यर्थः पृथिव्यादिभूतत्रयं मरणधर्मा। वायुश्चान्तरिक्षं परिशेषात् भूतद्वयं अमूर्तम्॥ —शां० भा०

जो कार्य-कारणस्वरूप पाँच अग्नि आदि भूत हैं उनके स्वरूप का निश्चय करने के लिए उपनिषत्कार इस ब्राह्मण को आरम्भ करते हैं।

अग्नि, पृथिवी तथा जल—ये तीन भूत मूर्च्छित अवयव होने से मूर्त्त कहलाते हैं तथा वायु और अन्तरिक्ष ये दोनों भूत अमूर्त्त हैं।

यहाँ श्री स्वामी शङ्कराचार्यजी ने ईश्वर के दो रूप मूर्त्त तथा अमूर्त्त नहीं बतलाये, किन्तु पाँच भूतों के बतलाये हैं।

इसलिए इस प्रमाण से भी मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं होती।

शंका

यदि आर्यसमाजी मूर्त्तिपूजा नहीं मानते तब स्वामी दयानन्दजी की मूर्त्तियाँ अपने घरों में क्यों रखते हैं ?

समाधान

उपर्युक्त शंका के निम्नलिखित समाधान हैं—

(१) आर्यसमाजी मूर्त्तिकला के विरोधी नहीं हैं, किन्तु जड़मूर्त्ति को परमात्मा मानकर उसको धूपदीपादि चढ़ाने के विरोधी हैं। घर में मूर्त्ति के रखने से उसकी पूजा नहीं हो जाती।

(२) यह युक्ति सर्वथा मूर्खतापूर्ण है कि यदि तुम अमुक वस्तु की, जो तुम्हारे घर में है, पूजा नहीं करते, तब उसको तोड़ते-फोड़ते क्यों नहीं ? हमारे समाजमन्दिर में बीसियों प्रकार की वस्तुएँ रखी हैं, क्या हम उनको परमात्मा मानकर उनकी पूजा करते हैं। यदि कोई पौराणिक कहे कि अमुक आर्यसमाजी का जो मकान है, वह उसकी पूजा करता है अन्यथा उसको तोड़कर दिखलावे, तब क्या कोई बुद्धिमान् उसकी बात को मानने के लिए तैयार होगा। किसी पदार्थ को रखना उसकी पूजा का चिह्न नहीं है अथवा उसको बिगाड़, तोड़ फैंकना उसकी अपूजा का चिह्न नहीं है।

(३) जब कोई पौराणिक यह युक्ति उपस्थित करे कि यदि तुम स्वामी दयानन्द की मूर्त्ति की पूजा नहीं मानते, तब उसका निरादर क्यों नहीं करते? उनको उत्तर देना चाहिए कि यदि तुम पूजा या अपूजा की यही कसौटी मानते हो तब हम समाजी, जो तुम्हारी किसी भी मूर्त्ति की पूजा नहीं मानते तथा पूजा न करने की कसौटी निरादर करना है, तब तुम अपनी सम्पूर्ण मूर्त्तियों का ढेर लगाओ हम उन सबका तुमको अनादर करके दिखलाते हैं, तब स्वयं प्रतिपक्षी मौन साध लेगा।

ऊपर मैंने कतिपय आवश्यक प्रमाण पाठकों के लाभ के लिए लिख दिये हैं।

तथा कुछ युक्तियों का समाधान भी कर दिया है। यद्यपि मेरे पास अन्य प्रमाणसंग्रह भी है, किन्तु विस्तारभय से सम्पूर्ण नहीं लिखा।

अवतारवाद–मीमांसा

ओ३म्

प्राक्कथन

आर्यों के धर्म में किसी विषय को सिद्ध करने के लिए शास्त्रीय प्रमाण और युक्तियों की आवश्यकता होती है। शास्त्रों में सबसे पहले प्रभु का दिया वेद परम प्रमाण है। जो विषय इस कसौटी पर पूरा उतर आये, वह सिद्ध समझना चाहिए। यदि एक विषय पर दो पक्ष हों, उनमें से यदि एक पक्षवाला अपने विषय को प्रतिवीदी के माने हुए ग्रन्थ में से सिद्ध कर देवे तो प्रतिवादी को भी उस पक्ष की सत्यता स्वीकार कर लेनी चाहिए।

आर्यों में परमात्मा के सम्बन्ध में कई मतभेद पाये जाते हैं, परन्तु इस समय मेरा केवल एक ही मतभेद के साथ सम्बन्ध है। वह है परमात्मा के जन्म-धारण करने के सम्बन्ध में। आर्यसमाज का सिद्धान्त है कि परमात्मा निराकार और सर्वव्यापक है, वह कभी जन्म नहीं लेता। आर्यसमाज यह मानता है कि अवतारवाद का सिद्धान्त अवैदिक है। परमात्मा का अवतार मानना उसका अपमान करना है। हमारे सनातनधर्मी भाई मानते हैं कि जब संसार में पाप बहुत बढ़ जाता है, धर्मात्मा लोग दुःखी हो जाते हैं, दुष्ट लोग बहुत अत्याचार करने लगते हैं, उस समय परमात्मा अपने भक्तों की रक्षा के लिए और पापियों के नाश के लिए जन्म लेते हैं। जैसे परमात्मा ने रावण का नाश करने के लिए श्रीराम का शरीर धारण किया और कंस आदि दुष्टों को मारने के लिए श्रीकृष्ण के रूप में अवतार धारण किया। पृथिवी का उद्धार करने के लिए वराह का अवतार हुआ, इत्यादि।

अब प्रश्न यह होता है कि जो परमात्मा इतने बड़े ब्रह्माण्ड को बनाता है, इसपर शासन करता है, इसका संहार करता है, क्या वह कंस, रावण आदि राक्षसों का नाश बिना शरीर धारण किये नहीं कर सकता? यदि वह कर सकता है तब उसे शरीर धारण की आवश्यकता भी नहीं होनी चाहिए। बात यह है कि वास्तव में परमात्मा का अवतार कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य नहीं मान सकता, क्योंकि सनातनधर्मियों के यहाँ भी जो समझदार मनुष्य हैं, वे विष्णु के अवतार मानते हैं। उनके सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों नाम परमात्मा के हैं, परन्तु आर्यसमाज परमात्मा का

अवतार किसी रूप व किसी अवस्था में भी नहीं मानता।

प्रश्न यह है कि क्या अवतारवाद का सिद्धान्त वैदिक है। इस विषय में जितने भी प्रमाण हमारे सनातनधर्मी भाई उपस्थित करते हैं उन सब मन्त्रों के अर्थ उनके अपने प्रामाणिक भाष्यों—सायण, महीधर आदि के भाष्य—में उनके मत के विरुद्ध मिलते हैं। पं० श्री बुद्धदेवजी मीरपुरी ने सनातनधर्मी भाईयों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये हैं। उनके पास इस प्रकार के विषयों पर सामग्री का बहुत अधिक संग्रह है। उन्हें वेद के, रामायण आदि ग्रन्थों के और पुराणों के सहस्त्रों प्रमाण कण्ठ हैं। उन्हों ने इस ग्रन्थ में वेद के प्रमाणों से अवतारवाद को अवैदिक सिद्ध किया है। रामायण आदि के प्रमाणों से श्रीराम आदि महापुरुषों, परन्तु हमारे भाईयों के विचार में साक्षात् परमात्मा के अवतारों के वचनों से यह सिद्ध किया है कि वे परमात्मा नहीं थे, किन्तु प्रभु के भक्त, उच्च कोटि के महात्मा, महापुरुष थे। पण्डितजी ने अकाट्य युक्तियों से भी अवतारवाद को असङ्गत और अयुक्त सिद्ध किया है।

यहीं तक नहीं किन्तु हमारे सनातनधर्मी भाइयों के पाँचवे वेद पुराणों से प्रमाणों की भरमार की है और यह दिखाया है कि पुराणों में भी अवतारवाद का खण्डन भरा पड़ा है।

इस ग्रन्थ को जो सज्जन निष्पक्ष होकर पढ़ेंगे, मेरा विश्वास है कि उनका अवतारवाद पर कभी विश्वास नहीं रहेगा।

आशा है कि जनता इस ग्रन्थ को अपनाकर लेखक और प्रकाशक का उत्साह बढ़ाएगी और वैदिक धर्म का प्रचार करने का श्रेय प्राप्त करके पुण्य का लाभ करेगी।

'आर्य साहित्य विभाग'	वाचस्पति (एम०ए०)
आर्यप्रादेशिक	श्रावण, दयानन्दाब्द, ११२
प्रतिनिधिसभा	
लाहौर	

॥ ओ३म् ॥

अवतारवाद–मीमांसा

वेद

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे॥

—ऋ० ४.१.११

जो परमेश्वर इस संसार के कारण—प्रकृति में प्रथम चेष्टा उत्पन्न करता है तथा इस बलिष्ठ लोक की रचना वा प्रलय करता है, वह परमेश्वर शिर वा पाँव आदि अवयवों से रहित है।

इस मन्त्र से यह सिद्ध है कि परमात्मा के पाद आदि अवयव नहीं होते।

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत्॥

—ऋ० १.१५२.३

वह भगवान् पैरवाले वा पैरवालियों में (अपाद) पाँवरहित है। हे अध्यापक वा उपदेशक! तुममें से उसको कौन जानता है? वही इस संसार का ग्रहण करनेवाला तथा भरण-पोषण करनेवाला है, सत्य की पालना तथा असत्य का नाश करनेवाला है।

इस मन्त्र से भी यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्रभु शरीरवाले जीवों में अशरीरी है।

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः॥

—ऋ० १०.८९.१०

इन्द्र द्यौ पर शासन कर रहा है। इन्द्र पृथिवी पर शासन कर रहा है। इन्द्र ही जलों तथा पर्वतों पर शासन करता है। इन्द्र मेघों पर शासन करता है। इन्द्र बढ़नेवालों पर शासन करता है। इन्द्र ही बुद्धिमानों पर शासन करता है। इन्द्र ही नूतन प्राप्ति के लिए पुकारने योग्य है तथा इन्द्र ही प्राप्त किये की रक्षा कर सकता है।

द्यौ आदि इन सबपर शरीरधारी कभी शासन नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी शक्ति परिमित होती है।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥ २॥

—अ० ४.१६.२

जो खड़ा है, जो चलता है, जो धोखा देता है, जो छिपकर चलता है, जो दो मनुष्य छिपकर बात करते हैं, उसको भी परमेश्वर जानता है।

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः॥ ३॥

यह भूमि तथा यह द्यौ, जिसके किनारे बहुत दूर हैं, वरुण के हैं। वह पानी की एक छोटी-सी बूँद में भी समाया हुआ है।

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्॥ ४॥

—अ० ४.१६.३-४

चाहे कोई द्यौ से परे भी निकल जाए, वह परमात्मा के दण्ड से नहीं छूट सकता, क्योंकि उसकी गुप्त शक्तियाँ सहस्राक्ष होकर सबको देख रही हैं।

यह सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता तथा सर्व-दण्डनीयता जो-जो वरुण-सूक्तों में विशेषतया प्रतिपादित की गई है, कभी भी शरीरधारी में नहीं हो सकती।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

—यजुः० ४०.४

महीधरभाष्यम्

देवा द्योतनात्मकाश्चक्षुरादीन्द्रियाणि एनत् प्रकृतात्मतत्त्वं नाप्नुवन् प्राप्तवन्तः। चक्षुरादिभ्यो मनो जवीयः अतो मनोव्यापारे व्यवहितत्वादात्मन आभासमात्रमपि देवानां गोचरो न भवतीत्यर्थः।

प्रकाशक चक्षु आदि इन्द्रियाँ परमात्मा के आभासमात्र को भी प्राप्त नहीं कर सकतीं।

यदि परमात्मा साकार होता तब उसको इन्द्रिय क्यों नहीं प्राप्त कर सकतीं, इससे सिद्ध है कि परमात्मा साकार वा शरीरी नहीं है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजुः० ४०.८

महीधरभाष्यम्

योऽयमतीत मन्त्रोक्त आत्मा स पर्यगात् परितः सर्वत्रः गच्छति नभोवत् सर्वं व्याप्नोति। शुक्रः शुद्धः अकायोऽशरीरः। लिङ्गशरीर वर्जित इत्यर्थः। अव्रणोऽक्षतः। अस्नाविरः शिरारहितः। अव्रणोऽस्नाविर इति विशेषणद्वयेन स्थूलशरीरप्रतिषेधः। अधर्मादि वर्जितः। स्वयमेव भवतीति येषामुपरि भवति यश्चोपरि भवति स स्वयमेव भवतीति स्वयंभूः। स नित्य ईश्वर सर्वं कृतवानित्यर्थः।

इस मन्त्र के भाष्य में महीधर ने यह स्पष्ट किया है कि परमात्मा स्थूलशरीर वा लिङ्गशरीर से रहित है। स्वयंभू का अर्थ भी नित्य किया है यानि स्वयं है, किसी कारण से उत्पन्न नहीं होता। यह मन्त्र पौराणिकों के लिए वज्र-तुल्य है।

शंका—जब अकाय कह दिया पुनः अव्रण, अस्नाविर के कहने की क्या आवश्यकता है, क्योंकि अकाय से ही सब कार्य सिद्ध हो जाता है, इससे सिद्ध है कि परमात्मा साकार भी है।

समाधान—अष्टाध्यायी में आता है—

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः। —अष्टा० ३.३.४१

इस सूत्र से काय शब्द निवास, चिति और शरीर आदि कई अर्थों में सिद्ध किया है, इसलिए अकाय से कोई भिन्न अर्थ भी सिद्ध हो सकता है। वेद ने अव्रण आदि विशेषण लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि अकाय का अर्थ शरीररहित ही है।

महीधर ने इसका यह समाधान किया है कि अकाय से लिंगशरीर का निषेध है तथा अव्रण वा अस्नाविर से स्थूलशरीर का निषेध है।

शंका—ऋ० १०.३.३ में स्पष्ट रामावतार का वर्णन आता है पुनः आप वेद-विरुद्ध अवतार का खण्डन कैसे करते हैं?

समाधान—

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥

—ऋ० १०.३.३

इसपर सायणभाष्य

भजनीयः कल्याणः भजनीयया दीप्त्योषसा वा सेव्यमानः अग्नि आगात्। गार्हपत्यादाहवनीयमागच्छति पश्चात् जरयिता शत्रूणां सोऽग्निः स्वयं सारिणीं भगिनीं वाऽऽगतामुषसं अभिगच्छति

सुप्रज्ञानैः वारकैः तेजोभिः सह रामं कृष्णं शार्वरं तमः सायंहोकाले अभिभूय तिष्ठति।

दीप्तिवाला अग्नि गार्हपत्यादि स्थान से आहवनीयाग्निस्थान में आता है। वह अग्नि शत्रुओं का नाश करनेवाला राम=रात्रि के काले अन्धाकार का नाश करता है।

यहाँ सायणचार्य ने राम वा कृष्ण के अर्थ रात्रि का काला अन्धकार किया है, यही नहीं प्रत्युत अग्नि राम का नाश कर देता है।

मैं इन सनातन बात के माननेवालों से पूछता हूँ कि अब तुम्हारा सनातनधर्म कहाँ गया जो सायणचार्य के विरुद्ध मन्त्रार्थ करते हो, क्या सायण को रामावतार का पता नहीं था?

सत्यार्थः—कल्याणस्वरूप जीव जब कल्याणकारिणी मति के साथ स्वसा स्वयं प्राप्त परमात्मा को जानता है तब परमेश्वर अपने विज्ञान के द्वारा जीव के राम=अन्धकार को नष्ट कर देता है।

शंका—ऋग्वेद में कृष्णावतार का वर्णन आता है, आप इसका क्या अर्थ करेंगे?

समाधान—

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः॥

—ऋ० ४.७.९

इसपर सायणभाष्य

हे अग्ने! रोचमानस्य तव सम्बन्धी एमन् शब्देन गमनमार्ग उच्यते। एम वर्त्म कृष्णवर्णं भवति। तव सम्बन्धिनी दीप्तिः। पुरस्ताद् भवति सञ्चरणशीलं त्वदीयं तेजः रूपवतां तेजस्विनां मुख्यमेव भवति यं त्वां अप्रवीता अनुपगता यजमानाः त्वज्जननहेतुमरणिं धारयन्ति। सद्य एव उत्पन्नः सन् यजमानस्य दूतो भवस्येव।

यहाँ सायणाचार्य ने इस मन्त्र में अग्नि का वर्णन करते हुए कृष्ण एम का अर्थ काला मार्ग किया है। कृष्ण शब्द को विशेष्य नहीं किया, किन्तु वर्त्म का विशेषण माना है। अप्रवीता का अर्थ यजमान किया है। पौराणिक सायण के अर्थ के विरुद्ध कृष्ण अवतार सिद्ध करते हैं, परन्तु इस मन्त्र से अवतार-सिद्धि असम्भव है। केवल कृष्ण शब्द के आने से अवतार सिद्ध नहीं हो सकता, अन्यथा इस मन्त्र का क्या करोगे?

प्र मन्दिने पितुर्मदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥

—ऋ० १.१०१.१

कृष्णो नाम कश्चिदसुरस्तेन निषिक्तागर्भास्तदीयः भार्याः। निरहन् अवधीत्। कृष्णमसुरं हत्वा पुत्राणामप्यनुत्पत्त्यर्थं गर्भिणी–स्तस्य भार्या अप्यवधीत्। कृष्णेन निषिक्ता गर्भा यासु ताः।

सायण का भाव यह है कि—इन्द्र ने कृष्ण नामवाले राक्षस को मारा तथा उसकी गर्भवती स्त्री को मारा ताकि उसके गर्भ से कोई बालक उत्पन्न न हो।

बतलाओ अब क्या करोगे? यहाँ तो कृष्ण और उसकी गर्भवती स्त्री का वध लिखा है।

शंका—ऋग्वेद में नृसिंहावतार का विस्तार से वर्णन आता है, जिसका किसी प्रकार भी समाधान नहीं हो सकता।

समाधान—

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥

—ऋ० १.१५४.२

इस मन्त्र का देवता विष्णु है जिसका अर्थ ही व्यापक है। वह विष्णु अपने बल वा पराक्रम से सबके द्वारा स्तुति किया गया है। जैसे वन में रहनेवाला सिंह बलवान् होता है तथा सब उसकी स्तुति करते हैं।

यहाँ विष्णु उपमेय तथा सिंह उपमान है। नृसिंहावतार का नाममात्र भी वर्णन यहाँ नहीं है। यदि स्वयं सिंहरूप होता तब उपासना की क्या आवश्यकता थी। तीन, अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष वा द्युलोक में उसके सब लोक निवास करते हैं। पद के अर्थ पाँव नहीं हैं, स्वयं वेद कहता है। **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।** उस भगवान् के स्वरूप को विद्वान् लोग देखते हैं।

शंका—ऋग्वेद १०.२७.१६ में कपिलावतार का प्रतिपादन आता है। क्या यह बात भी मिश्रण है?

दशानामेकं कपिलम्॥

समाधान—

दशानामेकं कपिलं समान तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तुं तुष्यती बिभर्ति।

इसपर सायणभाष्यम्

क्षितं वक्षणासु अवेनन्तं तुष्यन्ती बिभर्ति दशानां दशसंख्याकानां पूर्वोक्तानामेवाङ्गिरसां मध्ये एकं मुख्यं कपिलँ एतन्नामानं प्रसिद्धमृषिम्, इत्यादि।

दश संख्यावाले जो अङ्गिरा के गोत्रवाले हैं, उनमें कपिल एक ऋषि मुख्य है।

यहाँ सायणाचार्य ने कपिल को दस अवतारों में एक मुख्य अवतार नहीं माना, किन्तु दस ऋषियों में एक ऋषि माना है। यदि यहाँ अवतार का वर्णन था तब सायण ने इसका अर्थ 'दस अवतारों में कपिल अवतार मुख्य है' ऐसा अर्थ क्यों नहीं किया और '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' वाला आपका कथन कहाँ गया?

स्वामी शंकर ने उपनिषद् का भाष्य करते हुए कपिल को ऋषि माना है, अवतार नहीं तथा स्मृतिप्रकरण में लिखा है—

न सिद्धेरपि सापेक्षत्वाद् धर्मानुष्ठानापेक्षा हि सिद्धिः।

पंच नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्त्रोतसः।

सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत् सरित्। —यजुः० ३४.११

इसपर दयानन्दभाष्यम्

पंच ज्ञानेन्द्रियवृत्तयः नदीवत् प्रवाहरूपाः प्रशस्तविज्ञानवर्ती वाचं प्राप्नुवन्ति समानं मनोरूपस्त्रोतः प्रवाहो यासां ताः पञ्च ज्ञानेन्द्रियशब्दादिविषयप्रतिपादनेन पंच प्रकाराः स्वनिवासे भवति सरति गच्छति सा।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्तियाँ नदीवत् प्रवाहवाली हैं। वे प्रशस्त ज्ञानवाली वाणी को प्राप्त होती हैं। मनरूपी स्त्रोत इनमें समान है। वह सरस्वती शब्दादि विषयों का प्रतिपादन करती हुई पाँच प्रकार की होती है।

यहाँ भी इन्द्रियाँ में मन को समान बतलाया है।

कपिल

कमेः पश्च। उणादि० १.५५ कमु धातु से इलच् प्रत्यय, "कामयतेऽसौ कपिलः"।

कामना करेवाला मन यहाँ कपिल है।

कपिलादि की सिद्धि सापेक्ष थी। धर्मानुष्ठान से वे सिद्ध बने थे। क्या अवतार भी धर्मानुष्ठान से सिद्धि प्राप्त करते हैं। पुनः उनमें वा

जीवों में भेद क्या हुआ? जब कपिल अवतार थे तब तुम्हारे कहने के अनुसार उन्होंने साँख्य में नास्तिक मत का—ईश्वर नहीं है, इस बात का प्रचार क्यों किया? क्या दस अवतारों में वह इसलिए मुख्य थे तथा स्वामी शंकर ने उनके मत का इतना प्रबल खण्डन क्यों किया? क्या अवतार भी अवतार का खण्डन करता है? शंकर तथा कपिल दोनों ही अवतार थे।

सत्योऽर्थः—दस इन्द्रियों में कपिल ज्ञानवाला मन प्रधान है। इन्द्रियरूपी नदियों में मानसिक धाराएँ बड़े वेग से बहती हैं। सत्यबुद्धि माता की भाँति मन को सन्मार्ग पर चलाती है।

शंका—ऋग्वेद में वराह अवतार का प्रतिपादन आता है, पुनः अवतारवाद को समाजी स्वीकार क्यों नहीं करते?

समाधान—

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महीव्रतः शुचिबन्धु पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥

—ऋ० ९.९७.७

इसपर सायणभाष्य

उशनेव एतन्नामक ऋषिरिव कविकर्मस्तोत्रं उच्चारयन् अयं ऋषि इन्द्रादीनां जन्मानि ब्रवीति। महीव्रतः प्रभूतकर्मा दीप्ततेजस्कः शोधकः वरं च तदहश्च वराहः तद्वान् सोमः शब्दं कुर्वन् पदानि पात्राणि अभिगच्छति।

यहाँ सायणचार्य ने वराह का अर्थ सोम किया है। एक शब्द भी वराहावतार के सम्बन्ध में नहीं कहा, मैं तुमसे पूछता हूँ अब तुम्हारा सनातनधर्म कहाँ गया जबकि सायण को इसमें वराहावतार नहीं सूझा जो उन्होंने वराह का अर्थ सोम किया है। मन्त्र का देवता भी सोम है।

शंका—अथर्व १२.१.४८ में स्पष्ट वराह अवतार का वर्णन आता है—

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥

समाधान—

वराह शब्द के विषय में निरुक्तकार लिखते हैं—

वराहो मेघो भवति। वराह अयमपीतरो वराह एतस्मादेव बृहति मूलानि वरं वरं मूलं बृहतीति वा॥ —नि० ४.५

धारण सामर्थ्य से युक्त, भारीपन या बहुत को धारण करनेवाले पुण्यात्मा तथा पापी सबको सहन करनेवाले मेघ से सब-कुछ प्राप्त करती हुई सुन्दर किरणवाले सूर्य को प्राप्त होती है, अर्थात् सूर्य की आकर्षण शक्ति से कार्य करती है।

वराह शब्द-सिद्धि

वर+आङ्+हन् वा हृञ् वराय आहन्ति, वरं आहरतीति वराहः।

इस मन्त्र में कहीं भी वराहावतार का वर्णन नहीं है।

यद्वा कश्चन वराहः पादेन भूमिं विक्रममाणः शब्दं करोति तद्वत्।

सत्यार्थ—विद्वान् पुरुष की भाँति उपदेश देता हुआ भगवान् संसार के सूर्यादि पदार्थों की उत्पत्ति को वेद द्वारा बतलाता है। प्रभूत कर्मवाला पवित्र बन्धु पवित्र परमात्मा ऋषियों को अनेक ज्ञानों का उपदेश देता हुआ प्राप्त होता है।

शंका—यजुर्वेद में यह सुस्पष्टतया प्रतिपादन है कि परमात्मा अनेक अवतारों को धारण करता है।

समाधान—

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

—यजुः० ३१.१९

इसपर महीधरभाष्य

यः सर्वात्मा प्रजापतिः अन्तर्हृदि स्थितः सन् गर्भे चरित गर्भमध्ये प्रविशति। यश्चाजायमानोऽनुत्पद्यमानो नित्यः सन् कार्य-कारणरूपेण प्रपंचरूपेणोत्पद्यते ब्रह्मविदस्तस्य स्वरूपं पश्यन्ति भूतजातानि तस्मिन्नेव कारणात्मनि सर्वं तदात्मकमेवेत्यर्थः।

वह प्रजापति सबके अन्दर विद्यमान प्रपञ्चरूप से उत्पन्न होता है, नित्य है। सब संसार ब्रह्ममय है।

इस मन्त्र में महीधर ने अवतारवाद की नींव ही उखाड़ डाली। जब सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्म है तब भगवान् के अवतार का क्या अर्थ है। अवतारवादी पौराणिक महीधर के विरुद्ध अजायमान का अर्थ जायमान करते हैं। श्रीभाष्य पृ० १०४४ में रामानुजाचार्य ने भी अजायमान पद माना है। परमात्मा गर्भ में आता है इसके क्या अर्थ हैं? क्या गर्भ में प्रथम नहीं होता, यदि होता है तब गर्भ में आने के

क्या अर्थ हैं। जब वह सर्वव्यापक है, तब एक गर्भ में कैसे आ जाएगा अगर कहीं सर्वव्यापक होता हुआ भी वह एक विशेष स्थान में विशेष कार्य करता है तब बिना अवतार के भी वह संसार में विशेष कार्य कर रहा है। पुनः अवतारवाद मिथ्या है।

सत्यार्थ—वह परमात्मा सबके हृदय में विद्यमान है तथा शरीर न धारण करता हुआ भी अनेक प्रकार से प्रकट हो रहा है। किसी को दण्ड देकर, किसी को सुख देकर, किसी को मारकर, किसी की उत्पत्ति द्वारा अनेक प्रकार से प्रकट हो रहा है। वह अजायमान तथा उसमें सब भुवन स्थित हैं। ये दो बातें महत्त्व की हैं जो अवतारवाद का खण्डन करती हैं।

शंका—ऋग्वेद में यह प्रतिपादन किया है कि परमात्मा अनेक अवतार धारण करता है, जिसमें दस बहुत प्रसिद्ध हैं।

समाधान—

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्॥

—ऋ० ६.४७.१६

वीर पुरुष अत्यन्त उग्र होता है, दुष्टों का दमन करता है। पापियों को कारागार में डालता है, दुष्टों से द्वेष करता है, सब मनुष्यों पर शासन करता है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रो मामाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादशः॥

जीवात्मा जिस-जिस योनि में जाता है उसी का रूप बन जाता है। उसके रूप को देखने के लिए उसका वास्तविक रूप देखना चाहिए। जीवात्मा अनेक बुद्धि वा अनेक कर्मों के द्वारा वह रूप प्रतीत होता है जो एक सौ दस नाड़ियों के द्वारा विविध प्रकार के कर्म करता है।

छान्दोग्य में भी आता है **शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः**। एक सौ एक नाड़ियाँ हृदय से निकलती हैं।

इन मन्त्रों में अवतार की गन्ध भी नहीं है, किन्तु जीवात्मा का वर्णन है।

शंका—अथर्ववेद १०.८.२७ में लिखा है कि वही परमात्मा स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी अनेक प्रकार के अवतार धारण करता है।

समाधान—ज्येष्ठब्रह्मसूक्त में ब्रह्म, जीव, प्रकृति तीनों पदार्थों का प्रतिपादन आता है। ज्येष्ठ का अर्थ यह है कि जीव तथा प्रकृति से ब्रह्म बड़ा है। यदि जीव और प्रकृति नहीं तब ज्येष्ठब्रह्म यह शब्द भी नहीं बन सकता। इसी सूक्त में तीनों का वर्णन आता है। मन्त्र अधोलिखित हैं—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥

एक जीवात्मा बाल से भी सूक्ष्म है, एक न की तरह प्रतीत होता है। वही सबसे बड़ी प्रिय देवता है।

इस मन्त्र में जीव और ईश दोनों का वर्णन है।

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥

यह प्रकृति अजर है। जो मनुष्य प्रकृति में सोता है वह जीर्ण होता है।

यहाँ प्रकृति का वर्णन है।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

हे जीव! तू ही स्त्री, तू ही पुमान्, कुमार वा कुमारी होता है। तू ही बूढ़ा होकर डण्डे के सहारे चलता है। तू ही वंचना करता है।

इसमें जीव का वर्णन है, परमात्मा का नहीं, परमात्मा जीर्ण वा ठग नहीं हो सकता। इसी सूक्त का ४४ मन्त्र देखिए—

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

इन मन्त्र में अकाम, अजरादि विशेषणों से सिद्ध है कि वह जीर्ण नहीं होता, किन्तु जीव होता है।

शंका—यजुर्वेद में लिखा है कि परमात्मा गर्भ में आता है। इस अकाट्य मन्त्र से अवतारवाद सिद्ध है।

समाधान—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वा पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥

—यजुः० ३२.४

इसपर उव्वटभाष्यम्

एष एव देवः प्रदिशः दिशश्च सर्वाः अनुव्याप्य वर्तते तिर्यगूर्ध्वमधश्चेति। पूर्वो ह जात अनादिनिधनः सम्भूतः। स उ गर्भे अन्तः स एव च मातुरुदरे अन्तगर्भे व्यवतिष्ठते। स एव च जातः स एव च जनिष्यमाणः। तदुक्तं 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीते' तिप्रतिपदार्थमञ्जनः। हे जनाः सर्वतोमुखः सर्वतोऽक्षि शिरोग्रीवापाणिपादः तिष्ठति अचिंत्यशक्तिरित्यर्थः॥

यह देव नीचे-ऊपर सब दिशाओं में व्यापक है, अनादिनिधन है। वही माता के गर्भ में विद्यमान है, वही हुआ है, होगा, अर्थात् सब संसार ब्रह्म है। सब ओर हाथ-पाँववाला, अर्थात् अचिन्त्यशक्ति है।

इस मन्त्र के भाष्य में उव्वट ने अवतारवाद का मूलोच्छेद कर दिया है, क्योंकि जब सारा संसार ब्रह्म है तब राम, रावण, कंस आदि सभी ब्रह्म हुए, धर्मात्मा, पापात्मा सभी ब्रह्म हैं, पुनः अवतार किसके लिए होगा? जब मुक्त जीव की पुनरावृत्ति नहीं होती तब ब्रह्म जन्म कैसे लेगा?

गर्भशब्द-विचार

गर्भ शब्द को देखकर बहुत-से पौराणिक भ्रम में पड़ जाते हैं, अतः गर्भशब्द का विशेष विचार किया जाता है—

परमात्मा—

गर्भो देवानां पिता मतीनां पति प्रजानाम्।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्येण रोचते॥

—यजुः० ३७.१४

इसपर महीधरभाष्य

देवो दीप्यमानो महावीरः सवित्रा देवेन सह संगच्छते। देवानां दीप्तानां रश्मीनां दृश्यमानानां सर्वेषां वा ग्रहीता। एष वै गर्भो देवानां य एष तपत्येष हीदं सर्वं संगृभ्णात्येतेनेदं सर्वं गृभीतमेष उ प्रवर्ग्यः॥

—श० १४.१.४.२

वह परमेश्वर का सूर्य सब देवों का, दृश्यमान पदार्थों का गर्भ-ग्रहण करनेवाला है।

यहाँ गर्भ शब्द से सूर्य वा परमेश्वर का नाम ग्रहण होता है।

गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरत्यनर्थमिति॥ —नि० १०.२३

परमेश्वर अनर्थों को नष्ट करता है, अतः उसको गर्भ कहते हैं।

गर्भं स्तुत्यं वन्दनीयम्॥ —सायण अ० ३.१०.१२

भगवान् को गर्भ इसलिए भी कहते हैं कि वह वन्दनीय है।

जीव का नाम गर्भ है

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्रे गर्भो अपामासि॥ —यजुः० १२.३७

हे जीवात्मन्! तू ओषधि, वनस्पति सब भूतों का गर्भ यानि ग्रहण करनेवाला है।

अग्निनाम

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाजायमानः।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥

—यजुः० १२.२३

इसपर महीधरभाष्य

भूतजातस्य वाय्वात्मना स हि प्राणभावेन भूतानामन्तः संचरति।
कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्ण फणात्पत्रकम्।
दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ता श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः॥

जिस कृष्ण के गर्भ में सम्पूर्ण संसार है। यहाँ गर्भ का अर्थ मध्य है।

मध्य अर्थवाचक

इस 'कृष्णस्य' साहित्यदर्पण के प्रमाण में सन्देहगर्भालंकार है, जिससे गर्भ यानि मध्य का सन्देह हो।

इससे सिद्ध है कि गर्भ का अर्थ मध्य भी है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि गर्भ शब्द के अर्थ परमात्मा, आत्मा, अग्नि, वायु आदि अनेक हैं, अतः केवल गर्भ शब्द के आने से अवतार सिद्ध करना मूर्खता है।

जिन मन्त्रों में 'गर्भे अन्तः' शब्द आता है उनमें परमात्मा को सर्वव्यापक बतलाया है, जिससे कोई यह न समझे कि परमात्मा जीव की भाँति शरीर धारण करता है। इसी मन्त्र में लिखा है कि परमात्मा सब दिशाओं में व्यापक है। इस बात से ही अवतार का निषेध हो जाता है।

उपनिषत् प्रमाणम्

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः॥

—मुण्ड० २.१.२

वह परमेश्वर, दिव्य, अमूर्त्त, अन्तर्बहिः व्यापक, अज, प्राणरहित, मनरहित, शुद्ध है।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं
विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

—मु० १.१.६

वह परमेश्वर अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, नेत्र, श्रोत्र से रहित, हाथ-पाँव से रहित, नित्य, विभु और सर्वव्यापक है।

इन विशेषणों से अवतार का स्पष्ट खण्डन होता है।

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥

—श्वेता० ३.२१

वह पुरुष, अजर, अमर, सर्वव्यापक, विभु और नित्य है, ब्रह्मवादी कहते हैं कि वह जन्म नहीं लेता।

यहाँ स्पष्ट ही अवतार का निषेध है।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्
हृदा विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ —कठो० २.३.९

उस परमेश्वर का रूप नहीं है, कोई भी उसको आँखों से नहीं देख सकता, हृदय से वा मन से ही उसका दर्शन होता है।

पौराणिक ब्रह्म को साकार और निराकार दो प्रकार का मानते हैं, यदि वह साकार है तब प्रत्येक उसको आँख से देख सकता है। पुनः इस निषेध की क्या आवश्यकता है?

शंका—छा० ३.१७.६ में कृष्णावतार का स्पष्ट वर्णन आता है पुनः अवतार-निषेध कैसे करते हो?

समाधान—

तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्तो वाचा, इत्यादि

घोर नामक अङ्गिरा ऋषि ने देवकी के पुत्र कृष्ण को यज्ञ का उपदेश दिया।

इस प्रकरण में कहीं भी यह नहीं लिखा कि कृष्ण अवतार है, प्रत्युत यह लिखा है कि वह घोर के शिष्य थे और यह कृष्ण वह कृष्ण नहीं है, क्यों कि कृष्ण ने घोर अङ्गिरस से उपदेश नहीं लिया। यदि यह कहो कि उसको देवकी का पुत्र लिखा तब भी ठीक नहीं,

क्योंकि आज भी अनेक पुरुषों का नाम कृष्ण तथा उनकी माताओं का नाम देवकी है।

अनेक पुरुषों ने अपने पुत्रों का नाम राम, लक्ष्मण, कृष्ण, बलदेव आदि रक्खा हुआ है। क्या इसके यह अर्थ हैं कि वह वही कृष्ण है। सबसे बड़ी बात यह है कि उपनिषद् में नाम आने से अवतार सिद्ध नहीं हो जाते, क्योंकि वहाँ अनेक ऋषि-मुनियों के नाम हैं, इसके यह अर्थ नहीं कि वे अवतार थे।

दर्शन-प्रमाणानि

पत्युरसामञ्जस्यात्॥ —वे० २.२.३७

युक्तिशून्य होने से परमात्मा का शरीर नहीं हो सकता।

सम्बन्धानुपपत्तेश्च॥ —वे० २.२.३८

यदि परमात्मा को देहधारी मानें तब ठीक नहीं, क्योंकि जो देहधारी होगा वह एकदेशी होगा और एकदेशी होने से सम्पूर्ण संसार के साथ उसका सम्बन्ध नहीं हो सकता और सम्बन्ध-अभाव से संसार की रचना नहीं कर सकता, अतः परमात्मा शरीरधारी नहीं है।

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च॥ —वे २.२.३९

यदि परमात्मा का शरीर मानें तब उसका अधिष्ठान भी मानना पड़ेगा और यह हो नहीं सकता, क्योंकि सृष्टि-उत्पत्ति के पूर्व पृथिवी नहीं थी, पुनः वह ठहरा कहाँ? दूसरी बात यह है कि शरीर बुरे कर्मों का फल भोगने के लिए होता है। जब परमात्मा के ऐसे कर्म ही नहीं, पुनः उसका शरीर कैसे हो सकता है? जीव को तो परमात्मा बुरे-भले कर्मों का फल देता है, परमात्मा को कौन फल देवेगा।

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः॥ —वे० २.२.४०

शांकरभाष्य

अथ लोकदर्शनानुसारेणेश्वरस्यापि किंचित् करणानामायतनं शरीरं कामेन कल्प्येत। एवमपि नोपपद्यते। सशरीरत्वे हि सति संसारीवद्भोगादिप्रसंगादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्येत।

यदि लोकदृष्टि के अनुसार परमात्मा का भी शरीर मानें तो ठीक नहीं, क्योंकि इन्द्रिय वा शरीर के मानने से यह मानना पड़ेगा कि वह भी हमारी भाँति सुख-दुःख का भोग करता है और ऐसा होने से परमात्मा भी हमारे समान अनीश्वर हो जाएगा, अतः परमात्मा शरीर धारण नहीं करता।

—वे २.२.४१

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥

यदि परमात्मा का शरीर मानें तब उसको अन्तवाला मानना पड़ेगा और अन्तवाला मानने से उसे अल्पज्ञ, असर्वज्ञ मानना पड़ेगा। अल्पज्ञ होने से वह परमात्मा नहीं हो सकता।

—वे० २.२.४२

उत्पत्यसम्भवात् ॥

यदि परमात्मा को देहधारी मानें तब वह सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय नहीं कर सकता, क्योंकि शरीरधारी के साधन परिमित होते हैं।

—वे० २.२.४३

न च कर्तुः करणम् ॥

इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा के शरीर, इन्द्रियादि साधन नहीं है।

योग

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः

—यो० २.२४

व्यासभाष्यम्

अविद्यादयः क्लेशाः कुशलाकुशलानि कर्माणि। तत् फलं विपाकः तदनुगुणा वासना आशयाः यो हि अनेन भोगेनापरामृष्टः स पुरुषविशेष ईश्वरः। कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति बहवः केवलिनः ते हि त्रीणि बन्धनानि छित्वा कैवल्यं प्राप्ताः। ईश्वरस्य तत् सम्बन्धो न भूतो न भावी च स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः॥

अविद्यादि क्लेश, कुशल तथा अकुशल कर्म और उनके अनुकूल वासना, कर्मों का फल—विपाक, जिसको इस भोग का सम्बन्ध तीन काल में न हो वह ईश्वर है।

इस लक्षण से सिद्ध है कि परमात्मा देहधारी नहीं, क्योंकि देहधारी में ये बातें अवश्य होती हैं।

न्याय

दुःख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्या-ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।

—न्या० १.१.२

मिथ्या ज्ञान से दोष, दोष से प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से जन्म तथा जन्म से दुःख होता है, परमात्मा में मिथ्या ज्ञान का अभाव होने से दोष नहीं, दोष के अभाव से प्रवृत्ति का अभाव है, प्रवृत्ति के अभाव से जन्माभाव, जन्माभाव से दुःखाभाव, अतः भगवान् का शरीर नहीं है।

इस प्रकार सम्पूर्ण दर्शनकार परमात्मा के शरीर का अभाव

मानते हैं। उदयनाचार्य बहुत बड़े दार्शनिक हुए हैं, वे एक वेदमन्त्र उद्‌धृत कर उसपर लिखते हैं—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमिं जनयन् देव एकः॥

—यजुः० १७.१९

उदयनभाष्य

अत्र प्रथमेन सर्वज्ञत्वं चक्षुषा दृष्टे रूपलक्षणात्। द्वितीयेन सर्ववक्तृत्वं मुखेन वागुपलक्षणात्। तृतीयेन सर्वसहकारित्वं बाहुना सहकारित्वोपलक्षणात्। चतुर्थेन व्यापकत्वं पदाव्याप्ते रूपलक्षणात्। पञ्चमेन धर्माधर्मप्रधानकारणत्वं तौ हि लोकयात्रां वहनाद्बाहुः। षष्ठेन परमाणुरूपप्रधानाधिष्ठेयत्वं ते हि गतिशीलत्वात् पतत्र व्यपदेशा पतन्तीति।

विश्वतः चक्षु के अर्थ सर्वज्ञ, विश्वतोमुख के अर्थ सर्ववक्ता विश्वतः बाहु के अर्थ हैं सर्व सहकारी, बाहुभ्यां के अर्थ धर्माधर्म हैं।

इस मन्त्र की व्याख्या में उदयनाचार्य ने सैकड़ों मन्त्रों की ग्रन्थि को सुलझा दिया है जिनमें रूपकालंकार से ईश्वर में मुखादि अवयवों का आरोप किया है।

शंका—लोकवत्तु लीला केवल्यम्॥ —वे० २.१.३३

परमात्मा लीला करने के लिए अवतार धारण करता है।

समाधान—

शांकरभाष्यम्

यथा चोच्छ्वासप्रश्वासादयोऽनभिसन्धाय बाह्यं किंचित् प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति एवमीश्वरस्य। इत्यादि।

जैसे श्वास-प्रश्वास स्वाभाव से, बिना प्रयत्न के चलते रहते हैं, इसी प्रकार परमात्मा बिना प्रयत्न के संसार की रचना करता है, सृष्टि-रचना के लिए उसे परिश्रम नहीं करना पड़ता।

शंका—कतिपय लोग इसका यह अर्थ करते हैं कि—

परमात्मा लीला के लिए शरीर धारण करता है, उसका कोई प्रयोजन नहीं होता, जैसे जीवों को लीलामात्र के लिए शरीर देता है।

समाधान—

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति। —वे० २.१.३४

परमात्मा में विषमता वा घृणा का दोष नहीं आ सकता, क्योंकि वह कर्मों की अपेक्षा से जीवों को फल देता है।

इसलिए पौराणिकों का यह सिद्धान्त कि परमात्मा लीला के लिए शरीर धारण करता है, इस व्यास के सूत्र से खण्डित हो जाता है।

ईश्वर-स्वरूप

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि। —वे० ३.२.११

पृथिवी आदि की उपाधि से भी ब्रह्म के साकार वा निराकार दो रूप नहीं हो सकते, क्योंकि ब्रह्म को सर्वत्र निराकार ही प्रतिपादित किया गया है।

इस सूत्र पर शांकरभाष्य

न तावत् स्वत एव परस्य ब्रह्मण उभयलिङ्गत्वमुपपद्यते। न ह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादिविशेषोपेतं तद्विपरीतं चेत्यवधारयितुं शक्यं, विरोधात्। अस्तु तर्हि स्थानतः पृथिव्याद्युपाधियोगादिति। तदपि नोपपद्यते। न ह्युपाधियोगादप्यन्यादृशस्य वस्तुनोऽन्यादृशः स्वभावः सम्भवति। नहि स्वच्छः सन् स्फटिकोऽलक्तकाद्युपाधि-योगादस्वच्छो भवति। इत्यादि।

अतश्चान्यतरलिङ्गपरिग्रहेऽपि समस्तविशेषरहितं निर्विकल्प-कमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं, न तद्विपरीतम्। सर्वत्र हि ब्रह्मस्वरूपप्रति-पादनपरेषु वाक्येषु अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्। (कठो० ३.५) **इत्येवमादिष्वपास्तसमस्तविशेषमेव ब्रह्मोपदिश्यते॥**

स्वामी शंकर पूर्वपक्ष के उत्तर में लिखते हैं। स्वतः ही परब्रह्म साकार वा निराकार दोनों प्रकार का नहीं हो सकता। एक ही वस्तु रूपादिवाली तथा रूपरहित नहीं हो सकती, विरोध होने से। यदि कहो कि पृथिवी आदि की उपाधि से वा शरीर के धारण करने से ब्रह्म के साकार-निराकार दोनों रूप हो जाएँगे तब भी ठीक नहीं, क्योंकि उपाधि के योग से भी अन्य प्रकार की वस्तु अन्य प्रकार के सदृश स्वभाववाली नहीं हो सकती। स्वच्छ मणि उपाधि के योग से अस्वच्छ नहीं हो सकती, इसलिए सम्पूर्ण भौतिक गुणों से रहित ब्रह्म निराकार है। यही बात सब श्रुतियों में लिखी है कि ब्रह्म शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित तथा अव्यय है।

यहाँ सूत्रकार तथा श्री स्वामी शङ्कर ने उस पौराणिक दल के विचारों पर कुठाराघात कर दिया है जो ब्रह्म को साकार तथा निराकार—दोनों प्रकार का मानते हैं।

न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ॥ १२ ॥

यदि कहो कि ब्रह्म का श्रुतियों में भेद प्रतिपादन किया है, तो ठीक नहीं, क्योंकि सब श्रुतियों में ब्रह्म का निराकार रूप में प्रतिपादन किया है।

अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात् ॥ १४ ॥

निश्चय ही ब्रह्म रूपरहित है।

अतएव चोपमा सूर्यकादिवत् ॥१८ ॥

इसलिए जहाँ कहीं यह कहा है कि चाँद, सूर्य उसके नेत्र हैं, पृथिवी पाँव है, इत्यादि वहाँ मन्त्रों में उपमा वा रूपक का वर्णन है, उसका यह अर्थ नहीं कि ब्रह्म साकार है।

प्रकृतैतावत्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ॥ २२ ॥

बृहदा० ४.३.१ में यह लिखा है कि ब्रह्म के मूर्त्त तथा अमूर्त्त दो रूप हैं, पृथिव्यादि मूर्त्त तथा आकाशादि अमूर्त्त हैं, जैसे कोई कहे देवदत्त के दो कुत्ते हैं, इसी प्रकार यहाँ पृथिवी आदि ब्रह्म के मूर्त्त वा अमूर्त्त दो पदार्थ बतलाकर अन्त में लिखा है नेति-नेति यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है।

अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥ ३७ ॥

इसलिए ब्रह्म सर्वव्यापक है।

रामायण के प्रमाण

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
शोकानुशोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च॥

—वा० अर० ६३.३

मेरे जैसा कोई दुष्कर्म करनेवाला नहीं है, क्योंकि मुझे एक शोक के पश्चात् दूसरा शोक मिल रहा है।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्र मयाद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि॥

—वा० अर० ६३.४

निश्चय ही पूर्वजन्म में मैंने बड़े पाप किये थे, जिनका मुझको यह फल मिला है कि एक दुःख के पश्चात् दूसरा दुःख मिल रहा है।

राज्यं प्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि॥

—वा० अर० ६३.५

उसी पापकर्म के फल से मेरा राज्य नष्ट हुआ, जननी से वियोग हुआ, स्वजनों से वियोग हुआ, पिता का विनाश हुआ। हे लक्ष्मण! ये सब दुःख मेरे शोक को बढ़ा रहे हैं।

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम्।
सीतावियोगात् पुनरप्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निसहसोपदीप्तः॥

—वा० अ० ६३.६

हे लक्ष्मण! वन में आकर यह सब दुःख शान्त हो गया था, किन्तु सीता के वियोग से पुनरपि प्रदीप्त हो गया है।

वेद में लिखा है परमात्मा अपापविद्धम् है, उसमें कोई पाप नहीं। योगदर्शन में लिखा है जो कर्म वा कर्मफल से रहित है, वह परमात्मा है, किन्तु यहाँ लिखा है कि रामचन्द्र को अनेक पापों का फल मिला है, पुनः वह परमेश्वर कैसे हो सकते हैं?

शंका—यह तो भगवान् की लीला है, वास्तव में उनको कोई भी दुःख वा पाप नहीं था।

समाधान—श्री रामचन्द्रजी ने जो स्वयं अपने मुख से यह कहा है कि मैंने प्रथम जन्म में बड़े पाप किये थे, जिनका फल मैं इस समय भोग रहा हूँ 'यह उनका कथन सत्य है वा असत्य, यदि कहो असत्य है तब वह परमात्मा नहीं हो सकते, क्योंकि वेद में सबसे अधिक असत्य-भाषण का दण्ड लिखा है। यदि कहो सत्य बोला है तब भी परमात्मा नहीं हो सकते कारण यह है कि परमात्मा में तीन काल में भी पाप नहीं होते।

तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः।
बालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे॥

—वा० कि० १२.२७

हे राम! यदि आप मुझको प्रथम ही कह देते कि मैंने बाली को नहीं मारना, तब मैं यहाँ से जाता ही न, आपने मुझे व्यर्थ ही भेजकर कष्ट में डाला।

राम का उत्तर

अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च।
त्वं च सुग्रीव बाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥

—वा० कि० १२.३०

हे सुग्रीव! अलंकार, वेश, भूषा, लम्बाई-चौड़ाई, में तुम दोनों भाई समान थे, मैंने भ्रम से यह नहीं जाना कि बाली कौन है तथा

सुग्रीव कौन-सा है, अतः मैंने बाण नहीं चलाया।

स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥

—वा० कि० १२.३०

स्वर, तेज, दृष्टि, बल, वाक्य—ये सब बातें तुम दोनों में बराबर थीं इसलिए मैंने नहीं पहचाना कि सुग्रीव कौन-सा है तथा बाली कौन-सा है।

ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम्॥

—वा० कि० १२.३२

इसलिए हे वानरोत्तम! रूप की समानता से मैं मोह में पड़ गया था, इसलिए शत्रु का नाश करनेवाले महावेगवान् बाण को मैंने नहीं छोड़ा था।

त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया।
मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात् कपीश्वर॥

—वा० कि० १२.३४

यदि मैं अज्ञानता में शीघ्र बाण छोड़ देता और आपको कोई कष्ट हो जाता, तब मेरी मूर्खता और बालकपन प्रकट होता, अतः मैंने बाण नहीं छोड़ा।

इस प्रकरण में श्रीराम ने स्वयं अपना भ्रम वा अज्ञानता स्वीकार की है, राम मिथ्या बोलनेवाले नहीं थे, यदि मिथ्यावादी होते तब उनके वन जाने की क्या आवश्यकता थी। जब उन्होंने अपने पिता को सच्चा सिद्ध करने के लिए इतने कष्ट उठाये तब वह स्वयं असत्य भाषण कैसे कर सकते हैं? अज्ञान वा भ्रम के होने से सिद्ध है कि वे परमात्मा नहीं थे।

पुराण-प्रमाणानि

अवतार कारणम्

प्रथम प्रश्न यह है कि परमात्मा अवतार धारण क्यों करता है, इसके लिए पौराणिक कहा करते हैं कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

—गीता ४.७

जब-जब धर्म की ग्लानि होती है तब-तब मैं अवतार लेता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—गीता ४.८

साधुओं की रक्षा के लिए, दुष्ट के नाश के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतार धारण करता हूँ।

समाधान—इस श्लोक में तो क्या सम्पूर्ण गीता में कहीं भी अवतार शब्द नहीं आता। श्लोक में सृजामि शब्द आता है जिसका अर्थ है—विसर्ग। कृष्णजी महाराज कहते हैं जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब मैं अपने आत्मा का त्याग=बलिदान करता हूँ। यहाँ अवतार की गन्ध भी नहीं है।

दूसरे श्लोक में युग शब्द और सम्भवामि क्रिया आती है। युग का अर्थ केवल सत्ययुग आदि ही नहीं होता, किन्तु वेद में युग शब्द अन्य अर्थों में भी आता है। जैसे—ऋग्वेद १०.१०१.४ में आता है—

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते॥

यहाँ युग शब्द हल के साधन में आया है, अतः श्लोक का अर्थ यह है। कृष्णजी कहते हैं—

जब-जब धर्म की हानि का समय आये, मैं यह सम्भावना करता हूँ कि दुष्टों का विनाश तथा सज्जनों की रक्षा करूँ।

नीचे हम पुराणों के प्रमाण देकर पौराणिकों का यह दावा खण्डित करेंगे कि अवतार धर्म के लिए होता है।

शपामि त्वां दुराचारं किमन्यत् प्रकरोमि ते।
विधुरोऽहं कृतः पाप त्वयाहं शक्रकारणात्॥

—देवीभा० ४.१२.५

भृगु ऋषि जिसका पुराण में बड़ा भारी महत्त्व आता है, विष्णु से कहते हैं। हे दुराचारी! मैं तुझे शाप देता हूँ, तूने मेरी स्त्री को मार डाला।

सदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिर्दुराशय॥ ६॥
ये च त्वां सात्त्विकं प्राहुस्ते मूर्खा मुनयः किल॥
तामसस्त्वं दुराचारः प्रत्यक्षं मे जनार्दनः॥ ७॥

तू दुष्ट, सदा छल करनेवाला कीटों की योनियों में जानेवाला है तथा तू तामस् वा दुराचारी है। वे मुनि मूर्ख हैं जो तुम्हें सतोगुणी कहते हैं।

अवतारा मृत्युलोके सन्तु मच्छापसम्भावाः।
प्रायो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाज्जनार्दन॥८॥

—दे० ४.१२.६-८

मेरे शाप से मृत्युलोक में तेरे अवतार होंगे तथा गर्भ से उत्पन्न होनेवाले दुःख को तू भोग। यह तुझे पाप का फल मिला है।

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं
मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां।
तान् सेवतां जननी मृत्युभयं न किं स्यात्॥

—दे० स्कं० ५.१९.१८

जिस विष्णु के भृगु के शाप से मच्छ, कच्छ, वराह, अवतार होते हैं जो नृसिंह अवतार लेकर दुनिया में छल करता, उनको अवश्य दुःख होगा।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि अवतार धर्म की रक्षा के लिए नहीं होते किन्तु भृगु की स्त्री के वध का जो पाप विष्णु ने किया उस पाप का फल भोगने के लिए उसको वराह आदि की नीच योनियों में जाना पड़ता है।

विष्णु का कथन

यदिच्छा पुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे।
कच्छपः कौलसिंहौ च वामनश्च युगे युगे॥

—दे० १.४.५६

यदि मैं इस संसार में स्वतन्त्र होता तब मच्छ, कच्छ, वराह, सिंह और वामन आदि क्यों बनता?

न कस्यापि प्रियो लोके तिर्यग्योनिषु सम्भवः।
नाऽभवं स्वेच्छया वामवराहादिषु योनिषु॥५७॥

संसार में किसी को भी वराह आदि योनियों में जाना प्रिय नहीं, पुनः मैं क्यों इन योनियों में जाता। यह सब मेरे पापों का फल है।

विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं
को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु।
शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः
करोति युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः॥५८॥

यदि मैं स्वतन्त्र होता तब लक्ष्मी के साथ विहार को छोड़कर मछली आदि की हीन योनि में क्यों जाता तथा सुखशय्या को छोड़कर

युद्धादि क्यों करता, यह सब मेरे दुष्कृत्य का फल है।

पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं
गतं धनुर्ज्यास्खलनात् क्व चापि।
त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा
संयोजितं शिल्पीवरेण भूयः॥ ५९॥

हे ब्रह्माजी! आपके देखते ही बाण से कटकर मेरा शिर कहीं चला गया था। जब ढूँढने पर भी वह कहीं नहीं मिला तब आपने घोड़े का शिर मेरे धड़ पर जोड़ दिया।

हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च
प्रत्यक्षमेतत्तव लोककर्तः।
विडम्बनेयं किल लोकमध्ये
कथं भवेदात्मपरो यदि स्याम्॥ ६०॥

तब मेरा नाम हयानन (घोड़े के मुखवाला) हुआ। हे ब्रह्माजी! यदि मैं स्वतन्त्र होता तब मेरा यह उपहास संसार में क्यों होता।

नातः परतरं किंचिज्जानामि कमलोद्भव॥ ६२॥

हे ब्रह्माजी! मैं इसके आगे कुछ नहीं जानता।

इस विष्णु के कथन में उसकी कितनी हीनता, दीनता वा पराधीनता प्रतीत होती है।

यद्यहं स्यां स्वतन्त्रो वै चिन्तयन्तु धिया किल।
कुतोऽभवं मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे॥ ३६॥
तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः।
किं पुण्यं किं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे॥

—दे० ४.१८.३६,३७

तनिक विचार कर देखो, यदि मैं स्वतन्त्र होता तब मच्छ, कच्छ, वराह आदि की योनियों में क्यों जाता?

इन नीच योनियों में क्या सुख, पुण्यभोग फल आदि कुछ है। सिवाय क्लेश के और कुछ भी नहीं।

कोलो वाथ नृसिंहो वा वामनो वाऽभवं कुतः।
जमदग्निसुतः कस्मात् कम्भवेयं पितामह॥ ३८॥
नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले।
क्षतजैस्तु ह्रदान् सर्वान् पूरयेयं कथं पुनः॥ ३९॥
क्षत्रियान् हतवानादौ निर्दयो गर्भगानपि॥ ४०॥

—दे० ४.१८.३८-४०

यदि मैं स्वतन्त्र होता तब वराह आदि योनियों में क्यों जाता तथा वामनादि अवतार में छल क्यों करता वा परशुराम बनकर क्षत्रियों के नाशरूपी कुकर्म को क्यों करता?

भृगुपत्नीशिरच्छेदात् भगवान् हरिरच्युतः।
ब्रह्मशापात् पशोर्योनौ सञ्जातो मकरादिषु।
विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे॥
गतः किमपरः दुखं प्राप्नोति दुष्कृती नरः।
रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु॥ ३६॥
दुखं च प्राप्तवान् घोरं भृगुशापेन भारत॥ ३७॥

—दे० ६.७.३४-३७

भृगु की पत्नी का सिर काटने से विष्णु पशु आदि की योनि में जाता है, इससे बढ़कर पापी मनुष्य को और क्या दुःख मिल सकता है।

पौराणिको! कहो तुम तो कहते हो कि धर्म की रक्षा के लिए भगवान् स्वयं अवतार लेता है, किन्तु यहाँ तो लिखा है कि विष्णु का मच्छ आदि नीच योनियों में जाना उसके पाप का फल है।

कर्म-फल

अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः॥ १५॥
देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ १६॥
कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः इन्द्राद्यश्च सुरास्तथा॥ १७॥
दानवा यक्षगन्धर्वा सर्वे कर्मवशाः किल।
अन्यथा देहसम्बन्धं कथं भवति भूपते॥ १८॥
पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि ते।
तथा नारायणो राजन् नरश्च धर्मजावुभौ॥ २१॥
वासुदेवोऽपि संजातः कारागारेऽतिसङ्कटे।
नीतोऽसौ वसुदेवेन नन्दगोपस्य गोकुलम्॥ ३५॥
जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात् तदा॥ ३८॥
एवं ते कथिता राजन् कर्मणो गहना गतिः।
वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः॥ ४१॥

—दे० ६.१०.१५-१८, २१, ३५, ३८, ४१

जो स्वकृत कर्म का फल होता है वह अवश्यमेव भोगना पड़ता है। मनुष्य, देवता आदि सब कर्म फल भोगते हैं, क्योंकि देह का कारण कर्म ही है, बिना कर्म के देह नहीं मिल सकता। ब्रह्मा, विष्णु,

शिव, कृष्ण आदि सब पाप करते हैं, उन्हीं पापों का फल उनको मिलता है। उसी पाप-कर्म के फल से कृष्ण को कारागार का फल भोगना पड़ा तथा वे जरासन्ध के डरके मारे द्वारिका में भाग गये और उसी दुष्कर्म के फल से कृष्ण की व्याध के बाण से मृत्यु हुई॥

पौराणिको! कहो यहाँ तो तुम्हारे अवतारवाद को चौपट कर दिया। यहाँ तो यह सिद्ध कर दिया कि विष्णु, रुद्र, नर, नारायण आदि सब पाप करते हैं। उसी पाप को भोगने के लिए विष्णु अवतार लेता है। बतलाओ अब तुम्हारी धर्म की रक्षा तथा भगवान् की लीला कहाँ गई?

चतुर्गेहं च मे स्वामिन् द्यूतं मद्यं सुवर्णकम्।
मपुत्राश्च स्मृता म्लेच्छा आर्यधर्मत्वमागताः॥ १६॥
स्त्रीहास्यं चाग्निवैश्यैश्च क्षत्रियैश्च विनाशितम्॥ १७॥

—भवि० प्रति० खं० ३(२).४.१६-१७

कलियुग कहता है—"महाराज! इस समय कोई मांस नहीं खाता, शराब नहीं पीता, जुआ नहीं खेलता, सब म्लेच्छ जो मेरे पुत्र थे आर्य-धर्मी बन गये।

त्यक्तदेहस्त्यक्तकुलस्त्यक्तराष्ट्रो जनार्दन।
त्वत्पादाम्बुजमाधाय स्थितोऽहं शरणं त्वयि॥ १८॥

—भवि० प्रति० खं० ३(२).४.१८

जिसका देह, कुल, राज, राष्ट्र, सर्वस्व नष्ट हो गया है, वह मैं आपकी शरण में आता हूँ, मेरी रक्षा करो।"

इति श्रुत्वा स भगवान् कृष्णः प्राह विहस्य तम्।
भो कले तव रक्षार्थं जनिष्येऽहं महावतीम्॥ १९॥
ममांशो भूमिमासाद्य क्षयिष्यति महाबलान्।
म्लेच्छवंशस्य भूपालान् स्थापयिष्यति भूतले॥ २०॥

—भवि० प्रति० खं० ३(२).४.१९-२०

भगवान् हँसकर बोले—"कलियुग! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारी रक्षा के लिए स्वयं मैं महावती को उत्पन्न करूँगा तथा अवतार लेकर आर्य-राजाओं को संसार से मिटाऊँगा तथा म्लेच्छ-वंश के राजाओं के राज्य की संसार में स्थापना करूँगा।"

त्वया दत्तो हि मे नाथ कलिः कलिविनाशन।
नाधिकारं कृतं नाथ सत्यं सत्यंप्रियक्षम॥ २३॥

बलि कहने लगा ''महाराज! आपने मुझे वरदान दिया था कि कलियुग में सत्य का राज्य नहीं होगा अब आप अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कीजिए।''

इति श्रुत्वा बलेर्वाक्यं भगवान् वामनो हरिः।
स्वांशान्महीतले प्राप्तो दैत्यपक्षविवर्धनः॥ २४॥

—भवि० प्रतिसर्ग० खण्ड ३.४.२३-२४

बलि का ऐसा वचन सुनकर भगवान् वामन हरि ने राक्षसों का पक्ष बढ़ाने के लिए अवतार धारण किया।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि भगवान् ने आर्यधर्म को मिटाने के लिए तथा राक्षसों को पुष्ट करने के लिए द्यूत, मद्य, मांस, व्यभिचार का प्रचार करने के लिए अवतार लिया है। कहिए, पोपजी!'अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है, यह आप की बात खण्डित हुई या नहीं?

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम्।
कृष्णमायाविमूढानां सङ्घर्षः सुमहानभूत्॥ १३॥

—भा० ११.३०.१३

कृष्णजी की माया से विमूढ़ यादवों का परस्पर घमासान युद्ध हुआ।

अन्योऽन्यमासाद्य मदान्धकारिता
जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता खलाः॥

—भा० ११.३०.१७

श्रीकृष्ण ने अपनी माया से मोह में डाल दिया है जिन्हें, ऐसे यादव, परस्पर लड़कर मर गये।

कहिए! क्या यही १६ कलापूर्ण कृष्णावतार है, जिसने रात-दिन उसकी सङ्गति में रहनेवाले यादवों को लड़ाकर मार दिया। क्या ये सब भी राक्षस थे?

बुद्ध

देवद्विषां निगमवर्त्मन्यधिष्ठितानां
पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः।
लोकन् घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं
वेषं विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्यम्॥ ३७॥

—भा० २.७.३७

राक्षसों को वेदमार्ग पर चलते हुए देखकर भगवान् ने अवतार लिया तथा उनको ऐसे उपदेश दिये जिससे वे वेदमार्ग से भ्रष्ट हो गये।

शतकोटिमिता दैत्या धर्मात्मानो निवासिनः।
गृहीत्वा यज्ञभागं च देवतुल्या बभूविरे॥ २२॥
मयपुत्रः स्मृतो मायी तपो घोरं चकार ह॥ १७॥
पदैकेन स्थितः सूर्ये सहस्राब्दं प्रयत्नतः॥ १८॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां भगवान् मधुसूदनः।
दृष्ट्वा संस्कृतवार्त्तायां दैत्यान् धर्मपरायणान्॥ २६॥
बौद्धरूपस्त्वयं जातः कलौ प्राप्ते भयानके॥ २७॥
वेदधर्मपरान् विप्रान् मोहयामास वीर्यवान्।
विनिर्वेदाः कर्मरहितास्त्रिवर्णास्तामसान्तरे॥ २८॥

—भवि० प्रति० ३(४)१२, १७, १८, २६-२८

एस्मिन्नेव काले तु कलिना संस्मृतो हरिः॥ ३६॥
कलेः प्रथमे चरणे वेदमार्गो विनाशितः॥ ३९॥

—भवि० प्रति० ३(१).६.३६, ३९

सौ करोड़ देत्य, बड़े धर्मात्मा, वेद पढ़नेवाले, तपस्वी देवों के तुल्य, संस्कृत पढ़नेवाले, वेद मार्गावलम्बी, धर्मपरायण थे। भगवान् ने बौद्ध का अवतार लेकर इन सबको नास्तिक, वेद के विरुद्ध उपदेश देकर वेदमार्ग का भली प्रकार नाश किया।

पौराणिको! कहो, अवतार का काम संसार को सन्मार्ग पर लाना है या संसार को असत्य, नास्तिकता का उपदेश देकर धर्म भ्रष्ट करना है। वेद में असत्य बोलने को सबसे अधिक पाप लिखा है। क्या तुम्हारे कहने के अनुसार इसी काम के लिए बुद्ध ने अवतार लिया था? क्या जिनको बुद्ध ने उपदेश दिया वे मनुष्य नहीं हैं? तुम्हारे कहने के अनुसार राक्षस कोई विलक्षण जन्तु हैं, अब भी तो संसार में बौद्धों की सबसे अधिक संख्या है, वे सब हम जैसे आदमी हैं, क्या वो सुमार्ग पर नहीं आ सकते और पुराण के लेख से तो सिद्ध है कि वे सब धर्मात्मा, तपस्वी, वेदानुयायी थे, जिनको तुम्हारे बुद्धावतार ने कपट से विपरीत उपदेश देकर असत्य मार्गी, वेदविरोधी बनाया।

असत्यवादी को दण्ड

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥ १३॥

यो मायातुं यातुधनेत्याह यो वा रक्षाः शुचीरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥१६॥

—ऋ० ७.१०४.१३, १६

परमात्मा, क्षत्रिय राजा आदि असत्य बोलनेवाले किसी को भी नहीं छोड़ता, सब असत्यवादियों को नष्ट कर देता है।

जो किसी धर्मात्मा को असत्य बोलकर पापी कहता है तथा स्वयं पापी होता हुआ अपने को पवित्र कहता है, परमात्मा वा राजा उसको नष्ट करे तथा वह सबके पाँवों के नीचे रहे।

पौराणिको! कहो क्या यह वेद का दण्ड तुम्हारे असत्यवादी बुद्धावतार को नहीं मिलना चाहिए?

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

—अथर्व० १०.८.४४

भगवान् अकाम=कामरहित, धीर, अमृत, स्वयम्भू, नित्य तृप्त और पूर्ण है। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु से बच सकता है।

इस मन्त्र में परमात्मा को अकाम कहा है, किन्तु पुराण देखिए—

कामी

मत्स्यकूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की हरिर्दश॥१॥
योगेन्द्राणां प्रदानश्च संसारभयनाशनः।
लक्ष्मीमुरसि सन्धत्ते मन्मथेन वशीकृतः॥३॥

—शि० धर्म० अ० ९

जो विष्णु भगवान् मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम तथा राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्की दस अवतार धारण करता है। वह भी काम के वश में होकर लक्ष्मी को उर से लगाये रखता है।

भ्रातॄणां दैत्यमुख्यानां हतानां दारुणे युधि।
स्त्रियो हत्वा तु पाताले चिक्रीड च मुमोद च॥६१॥
त्रेतायुगे रामरूपिविष्णुः सम्प्राप्य जानकीम्।
नो तृप्तः स्त्रीविलासानां वित्तस्य च सुतस्य च॥६२॥
रेतः सम्प्रेषणाश्चापि प्रोषितस्य स्त्रियामपि।
तस्मात् कलियुगे भूमौ गृहीत्वा जन्म केशव॥६३॥

वसुदेवस्य देवक्यां मथुरायां महाबलः।
बालस्तु गोपकन्याभिर्वने क्रीडा चकार सः॥ ६४॥
दश लक्षाणि पुत्राणां गोपालानां ससर्ज ह।
ततस्तु यौवनाक्रान्तो रुक्मिणीं प्रददर्श ह॥ ६५॥
विवाहयित्वा पुत्रांश्च प्रद्युम्नाद्यांश्च निर्ममे।
तथापि नरकं दैत्यं प्राग्ज्योतिषमतिबलात्॥ ६६॥
हत्वा स्त्रीणां सहस्त्राणि षोडशैव जहार सः।
तासां रतिफलं भुक्त्वा पुत्राणां नवतिं तथा॥ ६७॥
सहस्त्राणि ससर्जाशु मत्स्ये चान्दं महाद्भुतम्।
स्त्रीणां तथापि नो तृप्तो दिव्यानां सुरतेर्यदा॥ ६८॥
तदा राधां स्त्रियं कांचिन्निशि धौर्त्यादधर्षयत्।
तथापि परनारीणां लम्पटो नित्यमेव हि।

—शि० ध० अ० ९

भगवान् विष्णु राक्षसों को मारकर उनकी स्त्रियों को पाताल में ले-गया तथा उनसे क्रीड़ा वा आमोद-प्रमोद किया।

त्रेतायुग में रामावतार लेकर जानकी से विवाह किया, किन्तु स्त्रियों के विलास से तृप्त नहीं हुआ और वन में जाने के कारण गर्भाधान यथेष्ट नहीं कर सके, इसलिए कलियुग में कृष्ण का अवतार धारण किया और बचपन में गोपियों से क्रीड़ा करके दस लाख लड़के उत्पन्न किये, तब भी तृप्त न हुए। तब युवा होकर रुक्मिणी से विवाह करके प्रद्युम्न आदि सन्तानें उत्पन्न कीं, पुनरपि तृप्त न हुए तब नरक नाम के राक्षस को मारकर १६ हज़ार स्त्रियाँ लाये तथा ९० हज़ार पुत्र उत्पन्न किये, फिर भी तृप्त नहीं हुए तब राधा नाम की एक स्त्री को पकड़ लाये। इतना होने पर भी भगवान् पर-नारियों के लम्पट हैं।

इति तव कुसुमेषोर्दिव्यं माहात्म्यमुक्तं
ललितपदवचोभिः श्रोत्रपैर्मनुष्यैः।
तदनुशृणु रहस्यं मन्मथस्य प्रभावं
सकलजनमनांसि क्षोभितुं यस्तु जातः॥

यह कामदेव का दिव्य माहात्म्य है, जिसको सुन्दर पदों के द्वारा वर्णन किया है। पुनरपि कामदेव के प्रभाव को सुनो जो सम्पूर्ण जनसमुदाय के मनों में क्षोभ उत्पन्न करने के लिए प्रादुर्भूत हुआ है।

कहो पौराणिक बन्धुओ! क्या इन प्रमाणों के होते हुए भी यह

कहोगे कि अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है। यहाँ कितने स्पष्ट शब्दों में इस बात का वर्णन किया है कि विष्णु के राम, कृष्णादि सब अवतार कामेच्छा की पूर्ति के लिए तथा सन्तान उत्पन्न करने के लिए होते हैं।

राम का कथन

असहायो ह्यापथेयो भीषणे निर्जने वने।
कुर्वन्नाखेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः॥ ४२॥
न ज्ञातवान् मृगं हैमं मायया पिहितस्तदा॥ ४३॥
वारितोऽपि मयात्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः॥ ४४॥
अन्यायेन हतो बाली शापाच्चैव निवारितः॥ ४७॥
बद्धोऽहं नागपाशैश्च लक्ष्मणश्च ममानुजः।
विसंज्ञौ पतितौ दृष्ट्वा वानरा विस्मयं गताः॥ ४८॥
चिन्ता मे महती जाता दैवं किं वा करिष्यति॥ ४९॥
वराटिकाऽपि पित्रा मे न दत्ता वननिर्गमे।
पदातिरसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः॥ ५२॥
एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरन्तरम्।
परतन्त्रेन मे नूनं स्वतन्त्रः को भवेत्तदा॥ ५८॥
परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय।
तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः॥ ६०॥

—देवी भा० ४.१८

रामावतार में असहाय शिकार करता हुआ निर्लज्ज होकर मैं विचरता था। मैं ने यह भी नहीं जाना कि यह मारीच है या हिरन है। अन्याय से मैं ने बाली की हत्या की, मैं तथा लक्ष्मण दोनों नाग-पाश से बँध गये। मुझे बड़ी चिन्ता हो गई कि दैव क्या करेगा, मुझे पिता ने एक कौड़ी भी सहायता के लिए नहीं दी, धन-हीन, दीन-हीन मैं जंगल में गया। इस प्रकार रामावतार में मैं ने अनेक कष्ट भोगे, यदि मैं स्वतन्त्र होता तब इतने दुःख क्यों भोगता, इसी प्रकार शिव आदि कोई भी स्वतन्त्र नहीं हैं।

इन प्रमाणों में श्रीराम ने स्वयं अपने दुःखों का वर्णन किया है तथा यह स्वीकार किया है कि मैं स्वतन्त्र होता तब इतने दुःख क्यों भोगता। पौराणिको! क्या अब भी यही कहोगे कि परमात्मा के अवतार लीलार्थ होते हैं। उनको दुःखादि कुछ भी नहीं होता, क्या

तुम्हारा यह कथन मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्तवाली कहावत को चरितार्थ नहीं करता।

शिवादि की दुर्गति

कस्माद्विगर्हितं रूपं प्राप्तवान् सह भार्यया ॥ ४ ॥
योनिलिंगस्वरूपं च कथं स्यात् सुमहात्मनः ।
पञ्चवक्त्रश्चतुर्बाहूः शूलपाणिस्त्रिलोचन ॥ ५ ॥
कथं विगर्हितं रूपं प्राप्तवान् द्विजपुङ्गव ॥ ६ ॥

—पद्म० उ० २५५.४-६

दिलीप बोला कि वसिष्ठजी महाराज! शिवजी ने अपनी भार्या पार्वतीसहित योनि-लिंगस्वरूप यह निन्दनीय स्वरूप क्यों बनाया, पाञ्च मुख, चार हाथ, हाथ में शूल, तीन आँखें—ऐसा निन्दनीय रूप इन्होंने क्यों बनाया? इस बात को सुनकर वसिष्ठजी बोले कि एक समय स्वायम्भुव मनु सब ऋषियों को साथ लेकर मन्दर पर्वत पर गये।

तस्मिन् समागताः सर्वे मुनयः संशितव्रताः ।
नानाशास्त्रविदः श्रेष्ठाः बालसूर्यानलप्रभाः ॥ ९ ॥
सर्ववेदविदो विप्राः सर्वे धर्मपरायणाः ।
वर्तमाने महासत्रे मुनयः क्षीणकल्मषाः ॥ १० ॥
अन्वेष्टुं देवतातत्त्वं मिथः प्रोचुस्तपोधनाः ॥ ११ ॥

उस सत्र में जो मुनि आये, वे वेदवेदाङ्ग के जाननेवाले सब शास्त्रों में निपुण, श्रेष्ठ, प्रातःकाल के सूर्य के समान तेजस्वी और धर्मपरायण थे।

तेषां समुपविष्टानामिति वादो महानभूत्।
रुद्रमेकमिति प्रोचुः केचिदत्र महर्षयः ॥ १४ ॥
ब्रह्मैव पूज्य इत्यन्ये वदन्ति मुनिसत्तमाः ।
सूर्य एवात्मनां पूज्य इत्यन्ये प्राहुरर्चकाः ॥ १५ ॥

उन सब मुनियों में विवाद आरम्भ हो गया। कोई कहने लगा शिव की पूजा करनी चाहिए, अपर कहने लगे सूर्य की पूजा करनी चाहिए, इतर कहने लगे ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए, कतिपय कहने लगे विष्णु की पूजा होनी चाहिए। तब मनु बोले—

शुद्धसत्त्वमयो योऽसौ कल्याणगुणवान् प्रभुः ॥ १७ ॥
पुण्डरीकेक्षणः श्रीमान् श्रीपतिपुरुषोत्तमः ।
विप्राणां वेदविदुषां एक एवार्चितः प्रभुः ॥ १८ ॥
विप्राणां नेतरे पूज्याः रजस्तमविमिश्रिताः ॥ २० ॥

जो शुद्ध सत्त्ववाला, कल्याण-गुणवाला, विष्णु है वही पूजनीय है, अन्य किसी भी देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए। तब सब महर्षियों ने यह निर्णय किया कि हम सबमें श्रेष्ठ भृगु तपोनिधि वा श्रेष्ठ है, अतः उनको सब देवताओं के पास जाकर, उनकी अवस्था देखकर, अपना निर्णय देना चाहिए कि कौन-सा देव पूजनीय है। तब भृगु कैलास पर गये और उन्हों ने निर्णय दिया—

नारीसङ्गमत्तोऽसौ यस्मान्मामवमन्यते।
योनिलिंगस्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति॥ ३२॥

नारी के सङ्गम में लगा हुआ शिव मेरी परवाह नहीं करता इसलिए इसका स्वरूप योनिलिङ्ग का होगा।

रुद्रभक्ताश्च ये लोके भस्मलिंगास्थिधारिणः।
ते पाषण्डत्वमापन्ना: वेदबाह्या भवन्तु वै॥ ३६॥

जो इस संसार में शिवजी के भक्त हैं तथा लिङ्ग, अस्थि वा भस्म धारण करते हैं, वे पाखण्डी और वेदविरोधी हैं।

येऽर्चयन्ति सुरानन्यांस्त्वां विना पुरुषोत्तम।
ते पाषण्डत्वमापन्ना: सर्वलोकविगर्हिताः॥ ५८॥
विप्राणां वेदविदुषां त्वमेवेज्यो जनार्दन।
नान्यः कश्चित् सुराणां तु पूजनीयः कदाचन॥ ५९॥
अनर्च्या ब्रह्मरुद्राद्याः रजस्तमोविमिश्रिताः।
त्वं शुद्धसत्त्वगुणवान् पूजनीयोऽग्रजन्मनाम्॥ ६०॥

जो विष्णु की पूजा छोड़कर अन्य रुद्रादि देवताओं की पूजा करते हैं, वे सब संसार में निन्दनीय हैं। ब्रह्मा, शिवादि की कभी भी पूजा नहीं करनी चाहिए।

इतरेषां तु देवानामन्नं पुष्पं जलं तथा।
अस्पृश्यं तु भवेत् सर्वं निर्माल्यं सुरया समम्॥ ६३॥
नान्यं देवं तु वीक्षेत ब्राह्मणो न च पूजयेत्।
नान्यप्रसादं भुंजीत नान्यदायातनं विशेत्॥ ६५॥

ब्रह्मा, शिव, हनुमान्, देवी आदि सब देवताओं का अन्न, पुष्प, जल आदि सब अस्पृश्य हैं। सिवाय विष्णु के किसी देवता को देखना पाप है, उनके मन्दिर में जाना पाप है तथा उनका प्रसाद खाना पाप है।

इतरेषां तु देवानां निर्माल्यं गर्हितं भवेत्॥ ९८॥

सकृदेव हि योऽश्नाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
निर्माल्यं शङ्करादीनां स चाण्डालो भवेद् ध्रुवम्॥ ९९॥
कल्पकोटि सहस्त्राणि पच्यते नरकाग्निना॥ १००॥

जो मनुष्य शिव, देवी आदि किसी देवता का निर्माल्य=भोग खाएगा वह चाण्डाल है और करोड़ों कल्पों तक नरक में ही रहता है।

निर्माल्यं भो द्विजश्रेष्ठाः रुद्रादीनां दिवौकसाम्॥ १००॥
रक्षो यक्षपिशाचान्नं मद्यमांससमं स्मृतम्।
तद् ब्राह्मणैर्न भोक्तव्यं देवानां भुञ्जितं हविः॥ १०१॥

—पद्म० उ० २५५

ब्राह्मणों को शिव आदि देवताओं का भोग कभी भी नहीं खाना चाहिए, वह मद्य-मांस के समान है।

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाखण्डी भवेत् सदा॥ ९॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्रह्मणा येऽप्यवैष्णवाः॥ ११॥
न स्प्रष्टव्या न वक्तव्या न द्रष्टव्याः कदाचन॥ १२॥

—पद्म० उ० २३५

जो शिवादि देवताओं को विष्णु के समान देखेगा वह पाखण्डी है। अधिक क्या कहें जो विष्णु के सिवाय किसी भी देवता को मानेगा उससे बात करना, उसको छूना व उसको देखना पाप है।

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥ २८॥
नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम्॥ २९॥

—भा० ४.२.२८-२९

जो शिवजी का व्रत धारण करते हैं तथा उनके पीछे चलनेवाले हैं, वे पाखण्डी तथा सत्यशास्त्र के विरोधी हैं। वे अशुद्ध, मूर्ख, लिङ्ग, जटा वा हड्डियों के धारण करनेवाले हैं, जहाँ मद्यादि पान किया जाता है।

विष्णु की दुर्गति

उपर्युक्त पुराण में शिवजी की घोर निन्दा की गई है। अब तनिक विष्णु की अवस्था भी देखिए—

ये निन्दन्ति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरम्
ये निन्दन्ति त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने।
ते वै सङ्करसूकरासुरखरश्वक्रोष्टुकीटोपमाः
जाता एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम्॥ ४६॥

—शि० विद्ये० अ० २४.४६

जो शिव की निन्दा करते हैं जैसे कि पद्मपुराण में की गई तथा जो शिवजी के तिलक तिर्यक् पुण्ड्र की निन्दा करते हैं, वे वर्णसङ्कर, सूअर, राक्षस, गधा, कुत्ता, गीदड़ और कीड़ों के समान है, वे परम पापी तथा नारकी हैं।

तत् सम्भाषणतो भवेद्धि नरकं निस्तारवानास्थितम्।
ये भस्मादिविधारणं हि पुरुषं निन्दन्ति मन्दा हि ते॥ ४७॥

—शि० वि० अ० २४.४७

उनके साथ भाषण से नरक मिलता है। जो भस्मधारी पुरुषों की निन्दा करते हैं, वे मन्द हैं।

शिवसामान्यवक्तारं शिवसामान्यदर्शिनम्।
दृष्ट्वा स्नायात् सचैलं सन् शिवसामान्यसङ्गिनम्॥ ७६॥
महेशस्यैव दासोऽयं विष्णुस्तेनानुकम्पितः॥ ५॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां सिद्धान्तोऽयं यथार्थतः।
इन्द्रोपेन्द्रादयः सर्वे महेशस्यैव किङ्कराः॥ ६॥
तेन तुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मा वा यदि गद्यते।
षष्टिवर्षसहस्त्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ १७॥

—सौरपुराण अ० ४०

जो मनुष्य विष्णु को शिव के समान देखता है वा शिव के समान ब्रह्मादि को बतलाता है, वह पापी है। उसको देखकर कपड़ों सहित स्नान करना चाहिए। विष्णु शिवजी का दास है,जो विष्णु, ब्रह्मादि को शिवजी के समान कहता है, वह ६० हज़ार वर्ष तक टट्टी का कीड़ा बनेगा।

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजन्ते चान्यदेवता।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ३५॥
शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु च।
स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते॥ ३६॥

—लिं० उत्तरभाग अ० ११

शिवलिङ्ग की पूजा छोड़कर जो अन्य विष्णु, ब्रह्मा, हनुमान्, देवी आदि देवताओं की पूजा करता है, वह राजा अपने देशसहित रौरव नरक में जाता है। जो राजा शिवजी का भक्त नहीं है तथा दूसरे देवताओं का भक्त है, वह ऐसा दुष्ट है जैसे कोई युवति अपने पति को छोड़कर दूसरे जार पुरुष के साथ विषय करने से होती है।

चिह्न-निन्दा

भिन्न-भिन्न पुराणों में केवल देवताओं की ही निन्दा नहीं आती किन्तु अलग-अलग देवताओं के जो भिन्न-भिन्न तिलकादि चिह्न हैं उनकी भी परस्पर घोर निन्दा आती है—

ये कण्ठलग्ने तुलसीनलिनाक्षमाला
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः।
ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्
ते वैष्णवाः भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥

—पद्म० उ० २५३.७०

जिसके गले में तुलसी की माला है, जिसने अपनी भुजा के मूल में छाप गरम करके अपने को जला दिया है, जिसने अपने ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाया है, वह वैष्णव है, अर्थात् विष्णु को माननेवाले वैष्णव के तीन चिह्न हैं। पहला तुलसी की माला धारण करना, दूसरा अपने आपको साँड की तरह जला लेना, तीसरा मत्थे में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना।

न तस्य किंचिदश्नीयादपि क्रतुसहस्त्रिणः॥ ४१॥
सर्ववेदविदो वापि सर्वशास्त्रविशारदः॥ ४३॥
अधृत्वा विधिना चक्रं ब्राह्मणः पतितो भवेत्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु शङ्खचक्रविवर्जितः॥ ४४॥
तं गर्दभे समारोप्य बहिः कुर्यात् स्वपत्तनात्॥ ४५॥

—पद्म० उ० २२४

यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितम्।
द्रष्टव्यं नैव तत् किंचित् श्मशानसदृशं भवेत्॥ १२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत्।
तत् सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं चाधिगच्छति॥ १३॥
ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि।
वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटं यथा॥ १९॥

त्रिपुण्ड्रशूद्रकल्पानां शूद्राणां च विधिं तथा।
त्रिपुण्ड्रधारणाद्विप्रः पतितः स्यान्न संशयः॥ २०॥

—पद्म० उ० अ० २२५

जो हज़ार यज्ञ करे, सम्पूर्ण वेद वा सब शास्त्रों के जाननेवाला हो तथापि जो ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण नहीं करता तथा विष्णु के सिवाय दूसरे देवताओं को मानता है, उसको गधे पर चढ़ाकर नगर से बाहर निकाल देना चाहिए। जिस मनुष्य के मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र न हो उसको कभी भी नहीं देखना चाहिए, वह माथा श्मशान के सदृश है। जो मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र के बिना सन्ध्यादि करता है वह नरक में जावेगा। यदि कुलीन ब्राह्मण माथे में भस्म लगावेगा जैसेकि शिव के भक्त लगाते हैं ऐसे ब्राह्मण का ऐसे ही दर्शन नहीं करना चाहिए जैसेकि शराब से भरे घड़े का। जो कोई ब्राह्मण त्रिपुण्ड्र—शिव के तिलक को धारण करेगा वह पतित होवेगा।

भस्म-महिमा

देवीभागवत ११.१५.११ में लिखा है—

न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद् भस्मसंग्रहे।
स चाण्डाल इति ज्ञेय जन्मजन्मान्तरे ध्रुवम्॥

जिसको भस्म के संग्रह में प्रीति नहीं है, वह जन्म-जन्मान्तर में निश्चय से चाण्डाल होगा।

पौराणिक बन्धुओ! बतलाओ क्या अब भी अवतार का दम्भ भरोगे? प्रथम यह तो निश्चय कर लो कि तुम्हारा परमात्मा कौन-सा है। पद्मपुराण में सिवाय विष्णु के सबका घोर खण्डन किया है तथा शिवादि के माननेवालों को नरक में भेजने का प्रमाणपत्र दे दिया है। शिव, लिंग तथा सौरपुराण में सिवाय शिवजी के जो दूसरों को मानेगा उसको सूकर, खर, गीदड़ आदि की पदवी देते हुए अन्त में विष्ठा तक का कीड़ा बना डाला। जब ये शिवजी आदि सब परमात्मा के अवतार हैं तब ऐसे दण्ड क्यों लिखे हैं, अतः यह सिद्ध है कि इनमें से कोई भी परमात्मा नहीं है।

विष्णु आदि कर्मफलभोक्ता

अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत्।
शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं कोऽतिक्रमेत् पुनः॥ ४३॥

—देवीभा० १.५

देहवान् सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः।
यथा कालवशात् कृत्तं शिरो मे शम्भुना पुरा॥ ४४॥
तथैव लिङ्गपातश्च महादेवस्य शापतः।
तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतिता लवणाम्भसि॥ ४५॥
सहस्रभगसम्प्राप्ति दुःखं चैव शचीपतेः।
स्वर्गाद् भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे॥ ४६॥
एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते।
संसारेऽस्मिन् महाभागस्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै॥ ४७॥

—देवीभा० १.५

शुभ वा अशुभ कोई भी कर्म हो उसका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। जो देहधारी है वह अवश्यमेव दुःखों का भोक्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है। ब्रह्माजी कहते हैं इसी कर्म का फल मुझे मिला था कि शिवजी ने मेरा एक सिर काट डाला, इसी प्रकार शिवजी को कर्म का फल मिला कि ऋषियों ने उसका लिङ्ग काट डाला, इसी प्रकार आज विष्णु को फल मिला है कि उसका सिर कटकर समुद्र में जा गिरा, जिसका पता नहीं लगता। इन्द्र को यह कर्मफल मिला कि उसके सहस्रभग हो गये। जब यह सब कर्मफल को भोगते हैं तब कौन संसार में ऐसा है, जिसको कर्म-फल भोगना नहीं पड़ता।

कहिए, अब अवतारपना कहाँ गया, यहाँ तो यह सिद्धान्त नियत कर दिया है कि शरीर धारण बिना कर्म के हो ही नहीं सकता, जो देहधारी हैं, वे अवश्यमेव कर्मफल को भोगते हैं विष्णु, शिव आदि के सब उदाहरण भी दे दिये।

गर्भगत दुःख

गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम्।
विष्णोरापादितं सम्यग् मया विगतलीलया॥ ५॥
विदितं ते यथा विष्णुर्दुःखपाशेन मोहितः॥ ६॥
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे तस्या वशानुगा॥ ११॥
अवताराः सर्व एव यन्त्रिता इव दामभिः॥ १२॥

—देवीभा० ४.२०

गर्भ से उत्पन्न होनेवाला दुःख विष्णु को भी भोगना पड़ता है, विष्णु भी दुःखों के बन्धन में बँधा हुआ है। इसी प्रकार शिव, ब्रह्मादि

कोई भी गर्भ के दुःख से बचा हुआ नहीं है।

यहाँ स्पष्ट पुराण ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि गर्भ में विष्णु आदि को भी दुःख होता है।

राम को फटकार

सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र प्रभुशक्तिः कुतो गता।
यद्धेममृगविज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल॥ ३९॥
राजन् मायाबलं पश्य रामो हि काममोहितः।
रामो विरहसन्तप्तो रुरोद भृशमातुरः॥ ४०॥
योऽपृच्छत् पादपान् मूढ क्व गता जनकात्मजा॥ ४१॥

—देवीभा० ४.२०

राम का सर्वज्ञपना कहाँ गया तथा उसकी प्रभुशक्ति कहाँ चली गई, उसको इतना भी पता नहीं लगा कि यह मारीच है या हिरन है। माया कितनी बलवान् है जो राम विरह में रोता रहा और जिस मूर्ख राम ने वृक्षों से यह पूछा कि मेरी सीता कहाँ गई।

उपर्युक्त लेखों से सिद्ध है कि पुराण स्वयं रामादि को परमात्मा स्वीकार नहीं करता, किन्तु साधारण मनुष्यों की भाँति कर्मफल को भोगनेवाला मानता है।

युक्ति-संग्रह

१. जब पौराणिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि परमात्मा निराकार तथा सर्वव्यापक है, पुनः अवतार लेने के क्या अर्थ हैं। यदि कहो देवकी आदि के गर्भ में आना अवतार है तो वहाँ परमात्मा प्रथम ही विद्यमान है, पुनः गर्भ में आएगा यह कथन ही असङ्गत है, यदि कहो गर्भ में होने पर भी किसी स्थान पर विशेषतया प्रकट या विशेष कार्य करने का नाम अवतार है तब भी अवतार असङ्गत है। अब भी निराकार परमात्मा सर्वस्थानों पर विशेष कार्य कर रहा है। किसी स्थान पर पशुओं के बच्चे उत्पन्न कर रहा है, कहीं वर्षा वर्षा रहा है, इत्यादि।

२. कई कहा करते हैं कि जैसे विद्युत् सब जगह होते हुऐ भी किसी विशेष स्थान पर विशेष साधन के द्वारा प्रकट होता है, इसी प्रकार परमात्मा सर्वस्थानों पर होता हुआ भी किसी विशेष स्थान पर प्रकट होता हैं। इसके निम्न उत्तर हैं—

(क) विद्युत् एक जड़ पदार्थ है, अतः उसकी अवस्थाओं में

भेद होता है, कहीं वह प्रकट तथा कहीं तिरोहित है, किन्तु परमात्मा चेतन व सर्वज्ञ होने से सर्वदा एक-रस रहता है। उसमें विद्युत् की भाँति तिरोभाव वा प्रकट होना नहीं है।

(ख) विद्युत् विकारी, सावयव तथा गतिवाला पदार्थ है, अतः सर्वव्यापक नहीं हो सकता, अतः उसके लिए कभी प्रकट वा अप्रकट की अवस्था हो सकती है, परमात्मा की नहीं।

(ग) विद्युत् दूसरे के द्वारा प्रकट वा अप्रकट किया जाता है, क्योंकि वह सावयव, विकारी पदार्थ है, किन्तु परमात्मा ऐसा पदार्थ नहीं है।

३. परमात्मा जिस कार्य को करने के लिए अवतार धारण करता है, क्या बिना अवतार लिए उसमें वह कार्य करने की शक्ति नहीं है? यदि है तब उसे अवतार धारण की क्या आवश्यकता है? जैसे अब निराकार होता हुआ सम्पूर्ण कार्य कर रहा है वैसे ही सब कार्य कर लेता है।

४. यदि कहो उत्तम मानव लीला करने के लिए अवतार लेता है, तब भी ठीक नहीं, क्यों कि मत्स्य, कच्छ, वराह आदि में कोई भी मानव-लीला नहीं है। दूसरे पुराणों में अवतारों के रास-लीला, चीर हरण-लीला, आदि अनेक निन्दनीय चरित्र लिखे हैं।

५. कई कहते हैं कि मनुष्य में दुर्बलता होने से वह भली प्रकार उत्तम आदर्श-जीवन प्रदर्शित नहीं कर सकता, अतः भगवान् अवतार लेता है। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यदि मनुष्य उत्तम आदर्श स्थापन नहीं कर सकता, तब अवतार के बताये मार्ग पर दुर्बलत के कारण चल भी नहीं सकता, पुनः अवतार लेने से क्या लाभ? दूसरी बात यह कि स्वयं भागवत में यह लिखा है—

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्॥

—भा० १०.३३.३१

कभी किसी अनीश्वर को यह भ्रष्टाचार मन से भी नहीं करना चाहिए, अन्यथा नष्ट हो जाएगा।

गीता में तो यद् यदाचरति, का पाठ पढाया तथा यहाँ लिखा है कि मन से भी अवतारों का आचरण नहीं करना चाहिए।

६. अवतारों ने मनुष्यों के आचरण करने के लिए कौन-सा ऐसा कार्य दिखलाया है जिसको मनुष्य नहीं कर सकते। यदि कहो

गोवर्धनपर्वत उठाया, इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो यह बात ही असम्भव है और दूसरी बात यह है कि इस आदर्श का लाभ क्या, क्योंकि मनुष्य तो पर्वत उठा ही नहीं सकता।

७. पूर्णावतार वा अंशावतार में क्या भेद है, जब दोनों ही परमात्मा के अवतार हैं?

८. कृष्ण सोलह कला पूर्ण क्यों तथा दूसरे क्यों नहीं?

एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥

—भा० १.३.२८

ये सब अवतार तो पुरुष के अंश हैं तथा कृष्ण स्वयं भगवान् हैं। उसका यह अर्थ है कि सिवाय कृष्ण के अन्य अवतार परमात्मा नहीं, गीता में आता है "**ममैवांशो जीवलोके।**" इससे सभी प्राणी अवतार हो गये, क्योंकि पौराणिकों के कथनानुकूल सब जीव ब्रह्म के अंश हैं। अंश में तथा भगवान् में क्या भेद है? क्या कृष्ण में सम्पूर्ण परमात्मा आ गया था, रामादि में परमात्मा का टुकड़ा था? जब परमात्मा सर्वव्यापक है तब सम्पूर्ण कृष्ण में कैसे आ गया तथा अखण्ड परमेश्वर टुकड़ा बनकर राम में कैसे आ गया, अतः अंशावतार वा पूर्णावतार को सिद्ध करना असम्भव है।

९. कृष्ण सोलह कला पूर्ण था इसके क्या अर्थ हैं? कला क्या है? प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न में लिखा है—

१ प्राण, २ श्रद्धा, ३ आकाश, ४ वायु, ५ ज्योति, ६ जल, ७ पृथिवी, ८ इन्द्रिय, ९ मन, १० अन्न, ११ वीर्य, १२ तप, १३ मन्त्र, १४ कर्म, १५ लोक, १६ नाम—ये कला प्रत्येक प्राणी में होती हैं, पुनः तुम्हारे अवतार में क्या विशेषता है?

(१०) अवतारों के शरीर भौतिक हैं या अभौतिक, स्वकर्मार्जित हैं या परकर्मार्जित? मायिक हैं या अमायिक? अभौतिक तो हो नहीं सकते, क्योंकि सब नश्वर थे, भौतिक होने से हमारे शरीरों से उनका भेद क्या, अपने कर्म तो थे नहीं, यदि हमारे कर्म से बने तब हमारी भाँति उनको कष्ट भी होगा, यदि कष्ट है तब हमारी भाँति परमात्मा नहीं।

(११) परमात्मा का शरीर दो अवस्थाओं में हो सकता है, एक तो यह कि वह साकार हो जाए, यह हो नहीं सकता, क्योंकि संसार में जितनी साकार वस्तुएँ हैं वे सब परमाणुओं से बनी हैं। यदि परमात्मा के भी परमाणु मानें तब प्रत्येक परमाणु का नाम परमात्मा

है या सब परमाणुओं से मिलकर जो बना है वह परमात्मा है? यदि सब परमाणुओं का नाम परमात्मा है तब अनन्त ईश्वर होने से संसार की व्यवस्था नहीं चलेगी तथा वेद से भी विरोध आएगा, यदि अनेक परमाणुओं से बनी हुई वस्तु का नाम परमात्मा है तब वह नश्वर होगी तब बनने से प्रथम भी नहीं थी, पुनः उसको किसने बनाया?

यदि कहो जीव की भाँति शरीर धारण करता है तब भी ठीक नहीं, मैं पीछे पुराणादि के प्रमाणों से यह सिद्ध कर चुका हूँ कि बिना कर्मों के शरीर नहीं होता तथा जहाँ शरीर होता है वहाँ दुःखादि अवश्य होते हैं। योगदर्शनादि में परमात्मा के जो लक्षण किये हैं उनसे कर्मादि का स्पष्ट निषेध होता है, अतः किसी भी अवस्था में परमेश्वर का शरीर सिद्ध नहीं होता।

१२. जब पौराणिकों के मत में सिवाय ब्रह्म के और कोई पदार्थ नहीं है, सम्पूर्ण संसार ब्रह्म है तब अवतार किसका, किसके लिए? रावण भी ब्रह्म तथा राम भी ब्रह्म, कंस भी ब्रह्म तथा कृष्ण भी ब्रह्म।

१३. गीता में लिखा है—"**यद् गत्वा न निवर्तन्ते**" मुक्तजीव की पुनरावृत्ति नहीं होती, वह ब्रह्म हो जाता है। जब मुक्त जीव ब्रह्म बनकर नहीं लौटता तब संसार में ब्रह्म का अवतार कैसे हो जाएगा?

१४. जब गजबन्धन-मोचनरूपी तुच्छ घटनाओं से भगवान् ने अवतार धारण कर लिया तब आज इतने अत्याचार वा हज़ारों गौओं पर छुरी चलने पर भी भगवान् अवतार क्यों नहीं लेते?

२४ अवतारों की आलोचना

वराहवतार

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रतः
कौडीं तनुं सकल यज्ञमयीमनन्तः।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं
तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार॥

—भा० २.७.१

उस अनन्त प्रभु ने पृथिवी का उद्धार करने के लिए सूअर का शरीर धारण किया और दाँतों से राक्षस को चीर डाला।

आलोचना—जब परमात्मा सर्वव्यापक है तब पृथिवी में तथा राक्षस में भी विद्यमान था। पुनः अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता थी? क्या बिना अवतार के पृथिवी का उद्धार नहीं कर सकता था? सुअर का रूप धारण क्यों किया इससे भगवान् ने

मनुष्यों के लिए कौन-सा श्रेष्ठ आदर्श स्थापन किया, जब आपके कथनानुसार कृष्ण पर्वत उठा सकता है? पुनः क्या मनुष्य का शरीर धारण करके पृथिवी का उद्धार नहीं कर सकते थे?

कपिलावतार

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां
स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे।
ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपंक-
मस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे॥

—२.७.३

कर्दम के घर देवहूति में नव बहिनों सहित कपिल का अवतार हुआ तथा अपनी माता को उपदेश दिया, वह कपिल की गति को प्राप्त हुई।

समालोचना—अपनी एक माता को उपदेश देने के लिए भगवान् ने अवतार धारण किया, आज भारत में करोड़ों माताएँ मूर्खा तथा विधर्मियों से पीड़ित हो रही हैं, तब भगवान् अवतार धारण क्यों नहीं करते?

पौराणिकों के कथनानुसार सांख्य में नास्तिकता का उपदेश है तो क्या कपिल का अवतार संसार को नास्तिक बनाने के लिए हुआ था? यदि कपिल अवतार था तब स्वामी शङ्कर ने वेदान्तदर्शन [अ० २ पा० १.१] में यह क्यों लिखा?—

न तया श्रुतिविरुद्धमपि कापिलं मतं श्रद्धातुं शक्यम्। ...कापिलं मतं निंद्यत इति गम्यते। ...अतश्च सिद्धमात्मभेद-कल्पनयापि कपिलस्य तन्त्रं वेदविरुद्धम्।

वेद के विरुद्ध होने से कपिल का शास्त्र मानने के योग्य नहीं, किन्तु भेदप्रतिपादक होने से निन्दनीय है।

यदि कपिल अवतार थे तब शङ्कर ने उन्हें अवतार क्यों नहीं माना तथा उनके शास्त्र की निन्दा क्यों की?

दत्तात्रेयावतार

अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो
दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः।
यत्पादपंकजपरागपवित्रदेहा
योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः॥४॥

अत्रि पुत्र की इच्छा कर रहे थे। तब भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा कि मैंने अपने-आपको तुमको दे दिया है और उसके घर दत्तात्रेय का अवतार धारण किया।

समालोचना—यहाँ कौन-सा धर्म का बड़ा भारी सङ्कट था, जिसको देखकर भगवान् ने अवतार धारण किया, क्या इस कार्य को मनुष्य नहीं कर सकते थे?

सनत्कुमारावतार

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे
आदौ सनात्स्वतपसः स चतुः सनोऽभूत्।
प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं
सम्यग् जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन्॥ ५॥

सृष्टि की रचना की इच्छा से जब मैंने घोर तप किया तब मुझसे चार अवतार सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन उत्पन्न हुए।

समालोचना—परमात्मा तप क्यों करता है, क्या वह बिना तप के सृष्टि रचना नहीं कर सकता? जब एक अवतार से काम चल सकता है तब चार अवतार धारण क्यों किये? क्या इस धर्मोपदेश को मनुष्य नहीं कर सकता?

नरनारायणावतार

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां
नारायणो नर इति स्वतपः प्रभावः।
दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं
देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः॥ ६॥
कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या
रोषं दहन्तमुत तेन दहन्त्यसह्यम्।
सोऽयं यदन्तरमलं निविशन् बिभेति
कामः कथं नु पुनरस्य मनःश्रयेत॥ ७॥

दक्ष की दुहिता मूर्त्ति में भगवान् ने नर-नारायण का अवतार लेकर घोर तप किया। अनेक अप्सराएँ भी उनका तप भङ्ग न कर सकीं। शिवजी ने काम को भस्म किया, किन्तु रोष को भस्म न कर सके। भगवान् ने उसे भी भस्म कर दिया।

समालोचना—यह अवतार किस राक्षस को मारने के लिए हुआ। इसने कौन-से धर्म की रक्षा की। जब यह परमात्मा था तब

तप करने की क्या आवश्यकता थी ?

ध्रुवावतार

विद्धः स पत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो
बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि।
तस्मा अदाद् ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो
दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात्॥

—भा० २.७.८

राजकुमार ध्रुव को जब उसकी विमाता ने वाग्बाणों से विद्ध किया तब वह बच्चा होने पर भी तप के लिए वन में चला गया। जब उसने भगवान् की स्तुति की तब भगवान् ने उस को ध्रुवगति प्रदान की?

समालोचना—ध्रुवजी ने किस पाप-नाश वा धर्म-रक्षा के लिए अवतार धारण किया। यहाँ तो लिखा है जब उसने स्तुति की तब भगवान् ने उसको ध्रुव-पद प्रदान किया, पुनः वह अवतार कैसा?

पृथु अवतार

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्र-
विप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम्।
त्रात्वार्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे
दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन॥९॥

जब राजा वेण कुमार्गगामी हो गया तब द्विजों के वाक्य से उसका ऐश्वर्य तथा बल नष्ट हो गया, तब भगवान् ने पृथु का अवतार लिया था और सब वसुधा का दोहन किया।

समालोचना—परमात्मा के इस कार्य को सांसारिक राजा भी कर सकते हैं, पुनः अवतार लेने की क्या आवश्यकता थी? वर्त्तमान समय में अंग्रेजों ने सबसे अधिक पृथिवी के रत्नों का दोहन किया है। वे अवतार क्यों नहीं? इस समय भारत इतनी दासता में जकड़ा है, पुनः अवतार क्यों नहीं होते।

ऋषभावतार

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो
वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम्।
यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः॥१०॥

नाभि के घर सुदेवी से ऋषभ अवतार हुआ। जिसने जड़योग वा समाधि लगाना प्रारम्भ किया।

यो हि वाव स भगवान् लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत् प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमानः उच्चरित आदग्धोद्देशः॥ —भा० ५.५.३२

ऋषभदेव अजगर की भाँति पड़े रहते थे, सोये हुए ही खाते-पीते, लेटते, मूत्र तथा पुरीषोत्सर्ग करते तथा सारे शरीर में टट्टी लपेटकर पड़े रहते थे।

समालोचना—मैं अवतारवादियों से पूछता हूँ कि ऋषभदेव ने कौन-सा अवतारवाला काम किया, गीता के आदेश के अनुसार अब पौराणिकों को भी वैसा ही आचरण करना चाहिए। उन्हें भी टट्टी लपेटकर पड़े रहना चाहिए। योगाभ्यास तो संसार के अनेक जीव करते हैं, पुनः ऋषभ अवतार ने क्या विशेषता दिखलाई।

हयग्रीवावतार

सत्रे ममास भगवान् हयशीर्षाऽथो
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः।
छन्दोमयो मखमयोखिलदेवतात्मा
वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः॥ ११॥

घोड़े का शिर लगाकर भगवान् यज्ञ में प्रकट हुए, उस देवता की नाक छन्दोमय, वह स्वयं मखमय और उसके श्वास से वेद उत्पन्न हुए।

समालोचना—देवीभागवत में तो विष्णु रोकर कहते हैं कि जब मेरा सिर कट गया तब न मिलने पर हे ब्रह्माजी! तुमने घोड़े का सिर लगा दिया, यह मेरा उपहास है तथा यहाँ हयग्रीव को अवतार माना है, पुनः उसके नाक से वेद उत्पन्न हुए। वेद तथा परमात्मा का अच्छा उपहास है।

मत्स्यावतार

भुजङ्गरज्वा मत्स्यस्य शृंगे नावमयोजयत्।
उपर्युपस्थितास्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥
—मत्स्य० २.१९

मत्स्य अवतार के सींग से साँप की रस्सी बनाकर मनुजी ने

अपनी नाव बाँध ली।

समालोचना—प्रथम तो भगवान् का मच्छ बनना, पुनः उसके सींग का होना, फिर साँप का रस्सा बनाना, ये सब बातें असम्भव तथा असङ्गत हैं। क्या परमात्मा बिना मच्छ के नौका को डूबने से नहीं बच सकता था ?

कच्छावतार

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान्॥ ९॥
सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः।
बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः॥ १०॥

—भा० ८.७.९,१०

जब देवता तथा असुर समुद्र-मन्थन करने लगे तब चार लाख कोस चौड़े पर्वत को भगवान् ने कछुआ बनकर अपनी पीठ पर रख लिया। जब बल से उस पर्वत को देवता और असुरों ने चलाया तब भगवान् के केवल खुजली-सी होने लगी।

समालोचना—जहाँ परमेश्वर को मच्छ बनाया वहाँ अब कछुआ भी बना दिया। पौराणिकों की विचित्र लीला है। भला, यहाँ कौन-सी मानव लीला करके मनुष्यों के लिए आदर्श स्थापन कर रहे हैं? यदि कछुए में इतना भार उठाने की शक्ति थी, तब परमात्मा बिना ही अवतार के सारे संसार को धारण कर रहा है, पुनः कछुआ बनने की क्या आवश्यकता थी ?

नृसिंहावतार

त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंहरूपं
कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम्।
दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतन्तमारादूरौ
निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम्॥ १४॥

—भाग० २.७.१४

महाराज ने नृसिंह का रूप धारण किया, भृकुटि घुमाई, तथा जब राक्षस गदा का प्रहार करने लगा तब भगवान् ने उसे नीचे पटककर नखों से फाड़ डाला।

समालोचना—पौराणिक मत भी संसार में एक विचित्र मत है, वराहादि सर्वथा पशु, तथा रामादि सर्वथा मनुष्य, तथा यह नृसिंह न

मनुष्य और न पशु। इसमें दोनों शरीर मिले हुए हैं। मैं इन पौराणिकों से पूछता हूँ कि क्या नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का यह उपहास नहीं है? क्या इस स्वांग के बिना राक्षस नहीं मर सकता था?

हरि अवतार

अन्तः सरस्युरुबलेन पदे गृहीतो
ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः।
आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेयः॥ १५॥
श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्
चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः।
चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य
तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्जहार॥ १६॥
—भाग० २.७.१५-१६

तालाब के अन्दर जब ग्राह ने हाथी को बड़े वेग से पकड़ लिया, तब हाथी ने दुःखी होकर भगवान् से प्रार्थना की। हे लोकनाथ! आपका नाम लेने ही से मनुष्य दुःखों से छूट जाता है, आप मेरा कल्याण करें। इस गज की प्रार्थना सुनकर भगवान् गरुड़ पर चढ़कर आये और चक्र से ग्राह को मार डाला तथा अपने हाथ से पकड़कर गज का उद्धार किया।

समालोचना—प्रथम तो यही बात असम्भव है कि हाथी ने भगवान् से प्रार्थना की। जब आजकल पौराणिक कलकत्ते में देवी के नाम से सैकड़ों भैंसे काट डालते हैं, तब भगवान् अवतार क्यों नहीं लेते। जब भगवान् पानी में विद्यमान थे, तब बाहर से आने की क्या आवश्यकता थी। एक साधारण हाथी को बचाने के लिए भगवान् गरुड़ पर चढ़कर आ गये, आज प्रतिदिन हज़ारों गौओं के गले काटे जाते हैं, कितने ही निष्पाप आर्य बच्चे मारे जाते हैं, आर्य ललनाओं की लज्जा लूटी जाती है, तब आपके भगवान् कौन-सी गुहा में जा छिपे जो अवतार नहीं लेते?

वामनावतार

ज्यायान् गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां,
लोकान् विचक्रम इमान् यदथाधियज्ञः।
क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन
याच्ञामृते पथि चरन् प्रभुभिर्न चाल्यः॥ १७॥

नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः
शिखाधृतवतो विबुधाधिपत्यम्।
यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्य-
दात्मानमङ्गशिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥

—भा० २.७.१७-१८

जो बलि अत्यन्त धर्मात्मा था, उसे भगवान् ने छल से वश में किया, क्योंकि वह सुमार्गगामी बली वैसे वश में नहीं आता था। उस धर्मात्मा बलि ने कोई याचना नहीं की, किन्तु अपने वचन को निभाया। बलि अत्यन्त लोभरहित था।

समालोचना—जो बलि धर्मात्मा था तब उसे क्यों छला, धर्मात्माओं को छलना अवतारों का कार्य है ? परमात्मा का छल करना क्या उसके ईश्वरीय गुणों में दोष लगाना नहीं है ? जब भगवान् ने छल किया तब बलि भी इनकार कर देता तब तुम्हारे वामन का क्या रहता ? यदि कहो वह बल से ले-लेते तब छल की क्या आवश्यकता थी, प्रथम ही ले-लेते ? इस वामनावतार से तो बलि ही धर्मात्मा है।

हंसावतार

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं
यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥ १९ ॥

हे नारद ! भगवान् ने हंसावतार लेकर तुमको आत्मज्ञान प्रदान किया।

समालोचना—जब नारद भी अवतार हैं तथा हंस भी अवतार है तब क्या अवतार का अवतार को ज्ञान देना मूर्खता नहीं है ?

धन्वन्तरि अवतार

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्तिर्-
नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध
आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥

—भाग० २.७.२१

भगवान् ने धन्वन्तरि अवतार लेकर अनेक प्रकार की ओषधियों का उपदेश देकर रोगों का नाश किया तथा आयुर्वेद का उपदेश किया।

समालोचना—भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में ही वेदों में आयुर्वेद और अनेक प्रकार की ओषधियों का उपदेश कर दिया था, फिर धन्वन्तरि के अवतार की क्या आवश्यकता थी ?

परशुरामावतार

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान्नव ॥

—भा० ९.१६.१९

भगवान् परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों को मारकर संसार में निःक्षत्रियता की तथा नौ तालाब क्षत्रियों के खून से भरकर अपने पिता का तर्पण किया।

समालोचना—जिस क्षात्रधर्म की वेद में इतनी प्रशंसा आती है उसे मिटाना क्या पहले दरजे की दुष्टता नहीं है ? पुनः नौ तालाब क्षत्रियों के रक्त से भरना और भी दुष्टता है। यदि बाप का बदला लेना था तब हत्यारे को मारते, इस प्रकार लाखों आदमियों का वध करना, जिनमें बालक भी सम्मिलित थे, अवतारों का काम है या पामरों का ? जब राम तथा परशुराम दोनों ही अवतार थे तब एक दूसरे के विरुद्ध कार्य क्यों किया ? राम ने ब्राह्मण को मारा तथा आपस में क्यों लड़े ? क्या एक अवतार से कार्य नहीं हो सकता था ?

कृष्णावतार

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः
क्लेशव्यायाय कलया सितकृष्णकेशः ।
जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः
कर्माणि चात्महिमोपनिबन्धनानि ॥ २६ ॥

दुखित पृथिवी का भार उतारने के लिए काले बाल का कृष्ण अवतार होगा।

समालोचना—पौराणिक कहा करते हैं कृष्णावतार १६ कला पूर्ण हैं, यहाँ तो लिखा हैं कृष्ण केश से उत्पन्न हुआ।

व्यासावतार

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां
स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दुरपारः ।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
वेदद्रुमं विटपशो वि भजिष्यति स्म ॥ ३६ ॥

कलियुग में अल्पायु, अल्पबुद्धि मनुष्य सम्पूर्ण वेद को नहीं पढ़ सकते, अतः व्यासावतार लेकर भगवान् वेद का शाखाओं के रूप में विभाग करेंगे।

समालोचना—वेद की शाखाएँ तो व्यासजी के जन्म से पूर्व ही बनने लग गईं थीं, फिर व्यासजी का अवतार लेना तो व्यर्थ हो गया।

बुद्धावतार

देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां
पूर्भिर्भयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः।
लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं
वेषं विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्यम्॥ ३७॥

अलक्ष्य योगवाले मय दैत्य के बनाये पुर में बैठकर देवताओं का द्रोही और वेदमार्ग में लगे हुए देत्यों की बुद्धि को भ्रमानेवाले अति मनोहर वेष बनाकर लोगों का नाश करते हुए पाखण्ड धर्म का उपदेश करेंगे।

समालोचना—जब बुद्ध अवतार थे तब शङ्कर के कथनानुकूल व्यासजी ने वेदान्त में बुद्ध के विचारों का खण्डन क्यों किया? क्या एक अवतार दूसरे अवतार के विरुद्ध है? जब दैत्य वेदमार्ग पर चल रहे थे तब उनको उस सत्य वैदिक मार्ग से हटाकर विपरीत मार्ग का उपदेश देकर धर्म से भ्रष्ट करना अवतारों का काम है या राक्षसों का? उदयनाचार्यादि सैकड़ों विद्वानों ने बुद्ध के विचारों का खण्डन किया है। जिन काँटों को अवतार ने फैलाया उनको जीवों ने दूर किया। अवतार से तो जीव ही श्रेष्ठ हुए। इस बुद्धावतार में धर्म की रक्षा कहाँ गई? क्या धर्म-मार्ग पर चलते हुए दैत्यों को धोखे से बुद्धावतार ने कुमार्ग पर नहीं चलाया?

कल्कि अवतार

यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः
पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः।
स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र
शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान् युगान्ते॥ ३८॥

जब श्रेष्ठ पुरुषों के घरों में हरि की कथाएँ नहीं होंगी, द्विज पाखण्डी हो जाएँगे, राजा शूद्र हो जाएँगे, घरों में हवनादि नहीं होंगे, तब कलियुग के अन्त में भगवान् अवतार लेंगे।

समालोचना—सत्ययुग, त्रेता आदि जो अत्यन्त उत्तम युग थे उनमें तो भगवान् झटपट अनेक अवतार धारण कर लेते थे। जिस युग में अधर्म बहुत अधिक है उसमें केवल एक अवतार लेंगे, वह भी युग के अन्त में। इस युग में तो सबसे अधिक अवतार लेने चाहिएँ थे।

क्या अवतार नियत हैं ?

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

—भा० १.३.२६

भगवान् के अवतार असंख्य हैं, जैसे बड़े सरोवर से अंसख्य झरने निकलते हैं।

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥ २७॥
एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥ २८॥

ऋषि मनु देव, मनु के पुत्र आदि सब अवतार है।

समालोचना—जब असंख्य अवतार है तब इस बात के लिए तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि फलाँ अवतार है तथा फलाँ नहीं, क्योंकि बुद्धादि नास्तिक भी अवतार हैं तथा आस्तिक भी, जब ऋषि आदि सब अवतार हैं तब तुम्हारे विशेषावतार की क्या आवश्यकता है? यदि कहो कतिपय पूर्ण अवतार तथा कई अंशावतार हैं तब मैं पूछता हूँ कि सब परमात्मा तो एक शरीर में आ नहीं सकता, पुनः सभी अंशावतार हुए, क्या ऐसा भी होता है कि परमात्मा के एक भाग में अधिक शक्ति हो तथा दूसरे में न्यून हो?

अंशाधिकरण के भाष्य में शङ्कराचार्य कहते हैं—

दासा य एते कैवर्त्ताः प्रसिद्धाः, ये चामी दासाः...... ये चान्ये कितवा द्यूतकृतस्ते सर्वे ब्रह्मैवेति। हीनजन्तूदाहरणेन सर्वेषामेव नामरूपकृतकार्यकरणसन्घातप्रविष्टानां ब्रह्मत्वमाह। अन्यत्रापि..... त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमारः। इत्यादि। —वे० २.३.४३

दास, कितव, जुआरिये आदि सब जन्तु ब्रह्म ही हैं। कहिए, अब आपके अंशावतार कहाँ गये? यहाँ तो स्वामी शङ्कर ने कीट-पतङ्ग आदि सबको ही अवतार सिद्ध कर दिया।

शङ्का—उपनिषदों में यह स्पष्ट आता है कि चाँद, सूर्य, उसकी

आँखें हैं, दिशा श्रोत्र हैं, क्या इससे परमात्मा का शरीर सिद्ध नहीं होता ?

समाधान—रूपोपन्यासाच्च ॥

—वे० १.२.२३

इस परमात्मा की सृष्टि में रूपाकालंकार द्वारा सृष्टि की वस्तुओं को मुख आदि के स्थान पर वर्णन किया है। वास्तव में मुखादि नहीं है। जैसे—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः
वायु प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥

—मुं० २.१.४

सृष्टि की अग्नि उस प्रभु की मूर्धा है, सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं, दिशा श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, वायु प्राण है, पृथिवी पाद, अर्थात् पैर के समान हैं।

इस वचन में परमात्मा के मुखादि का वर्णन नहीं है, किन्तु उस भगवान् की बनाई इस विशाल सृष्टि में चाँद, सूर्य आदि नेत्र के समान है, पृथिवी चरण के समान है। इन प्रमाणों से परमात्मा के मुखादि कदापि सिद्ध नहीं होते।

अवतारवाद के सम्बन्ध में जो प्रमाण पक्ष तथा विपक्ष में उपस्थित किये जाते हैं। मैंने उन सबका विचार करके यह सिद्ध कर दिया है कि परमात्मा का अवतार नहीं होता।

इति

वैदिक भक्ति-स्तोत्र

॥ ओ३म् ॥

वैदिक भक्ति-स्तोत्र

[१]

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥

—ऋ० २।२६।३

पदार्थ—(**सः इत्**) वह निश्चय से (**जनेन विशा**) जन प्रजा (**जन्मना**) जन्म द्वारा (**सः पुत्रैः**) पुत्रों द्वारा (**धना नृभिः**) धन तथा नेताओं द्वारा (**वाजं भरते**) सफलता प्राप्त करता है (**देवानां यः पितरम् आविवासति**) देवताओं के पिता प्रभु की (**श्रद्धामनाः**) मन में श्रद्धा धारण करके (**ब्रह्मणस्पतिम्**) संसार के स्वामी परमेश्वर की (**हविषा**) श्रद्धा-भक्ति से उपासना करता है।

भावार्थ—भक्ति और आविवासति एकार्थवाले हैं। जो श्रद्धापूर्वक प्रभु की भक्ति करता है वह जन प्रजा, पुत्र, नेता, धनादि द्वारा सफलता तथा आनन्द पाता है।

[२]

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥

—ऋ० १।९४।१

पदार्थ—(**इमं स्तोमम्**) यह स्तुति-समूह (**अर्हते जातवेदसे**) पूजनीय वेदकर्त्ता के लिए है (**रथमिव सं महेमा मनीषया**) सुन्दर विमान रचनावत् बुद्धिपूर्वक आपकी महिमा गाते हैं। (**भद्रा हि नः**) हमारी कल्याणकारिणी (**प्रमतिः**) उत्कृष्ट बुद्धि (**अस्य संसदि**) भगवान् की सङ्गति से होगी (**अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव**) हे अग्ने! हम आपकी मित्रता में नष्ट न होवें।

भावार्थ—इस मन्त्र में चार बातें हैं—सब स्तुति पूजनीय भगवान् के लिए हैं। स्तुति प्रज्ञापूर्वक करनी चाहिए। प्रभु की सङ्गति में बुद्धि

...है। ईश भक्त की रक्षा करता है।

[३]

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।२

पदार्थ—(**यस्मै त्वमायजसे**) जिसपर तुम कृपा करते हो (**सः साधति अनर्वा**) वह शीघ्र सिद्ध करता है (**क्षेति**) जीता है (**दधते सुवीर्यम्**) उत्तम बल को धारण करता है। (**सः तूताव**) वह वृद्धि करता है (**नैनं अश्नोति अंहतिः**) उसको दरिद्रता प्राप्त नहीं होती। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—जिसपर भगवान् की कृपा होती है उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं। वह उत्तम जीवन धारण करता है। विद्या, आचार, धनादि को बढ़ाता है। उसको दरिद्रता, निर्धनता, कंगाली, प्राप्त नहीं होती। हे अग्ने! हम आपकी मित्रता में सर्वथा सर्वदा सुरक्षित रहें।

[४]

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदुक्तिभिः।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।५

पदार्थ—(**विशां गोपा**) प्रजारक्षक (**अस्य चरन्ति जन्तवः**) इसकी कृपा से जीव विचरते हैं। (**द्विपच्च यदुत चतुष्पदुक्तिभिः**) मनुष्य और पशु कर्ममार्ग अथवा रात्रि में जीवन धारण करते हैं (**चित्रः प्रकेतः**) अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाववाला प्रज्ञापक है (**उषसः महाँ असि**) वह सूर्य से भी महान् है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वह सब प्रजा, मनुष्य व पशुओं का रक्षक है अन्य मतों में केवल मनुष्यों को छोड़कर पशु-वध का विधान है, रात्रि में जब सोते हैं, तब भी वह रक्षा करता है। सूर्य की भाँति अन्धकार व दोषों को दूर करके उत्तम ज्ञान-ज्योति प्रदान करता है।

[५]

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।६

पदार्थ—(**त्वमध्वर्युः**) आप यज्ञ के नेता हैं (**होतासि पूर्व्यः**)

प्रथम दाता हैं (**प्रशास्ता पोता**) सुन्दर शिक्षक, पवित्र तथा पवित्र-कर्त्ता हैं (**जनुषा पुरोहितः**) सदा से जगत् के हितसाधक हैं (**विश्वा विद्वान्**) सर्वविद्यावेत्ता हैं। (**आर्त्विज्या धीर पुष्यसि**) हे धीर! आप ऋत्विजों के गुण-प्रकाशक कर्मों की रक्षा करते वा करवाते हो। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि वह प्रभु यज्ञ का नेता है। माता की गर्भावस्था से लेकर मरणपर्यन्त हमारा हितसाधक है। उत्तम शिक्षक, पवित्र तथा हमारे अन्तःकरण आदि की शुद्धि करनेवाला है। जो स्वयं पवित्र होता है, वही अन्यों को पवित्र कर सकता है। सर्वकर्म तथा विद्याओं का ज्ञाता है। अपने भक्तों के गुण-प्रकाशक कर्मों की वही रक्षा करता है।

[६]

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन् तळिदिवाति रोचसे।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।७

पदार्थ—(**यः विश्वतः सुप्रतीकः**) जो सुन्दर प्रतीति करानेवाला है (**सदृङ्ङसि**) सबको समानता से देखनेवाला (**दूरे चित्सन्**) हमारी अज्ञानता के कारण दूर होने पर भी (**तळिदिवाति रोचसे**) हमारे अन्तःकरणों में बिजली की भाँति प्रकाश करता है (**रात्र्याश्चिदन्धः**) जिसके ज्ञान के बिना रात्रि के अन्धकार तथा नेत्रहीन की तरह मनुष्य होता है (**अति देव पश्यसि**) हे देव! जहाँ हमारी दृष्टि नहीं जाती वहाँ भी आप देखते हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—सर्वप्रकारेण पक्षपात-रहित वह प्रभु अपने भक्तों को सब विज्ञानों की प्रतीति कराता है और बिजली की भाँति अन्तःकरण के ठहरते ही उसमें प्रकाश करता है। उसके ज्ञान के बिना रात्रि के अन्धकार के समान सब मनुष्य अन्धे होते हैं।

[७]

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा केचिदत्रिणः।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।९

पदार्थ—(**वधैर्दुःशंसान्**) दुष्ट शासकों को ताड़नाओं से दण्ड दीजिए (**अप दूढ्यो जहि**) दुष्ट बुद्धिवालों का सुधार व नाश कीजिए

(दूरे वा ये अन्ति वा) दूर वा समीप **(केचिदत्रिणः)** जो कोई सन्ताप देनेवाले हैं उनको भी दण्ड दीजिए **(अथ यज्ञाय)** और क्रियामय यज्ञ के लिए **(गृणते)** स्तुति करनेवाले के लिए **(सुगं कृधि)** जिन कर्मों से विद्या प्राप्त करते हैं उनको सुगम कीजिए। शेष पूर्ववत् ।

भावार्थ—हे भगवन्! प्रजा पर दुष्ट शासन करनेवाले तथा दुष्ट बुद्धिवाले और किसी की रक्षा न करनेवाले परापकारी पुरुष चाहे हमारे परिवार, समाज, देश आदि से दूर हों या अन्दर हों, दण्ड देकर उनका सुधार कीजिए और संसार की भलाई के लिए स्तुति करनेवाले जो आपके भक्तजन हैं उनके शुभकर्मों में सुगमता प्रदान कीजिए।

[८]

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।१२

पदार्थ—**(अयम्)** यह **(मित्रस्य वरुणस्य)** मित्र तथा श्रेष्ठ पुरुष की **(धायसे)** पालन या रक्षा के लिए **(अवयातां मरुताम्)** धर्मविरोधी मनुष्यों का **(हेळः अद्भुतः)** आश्चर्ययुक्त अनादर है **(मृळा सु नो भूतु)** हमको आनन्द दीजिए **(एषां मनः पुनः)** इन भद्र पुरुषों के मन को बार-बार प्रसन्नता प्रदान कीजिए। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—मैत्री करनेवाले तथा श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा के लिए जो दुष्ट पुरुषों को भगवान् दण्ड देते हैं उसका आकार-प्रकार विलक्षण होता है। वह साधारण पुरुषों की बुद्धि में नहीं आता और जो श्रेष्ठ पुरुषों का रक्षण तथा उनके अन्तःकरण में प्रभु आनन्द की जो वर्षा करते हैं उसका प्रकार भी विलक्षण ही होता है, जो साधारण पुरुषों की बुद्धि में नहीं आता।

[९]

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।१३

पदार्थ—हे प्रभो! **(देवो देवानामसि)** देवों के देव हो **(मित्रो अद्भुत)** बहुसुखकारी, सर्वदुःखविनाशक, आश्चर्य गुण-कर्म-

स्वभाववाले हो (**वसुर्वसूनामसि**) बसनेवाले वा बसानेवालों के बसानेवाले हो (**चारुरध्वरे**) यज्ञ में श्रेष्ठ हो (**शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे**) अपने विस्तृत श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव से युक्त उत्तम सुख में हमको पहुँचाइए। शेष पूर्ववत् ।

भावार्थ—हे प्रभो! आप देवों के देव हो, वसुओं के वसु हो, अद्भुत मित्र हो, यज्ञों में उत्तम हो, आप अपनी कृपा से हमें श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव से मिलनेवाले अपने आनन्द से युक्त कीजिए।

[१०]

तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

—ऋ० १।९४।१४

पदार्थ—(**तत्ते भद्रम्**) वह कल्याण करनेवाला (**यत्समिद्धः**) जो प्रकाशयुक्त है (**स्वे दमे**) जो आपके स्वरूप में विद्यमान है (**सोमाहुतः**) आप अपने शान्ति आदि गुणों से ही (**जरसे**) पूजे जाते हैं। आप (**मृळयत्तमः**) अत्यन्त सुखकारक हो (**दधासि रत्नम्**) रत्नों को प्रदान करते हो (**द्रविणं च दाशुषे**) चक्रवर्ती राज्यादि की सिद्धि करनेवाले धन को प्रदान करते हो। उस आपके सुन्दर शील को हम न त्यागें। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु को उसके गुणों के कारण ही पुकारते हैं। संसार का मङ्गल साधन ही उसका शील है। वह प्रभु अत्यन्त सुखकारक है, अपनी कृपा से अपने भक्तों को रत्न, धनादि प्रदान करते हैं। उस भगवान् के शील को हम कभी न त्यागें।

[११]

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो ऽनागास्त्वमदिते सर्वताता।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम॥

—ऋ० १।९४।१५

पदार्थ—(**यस्मै त्वम्**) जिसके लिए तुम (**सुद्रविणः ददाशः**) सुन्दर धन देते हो (**अनागास्त्वमदिते**) हे अखण्डनीय पापरहित प्रभो! (**सर्वताता**) सब व्यवहारों में (**यं भद्रेण**) जिसको सुखकारक (**शवसा**) शारीरिक और आत्मिक बल से (**चोदयासि**) संयुक्त वा प्रेरित करते हो (**प्रजावता राधसा**) सुन्दर प्रजा से युक्त विद्या-सुवर्णादि धन के साथ (**ते स्याम**) आपकी आज्ञा में वर्त्तमान रहें।

हैं, जिन्होंने वेद का ज्ञान देकर संसार को ज्ञान के प्रकाश से युक्त किया। जो संसार के आदिदेव विद्वान् थे उनको भी ज्ञान देनेवाले मङ्गलमय सखा आप ही हैं। आपकी आज्ञा में चलनेवाले कर्मठ विद्वान् होते हैं।

[१४]

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे॥

—ऋ० १।३१।२

पदार्थ—(**त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तम**) परमात्मा ही जीवों के लिए सर्वश्रेष्ठ जीवनदाता है (**कविः**) क्रान्तदर्शी (**देवानां परि भूषसि व्रतम्**) विद्वानों के व्रतों को अलंकृत करनेवाला है (**विभुः**) सर्वव्यापक (**विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः**) सब संसार के लिए सब पदार्थों का दाता है (**द्विमाता**) प्रकाशवाले और अप्रकाशवाले लोकों का निर्माता है (**शयुः**) प्रलय काल में सब भूतों को सुलानेवाला है (**कतिधा चिदायवे**) वह अनेक प्रकार से मनुष्यों के लिए विविध पदार्थ देता है।

भावार्थ—परमात्मा प्राणों से भी अधिक प्रिय है। ऋषि-महर्षियों के व्रतों को वही सुन्दर बनाता है। संसार के भिन्न-भिन्न जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनादि पदार्थ देता है, पृथिवी आदि अप्रकाशित तथा सूर्यादि प्रकाशयुक्त लोकों का निर्माता व प्रलय-कर्त्ता है। वह किस-किस प्रकार से जीवों की रक्षा करता है, यह जानना जीवों के लिए कठिन है।

[१५]

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे।
यःशूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः॥

—ऋ० १।३१।६

पदार्थ—(**त्वमग्ने**) हे प्रभो! आप (**वृजिनवर्तनिं नरम्**) पशुबल से युक्त मनुष्य को (**सक्मन्पिपर्षि**) हे शक्तिशालिन्! पालना करते हो (**विदथे विचर्षणे**) हे यथार्थ द्रष्टः! संग्रामों में (**यः शूरसाता**) आप शत्रुओं का संहार कर देते हो। (**परितक्म्ये धने**) सुवर्ण, विद्या, चक्रवर्ती राज्यादियुक्त द्रव्यों में (**दभ्रेभिश्चित्**) थोड़े साधनों से भी (**समृता**) सत्य कर्मों की रक्षा करते हो (**हंसि भूयसः**) और बहुत साधनोंवालों को नष्ट कर देते हो।

हैं, जिन्होंने वेद का ज्ञान देकर संसार को ज्ञान के प्रकाश से युक्त किया। जो संसार के आदिदेव विद्वान् थे उनको भी ज्ञान देनेवाले मङ्गलमय सखा आप ही हैं। आपकी आज्ञा में चलनेवाले कर्मठ विद्वान् होते हैं।

[१४]

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे॥

—ऋ० १।३१।२

पदार्थ—(**त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तम**) परमात्मा ही जीवों के लिए सर्वश्रेष्ठ जीवनदाता है (**कविः**) क्रान्तदर्शी (**देवानां परि भूषसि व्रतम्**) विद्वानों के व्रतों को अलंकृत करनेवाला है (**विभुः**) सर्वव्यापक (**विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः**) सब संसार के लिए सब पदार्थों का दाता है (**द्विमाता**) प्रकाशवाले और अप्रकाशवाले लोकों का निर्माता है (**शयुः**) प्रलय काल में सब भूतों को सुलानेवाला है (**कतिधा चिदायवे**) वह अनेक प्रकार से मनुष्यों के लिए विविध पदार्थ देता है।

भावार्थ—परमात्मा प्राणों से भी अधिक प्रिय है। ऋषि-महर्षियों के व्रतों को वही सुन्दर बनाता है। संसार के भिन्न-भिन्न जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनादि पदार्थ देता है, पृथिवी आदि अप्रकाशित तथा सूर्यादि प्रकाशयुक्त लोकों का निर्माता व प्रलय-कर्त्ता है। वह किस-किस प्रकार से जीवों की रक्षा करता है, यह जानना जीवों के लिए कठिन है।

[१५]

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः॥

—ऋ० १।३१।६

पदार्थ—(**त्वमग्ने**) हे प्रभो! आप (**वृजिनवर्तनिं नरम्**) पशुबल से युक्त मनुष्य को (**सक्मन्पिपर्षि**) हे शक्तिशालिन्! पालना करते हो (**विदथे विचर्षणे**) हे यथार्थ द्रष्टः! संग्रामों में (**यः शूरसाता**) आप शत्रुओं का संहार कर देते हो। (**परितक्म्ये धने**) थोड़े सुवर्ण, विद्या, चक्रवर्ती राज्यादियुक्त द्रव्यों में (**दभ्रेभिश्चित्**) थोड़े साधनों से भी (**समृता**) सत्य कर्मों की रक्षा करते हो (**हंसि भूयसः**) और बहुत साधनोंवालों को नष्ट कर देते हो।

य ईश्वराज्ञायां वर्त्तमाना धर्मात्मानोऽल्पैरपि युद्धसाधनैर्युद्धं कर्तुं प्रवर्तन्ते तेभ्यो विजयं ददाति नेतरेषाम्।

भावार्थ—परमेश्वर बलयुक्त बहुत साधनयुक्त पापियों को भी नष्ट कर देता है और अल्प साधनों से युक्त भी धर्मात्माओं को युद्ध में विजय देता है। सत्य कर्मों की रक्षा करता है, **यतो धर्मस्ततो जयः**। कौरव-पाण्डवों का संग्राम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

[१६]

त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये॥

—ऋ० १।३१।७

पदार्थ—(**त्वं तमग्ने**) हे ईश्वर! आप (**मर्तम्**) धर्मात्मा मनुष्य को (**उत्तमे अमृतत्वे**) मुक्तिपद में (**दधासि**) पहुँचाते हैं (**श्रवसे दिवेदिवे**) जो श्रवण के योग्य है उसके लिए प्रतिदिन (**यस्तातृषाणः**) जो प्रभु के लिए अत्यन्त प्यासा है उसके लिए (**उभयाय जन्मने**) दोनों जन्मों में (**मयः कृणोषि**) सुख देते हो (**प्रयः आ च सूरये**) और विद्वानों के लिए भी सुख देते हो।

भावार्थ—जो प्रतिदिन परमात्मा के लिए अत्यन्त पिपासु होकर स्मरण आदि में मन को लगाता है उसको भगवान् मुक्तिपद पर पहुँचाते हैं, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान और भावी तीन जन्म ये हैं और चतुर्थ जन्म विद्या और आचार्य के द्वारा होता है। ये चारों मिलकर एक जन्म है। दूसरा जन्म मुक्ति के पश्चात् होता है। इन दोनों जन्मों में भगवान् ही जीव का कल्याण करता है और यह जन्म-व्यवस्था परमेश्वर के अधीन है।

[१७]

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः॥

—ऋ० १।३१।८

पदार्थ—(**त्वं नो अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप! (**सनये धनानां**) विद्या, सुवर्ण, चक्रवर्ती राज्यादि प्रसिद्ध धनों को बाँटने के लिए (**यशसं कारुं कृणुहि**) यशस्वी उत्तम कर्म करनेवाले उत्पन्न करो (**स्तवानः ऋध्याम**) वह स्तुति करता हुआ हमें बढ़ावे (**कर्मापसा नवेन**) नूतन कर्मों के द्वारा (**देवैः**) विद्वानों के साथ वर्त्तमान

(**द्यावापृथिवी प्रावतं नः**) द्युलोक और पृथिवी लोक के ज्ञान से हमें अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त करे।

भावार्थ—आज संसार में पूंजीपति तथा मजदूरों के कलह ने उग्र रूप धारण कर रखा है और इसका कारण पृथिवी व खनिज पदार्थ आदि का विभाग ही है, अतः इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हममें धनों को बाँटने के लिए प्रभुकृपा से ऐसा भक्त उत्पन्न हो जो नवीन-नवीन कर्मों से प्रत्येक प्राणी को युक्त करता हुआ प्रत्येक प्राणी को समृद्ध बना देवे।

[१८]

त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे॥

—ऋ० १।३१।९

पदार्थ—(**त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थे**) हे परमेश्वर! आप ऐसे माता-पिता दीजिए (**आ देवो देवेषु**) जो दिव्य गुण से युक्त हों (**अनवद्य जागृविः**) हे अनिन्दनीय जागनेवाले! (**तनूकृद् बोधि**) हे शरीरों के रचनेवाले! हमें जगाओ (**प्रमतिश्च कारवे**) स्तुति करनेवाले के लिए बुद्धि प्रदान करो (**त्वं कल्याण वसु**) हे मङ्गल करनेवाले! मेरे सच्चे धन! मेरे हृदय में (**विश्वम् ओपिषे**) सम्पूर्ण गुणों के बीज को बो दीजिए।

भावार्थ—इस मन्त्र में भगवान् से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवान्! आप हमको विद्वान् माता-पिताओं के द्वारा जन्म प्रदान कीजिए ताकि हम सुगमता से विद्वान् बन सकें। आप पापरहित और जागनेवाले हैं। हमें निष्पाप और जागनेवाला बनाइए। आप सबका मङ्गल करनेवाले हैं। हम आप जैसे सच्चे धन को कदापि न त्यागें, आप हमारे आत्मा के अन्दर सम्पूर्ण शुभ गुण-कर्म-स्वभाव के बीजों को बो दीजिए।

[१९]

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्त्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य॥

—ऋ० १।३१।१०

पदार्थ—(**त्वमग्ने प्रमतिः**) हे अग्ने आप हमारी बुद्धि हैं (**त्वं पितासि नः**) आप ही हमारे पिता हैं (**त्वं वयस्कृत्**) आप ही विद्या

सुखयुक्त आयु=जीवन को देनेवाले हैं (यो वयोवृद्धावस्थापर्यन्तं विद्यासुखयुक्तमायुः करोति सः) **(तव जामयो वयम्)** हम तो आपके छोटे बच्चे हैं **(सं त्वा रायः)** तुझ सर्वपालक को पाकर धनों को प्राप्त होते हैं **(शतिनः सं सहस्रिणः)** असंख्य विद्या, कर्म को रखनेवाले **(सुवीरं यन्ति)** सुन्दर वीरों को देनेवाले **(व्रतपामदाभ्य)** हे न दबनेवाले! व्रतपालक! हम तुझको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—तुम्हीं हमारी मति हो, तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं सुन्दर आयु के देनेवाले हो, हम तो आपके छोटे-छोटे बच्चे हैं। तुम्हारी कृपा से ही धर्मयुक्त धन प्राप्त होता है। अनन्त धन, विद्या, बल, के रखनेवाले भी तुम्हारी शरण में आते हैं। प्रभु को संसार की कोई भी शक्ति नहीं दबा सकती। इस मन्त्र से बुद्धि आदि के सब अहंकार दूर हो जाते हैं।

[२०]

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम्।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते॥

—ऋ० १।३१।११

पदार्थ—**(त्वामग्ने प्रथमम् आयुम् आयवे)** हे अग्ने! आपको ही मनुष्य के लिए सर्वोत्तम जीवन व ज्ञान **(देवा अकृण्वन्)** विद्वानों ने बतलाया है **(नहुषस्य विश्पतिं)** आप ही मनुष्य व प्रजा के सच्चे पालक हैं **(इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीम्)** आपने ही मनुष्य के शासन के लिए वेदचतुष्टयी वाणी की रचना की है **(पितुर्यत्पुत्रः)** जैसे पिता से पिता को पवित्र करनेवाला पुत्र उत्पन्न होता है **(ममकस्य जायते)** वैसे ही मुझ-जैसे के श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होता है।

भावार्थ—इस मन्त्र में यह वर्णन किया है कि परमात्मा ही हमारा सच्चा जीवन वा सच्चा ज्ञान है। यदि प्रभु को त्याग दिया तो जीवन व ज्ञान निरर्थक व घातक हो जाएँगे। उसी ने अपनी कृपा से सृष्टि के आदि में वेदचतुष्टयी—सुन्दर वाणी प्रदान की।

[२१]

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते॥

—ऋ० १।३१।१२

पदार्थ—**(त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिः)** हे प्रकाशमान देव!

अपनी रक्षाओं से **(मघोनः रक्ष)** श्रेष्ठ विद्यादि धनों से युक्तों की रक्षा कीजिए **(तन्वश्च वन्द्य)** हे वन्दनीय! शरीरों को भी **(त्राता तोकस्य तनये गवामसि)** लघु पुत्र, विद्या के लिए प्रवृत्त पुत्र वा इन्द्रिय गौ आदि की **(अनिमेषं रक्षामाणः)** प्रतिक्षण रक्षा कीजिए **(तव व्रते)** हम सदा आपके व्रत में चलें।

भावार्थ—हे देव! आप अपनी रक्षाओं द्वारा धर्मात्मा, दानी, धनाढ्यों की रक्षा कीजिए और हमारे शरीर, छोटे-बड़े सन्तान, पशु, इन्द्रिय इनकी भी रक्षा कीजिए। इस मन्त्र में "**अनिमेषं रक्षमाणः**" महत्त्व के शब्द हैं। भगवान् एक क्षण के लिए भी हमारी रक्षा से विमुख नहीं होते। मनुष्य को रात-दिन में पद-पद पर मृत्यु का सामना है। प्रभु की अपार कृपा से ही मनुष्य सुरक्षित और जीवित है।

[२२]

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः॥

—ऋ० १।३१।१५

पदार्थ—**(त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरम्)** हे अग्ने! आप दक्षिणा देनेवाले भक्त के **(वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः)** जैसे संग्राम में कवच शूरवीर की रक्षा करता है वैसे प्रत्येक प्रकार से रक्षा करते हो **(स्वादुक्षद्मा)** आप सुन्दर अन्न वा जलों के देनेवाले हो **(वसतौ स्योनकृत्)** जो बस्तियों में सुख का सञ्चार करता है **(जीवयाजं यजते)** जो जीवों को धर्म का उपदेश करवाता है और यज्ञ करता है **(सोपमा दिवः)** उनके लिए आप सूर्य के समान प्रकाशक हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञादि में दक्षिणा प्रदान करता है उसकी भगवान् प्रत्येक प्रकार से वैसे ही रक्षा करते हैं जैसे संग्राम में योद्धाओं की कवच रक्षा करता है। उत्तम-से-उत्तम भोजन भगवान् ने मनुष्यों के लिए पैदा किये हैं। यह उसकी महती कृपा है। जो व्यक्ति संसार को सुख देता है, यज्ञ करता है, यज्ञ करवाता है, उसको भगवान् सूर्य के समान प्रकाश प्रदान करते हैं।

[२३]

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्॥

—ऋ० १।३१।१६

पदार्थ—(इमामग्ने शरणिं) हे भगवन्! हमारी अविद्या का **(मीमृष)** निवारण कीजिए **(नः इममध्वानम्)** और हमारे लिए धर्म मार्ग को **(यमगाम दूरात्)** दूर से भी प्राप्त कराइए **(आपिः पिता प्रमतिः)** आप प्रीति से प्राप्त होनेवाले पिता और उत्कृष्ट मति हैं **(सोम्यानां भृमिः)** शान्तों को गतिदायक **(ऋषिकृन्मर्त्यानाम्)** अपनी कृपा से मनुष्यों को मन्त्रार्थ द्रष्टा बनाते हैं।

यदा मनुष्याः सत्यभावेन सन्मार्गं प्राप्तुमिच्छन्ति तदा जगदीश्वरस्तेषां सत्पुरुषसङ्गाय प्रीतिं जिज्ञासे जनयति ततस्ते श्रद्धालवः सन्तोऽतिदूरेपि वसत आप्तान् योगिनो विदुष उपसङ्गम्याभीष्टं बोधं प्राप्य धार्मिका जायन्ते।

भावार्थ—जब मनुष्य सत्य भाव से सन्मार्ग को प्राप्त करना चाहते हैं तब भगवान् सत्पुरुषों की सङ्गति के लिए उनमें प्रीति और जिज्ञासा पैदा करते हैं, तब वे श्रद्धालु भक्त अति दूर निवास करते हुए भी योगी विद्वानों को प्राप्त करके उनसे अभीष्ट बोध पाकर धर्मात्मा हो जाते हैं।

[२४]

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥

—ऋ० १।१०१।३

पदार्थ—(यस्य द्यावापृथिवी) जिसका द्युलोक और पृथिवी-लोक **(पौंस्यं महत्)** महाबल है **(यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः)** जिसके शील और सामर्थ्य में चन्द्रमा और सूर्य कार्य करते हैं **(यस्येन्द्रस्य)** जिस आनन्ददायक के शासन में **(सिन्धवः सश्चति व्रतम्)** सागर कार्य करते हैं **(मरुत्वन्तम्)** सब प्राणियों से तथा ऋत्विजों से युक्त प्रभु को **(सख्याय हवामहे)** मित्रता वा मित्र-कर्मों के लिए स्वीकार करते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्र में चार बातों का वर्णन है। मनुष्य अपने धनादि बल पर अहंकार करता है, पर प्रभु का बल देखो समस्त पदार्थयुक्त द्योलक और पृथिवीलोक उसका महाबल है। मनुष्य अपने शासन का अहंकार करता है, किन्तु सूर्य और चन्द्र लोक भी उसके शासन में कार्य करते हैं और समुद्र जैसा अतुल सम्पत्तिवाला भण्डार भी उसकी आज्ञा में रहता है, ऐसे सर्वप्राणिपालक से हम मैत्री करें।

[२५]

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

—ऋ० १।१०१।४

पदार्थ—(**यो अश्वानां यो गवाम्**) जो घोड़ों का और गौओं का (**गपोतिर्वशी**) स्वामी तथा वश में करनेवाला है (**य आरितः**) जो नम्रता से प्रार्थना करने पर (**कर्मणिकर्मणि स्थिरः**) प्रत्येक कर्म में विद्यमान होकर रक्षा करता है (**वीळोश्चिदिन्द्रः**) जो अत्याचारी बलवानों का (**यो असुन्वतो वध**) यज्ञ-विरोधियों का वध तथा दण्ड दाता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वही भगवान् अश्व, गौ तथा इन्द्रिय, पृथिवी आदि का स्वामी व वश में रखनेवाला है। जब भक्त उससे सच्चे हृदय से विनयपूर्वक प्रार्थना करता है तब भगवान् भक्त के प्रत्येक कर्म में वर्त्तमान होता हुआ सहायकारी व रक्षक होता है। ऋषि दयानन्द आदि ने जो मनुष्य-शक्ति से बढ़कर कार्य किये हैं, वे प्रभु की ही सहायता से किये हैं। प्रभु जहाँ भक्तों के सहायक हैं वहाँ अत्यन्त बलवान् धर्म और यज्ञविरोधी दुष्टों के लिए दण्डदाता भी हैं।

[२६]

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

—ऋ० १।१०१।५

पदार्थ—(**यो विश्वस्य जगतः**) जो सम्पूर्ण जीवित संसार का (**प्राणतस्पतिः**) प्राणपति है (**यो ब्रह्मणे प्रथमः**) जो सबसे प्रथम (**गाः अविन्दत्**) ऋषियों को वेद का ज्ञान देता है (**इन्द्रो यः**) जो आनन्ददाता (**दस्यूँरधराँ अवातिरत्**) सहसा पर-पदार्थ हरनेवाले दुष्टों का दण्डदाता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—जो सम्पूर्ण चेतनायुक्त संसार के प्राणों का दाता वा सञ्चालक है, जिसने सृष्टि के आरम्भ में जब कोई ज्ञान नहीं था तब संसार को वेदरूपी ज्ञान के आलोक से आलोकित किया, जो अन्यायपूर्वक दूसरों के द्रव्यों का हरण करनेवाले दुष्टों को नीच योनियों में पहुँचाता है, उस प्रभु को हम मित्रता के लिए स्वीकार करते हैं।

[२७]

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुतवन्तं सख्याय हवामहे॥

—ऋ० १। १०१। ६

पदार्थ—(**यः शूरेभिर्हव्यः**) जिसको शूरवीर पुकारते हैं (**यश्च भीरुभिः**) जिसको कायर पुकारते हैं (**यो धावद्भिर्हूयते**) जिसको भगोड़े पुकारते हैं (**यश्च जिग्युभिः**) जिसको जीतनेवाले व हारनेवाले पुकारते हैं, (**इन्द्रं यं विश्वा भुवनानि सन्दधुः**) जिस भगवान् को सम्पूर्ण संसार धारण करता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—परमेश्वर को शूरवीर इसलिए पुकारते हैं कि उनका बल बना रहे, कायर इसलिए पुकारते हैं कि उनकी रक्षा हो, भागनेवाले इसलिए पुकारते हैं कि उनको पीठ-पीछे से कोई न मार डाले, जीतनेवाले इसलिए पुकारते हैं कि उनका जीता हुआ पदार्थ सुरक्षित रहे, हारनेवाले इसलिए पुकारते हैं कि उनका छिना हुआ पदार्थ पुनः प्राप्त हो जावे। प्रभु को छोड़कर ऐसा संसार में कोई विलक्षण पदार्थ नहीं जिसको सब चाहते हों।

[२८]

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः॥

—ऋ० २। १३। ३

पदार्थ—(**अन्वेको वदति**) जो अकेला ही वेदोपदेश देता है (**यद्ददाति**) जो एकाकी सब संसार के पदार्थों का दान देता है (**तद्रूपा मिनन्**) जो संसार के पदार्थों के संयोग-वियोग से सुन्दर संसार की रचना करता है (**तदपा एक ईयते**) जो विलक्षण कर्मवाला अकेला प्राप्त होता है, किसी रसूल की आवश्यकता नहीं (**विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते**) जो संसार के सम्पूर्ण अपवादों को सहन करता है (**यस्ताकृणोः**) जो संसार की सब वस्तुओं को उत्पन्न करता है (**प्रथमं सास्युक्थ्यः**) वही सर्वोत्तम प्रशंसा के योग्य है।

भावार्थ—भगवान् किसी की सहायता के विना वेद का ज्ञान देता है, अकेला ही विविध पदार्थों का दान करता है और उनकी सुन्दर व विलक्षण रचना भी करता है और अकेला ही ध्यानादि से प्राप्त होता है और संसार के दुर्वचन और दुष्ट कार्यों को सहन करता है। उसको दूसरे पैगम्बर वा रसूल की आवश्यकता नहीं।

[२९]

अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः॥
—ऋ० २।१३।५

पदार्थ—(**अधाकृणोः पृथिवीम्**) जिसने पृथिवी को नीचे हमारे आधार के लिए निर्मित किया है (**संदृशे दिवे**) ताकि हम सूर्यादि का भली प्रकार अवलोकन कर सकें (**यो धौतीनामहिहन्**) जिस मेघहन्ता ने नद-नदियों के बहने के लिए (**अरिणक् पथः**) सुन्दर मार्गों का निर्माण किया है (**तं त्वा देवं स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनम्**) उस तुझ देव को प्रेममय स्तुतियों के द्वारा (**देवा अजनन्**) विद्वान् लोग प्रकट करते हैं (**सास्युक्थ्यः**) वही आप हमारे पूजनीय हैं।

भावार्थ—जिसने भूमि का निर्माण हमारे आधार के लिए किया है ताकि हम उसपर चल-फिर सकें और सूर्यादि की विद्या को भली प्रकार जान सकें, जिसने सहस्रों नदियों के मार्गों को अलग-अलग और विलक्षण ढंग से बानाया है उसको अत्यन्त प्रेममय वचनों के द्वारा विद्वान् लोग प्रकट करते हैं।

[३०]

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद् दोहिथ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः॥
—ऋ० २।१३।६

पदार्थ—(**यो भोजनं च दयसे**) जो सब मनुष्यों को दया से भोजन प्रदान करता है (**च वर्धनम्**) और सबको वृद्धि व उन्नति देता है (**आर्द्रादा शुष्कम्**) अत्यन्त स्नेह से शुष्क हृदय को (**मधुमद दुदोहिथ**) बहुत मधुरतायुक्त बना देता है (**सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति**) उसी ने सूर्य में सुन्दर कोष स्थापित किया है (**विश्वस्यैक ईशिषे**) जो अकेला ही सम्पूर्ण संसार पर शासन करता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—जो संसार के प्राणियों को सहस्रों प्रकार के भोजन देता है, जो मनुष्य की शक्ति से बाहर है और अलग-अलग पदार्थों को भिन्न-भिन्न प्रकार से बढ़ाता है, जिसकी शरण में जाने से अत्यन्त सूखे हृदय भी सरस हो जाते हैं, जिसने संसार को जीवन प्रदान करने के लिए सूर्य में विलक्षण प्राण-शक्ति की स्थापना की है, जो बिना

किसी की सहायता के संसार का प्रबन्ध व शासन कर रहा है, वही सर्वोत्तम प्रशंसा के योग्य है।

[३१]

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाऽधि दाने व्यवनीरधारयः।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः॥

—ऋ० २।१३।७

पदार्थ—(यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च) जिसने पुष्पोंवाली, फलोंवाली ओषधियों का निर्माण किया है **(धर्मणाधि दाने)** धर्म के द्वारा दान देने के लिए **(व्यवनीरधारयः)** अलग-अलग स्वभाव, भिन्न-भिन्न गुण, पृथक्-पृथक् उत्पादक शक्ति से युक्त और अलग-अलग पदार्थों को धारण करनेवाली अलग-अलग आकृति, नाना रूपोंवाली भूमियों को उत्पन्न किया है **(यश्चासमा अजनः)** जिसने असमान **(दिद्युतो दिवः)** विद्युत् आदि पदार्थों को उत्पन्न किया है **(उरुरूवान् अभितः)** अविनाशी बहुशक्ति को धारण करते हुए भी नश्वर पदार्थों को उत्पन्न किया। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—उस प्रभु ने अलग-अलग आकृति व रूपवाले विलक्षण पुष्प व फलों के देनेवाली ओषधियों का निर्माण किया है, वैसे ही भिन्न-भिन्न उत्पादन शक्ति, विलक्षण रूपादि से युक्त भूमियों का निर्माण किया है। यह उस भगवान् की विचित्र महिमा है कि सजातीय तथा विजातीय पदार्थों से अलग प्रत्येक पदार्थ अपनी सत्ता रखता है।

[३२]

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः॥

—ऋ० २।१३।११

पदार्थ—(सुप्रवाचनम्) प्रवचन के योग्य **(तव वीर वीर्यं)** हे वीर! तुम्हारा पराक्रम है। **(यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु)** जो एक ही प्रभु के विश्वास से तुम धन को प्राप्त करते हो **(जातूष्ठिरस्य)** जब कभी अन्तःकरण स्थिर होता है **(प्रवयः सहस्वतः)** तब विज्ञान का प्रकाश होता है **(या चकर्थ)** उसके सहाय से सब कर्म करता है।

भावार्थ—जो एक प्रभु पर विश्वास करता है उसका जीवन अत्यन्त उत्तम मनुष्यों के अध्ययन-अध्यापन के योग्य होता है। ईश्वर की सहायता से वह विज्ञान को पाकर उत्तम कर्म करता है तथा उसी प्रभु की सहायता से दैवी सम्पत्ति को पाता है।

[३३]

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

—ऋ० २।१३।१३

पदार्थ—(**अस्मभ्यं तद्वसो**) हे वसो! हमारे लिए (**दानाय राधः समर्थयस्व**) दान के लिए धनों को समर्थ कीजिए (**बहु ते वसव्यम्**) हे धनेश! आपका धन बहुत है। (**इन्द्र यच्चित्रं**) हे आनन्ददायक! आपका धन अद्‌भुत है (**श्रवस्या अनु द्यून्**) आपकी कृपा से सुनने के योग्य प्रकाशों को प्राप्त करें।

भावार्थ—हे परेश! हमारे धनों को आप समर्थ कीजिए ताकि हम पर्याप्त दान कर सकें। नाथ! आपका धन बहुत है तथा विचित्र है। आप हमको वह प्रकाश प्रदान कीजिए जो कीर्तन के योग्य हो। रामचन्द्रादि महापुरुषों के जिन गुणों का हम कीर्तन करते हैं वे उन्हें आपकी कृपा से मिले थे।

[३४]

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः॥

—ऋ० २।३३।१

पदार्थ—(**आ ते पितः**) हे पालक! आपकी कृपा से (**मरुतां सुम्नमेतु**) मनुष्यों को सुख प्राप्त हो (**मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः**) सूर्य के तुल्य जो ज्ञान का प्रकाश है वह हमसे दूर न हो (**अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत**) आपकी कृपा से हमारे वीर अश्वारोही बनें (**प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः**) हे रुद्र! आपकी कृपा से हम सुन्दर प्रजाओं से सम्पन्न हों।

भावार्थ—इस मन्त्र में भगवान् से चार प्रार्थनाएँ की गई हैं—आपकी कृपा से मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त हो, आपका सूर्य तुल्य ज्ञानरूपी प्रकाश हमसे पृथक् न हो, हमारे वीर विमान व अश्वादि के सञ्चालन में समर्थ हों, हम सुशिक्षित उत्तम प्रजाओं से सम्पन्न हों। यह सब आपकी ही कृपा से हो सकता है।

[३५]

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि॥

—ऋ० २।३३।४

पदार्थ—(**मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा**) हे रुद्र! (**नमोभिः**) अभिमानों द्वारा (**मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती**) दुष्ट स्तुति द्वारा तथा अपने आपको आपके समान बतलाकर हम आपको कुपित न करें। हे प्रभो! (**उन्नो वीरान् अर्पय**) हमें बलवान् वीर दीजिए (**भेषजेभिः**) ओषधियों द्वारा हमारे रोगों को दूर कीजिए (**भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि**) आप वैद्यों में वैद्यशिरोमणि हैं, ऐसा मैं सुनता हूँ।

भावार्थ—भगवान् अहंकारी, दुष्ट स्तुति करनेवाले और अपने आपको प्रभु के समान समझनेवाले पर कुपित होते हैं। प्रभु प्रसन्न होकर जहाँ हमको बलिष्ठ वीर देते हैं, वहाँ रोग-निवारणार्थ औषध भी प्रदान करते हैं। जिस रोग को वैद्य लोग असाध्य कहकर छोड़ देते हैं उसको दूर करने में प्रभु ही समर्थ होते हैं।

[३६]

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम्॥

—ऋ० २।३३।६

पदार्थ—(**उन्मा ममन्द वृषभः**) हे बलिष्ठ! हमको आनन्दित कीजिए (**मरुत्वान्त्वक्षीयसा**) प्रजावान् दीप्ति द्वारा (**वयसा नाधमानम्**) और जीवन द्वारा आपकी याचना करते हुए मुझको (**घृणीव च्छायामरपा अशीया**) सूर्य के समान प्रकाश से युक्त घर दीजिए और मैं पापों से रहित बनूँ (**आ विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम्**) मैं आपके आनन्द को प्राप्त होऊँ।

भावार्थ—भगवन्! हमको आनन्दित कीजिए। हमसे चिन्तादि दोष नष्ट हों। प्रदीप्त आयु से युक्त भी मैं सदा आपकी याचना करूँ। सूर्य की भाँति प्रकाशयुक्त घर में पाप-रहित होकर आपके अनुग्रह से निवास करूँ। सच्चा आनन्द आपसे ही हमको प्राप्त हो सकता है।

[३७]

क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः॥

—ऋ० २।३३।७

पदार्थ—(**क्व स्य ते रुद्र**) हे रुद्र वह तेरा हाथ कहाँ है? (**मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति**) जो सुख देनेवाला कृपा का हाथ है (**भेषजो जलाषः**) आप सुख देनेवाले वैद्य हैं। (**अपभर्ता रपसः**)

पापों को दूर करनेवाले हैं, **(दैव्यस्य अभी नु)** और दिव्य गुणों से युक्त करनेवाले हैं **(मा वृषभ चक्षमीथाः)** हे बलिष्ठ! मुझको सहन कीजिए।

भावार्थ—इस मन्त्र में भक्त के उद्गारों का वर्णन है। हे रुद्र! आपका सुख देनेवाला कृपालु हाथ कहाँ है ? हमें स्वार्थवश सांसारिक वैद्यों द्वारा दुःख मिल सकता है, परन्तु आप सदा सुख देनेवाले वैद्य हैं। जहाँ आप शारीरिक रोगों को दूर करते हैं वहाँ मानसिक पापरूपी रोगों का भी निवारण करते हैं। जहाँ मेरे माता-पिता, आचार्य मेरे अपराधों को सहन नहीं कर सकते वहाँ आप मेरे सब अपराधों को सहते हुए दण्ड द्वारा मेरा सुधार करते हैं।

[३८]

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम॥

—ऋ० २।३३।८

पदार्थ—**(प्र बभ्रवे वृषभाय)** धारण करनेवाले श्रेष्ठ के लिए **(श्वितीचे महः)** शुद्ध महान् के लिए **(महीं सुष्टुतिमीरयामि)** महास्तुति करता हूँ **(नमस्या कल्मलीकिनम्)** प्रकाशमान् को **(नमोभिर्गृणीमसि)** नमस्कारों द्वारा ग्रहण करता हूँ **(त्वेषं रुद्रस्य नाम)** प्रकाशयुक्त रुद्र के नाम का बार-बार स्मरण करता हूँ।

भावार्थ—सबको धारण करनेवाले बलवान् महान् प्रभु की स्तुति करता वा करवाता हूँ। उस प्रकाशमान् प्रभु के प्रकाशमान् नाम का बार-बार स्मरण करता हूँ। उस अग्राह्य को कोई हाथों से पकड़ नहीं सकता। अदृश्य को भौतिक आँखों से देख नहीं सकता, इसलिए नमस्कारों द्वारा व नामस्मरण द्वारा ही उसको ग्रहण कर सकते हैं।

[३९]

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम्॥

—ऋ० २।३३।९

पदार्थ—**(स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप)** हे सुन्दर रूपयुक्त! दृढ़ अङ्गोंवाले! **(उग्रो बभ्रुः)** उग्र-स्वभाव धर्ता **(शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः)** प्रकाशयुक्त शुद्ध बलों द्वारा दुष्टों को पीस दे **(ईशानादस्य**

भुवनस्य भूरे) भगवान् की कृपा से बहुरूप संसार के **(न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम्)** असुरभाव को रुद्र प्रभु की कृपा से नष्ट कर दो।

भावार्थ—बलवान् पुरुष अपने अङ्गों को दृढ़ बनाता हुआ, उग्र होकर, श्रेष्ठ गुणों को धारण करता हुआ पवित्र बलों द्वारा भगवान् की कृपा से या तो दुष्ट पुरुषों के अवगुणों को दूर करे या उन्हें नष्ट कर दे। सब लोक-लोकान्तर के असुरभावों को मिटाकर संसार में दैवी भावों का सञ्चार करे।

[४०]

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥
—ऋ० २।३३।१०

पदार्थ—**(अर्हन् बिभर्षि सायकानि)** हे पूजनीय! आप दुष्टों को विचित्र अस्त्रों द्वारा दण्ड देते हो **(धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्)** सब संसार को कठोर नियमों से बाँधे रखते हो। सूर्यादि की शक्ति नहीं कि आपके नियमों का उल्लंघन करें **(अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वम्)** जहाँ आप दुष्टों को दण्ड देते हो वहाँ सम्पूर्ण विश्व के सज्जनों पर महान् दया भी करते हो **(न वा ओजीयो त्वदस्ति)** हे दुष्टों के रोदनकर्त्तः! आपसे अधिक बलवान् संसार में कोई नहीं।

भावार्थ—इस मन्त्र में तीन बार आया हुआ अर्हन् शब्द यह सिद्ध करता है कि भगवान् सबका पूजनीय है। सायक वा धनुष शब्द से यह सिद्ध होता है कि उसके दण्ड को कोई टाल नहीं सकता। वह विश्व का दण्डदाता भी है और दयालु भी है। संसार का ओज परिमित है। प्रभु का ओज अपार है। वह रात-दिन कार्य करता हुआ भी थकता नहीं।

[४१]

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः॥
—ऋ० २।३३।११

पदार्थ—**(स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम्)** जो श्रुति का विषय बुद्धिरूपी गुहा में विद्यमान सदा युवा भगवान् है उसकी स्तुति कर **(मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्)** जो सिंह की तरह भयङ्कर समीप से ही सबको

मार देता है (**मृळ जरित्रे रुद्र स्तवानः**) हे रुद्र ! स्तुति करनेवाले स्तोता को आप सुखी कीजिए (**अन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः**) आपकी सेना के दण्डदायक पदार्थ भक्तों को छोड़कर अन्यों को दण्डित करें।

भावार्थ—इस मन्त्र में भगवान् को बुद्धि में स्थित, युवा, भयङ्कर सिंह के समान दण्डदाता बतलाया गया है। जहाँ वह दण्डदाता है वहाँ वह स्तुति करनेवाले के लिए आनन्द देनेवाला भी है। इस संसार में विद्युत् आदि अनेक ऐसे पदार्थ हैं जो दण्ड देनेवाले हैं, अतः प्रार्थना है कि ये पदार्थ दुष्टों को दण्ड दें और भक्तों की रक्षा करें।

[४२]

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे॥

—ऋ० २।३३।१२

पदार्थ—(**कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति**) जैसे स्तुति करता हुआ कुमार अपने पिता की गोद में जाता है और नमस्कार करता है (**नानाम रुद्रोपयन्तम्**) ऐसे ही हम आपको नमस्कार करते हैं (**भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे**) अधिक के देनेवाले सत्पति की स्तुति करो (**स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे**) स्तुति किये हुए आप हमारे लिए औषध प्रदान करते हैं।

भावार्थ—भगवान् की उपासना अहंकार को छोड़कर कुमार के समान करनी चाहिए। कभी-कभी प्रेम में मग्न होकर भक्तों की आँखों से बालक के समान अश्रुधारा भी बहने लगती है। माता-पितादि सब परिमित देते हैं। वह अपरिमित का दाता है। जिस रोग को सर्वस्व देने पर भी कोई वैद्य दूर नहीं कर सकता उस असाध्य रोग का निवारण भगवान् परम प्रेम से की हुई स्तुतिमात्र से ही कर देते हैं।

[४३]

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि॥

—ऋ० २।३३।१३

पदार्थ—(**या वो भेषजा मरुतः शुचीनि**) हे मनुष्यो! जो पवित्र ओषधि है (**या शंतमा वृषणो या मयोभु**) और हे बलवानो! जो सुख देनेवाली व अत्यन्त आनन्द देनेवाली हैं (**यानि मनुरवृणीता पिता नः**) जिन ओषधियों को विचारशील वैद्य ग्रहण करते हैं (**ता**

शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि) वे सुखकारक और रोगनिवारक ओषधियाँ प्रभु की हैं और उसी की कृपा से मिलती हैं।

भावार्थ—इस संसार में पवित्र आनन्ददायक, रोगनाशक, बलकारक सहस्रों प्रकार की ओषधियाँ विद्यमान हैं। इन ओषधियों की रचना मनुष्य की शक्ति व बुद्धि से बाहर है। उन ओषधियों को दो भेदों में बाँट सकते हैं। एक मधुरतादि गुण से युक्त आनन्ददायक और दूसरे कटु होने पर भी रोगनिवारक। इन ओषधियों में जो रोगनिवारण आदि का निर्वाचन होता है वह प्रभु की कृपा के बिना नहीं हो सकता।

[४४]

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥

—ऋ० २।३३।१५

पदार्थ—**(एवा बभ्रो वृषभ चेकितान)** हे धारक, बलकारक, ज्ञानी भगवन्! **(यथा देव न हृणीषे न हंसि)** आप ऐसी कृपा कीजिए कि हम ऐसे कर्म करें जिससे हमारे सुखों का हरण वा हनन न हो **(हवनश्रुत्)** हे हमारे हवन, दानादान की बात को सुननेवाले! **(नः रुद्रेह बोधि)** हे रुद्र! हमको बोध कराइए **(बृहद्वदेम विदथे)** हम आपकी यज्ञों व संग्रामों में भी स्तुति करें तथा **(सुवीराः)** सुवीरोंवाले बनें।

भावार्थ—मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे भगवान् को भक्ति के द्वारा प्रसन्न करें जिससे कोई उनके सुखों का अपहरण न कर सके। भगवान् हमारी प्रत्येक प्रार्थना, यज्ञ, हवन, आदान, प्रदान को देखता हुआ सुनता है। हम उससे कोई कार्य छुपा नहीं सकते। वह हमको बोध भी कराता है।

[४५]

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत॥

—ऋ० ३।५९।१

पदार्थ—**(मित्रो जनान्यातयति)** सच्चा मित्र प्रभु भक्तजनों से पुरुषार्थ करवाता है **(ब्रवाणः)** और साथ में उपदेश भी देता है **(मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्)** और वह मित्र द्युलोक और पृथिवी

लोक को भक्तों की रक्षा के लिए धारण भी करता है **(मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे)** और वह निरन्तर रात-दिन प्रजाओं को सब प्रकार से उपदेश देता रहता है **(मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत)** उस मित्र की आज्ञा पालन करने के लिए हे मनुष्यो! घृतादि उत्तम पदार्थों से हवन करो।

भावार्थ—सुहृद् परमात्मा यत्न करते हुए भक्तों से अधिक प्रयत्न करवाता है और साथ-साथ प्रत्येक कार्य के आरम्भ में कुकर्मों के लिए लज्जा, भय, शंका पैदा करके उपदेश भी देता है। कोई ऐसा क्षण नहीं जब वह हमारे हित से विमुख होता हो। हम अभागे हैं जो ऐसे हितकारी प्रभु से विमुख हैं।

[४६]

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्॥

—ऋ० ३।५९।२

पदार्थ—**(प्र सः मित्र)** हे मित्र! **(मर्तो अस्तु प्रयस्वान्)** आपका भक्त प्रयत्नवाला हो **(यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन)** हे अखण्डनीय! जो आपकी आज्ञा से वैदिक शिक्षा का प्रचार करता है **(न हन्यते न जीयते त्वोतः)** तुम्हारे द्वारा रक्षा किया हुआ न नष्ट होता है, न जीता जाता है **(न एनमंहो अश्नोति)** इस भक्त को पाप प्राप्त नहीं होता **(अन्तितो न दूरात्)** न पास से, न दूर से।

भावार्थ—जिस भक्तजन को प्रभु प्रयत्न करनेवाला बनाते हैं, जो प्रभु की शिक्षा को स्वयं ग्रहण करता वा करवाता है और जो उसकी आज्ञानुकूल आचरण करता है उसकी आत्मशक्ति को कोई नष्ट नहीं कर सकता और न कोई जीत सकता है। उसको दूर से वा समीप से कोई भी पाप स्पर्श नहीं कर सकता।

[४७]

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम॥

—ऋ० ३।५९।३

पदार्थ—**(अनमीवास इळया मदन्तः)** रोगरहित होकर भगवान् की वेदवाणी द्वारा आनन्द प्राप्त करते हुए **(मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः)** हे श्रेष्ठ! आपके अनुग्रह से संसार में मितव्ययी बनें **(आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तः)** सूर्य के समान अटल व्रत को धारण

करते हुए (**वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम**) हम आपकी कल्याण करनेवाली मति में चलें।

भावार्थ—मनुष्य सत्याचरण से रोगरहित होकर सर्वदा प्रसन्न रहें। कभी चिन्ता न करें। चिन्ता के कारण धनादि का अपव्यय होता है, अतः मितव्ययी बनें। जैसे सूर्य अपने सब काम नियम से करता है वैसे सब कामों का अनुष्ठान नियम से करें। ये सब काम सच्चे मित्र प्रभु की अनुमति में चलकर ही हो सकते हैं।

[४८]

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम॥

—ऋ० ३।५९।४

पदार्थ—(**अयं मित्रो नमस्यः**) यह सच्चा मित्र ही उपासना के योग्य है (**सुशेवो राजा सुक्षत्रः**) यही सुख देनेवाला सच्चा क्षत्रिय राजा है (**अजनिष्ट वेधाः**) इसकी कृपा से मनुष्य बुद्धिमान् बनता है (**तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि**) हम उस पूजनीय प्रभु की आज्ञा व प्रज्ञा में चलें (**भद्रे सौमनसे स्याम**) कल्याण करनेवाले मानसिक व्यवहारों में भी उसी की आज्ञा का पालन करें।

भावार्थ—इस मन्त्र में भगवान् की पाँच विशेषताओं का वर्णन है। प्रभु उपासना के योग्य है, अन्य नहीं और वह सदा सुख देनेवाला है तथा राजा है। सांसारिक राजा अन्याय व अत्याचार भी कर देते हैं, किन्तु प्रभु किसी पर अन्याय व अत्याचार नहीं करते। हमें शारीरिक व मानसिक व्यवहारों में प्रभु का अनुकरण करना चाहिए।

[४९]

न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम॥

—ऋ० २।१८।८

पदार्थ—(**न म इन्द्रेण सख्यं वि योषत्**) भगवान् की मित्रता से मेरा वियोग न हो (**अस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत**) प्रभु की विद्या सुशिक्षा और दान मेरे लिए परिपूर्ण हो (**उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ**) जो अत्यन्त उत्तम विज्ञान व्यवहार में (**प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम**) जो अत्यन्त कामना के योग्य हैं, उन्हें हम जीतनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभो! चाहे मेरा सर्वस्व चला जाए पर आपकी मैत्री न छूटे। यदि आपकी मैत्री गई तो सब-कुछ गया। आपकी मैत्री ही

सब-कुछ है। आप कृपा कीजिए जिससे मैं आपकी वैदिक शिक्षा को पूर्ण कर सकूँ। संसार के प्रत्येक व्यवहार में मुझको कभी पराजय का मुख न देखना पड़े। यह सब आपकी कृपा से ही हो सकता है।

[५०]

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः॥

—ऋ० ६।१५।५

पदार्थ—(**पावकया यश्चितयन्त्या**) हे भगवन्! आप पवित्र चेतावनी देनेवाली (**कृपा क्षामन् रुरुच**) कृपा से संसार में देदीप्यमान हो रहे हैं (**उषसो न भानुना**) जैसे प्रभातवेला किरणों से चमकती हैं, वैसे (**तूर्वन्न यमन् एतशस्य नु रणे**) हम घोड़े आदि साधनों से शत्रुओं को मारते हुए आपके आश्रय में युद्ध में विजय प्राप्त करें (**आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः**) मैं इस प्रदीप्त संसार में जरा-रहित होने पर प्यासा हूँ, आप मेरी प्यास को शान्त कीजिए।

भावार्थ—जैसे उषाकाल में सूर्य अपनी किरणों के द्वारा प्रकाश करते हुए प्रकट होते हैं इसी प्रकार परमात्मदेव अपनी कृपा के द्वारा प्रसिद्ध हैं। संसार का कण-कण भगवान् की कृपा का प्रकाश कर रहा है। जैसे अनेक साधनों के द्वारा योद्धा संग्राम में विजय प्राप्त करता है वैसे भक्तजन प्रभु के आश्रय से सर्व-विजयी होते हैं।

[५१]

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि। उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः॥

—ऋ० ६।१५।६

पदार्थ—(**अग्निं अग्निं वः समिधा दुवस्यत**) ज्ञान व प्रकाश-वाले प्रभु की पवित्र अन्तःकरण से भक्ति करो (**प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि**) प्रत्येक व्यवहार में उस अत्यन्त प्रिय अतिथि को मत भूलो (**उप वो गीर्भिरमृतं विवासत**) तुम सब जन वाणियों द्वारा उस अमृत का पान करो (**देवो देवेषु वनते हि वार्यं**) वह देव देवों में उत्तम गुणों से ही प्रेम करता है (**देवो देवेषु वनते हि नो दुवः**) और वह तुम्हारी भक्ति को ग्रहण करता है।

भावार्थ—उस प्रचण्ड अग्नि का श्रद्धा और प्रेम से सेवन करो। वह तुम्हारा अत्यन्त प्रिय और अतिथि के समान हितकारी है। उस अमृत रूप प्रभु का तुम वाणियों के द्वारा पान करो। प्रभु प्रत्येक

के श्रेष्ठ गुण व भक्ति से प्रेम करते हैं, व्यक्ति से नहीं।

[५२]

**त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥**

—ऋ० ६।१५।८

पदार्थ—(त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे) हे अग्ने! दुःख दूर करनेवाले अमृतरूप आपको युग-युग में **(हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्)** पदार्थों को पहुँचानेवाले पूजनीय रक्षक को धारण करते हैं **(देवासश्च मर्तासश्च)** देव और मनुष्य **(जागृविं विभुं विश्पतिम्)** जागनेवाले सर्वव्यापक प्रजापति को **(नमसा नि षेदिरे)** नमस्कार द्वारा ही प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—दुःख दूर करनेवाला, प्रकाशमान्, अमृतरूप प्रभु ही सब युगों में पूजनीय है। वही हमको प्रत्येक पदार्थ प्रदान करता है। उसी रक्षक को साधारण मनुष्य और विद्वान् धारण करते हैं। मनुष्य कदाचित् सोते हैं और वह सर्वदा जागता है। वह अपनी सर्वव्यापकता से सबका पति है। उसकी प्राप्ति के लिए केवल नमस्कार व नम्रता की आवश्यकता है।

[५३]

**विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव॥**

—ऋ० ६।१५।९

पदार्थ—(विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता) हे अग्ने! आप विद्वान् अविद्वान् सबके व्रतों को विभूषित करनेवाले हैं **(दूतो देवानां रजसी समीयसे)** देवताओं के दुःख दूर करनेवाले और धर्म, अर्थ, मोक्ष के देनेवाले हो। सब लोकों में आपकी सत्ता विद्यमान है **(यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहे)** हम आपके धैर्य्य और सुमति को ग्रहण करते हैं **(अध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव)** आप हमारा तीनों लोकों में कल्याण कीजिए।

भावार्थ—भगवान् पक्षपात छोड़कर विद्वान्-अविद्वान् जो भी उसका भक्त है उसको अलंकृत, सुशोभित करते हैं तथा देवताओं को धर्मार्थ-मोक्ष की प्राप्ति कराते हैं, जो प्रभु के धैर्य और सुमति को ग्रहण करते हैं। प्रभु का भक्त चाहे किसी लोक में जाए वहीं मङ्गलमय प्रभु उसका मङ्गल साधन करते हैं।

[५४]

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत्॥

—ऋ० ६। १५। १०

पदार्थ—(तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चम्) जिसने प्रत्यक्ष संसार को रचा है, जो योगाभ्यास से देखने योग्य है, जो सम्यक्तया सबको जानता है **(अविद्वांसो विदुष्टरं सपेम)** उस ज्ञानी प्रभु को जो मूर्ख नहीं जानते वे धिक्कार के योग्य हैं **(स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्)** वह पूजनीय प्रभु सब विज्ञान व शुभाशुभ कर्मों को जानता है **(प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत्)** वह अपना सुन्दर विज्ञान मुक्त पुरुषों को बतलाता है।

भावार्थ—इस प्रत्यक्ष संसार को रचनेवाले, योगाभ्यास के द्वारा जिसका ज्ञान होता है, अहर्निश जो सबको भोजन प्रदान कर रहा है उस प्रभु को जो मूर्ख नहीं जानते उनको धिक्कार है और पूजनीय प्रभु को जो सबके कर्मों को जानता है और अपने भक्तों को ज्ञान देता रहता है उसको जो जानते हैं, वे धन्य हैं।

[५५]

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया॥

—ऋ० ६। १५। ११

पदार्थ—(त्वमग्ने पास्युत) हे अग्ने! आप उसकी रक्षा करते हो **(तं पिपर्षि)** उसको सद्गुणों से पूर्ण करते हो **(यस्त आनट्)** जो आपकी आज्ञा का पालन करता है **(कवये शूर धीतिम्)** हे शूर! उस कवि के लिए धारणा देते हो **(यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा)** यज्ञ की तीक्ष्णता व उदय को भी देते हो **(तमित्पृणक्षि शवसोत राया)** उसको बल वा धन से संयुक्त करते हो।

ये सत्यभावेन जगदीश्वरमुपासते तानीश्वरः सर्वतः संरक्ष्य धर्म्यगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरयित्वा शरीरात्मबलं प्रदाय मोक्षं नयति।

भावार्थ—जो सत्यभाव से प्रभु की उपासना करते हैं, ईश्वर उनकी सब ओर से रक्षा करके धर्म्य, गुण-कर्म-स्वभावों में प्रेरणा करके शारीरिक और आत्मिक बल देकर मुक्ति प्रदान करता है।

[५६]

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री॥

—ऋ० ६।१५।१२

पदार्थ—(**त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि**) हे अग्ने! अपने याचकों की आप रक्षा कीजिए (**त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्**) आप हमको निन्दनीय आचरण से पृथक् कीजिए (**सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः**) नाश होनेवाला अन्नादि पदार्थ (**स रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री**) और जिसमें सहस्रों प्रकार के सुख विद्यमान हैं ऐसा वाञ्छनीय धन भी हमको दीजिए।

भावार्थ—प्रभु अपने याचकों की सदा ही रक्षा करते हैं। निन्दनीय आचरण से मनुष्य भगवान् की कृपा से ही दूर होता है। संसार में अन्नादि एक साधारण सम्पत्ति है और दूसरी दैवी सम्पत्ति है जो अतुल सुखों के देनेवाली है। इस मन्त्र में इन दोनों सम्पत्तियों की याचना की गई है।

[५७]

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा॥

—ऋ० ६।१५।१३

पदार्थ—(**अग्निर्होता गृहपतिः सः राजा**) भगवान् प्रकाशक, धर्ता, गृहस्वामी तथा न्यायकारी राजा है (**विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः**) वह जातवेदा हम सबके जन्मों को जानता है (**देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः**) वह देव तथा मनुष्य दोनों में महान् तथा पूजनीय है (**स प्र यजतामृतावा**) वह शुभाशुभ कर्मों का फलदाता है।

भावार्थ—भगवान् की कितनी विलक्षण महिमा है! वह सब के भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान जन्मों को जानता है और वही विद्वान्, अविद्वान्, धनी, निर्धन सबका पूजनीय स्वामी है। संसार के न्यायाधीश बहुधा अपराधियों को छोड़कर निरपराधों को दण्ड दे देते हैं, किन्तु प्रभु सत्यासत्य का सच्चा ज्ञाता है।

[५८]

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि॥

—ऋ० ६।१५।१९

पदार्थ—(**वयमु त्वा गृहपते जनानाम्**) हे स्वामिन्! हमने आपको अपना गृहपति स्वीकार किया है (**अग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्**) हम आपकी भक्ति से सर्वदा उपासना करते हैं (**अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु**) हमारे सब कर्म आपकी कृपा से तीव्रगतिवाले हों (**तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि**) हमको अपने तीव्र विज्ञान से शिक्षित कीजिए।

भावार्थ—जो प्रभु को अपना गृहपति बनाते हैं वे सर्वदा आनन्द पाते हैं। जो प्रेम से भक्ति करते हैं वे किसी से नहीं डरते हैं। हमारे प्रत्येक कर्म में क्रान्तिकारिणी गति दो। जिससे कभी न भटकें ऐसी सुन्दर मति दो। हमें तीव्र तेज से शिक्षा दीजिए, हमारे घरों में सदा मङ्गल कीजिए।

[५९]

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम्॥

—ऋ० ४।७।२

पदार्थ—(**अग्ने कदा त आनुषक्**) हे भगवन्! कब मनुष्य आपके अनुकूल होंगे (**विक्ष्वीड्यम्**) प्रजाओं में पूजनीय (**भुवद्देवस्य चेतनम्**) आप देव के अनन्त विज्ञान आदि युक्त स्वरूप को (**अधा हि त्वा जगृभिरे मर्तासः**) मनुष्य कब ग्रहण करेंगे।

हे परमेश्वर वयं त्वां सततं प्रार्थयेम। भवतः कृपया इमे सर्वे मनुष्या भवद्भक्ता भवदाज्ञानुकूला भवदुपासकाः कदा भविष्यन्ति। हे कृपालोऽन्तर्यामिन् करुणां विधाय सर्वान्त्स्वस्मिन्प्रीतिमतः सद्यः कुर्विति।

भावार्थ—हे भगवन्! आपकी कृपा से सब मनुष्य आपके भक्त आज्ञाकारी, उपासक कब होंगे? हे कृपालो! अन्तर्यामिन्! करुणा करके सबको आपसे प्रीति रखनेवाले शीघ्र बनाओ। आप ही अपनी करुणा से सबको अपना भक्त बना सकते हैं। हममें यह सामर्थ्य नहीं है।

[६०]

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके भीतिमर्यो वनुषां शवांसि॥

—ऋ० ७।२१।९

पदार्थ—(**सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम**) हे इन्द्र! हम आपसे

प्रतिदिन मित्रता करें **(नमो वृधासो महिना तरुत्र)** हे तारक! तुम्हारी महिमा से और नमस्कार से हम बढ़ें **(वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके)** तुम्हारी रक्षा द्वारा तुम्हीं से याचना करें **(अभीतिमर्यो वनुषां शवांसि)** आप भक्तों की निर्भयता और बलों को बढ़ाइए।

भावार्थ—जो धर्मात्मा प्रभु से नित्य मित्रता करने की इच्छा करते हैं वे बड़प्पन से सत्कार पाते हैं। जो प्रजा को अभय देते हैं वे प्रतिदिन बलिष्ठ होते हैं।

[६१]

स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

—ऋ० ७।२१।१०

पदार्थ—**(स न इन्द्र त्वयताया इषे धाः)** हे भगवन्! हम आपकी कृपा से पूर्ण होनेवाली इच्छाशक्ति को धारण करें **(त्मना च ये मघवानो जुनन्ति)** आत्मिक बल के द्वारा जो प्रभुभक्त संसार को अच्छे मार्ग में लगाते हैं। **(वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिः)** धर्म से धन कमाने की शक्ति अपने भक्तों में उत्पन्न कीजिए। **(यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः)** आप सदा हमारा कल्याण करो।

भावार्थ—भक्तों को अपनी सब इच्छाएँ भगवान् के अर्पण कर देनी चाहिएँ। अपने आत्मिक बल के द्वारा संसार को श्रेष्ठ कार्यों में लगाने की प्रेरणा करनी चाहिए। भगवान् की अपार कृपा से ही धर्म से धन कमाने की शक्ति उत्पन्न होती है।

[६२]

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह॥

—ऋ० ७।११।१

पदार्थ—**(महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः)** आप यज्ञ वा सब व्यवहारों के महान् ज्ञाता व प्रज्ञापक हैं **(न ऋते त्वदमृता मादयन्ते)** भगवन्! तुम्हारे बिना जीव आनन्द नहीं पा सकते **(आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैः)** आप सम्पूर्ण विद्वानों के अन्दर अपनी शक्ति प्रकट कीजिए **(न्यग्ने होता प्रथमः सदेह)** हे सर्वोत्तम देव! आप हमारे हृदयों में प्रकट हों।

भावार्थ—यज्ञों का सबसे महान् नेता व ज्ञाता भगवान् है।

उसके अनुग्रह के बिना कोई जीव आनन्द नहीं पा सकता। जिन विद्वानों में भगवान् की शक्ति प्रकट होती है वे ही अपना वा संसार का मङ्गल साधन करते हैं। जिन हृदयों में भगवान् का प्रकाश होता है वे संसार को ज्ञान से आलोकित कर देते हैं।

[६३]

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
यस्य देवैरासदो बहिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति॥

—ऋ० ७।११।२

पदार्थ—(**त्वामीळते अजिरं दूत्याय**) दुःख दूर करने के लिए भक्तजन आपकी ही स्तुति करते हैं (**हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः**) सब सामग्रीयुक्त भक्तजन आपको ही परमधाम मानते हैं। (**यस्य देवैरासदो बर्हि अग्ने**) हे अग्ने! जिन देवताओं को आप विज्ञान प्रदान करते हैं (**अहान्यस्मै सुदिना भवन्ति**) उनके दिन सुदिन हो जाते हैं ।

भावार्थ—भक्तजन दुःख दूर करने के लिए भगवान् की ही स्तुति करते हैं। यद्यपि वे सर्वसामग्री से युक्त होते हैं तथापि प्रभु को ही वह अपना परमधाम मानते हैं। जिनपर प्रभु कृपा करते हैं उनके दिन सुदिन हो जाते हैं।

[६४]

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥

—ऋ० ७।११।४

पदार्थ—(**अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्य**) महान् यज्ञों पर भगवान् ही शासन करते हैं (**अग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य**) धर्मपूर्वक कमाये हुए धन की प्रभु ही रक्षा करते हैं (**क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्त**) महर्षि लोग प्रभु की मेधा का सेवन करते हैं (**अथ देवा दधिरे हव्यवाहम्**) देवता लोग सर्वपदार्थदाता भगवान् को धारण करते हैं।

भावार्थ—महान यज्ञों की रक्षा करनेवाले परमेश्वर हैं, जिनको यह विश्वास है वे यज्ञ रचाने में सङ्कोच नहीं करते। जो धर्म से धन कमाते हैं उनको प्रभु का सहाय है, झूठे को नहीं । भक्तजन प्रभु की बुद्धि को ही सर्वोपरि मानते हैं। देवता लोग सर्वपदार्थदाता भगवान् को ही अपने हृदय में धारण करते हैं।

[६५]

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

—ऋ० ७।११।५

पदार्थ—(आग्ने वह हविरद्याय) हे अग्ने! हमको खाने के लिए भोजन प्रदान कीजिए **(देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्)** आपके अनन्य भक्त देव हमको प्रसन्नता प्रदान करें **(इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि)** यह सङ्गतिकरण, दानादि यज्ञ विद्वानों में प्रदान कीजिए।

भावार्थ—इस संसार में भोज्य पदार्थ प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। यदि प्रभु वर्षा न करें अथवा किसी अन्य शक्ति से अन्न को नष्ट कर दें तो मनुष्य की शक्ति नहीं कि वह अन्न पैदा कर सके। भगवान् की कृपा से ही विद्वान् संसार को आनन्दित करते हैं। विद्वानों की मति उलटी हो जाए तो संसार का नाश हो जाए। इसलिए इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि विद्वानों में सङ्गतीकरण, दान आदि की भावना उत्पन्न करें।

[६६]

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम्॥

—ऋ० ७।१२।१

पदार्थ—(अगन्म महा नमसा यविष्ठम्) उस महान् श्रेष्ठ प्रभु को नमस्कार द्वारा प्राप्त करें **(यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे)** जो अपने स्वरूप में प्रदीप्त है तथा संसार को दीप्ति देता है **(चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी)** जो द्युलोक, पृथिवीलोक में अद्भुत कार्य कर रहा है **(स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम्)** अन्तःकरण में प्रार्थना किया हुआ अद्भुत गति देता है।

भावार्थ—भगवान् की प्राप्ति का सबसे बड़ा साधन नमस्कार व नम्रता है, जो स्वयं प्रकाशित होता हुआ सबको प्रकाश देता है। संसार में ऐसे अद्भुत कार्य करता है जो मनुष्य की बुद्धि से बाहर हैं। संसार के महान् पुरुषों में जो कार्य करने की अद्भुत शक्ति दिखाई देती है वह सब प्रभु की है।

[६७]

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥

—ऋ० ७ । १२ । २

पदार्थ—(स मह्ना विश्वा दुरितानि स साह्वान्) सहन करनेवाला परमेश्वर अपनी महिमा से भक्तों के सब दुराचरणों को दूर करता है (अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः) स्तुति करने पर घर में ही भगवान् भक्तों का कल्याण कर देता है (स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यात्) वह मङ्गलमय प्रभु हमारी निन्दनीय दुराचरण से रक्षा करें (अस्मान् गृणत उत नो मघोनः) स्तुति करनेवाले हम धनाढ्यों की प्रभु सर्वदा रक्षा करें।

भावार्थ—वह अपनी महिमा से भक्तों के दुराचरणों का नाश करता है। केवल जङ्गलों में जाने से ही नहीं किन्तु घर में रहकर भी भक्ति करनेवाले जनों का प्रभु उद्धार कर देते हैं । एक साधारण दुराचार होता है, एक असाध्य दुराचार जिसको प्रभु ही दूर कर सकते हैं। उसके लिए याचना है—प्रभो! हमारे निन्दनीय दुराचार को दूर करो।

[६८]

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

—ऋ० ७ । १२ । ३

पदार्थ—(त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने) हे अग्ने! तुम हमारे श्रेष्ठ मित्र हो (त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः) सर्वविद्यासम्पन्न आपकी भक्ति का प्रचार करते हैं (त्वे वसु सुषणानानि सन्तु) आप अपने भक्तों को धन का सुन्दर विभाजन करने की मति प्रदान कीजिए। (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) हे अग्ने, मित्र और वरुण! आप कल्याणकारी उपायों से सदा हमारी रक्षा कीजिए।

भावार्थ—सांसारिक मित्र द्रोही भी हो जाते हैं किन्तु प्रभु सदा द्रोह-रहित परम मित्र हैं। प्रभु की सच्ची भक्ति का प्रचार उसके स्वार्थ-रहित भक्त ही कर सकते हैं। इस समय संसार में अधिक कलह पूंजिपति और श्रमिकों का है। पठित, स्वार्थी, धनाढ्य प्रत्येक प्रकार से निर्धन प्रयत्नशील जनों का निर्दयतापूर्वक शोषण कर रहे हैं, अतः मन्त्र में भगवान् से प्रार्थना की गई है कि आप अपने भक्तों

को मति प्रदान करें, जिससे वे श्रमिकों का शोषण न करें।

[६९]

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि॥

—ऋ० ७। ३२। २१

पदार्थ—(**न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु**) दुष्ट स्तुति करनेवाला मनुष्य दैवी सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकता (**न स्रेधन्तं रयिर्नशत्**) और हिंसक भी। (**शुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यम्**) सुन्दर शक्ति उसको प्राप्त होती है जो अपने आपको तेरे अर्पण कर देता है (**मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि**) मुझ-जैसे भक्तों को ही पालन तथा पूरण करने के काम में शक्ति देते हो।

भावार्थ—दुष्ट स्तुति करनेवाला व्यक्ति दैवी सम्पत्ति को नहीं पा सकता और स्वार्थ के लिए दूसरों की हिंसा करनेवाला भी दैवी सम्पत्ति के दर्शन नहीं कर सकता। भगवान् उसी को परोपकार करनेवाली शक्ति देते हैं जो उनकी शरण में आता है, अन्यथा शक्ति पाकर भी लोग दूसरों पर अत्याचार करते हैं।

[७०]

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥

—ऋ० ७। ३२। २३

पदार्थ—(**न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवः**) हे प्रभो! आपके समान शुद्ध स्वरूपवाला तथा भूमि में जाना हुआ (**न जातो न जनिष्यते**) न हुआ है, न होगा (**अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनः**) विज्ञान और अन्नयुक्त हम अपने लिए घोड़ों को चाहते हुए (**गव्यन्तस्त्वा हवामहे**) और आत्मा के लिए गौ, सुन्दर शिक्षा, उत्तम वाणी और भूमि को चाहते हुए आपकी स्तुति करते हैं।

भावार्थ—जितने भी पदार्थ इस संसार में विद्यमान हैं उन सबमें प्रभु के तुल्य न कोई है और न कोई होगा। मनुष्य प्रभु का भक्त होता हुआ भी संसार के पदार्थों का निरादर न करे और संसार के पदार्थों से सम्पन्न होकर भी प्रभु-भक्ति को न भूले, अर्थात् अभ्युदय और मुक्ति दोनों को प्राप्त करना मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है। कणाद मुनि ने धर्म का यही लक्षण किया है।

[७१]

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः॥

—ऋ० ७। ३२। २४

पदार्थ—(**अभी षतस्तदा भरेन्द्र**) हे जीव तुम कभी नष्ट न होनेवाले प्रभु को अपने अन्दर भर लो (**ज्यायः कनीयसः पुरूवसुः हि**) जो बड़े-से-बड़ा, छोटे-से-छोटा, बहुतों को बसानेवाला है। (**मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः**) हे प्रभो! धन से धनी वह जीव सनातन है और प्रत्येक रक्षा के कर्म में वही स्तुति करने के योग्य है।

भावार्थ—वेद भगवान् कहते हैं कि भगवान् को अपने अन्दर इतना भरो कि अन्य किसी उपास्यदेव के लिए स्थान ही न रहे। रहीम ने कहा है—

प्रीतम छवि नैनन बसी पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिरि जाय॥

वह अणु से भी अणु और महान् से भी महान् है। सारा संसार उसी के कृपा-कटाक्ष से निवास कर रहा है। यदि उसकी कृपा न हो तो मनुष्य एक दिन के लिए भी जीवित नहीं रह सकता।

[७२]

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम्॥

—ऋ० ७। ३२। २५

पदार्थ—(**परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्**) हे सर्वैश्वर्य्य-सम्पन्न! हमारे शत्रुओं को सुमति दो अथवा उन्हें दूर कर दो (**सुवेदा नो वसू कृधि**) हे सुन्दर धनवाले! हमें धन दो (**अस्माकं बोध्यविता**) हे रक्षक! हमको बोध कराओ (**महाधने भवा वृधः सखीनाम्**) इस महान् धनयुक्त संसार में हमारे मित्रों को बढ़ाओ।

भावार्थ—हे परेश! तुम्हारी कृपा से हमारे शत्रु सुमार्ग में प्रवृत्त हों अथवा उनको दूर कर दीजिए। नाथ! सारे संसार के धन आपके वश में हैं। उनमें से कुछ धन अपने भक्तों को भी प्रदान कीजिए। केवल सांसारिक धनों से ही काम नहीं बनेगा, अपना बोधरूपी धन भी हमको दीजिए। उसके बिना संसार के धन हमको आपसे विमुख

करके अन्धकार में डाल देंगे। हमको ही नहीं किन्तु हमारे मित्रों को भी आप अपने महाधन से धनी कीजिए।

[७३]

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥

—ऋ० ७।३२।२६

पदार्थ—(**इन्द्र क्रतुं न आ भर**) हे इन्द्र! आप हमको धर्मयुक्त प्रज्ञा दीजिए (**पिता पुत्रेभ्यो यथा**) जैसे पिता पुत्रों को देता है (**शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत**) हे सबके उपास्य! हमको शिक्षा भी दीजिए (**यामनि जीवा ज्योतिरशामहि**) इसी वर्त्तमान समय में हम जीव प्रकाशस्वरूप आपको प्राप्त कर लें।

भावार्थ—हे भगवन्! आप हमको धर्मयुक्त प्रज्ञा दीजिए, जैसे दयालु पिता अपने पुत्रों को सुमति प्रदान करता है। आप हमको शिक्षा भी दीजिए, क्योंकि हमारी शिक्षा अधूरी है। भगवन्! हम आपको इसी—वर्त्तमान जन्म में ही प्राप्त करें।

[७४]

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि॥

—ऋ० ७।३२।२७

पदार्थ—(**मा नो अज्ञाता वृजना**) कृपा करो, हमको अज्ञात छिपकर आनेवाले पाप (**दुराध्यो माशिवासो अवक्रमुः**) और दुःख से चिन्तन करने योग्य सुख का नाश करनेवाले पाप प्राप्त न हों (**त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपः**) आपकी सहायता से हम अगाध निरन्तर रहनेवाले संसार के दुःखों को (**शूर अतितरामसि**) हे शूर! हम तर जाएँ।

भावार्थ—संसार में अनेक पाप होते हैं। एक पाप ऐसे हैं जो छिपे-छिपे आते हैं, जिनका मनुष्य को पता भी नहीं लगता। उन पापों को हम प्रभु-कृपा से ही पार कर सकते हैं। इस संसार में मनुष्य को पद-पद पर अकल्याणकारक दुःखों का सामना करना पड़ता है। उनको भी हम हरि की दया से ही पार कर सकते हैं। संसार की इन सब व्याधियों का हम भगवान् की शक्ति से ही मुक़ाबला कर सकते हैं।

[७५]

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥

—ऋ० ७ । १० । ३

पदार्थ—(**अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीः**) सुन्दर वाणियों तथा अपने लिए दिव्य गुणों को चाहनेवाली मेधाएँ (**अग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः**) यश वा धन की याचना करती हुई भगवान् को प्राप्त होती हैं (**सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चम्**) जो दर्शनीय ज्ञान वा सुख का देनेवाला है (**हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम्**) जो मनुष्य के लिए सब भोग्य पदार्थों का दाता होने पर भी स्वयं किसी भी पदार्थ का भोग नहीं करता।

भावार्थ—विद्वान् लोग भगवान् से दिव्य गुणों को प्राप्त करने के लिए बुद्धि व वाणी दोनों के द्वारा उसकी शरण में जाकर धन वा यश की याचना करते हैं। प्रभु अत्यन्त सुन्दर, सब पदार्थों की प्रतीति करानेवाला है और वह सब जीवों के लिए सब भोग्य पदार्थ प्रदान करता है, किन्तु स्वयं किसी पदार्थ का भोग नहीं करता। यह महान् आश्चर्य की बात है।

[७६]

इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥

—ऋ० ७ । १० । ४

पदार्थ—(**इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा**) भक्तजन इन्द्र को पृथिव्यादि आठ वसुओं के ज्ञानपूर्वक (**रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम्**) दण्डदाता महान् रुद्र को ग्यारह रुद्रोंसहित प्राप्त करें (**आदित्येभिरदितिं विश्वजन्याम्**) बारह मासीसहित सबको पैदा करनेवाली अदिति को (**बृहस्पतिमृक्वभिः विश्ववारम्**) सारे दुःखों का निवारण करनेवाले महान् प्रभु को ऋग्वेदादि के द्वारा प्राप्त करें।

भावार्थ—भगवान् की भक्ति से युक्त होता हुआ मनुष्य पृथिवी आदि आठ वसुओं की विद्या को जानता हुआ परमात्मा को प्राप्त करे। प्राणापान आदि ग्यारह रुद्रों के द्वारा उसका प्रत्यक्ष करे। बारह मास आदि काल के द्वारा प्रभु का स्मरण व भजन करे। ऋग्वेदादि चारों वेदों के द्वारा सर्व-दुःख-निवारक प्रभु की स्तुति करे।

[७७]

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान्॥

—ऋ० ७।१०।५

पदार्थ—(**मन्द्रं होतारमुशिजः**) प्रभु की कामना करनेवाले भक्त आनन्दस्वरूप दाता (**यविष्ठम् अग्निं विश ईळते अध्वरेषु**) सदा युवा प्रभु की यज्ञों में स्तुति करते हैं (**स हि क्षपावान् अभवत्**) वह रात्रियोंवाला हुआ, अर्थात् रात को उसकी स्तुति करते हैं (**रयीणाम् अतन्द्रो दूतः**) वह धनों का आलस्यरहित दूत है (**यजथाय देवान्**) और दिव्य गुणों को प्राप्त करने के लिए भी उसकी शरण में जाते हैं।

भावार्थ—परमात्मा आनन्दस्वरूप दाता, सदा युवा, प्रकाशक है। भक्तजन तथा प्रजाओं का काम है कि वे सब कार्यों में उसी की स्तुति करें और रात्रि के शान्त वातावरण में जब सारी जनता निद्रा में निमग्न होती है तब उसका स्मरण करें। दिव्य गुण तथा धनों को देने के लिए वह आलस्यरहित दाता है।

[७८]

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम्।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम्॥

—ऋ० ७।१३।१

पदार्थ—(**प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धे असुरघ्ने**) प्रकाशक, सब भक्तों के हृदय को शुद्ध करनेवाले, बुद्धिधर्त्ता, आसुरी सम्पत्ति को दूर करनेवाले के लिए (**मन्म धीतिं भरध्वम्**) विज्ञान और धारणा को धारण करो (**भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानः**) संसार-सागर में जैसे हवि यज्ञ में कार्य करता है वैसे प्रीति करते हुए (**वैश्वानराय यतये मतीनाम्**) सब संसार का मङ्गल करनेवाले, मतियों के नियन्ता परमात्मा का ध्यान धरो।

भावार्थ—परमेश्वर सब भक्तों के हृदय को पवित्र करनेवाला, सब मेधाओं को धारण करनेवाला और हमारी भयङ्कर आसुरी वृत्ति का निवारण करनेवाला है। जैसे अग्नि में डाला हुआ हवि स्वयं प्रचण्ड होकर संसार के दोषों का निवारण करता है वैसे ब्रह्माग्नि में अपनी आहुति देकर प्रसन्न होते हुए प्रभु-सम्बन्धि-विज्ञान और धारणा-ध्यान आदि से उसके स्वरूप को जानो।

[७९]

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥

—ऋ० ७।१३।५

पदार्थ—(**त्वमग्ने शोचिशा शोशुचान**) हे अग्ने! आप अपनी ज्योति से प्रकाशित वा शुद्ध करते हुए (**आ रोदसी अपृणा जायमानः**) द्युलोक तथा पृथिवीलोक का पालन अथवा पूरण करते हो (**त्वं देवान् अभिशस्तेरमुञ्चः**) आप कृपा करके विद्वानों को अपनी ही प्रशंसा करनेवाले दम्भियों से छुड़ाइए (**वैश्वानर जातवेदो महित्वा**) हे विश्व-मङ्गल-साधक, सर्वत्र विद्यमान! अपनी महिमा से ही आप यह सब कार्य करते हैं।

भावार्थ—स्वयं प्रकाशमान् प्रभु अपनी ज्योति से द्युलोक, पृथिवीलोक को प्रकाश प्रदान करते हुए शुद्ध करते हैं। संसार में अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो सर्वदा अपनी प्रशंसा में संलग्न रहते हैं और दम्भ के द्वारा संसार को ठगते हैं। ऐसे पुरुषों के अवगुणों से बचने के लिए इस मन्त्र में प्रार्थना है। प्रभु अपनी महिमा से ही भक्तों के सब कार्य करते हैं। उनको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं।

[८०]

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

—ऋ० ७।१३।३

पदार्थ—(**जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः**) इन सारे भुवनों को आपने ही उपदेश प्रदान किया है (**पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा**) आप ही हमारे पशुओं के रक्षक, प्रेरक तथा स्वयं अपना प्रकाश करनेवाले हो (**वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुम्**) हे विश्वजन-कल्याणकारक! अपने भक्त के लिए आपके गुण गाने के लिए प्राप्त होओ।

भावार्थ—भगवान् ने देश, जाति, रंग, वर्ण सब भेदों को मिटाकर वेद का ज्ञान दिया है। वह केवल मनुष्यों की ही नहीं, किन्तु पशुओं की भी रक्षा करता है। प्रभु की कृपा के बिना न कोई उसकी स्तुति कर सकता है और न कोई उसके दर्शन पा सकता है।

[८१]

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये॥

—ऋ० ७।१४।१

पदार्थ—(**समिधा जातवेदसे**) जिसने वेदों का ज्ञान दिया है उसके लिए आत्मबलिदान (**देवाय देवहूतिभिः**) विद्वानों के सत्कारों द्वारा (**हविर्भिः शुक्रशोचिषे**) दानों के द्वारा बल से ही जिसकी प्रदीप्ति है (**नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये**) नमस्कारवाले हम अपने आपको उसके लिए दान दे दें।

भावार्थ—जब हम किसी को कुछ दान में दे देते हैं तब उस वस्तु पर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता। इसी प्रकार जो ईश्वर के लिए अपने आपको दान दे देता है तब उसपर उसका कोई अधिकार नहीं रहता, किन्तु इन कर्त्तव्यों के साथ आत्म-निवेदन होना चाहिए। बलिदान, विद्वानों का सत्कार, निर्धनों के लिए अन्नादि का दान और नमस्कार वा भजन इनके बिना समर्पण सफल नहीं हो सकता।

[८२]

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे॥

—ऋ० ७।१४।२

पदार्थ—(**वयं ते अग्ने समिधा विधेम**) हे अग्ने! हम शुद्ध अन्तःकरण से आपकी भक्ति करते हैं (**वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र**) हे यजनीय! हम सुन्दर स्तुतियाँ आपके लिए देते हैं (**वयं घृतेनाध्वरस्य होतः**) हे यज्ञ के नेतः! हम अत्यन्त स्नेह से आपकी शरण में आते हैं (**वयं देव हविषा भद्रशोचे**) हे कल्याणदीप्ति! हम दान, आदान, प्राणायामादि से आपका प्रत्यक्ष करते हैं।

भावार्थ—आत्म-बलिदान के द्वारा, प्राणायाम के द्वारा, परोपकार के द्वारा मनुष्य को ईश-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। भगवान् की ज्योति का कुछ भी प्रकाश जब भक्त पर पड़ना आरम्भ होता है तब मनुष्य का कल्याण होने लगता है।

[८३]

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते॥

—ऋ० ७। १६। ६

पदार्थ—(**कृधि रत्नं यजमानाय**) यजमान के लिए रत्न प्रदान करो (**सुकृतो त्वं हि रत्नधा असि**) हे सुन्दर कार्यकर्त्ता! आप रत्नों को धारण करनेवाले हैं, (**आ न ऋते शिशीहि**) हमको सत्यभाषणादि कार्य करने के लिए तीव्र उद्योगी बनाइए (**विश्वम् ऋत्विजं सुशंसः**) आप सम्पूर्ण ऋत्विजों को उत्तम कर्म करनेवाला कीजिए (**यश्च दक्षते**) जो बढ़ाता है।

भावार्थ—मन्त्र में प्रभु को रत्नों का भण्डार व रत्नों का दाता तथा सत्य-व्यवहार में अपने भक्तों को तीव्र उद्योग देनेवाला आदि गुणों से युक्त बतलाया गया है।

[८४]

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम्॥

—ऋ० ७। १६। ७

पदार्थ—(**त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः**) हे सबसे सत्कार किये हुए प्रभो! आपमें प्रीतिवाले (**सन्तु सूरयः**) विद्वान् हों (**यन्तारो ये मघवानः**) जो गतिवाले धनाढ्य हैं (**जनानाम् ऊर्वान्दयन्त गोनाम्**) वे मनुष्यों पर, गोपालकों पर और गौओं पर दया करें।

भावार्थ—वर्त्तमान संसार में नास्तिक, वञ्चक, निर्दयी, पशुघातक, धनाढ्य तथा पढ़े-लिखे लोग हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार के यन्त्रों द्वारा संसार को लूटते हैं तथा पशुओं की हत्या करते हैं, इसलिए मन्त्र में प्रार्थना की गई है—प्रभो! विद्वान् और धनाढ्य लोग आपकी कृपा से आपसे प्रेम करनेवाले, परोपकारी, गोपालक तथा गौओं पर दया करनेवाले हों।

[८५]

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत॥

—ऋ० ७। १६। ८

पदार्थ—(**येषामिळा घृतहस्ता**) जिनकी वाणी हाथों में घी लेकर (**दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति**) घरों में प्रातःकाल यज्ञ करती है (**ताँस्त्रायस्व**) उनकी रक्षा कीजिए (**सहस्य द्रुहो निदो यच्छ**) हे बलवन्! द्रोही निन्दकों को दण्ड दीजिए (**नः शर्म दीर्घश्रुत**) हे दीर्घकाल तक सुननेवाले! हमको सुख दीजिए।

भावार्थ—जो अपने घरों में प्रातःकाल शुद्ध घृत के द्वारा प्रेम से यज्ञ करते हैं, दयालो! उन सबकी सर्वदा रक्षा करो। बल के भण्डार! जो द्रोही, देश-द्रोही, धर्म-द्रोही, ईश-द्रोही, निन्दक हैं उनको दण्ड दो। परमेश्वर दीर्घकाल तक प्रार्थनादि करने से अपने भक्तों को मुक्ति का सुख प्रदान करते हैं। इससे 'गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयात्' का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है।

[८६]

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य॥

—ऋ० ७।१६।१०

पदार्थ—(**ये राधांसि ददत्यश्व्या**) जो महान् धनों को देता है (**मघा कामेन श्रवसो महः**) और जो भक्त के लिए इच्छानुसार महान् गुण देता है (**ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वम्**) तुम अपने पालक गुणों के द्वारा भक्तों की पापों से रक्षा करो (**शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य**) हे बलिष्ठ! सहस्रों या असंख्य पालन-पूरण करनेवाले कार्यों से आप अपने जनों की रक्षा करते हैं।

भावार्थ—मन्त्र में वर्णन किया गया है कि श्रवण-कीर्तन करनेवाले अपने भक्तों के लिए परमात्म-देव उनकी कामना के अनुसार पूजनीय धर्मानुसार उपार्जित धन देते हैं। केवल धन ही नहीं देते, किन्तु मानसिक पापों का नाश करके दैवी सम्पत्ति भी देते हैं। बस, केवल उसकी उपासना की आवश्यकता है।

[८७]

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत्॥

—ऋ० ८।१।२०

पदार्थ—(**मा त्वा सोमस्य गल्दया**) मैं आपको शुभ कर्म के बल से या वाणी द्वारा (**सदा याचन्नहं गिरा**) सदा ही आपकी

याचना करता हुआ **(भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधम्)** भर्ता तथा भक्तों द्वारा अन्वेषणीय आपको यज्ञों में कुपित न करूँ **(क ईशानं न याचिषत्)** कौन आपकी याचना नहीं करता ?

भावार्थ—प्रत्येक समय में परमात्मा की याचना करने से उसके कुपित होने की भक्त को सम्भावना है, अतः भक्त कहता है—महाराज! ऐसा कौन है जो आपसे याचना नहीं करता, अर्थात् सब आपके याचक हैं।

[८८]

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदेहि ष्मा ददाति नः॥

—ऋ० ८।१।२१

पदार्थ—**(मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा)** वह परमात्मा आनन्द तथा उग्र बल से युक्त है **(विश्वेषां तरुतारम्)** सब भक्तों का तारनेवाला है। **(मदच्युतम्)** वह सर्वदा आनन्द से युक्त है। **(मदे हि ष्मा ददाति नः)** वह हमको आनन्द में स्थापित करे।

भावार्थ—वह परमात्मा बलवान्, आनन्द से युक्त है, सब संसार को तारनेवाला तथा हमको वही आनन्द में स्थापित करनेवाला है।

[८९]

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः॥

—ऋ० ८।१।२२

पदार्थ—**(शेवारे वार्या)** आनन्दयुक्त उत्सवों में श्रेष्ठ गुणों को **(पुरु देवो मर्ताय दाशुषे)** वह देव अपने भक्त के लिए **(सुन्वते च स्तुवते च रासते)** वह उद्योगी के लिए, स्तुति करनेवाले के लिए बहुत देता है **(विश्वगूर्तो अरिष्टुतः)** सबका गुरु है तथा शत्रुओं से भी स्तुति किया जाता है।

भावार्थ—वह परमात्मा आनन्ददायक उत्सवों में अपने भक्तों को बहुत ही सुन्दर गुण वा कर्म प्रदान करता है। दानी, स्तुतिकर्ता, याचक, उद्योगी सबको तारता है। उसके शत्रु भी उसके भक्तों की वा प्रभु की स्तुति करते हैं।

[९०]

**न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ॥**

—ऋ० ५।५४।७

पदार्थ—(**न स जीयते मरुतो न हन्यते**) वह जीता नहीं जाता, न उसका हनन होता है (**न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति**) क्षीण, व्यथित वा हिंसक नहीं है (**नास्य राय उप दस्यंति नोतयः**) प्रभु के धन क्षीण नहीं होते, उसकी रक्षाएँ कभी समाप्त नहीं होती। (**ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ**) केवल उसकी तुम स्तुति करो।

भावार्थ—परमात्मा न मारा जाता है, न जीता जाता है, न व्यथित वा नष्ट होता है। उसके धन के भण्डार अक्षय हैं। उसकी रक्षाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं। तुम केवल उसकी स्तुति करो।

[९१]

**विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम्॥**

—ऋ० ५।४।९

पदार्थ—(**विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः**) हे जातवेद! हमारे दुष्ट कर्म, व्यसन वा गुणों से (**सिंधु न नावा दुरितानि पर्षि**) जैसे नाव सागर से पार तारती है, वैसे पार उतार दो। (**अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानः**) सब वेगवान् पदार्थों से युक्त आपको नमस्कार से ग्रहण करते हुए (**अस्माकं बोध्यविता तनूनाम्**) आप हमारे बोध करानेवाले वा रक्षक हैं।

भावार्थ—जैसे नौका में बैठकर मनुष्य सागर से पार होते हैं वैसे ही नाथ! हम आपका आश्रय लेकर सब दुःखों से तथा अवगुणों से अपने आपको पार करें।

[९२]

**यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति॥**

—ऋ० ५।४।११

पदार्थ—(**यस्मै त्वं सुकृते जातवेदः**) प्रभो! जिस धर्मात्मा के लिए (**लोकमग्ने कृणवः स्योनम्**) आप आनन्द देनेवाला लोक

करते हैं। **(अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तम्)** घोड़ेवाला, वीरों वा पुत्रोंवाला बनाते हो वह **(रयिं नशते स्वस्ति)** सम्पूर्ण धन वा कल्याण को प्राप्त करता है।

भावार्थ—जिस धर्मात्मा पर आपकी कृपा होती है, वह गौ, घोड़े, वीर, धन, सुन्दर लोक, कल्याण आदि सब सामग्रियों को प्राप्त करता है।

[९३]

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन्।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम्॥

—ऋ० ५।४।१

पदार्थ—**(त्वामग्ने वसुपतिं वसूनाम्)** हे वसुपते! **(प्र मन्दे अध्वरेषु राजन्)** हे प्रकाशस्वरूप! परोपकाररूपी यज्ञों में आप हमको आनन्दित कीजिए। **(त्वया वाजं वाजयन्तो जयेम)** आपकी कृपा से अन्न, विज्ञानादि को सर्वत्र विस्तार करते हुए जीतें **(अभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम्)** दुर्गुणों की सेना को जो मनुष्यों में वर्त्तमान है आपकी कृपा से जीतें।

भावार्थ—आप धनों के स्वामी हैं। सर्वत्र हमको आनन्द दीजिए। जो दुर्गुणों की सेना है, आपकी कृपा से हम उसको पराजित करें।

—०—

नियोग और पौराणिक धर्मी

अनुवादक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्दजी ने अपने सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में वेद-शास्त्रों के प्रमाण देकर नियोग का विधान किया है। इसको देखकर पौराणिक दम्भी भोली-भाली जनता में अनेक प्रकार के भ्रम फैलाते हैं और कहते हैं कि आर्यसमाज की नियोग की शिक्षा वेद-शास्त्र के विरुद्ध, पतिव्रतधर्म का नाश करनेवाली और भ्रष्टाचार फैलानेवाली है। इन पौराणिकों की यह बात कहाँ तक सत्य है, इसकी इस ट्रैक्ट में विस्तार से पड़ताल की जाती है।

स्वामी दयानन्दजी महाराज सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

प्रथम तो मनुष्य को आजीवन ब्रह्मचारी रहकर अपना जीवन ईश्वरभक्ति और परोपकार में लगा देना चाहिए। यदि कोई आजन्म ब्रह्मचारी न रह सके तो धर्मपूर्वक विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। विवाह करने के पश्चात् स्त्री वा पुरुष का यदि किसी कारण से वियोग हो जाए तो ब्रह्मचारी रहकर अपने जीवन को परोपकार में लगा देवे। यदि किसी मनुष्य के घर सन्तान न हो और वह अपने वंश को चलाना चाहे तो किसी दूसरे व्यक्ति का लड़का गोद में लेकर दत्तक पुत्र बना ले। यदि कोई इस बात को भी पसन्द न करे तब वह नियोग करके अपने वंश को चलाने के लिए सन्तान उत्पन्न कर ले। यह नियोग आपत्काल का धर्म है।[१]

स्वामीजी के उपर्युक्त भाव को चार भागों में विभाजित कर सकते हैं—

प्रथम यह कि मनुष्य विवाह ही न करे, आजीवन ब्रह्मचारी रहे। दूसरा, विवाह होने के पश्चात् यदि स्त्री व पुरुष का वियोग हो जाए तो दूसरा विवाह न करे, ब्रह्मचारी रहकर अपने जीवन को परोपकार में लगा दे। तीसरे, यदि सन्तान न होवे तो लड़का गोद ले ले। चौथा,

---

१. यह शब्दशः स्वामीजी की भाषा नहीं है। स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है, उसका अभिप्राय यही है।

यदि कोई गोद भी न लेना चाहे तो नियोग करके सन्तान उत्पन्न कर ले।

यह नियोग की वास्तविक स्थिति है। इसपर पौराणिकों की ओर से जो शङ्काएँ की जाती हैं, उनका उत्तर नीचे दिया जाता है—

शङ्का—क्या वेदों में ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि मरने के पश्चात् पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष नियोग व पुनर्विवाह के द्वारा प्राप्त करना चाहए।

उत्तर—ऐसा एक प्रमाण नहीं, प्रत्युत वेदों में अनेक प्रमाण आते हैं, यहाँ एक प्रमाण उद्धृत किया जाता है—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि॥

—ऋ० १०.१८.८

अर्थ—हे स्त्रि! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़कर दूसरे पति से नियोग करके सन्तान उत्पन्न करके अपने पहले पति के वंश को चला।

इस मन्त्र में नियोग का स्पष्ट विधान है। सायणाचार्य तैत्तिरिय आरण्यक प्रपाठक ६ में इस मन्त्र का अनुवाद करते हुए लिखता है कि स्त्री को मरे हुए पति के पास से उठाकर यह कहना चाहिए कि तुम इस मरे हुए पति की आशा को छोड़ दो और इन जीवित लोगों में से किसी एक को चुनकर इसके साथ पुनर्विवाह करके सन्तान पैदा करो।

स्वामी दयानन्दजी महाराज ने इस मन्त्र से नियोग के द्वारा सन्तान पैदा करना लिखा है और सायणाचार्य ने पुनर्विवाह द्वारा। मरने के पश्चात् दूसरा पति करना दोनों आचार्यों का वेद-सम्मत है।

शङ्का—क्या स्वामी दयानन्दजी से पूर्व किसी वैदिक ग्रन्थ में किसी आचार्य ने इस मन्त्र को नियोग में लगाया है। यदि लगाया है तो प्रमाण दो, अन्यथा स्वामीजी का यह कल्पित अर्थ मानने योग्य नहीं।

उत्तर—ऋग्विधान, रोमन लिपि में बर्लिन में प्रकाशित, के पृष्ठ २५ पर लिखा है—अपने भाई की स्त्री को, सन्तान के लिए, इसके पति के मरने पर देवर 'उदीर्ष्व नारि' इस वेदमन्त्र के प्रमाण के अनुसार ऋतुकाल में नियोग द्वारा एक पुत्र उत्पन्न कर ले।

यहाँ पर जिस मन्त्र का उद्धरण नियोग के विषय में श्री स्वामीजी महाराज ने दिया है, उसी का उद्धरण दिया गया है।

महाभारत आदिपर्व अध्याय १०३ में भीष्मपितामह माता सत्यवती को समझाते हुए कहते हैं कि जब परशुराम ने क्षत्रियों को मार डाला था तब क्षत्रियों की स्त्रियों ने वेदपाठी ब्राह्मणों से नियोग करके अपने वंशों को चलाया। इस प्रकरण में भीष्मपितामह ने इसी स्वामी दयानन्दजी वाले वेदमन्त्र का प्रमाण दिया है और लिखा है—

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् ॥

अर्थात् नियोग से जो सन्तान उत्पन्न की जाती है, वह उसी पति की मानी जाती है, जिसने पहले नियुक्त स्त्री से विवाह किया था। यह वेद का निश्चय है।

इन उपर्युक्त ऋग्विधान और महाभारत के प्रमाणों से सिद्ध है कि स्वामी दयानन्दजी महाराज ने ही इस मन्त्र को नियोगपरक लगाकर नया आविष्कार नहीं किया, प्रत्युत पहले भी इसे नियोगपरक लगाया जाता रहा है। स्वामीजी ने इसका समर्थन किया है।

शङ्का—स्वामीजी ने जो एक स्त्री के लिए अनेक पति लिखे हैं, यह बात अनुचित, युक्तिविरुद्ध, वेद-शास्त्र और इतिहास के विरुद्ध है। इससे पतिव्रतधर्म नष्ट हो जाता है।

उत्तर—स्वामीजी के लेख का यह अभिप्राय कभी नहीं हो सकता कि एक पति के मरने के पश्चात् स्त्री को अनेक पति अवश्य करने चाहिए, प्रत्युत यह एक अधिकार का प्रश्न है। उदाहरण के रूप में एक मुस्लिम स्त्री एक के पश्चात् दूसरे पति को तलाक देते हुए नियमानुसार जितने भी चाहे सौ, दो सौ पति कर सकती है। इसके लिए कोई सीमा नहीं है। इसी प्रकार ईसाइयों में भी तलाक के पश्चात् उसके लिए खुली छुट्टी है, जितने पति चाहे कर ले। हमारे इस भूमण्डल में मनुष्यों की जितनी भी जातियाँ रहती हैं, उन सबमें बहुत-से पति करने का रिवाज है और सिद्धान्ततः सभ्य जातियों में ऐसी कोई रुकावट नहीं है कि वह कितने पति करे। इससे यह सिद्ध है कि मुसलमान, यहूदी, ईसाई आदि सब बहु-पति के सिद्धान्त को मानते हैं। अब रही पौराणिकों की बात। इसके लिए नीचे वेद-शास्त्रों के प्रमाण दिये जाते हैं।

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५ मन्त्र ४० में लिखा है कि स्त्री का जो पहला पति होता है, उसका नाम सोम, दूसरे का गन्धर्व, तीसरे का अग्नि, और शेष पतियों का नाम मनुष्य होता है। इस मन्त्र में पति के मरने के पश्चात् स्त्रियों को स्पष्ट ही अनेक पतियों का

अधिकार दिया गया है।

प्रश्न—इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है जैसाकि आपने किया है, प्रत्युत इसका अर्थ यह है कि सोम देवता कन्या को सौम्यता आदि गुण देता है। गन्धर्व उसको स्वर आदि देता है और अग्निदेवता रूप देता है फिर मनुष्य उससे विवाह करता है और वही उसका पति होता है। सोम आदि उसके पति नहीं होते, किन्तु रक्षक होते हैं। [इस मन्त्र का यही अर्थ पं० ज्वालाप्रसाद, कालूराम और अखिलानन्द आदि पौराणिक पण्डितों ने किया है]।

समाधान—अत्रिस्मृति में इसी वेदमन्त्र की जो व्याख्या की है, उसे चाहे सर्वांश में हम आर्यसमाजी स्वीकार नहीं करते, परन्तु पौराणिक उससे कभी भी इन्कार नहीं कर सकते। वहाँ लिखा है—

स्त्री जारकर्म से दूषित नहीं होती, वेद का विद्वान् दूषित नहीं होता, बहता हुआ पानी मल आदि गन्दी वस्तुओं से दूषित नहीं होता। अग्नि में कोई भी पदार्थ डाल दो, वह उससे दूषित नहीं होती, क्योंकि वेद में लिखा है कि पहले स्त्रियों से सोम, गन्धर्व और अग्नि देवता भोग करते हैं और पीछे मनुष्य उनको भोगते हैं। यदि कोई स्त्री किसी दूसरे के साथ अपने आप चली जाए अथवा कोई बलात् उसे ले-जाए और उसे गर्भ रह जाए तो वह अशुद्ध नहीं होती, क्योंकि बच्चा उत्पन्न होते ही वह पुनः शुद्ध हो जाती है। उसे पुनः अपने घर में रख लेना चाहिए।[१]

अत्रिस्मृति में [जिसे पौराणिक प्रामाणिक मानते हैं] तो स्त्री को इतनी छुट्टी दे दी गई है कि वह जितने चाहे पुरुषों से सम्बन्ध करके सन्तानें पैदा कर ले, कभी दूषित होती ही नहीं।

---

१. अत्रिस्मृति के मूल श्लोक ये हैं—

नहि स्त्री दुष्यति जोरण न विप्रो वेदपारगः।
नाऽऽपो मूत्रपुरीषेण नाग्निर्दहनकर्मणा॥ १॥
बलात्कारोपभुक्तां वा चौरहस्तगताऽपि वा।
स्वयं चापि विपन्ना वा यदि वा विप्रवादिता॥ २॥
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पकालमुपासीत्वा ऋतुकालेन शुध्यति॥ ३॥
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः।
भुज्यन्ते मानुषैः पश्चान्नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्॥ ४॥

वह मन्त्र जिसे श्री स्वामीजी महाराज ने अनेक पतियों से नियोग करने में लगाया है, यहाँ पर भी उस मन्त्र का अर्थ अनेक पतियों से सम्बन्ध करने में इस स्मृतिकार ने लगाया है।

महाभारत में एक कथा आती है कि विश्वामित्र ने गालव को विद्या पढ़ाई। विद्या पढ़ने के पश्चात् गालव ने कहा—"महाराज! आप मुझसे गुरुदक्षिणा लीजिए।" विश्वामित्र ने कहा—"मुझे आठ सौ श्यामकर्ण अश्व=घोड़े ला दो।" गालव राजा दिवोदास के पास गया और उससे आठ सौ श्यामकर्ण अश्व माँगे। राजा ने कहा—'मेरे पास घोड़े तो नहीं है। मेरी माधुरी नाम की कन्या को ले-जाइए।' गालव ने उस कन्या को लेकर तीन राजाओं को दिया। उन तीनों राजाओं ने एक-एक पुत्र उस कन्या से उत्पन्न किया। तत्पश्चात् गालव कन्या और छह सौ घोड़ों को लेकर विश्वामित्र के पास गया और जाकर कहा—"गुरुदेव! ये छह सौ घोड़े ले-लो और दो सौ घोड़ों के बदले इस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न कर लो।" विश्वामित्र ने कहा—"गालव! तुमने बड़ी भूल की। यदि तू पहले ही इस कन्या को मेरे पास लाता तो मैं अकेला ही इससे चार पुत्र उत्पन्न करता"। यह कहकर विश्वामित्र ने उस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उस कन्या को गालव के हाथ वापस कर दिया। तब माधुरी के पिता दिवोदास ने उसका स्वयंवर रचा दिया।

मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि क्या ये माधुरी के अनेक पति नहीं हैं। जब चार सन्तान पैदा करने के पश्चात् भी माधुरी का स्वयंवर होता है तब फिर स्वामी दयानन्दजी ने स्त्री को पति के मरने के पश्चात् अनेक पति का अधिकार दिया है तो इसपर आक्षेप क्यों?

इसके अतिरिक्त पुराणों में तो यहाँ तक आता है कि द्रौपदी के पाँच पति [पति के मरने के पश्चात् नहीं, प्रत्युत एक ही समय इकट्ठे ही थे], वारक्षी के [एक ही समय में] दस पति थे और जटला के एक ही समय में सात पति थे। कुन्ती ने कर्ण को उत्पन्न करने के पश्चात् पाण्डु से विवाह किया और सत्यवती ने व्यास को उत्पन्न करने के पश्चात्, जिसको तुम अट्ठारह पुराणों का कर्त्ता और ईश्वर का अवतार मानते हो, राजा शन्तनु से विवाह किया। इन तथ्यों के होते हुए तुम किस मुँह से स्वामीजी को पतिव्रतधर्म को नष्ट करने की आज्ञा देनेवाला कहते हो? तुम्हें लज्जित होना चाहिए।

स्वामी दयानन्द तो पति के मर जाने पर स्त्री को ब्रह्मचारिणी

रहने की आज्ञा देते हैं, फिर लड़का गोद लेने की आज्ञा और तीसरे स्थान पर यदि वह अपनी ही सन्तान उत्पन्न करना चाहे तो नियोग की आज्ञा देते हैं।

शङ्का—स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है—यदि किसी स्त्री का पति जीवित अवस्था में नपुंसक हो तो वह अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि वह नियोग करके सन्तान उत्पन्न कर ले। यह कितनी लज्जा की बात है। वेद-शास्त्रों में कहीं भी ऐसा विधान नहीं आता कि पति के जीते जी ही स्त्री दूसरे पुरुष से सम्बन्ध करे।

उत्तर—मुसलमान, ईसाई और वर्त्तमान समस्त सभ्य जातियों में पति के जीते जी स्त्रियाँ दूसरे पुरुषों से सम्बन्ध करती हैं। जब एक व्यक्ति एक स्त्री को तलाक़ दे देता है तब वह अपने पुत्र-पुत्रियों और पति के होते हुए भी प्रत्यक्ष दूसरे पुरुष से विवाह करके सन्तानें उत्पन्न करती हैं और वे जातियाँ इस बात को किसी प्रकार भी लज्जा की बात नहीं समझतीं। यदि कोई कहे कि उसने तो तलाक़ दे दी और दूसरे से नियमपूर्वक विवाह हो गया तो मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या वे स्त्रियाँ बदल गईं या वह पुरुष बदल गया अथवा उसके पुत्र-पुत्रियाँ बदल गईं। वह तो उनके समक्ष दूसरे से सन्तान पैदा कर रही है।

यदि आप कहें कि उनके धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार यह उचित है तो हम भी कहेंगे कि नियोग हमारा धार्मिक सिद्धान्त है, जिसके अनुसार जब पुरुष सन्तान-उत्पत्ति के अयोग्य हो और स्त्री सन्तान उत्पन्न करना चाहे तब उसे आज्ञा है कि वह नियोग से सन्तान उत्पन्न करे। शेष रही पौराणिकों के घर की बात! इन लज्जाहीनों को लज्जा आनी चाहिए। इनके ग्रन्थों में सैकड़ों ऐसे उदाहरण आते हैं, जहाँ पति के जीते जी स्त्रियों ने दूसरे पुरुषों से सम्बन्ध करके सन्तानें उत्पन्न कीं। कुछ उदाहरणों का अवलोकन कीजिए।

१. वायुपुराण पृष्ठ ३७३ पर लिखा है कि राजा बलि ने अपनी स्त्री सुदेष्णा को दीर्घतमा ऋषि के पास भेजा कि तुम उससे नियोग करके सन्तान उत्पन्न करो। दीर्घतमा ऋषि ने नग्न होकर अपने सारे शरीर पर दही और नमक मल लिया, फिर उस रानी से कहा कि मेरे शरीर को चाटो। रानी ने सारे शरीर को चाटा, परन्तु उसकी गुदा को नहीं चाटा। दीर्घतमा ने उससे नियोग किया और उससे कहा—'तुम्हारे घर में अत्युत्तम पुत्र उत्पन्न होगा, परन्तु उसको अपानवायु

नहीं आएगा, क्योंकि तुमने मेरी गुदा को नहीं चाटा।'

पौराणिको! आर्यसमाज के वैदिक नियोग पर आक्षेप करने वालो! कहो, यह नियोग करने का तुम्हारा कैसा उत्तम ढंग है?

२. भागवत स्कन्ध ९ में लिखा है कि श्री रामचन्द्र के कुल में सौदास राजा के घर में कोई सन्तान नहीं थी। उसने वसिष्ठ को आज्ञा दी। वसिष्ठ ने उसकी रानी मदयन्ती में गर्भाधान करके सन्तान पैदा की।

३. इसी प्रकार इसी भागवत के नवम स्कन्ध में लिखा है कि राजा भरत के, जिससे पाण्डवों का वंश चला, कोई पुत्र नहीं था। उसने भरद्वाज नाम का पुत्र गोद लिया। इस भरद्वाज की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है कि उतथ्य की स्त्री ममता से बृहस्पति ने, जो देवताओं के गुरु हैं, अपने भाई के जीते जी सम्बन्ध किया। इससे भरद्वाज पुत्र उत्पन्न हुआ।

४. ऋग्वेद प्रथम मण्डल के एक मन्त्र की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य लिखते हैं—कलिङ्ग देश के राजा के घर में कोई लड़का नहीं था। उसने अपनी रानी को दीर्घतमा के पास भेजा। दीर्घतमा ने उससे भोग किया और पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम कक्षीवान् ऋषि हुआ। जो अनेक वेदमन्त्रों का द्रष्टा हुआ।

५. शिवजी के जीते जी पार्वती ने गणेश पैदा किया। अब चाहे पौराणिक मैल का पुतला कहें, परन्तु स्पष्ट बात यह है कि वह नियोग से उत्पन्न हुआ था।

६. अपने पतियों के विद्यमान होते हुए भी सोलह सहस्र गोपियों ने कृष्णजी से सम्बन्ध करके दस लाख पुत्र उत्पन्न किये [देखो, शिवपुराण]।

पौराणिको! कहो, इन घटनाओं के होते हुए तुम किस मुँह से आक्षेप करते हो कि पति के जीते जी नियोग नहीं होना चाहिए। हम पाठकों को इतना बतला देना चाहते हैं कि हम पुराणों के सब गपोड़ों को नहीं मानते, परन्तु पौराणिक पुराणों की ऐसी बातों से इन्कार नहीं कर सकते।

शङ्का—स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "दीर्घ रोगी मनुष्य की स्त्री अथवा स्त्री के गर्भवती होने पर पुरुष से न रहा जाए तो वह नियोग करके सन्तान पैदा करे, परन्तु वेश्यागमन व व्यभिचार आदि दुराचार कभी न करे।"

यह लेख किता बेहूदा है कि स्त्री गर्भवती है और पुरुष सन्तान पैदा करने के लिए नियोग करता फिर रहा है। क्या कभी किसी ने ऐसा किया है ? क्या मनुष्य में इतना भी धैर्य नहीं कि वह एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रह सके।

उत्तर—जिन जातियों में अनेक विवाह एक साथ करके अनेक स्त्रियाँ रखने की प्रथा है, वे इस बात पर कभी-भी आक्षेप नहीं कर सकते। पौराणिक धर्मियों ने राजाओं, महाराजाओं को खुली छूट दे रक्खी है कि वे जितने चाहें, उतने विवाह कर लें और जितनी चाहें उतनी दासियाँ रक्खें। यहाँ तक कि पुराणों में कृष्णाजी के सोलह सहस्त्र से अधिक रानियाँ लिखी हैं।

मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि कृष्णजी ने इतने विवाह क्यों किये। एक विवाह क्यों नहीं किया जैसाकि श्रीरामचन्द्रजी ने किया था [यद्यपि आर्यसमाजी यह कभी नहीं मानते कि श्रीकृष्णजी की इतनी स्त्रियाँ थीं]। इसका उत्तर पौराणिक इसके अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकते कि वे एक ही स्त्री पर सन्तुष्ट नहीं रह सकते थे।

मनुष्य यदि अपनी आत्मा की दुर्बलता को सोचे तो उसे पता लगेगा कि स्त्री के गर्भवती होने पर लोग वेश्यागमन आदि सैकड़ों प्रकार के पाप और दुराचार करते हैं। बहुत-से तो गर्भवती स्त्रियों से सम्बन्ध रखकर माता और बच्चे दोनों को हानि पहुँचाते हैं। मैं पूछता हूँ कि जो लोग एक समय में अनेक स्त्रियाँ रखते और उनसे सम्बन्ध रखते हैं, वह दुराचार क्यों नहीं ? यदि उन्होंने नियमानुसार विवाह किया है तो हम भी यही कहेंगे कि नियोग भी नियमानुसार और प्रकट रूप में किया जाता है, इसलिए जैसे आपके मत में अनेक विवाह वैध हैं, वैसे ही हमारे मत में आपत्काल में नियोग ठीक है।

वास्तविक बात यह है कि स्वामीजी के इस लेख का यह अभिप्राय कभी नहीं है कि दीर्घरोगी की स्त्री अथवा गर्भवती स्त्री का पति नियोग अवश्य करे। उनका आदर्श तो इतना ऊँचा है कि वे सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में लिखते हैं कि स्त्री-पुरुष ऋतुगामी रहें। अपनी स्त्री के पास भी मनुष्य ऋतुकाल के अतिरिक्त न जाए और गर्भ हो जाने पर दोनों ब्रह्मचारी रहें, परन्तु मनुष्य में दुर्बलता विद्यमान है, इस दुर्बलता की अवस्था में आज्ञा है कि मनुष्य नियोग करे, परन्तु व्यभिचार और वेश्यागमन आदि के द्वारा वीर्य का नाश न करे।

आजकल भी पौराणिकों में ऐसी अवस्थाओं में स्त्रियों के होते हुए अनेक विधवाओं से सम्बन्ध होते हैं और छुपे-छुपे सहस्रों गर्भ-हत्याएँ की जाती हैं।

शेष रहा न रहे जाने के प्रश्न के सम्बन्ध में दुर्बलता का आक्षेप। इसके लिए पौराणिक तो कदापि शङ्का नहीं कर सकते, क्योंकि देवी-भागवत में लिखा है कि जब सत्यवती पराशर को नदी के पार छोड़ने गई तब पराशरजी ने सत्यवती के बार-बार रोकने पर भी नौका में ही उससे सम्बन्ध करके व्यास को पैदा किया।

इसी प्रकार पुराणों में आता है कि बृहस्पति ने अपनी गर्भवती भौजाई ममता से सम्बन्ध किया।

मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि पराशर और बृहस्पति ने यह कार्य क्यों किया ? इसका इसके अतिरिक्त और क्या उत्तर हो सकता है कि उनसे रहा नहीं गया। मनुष्य रोटी इसलिए खाता है कि उससे रहा नहीं जाता। पानी इसलिए पीता है कि उससे रहा नहीं जाता। विवाह इसलिए करता है कि उससे रहा नहीं जाता। संसार के अधिकांश कार्य इसीलिए किये जाते हैं कि हम उनके बिना रह नहीं सकते। बात केवल इतनी होती है कि जो काम सामाजिक बन्धनों को न तोड़कर सामाजिक नियमों के अनुसार, जिन नियमों से हमारी सामाजिक, राजनैतिक, शारीरिक और आत्मक उन्नति हो, उनके अनुसार किये जाएँ, वे धर्म हैं और जो उनके विपरीत किये जाते हैं, वे पाप हैं।

महाभारत में यह स्पष्ट लिखा है कि गान्धारी के गर्भवती होने पर धृतराष्ट्र ने एक वैश्य स्त्री से नियोग करने युयुत्सु पुत्र पैदा किया था और महाभारत में इसे कहीं भी बुरा नहीं बताया गया।

पौराणिकों की ये ही मोटी-मोटी शङ्काएँ हैं, जिनके बल-बूते पर वे उछला करते हैं। इनका उत्तर मैंने ऊपर दे दिया है।

अब मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि तुम यह बताओ कि पुराणों में यह जो लिखा है कि राजा सत्यकृति ने सरकण्डे से सम्बन्ध करके कृपाचार्य और कृपी, जो द्रोणाचार्य की पत्नी थी [जिससे अश्वत्थामा उत्पन्न हुआ] को पैदा किया। क्या यह तुम्हारा सरकण्डे से पौराणिक नियोग करना नहीं है ? सूर्य ने घोड़ी की नाक में सम्बन्ध करके अश्विनीकुमारों को पैदा किया, इस पौराणिक नियोग का क्या नाम रक्खोगे ? ब्रह्मा ने हवनकुण्ड से सम्बन्ध करके अट्ठासी हज़ार

बालखिल्य ऋषि उत्पन्न किये, इसे क्या नाम दोगे? एक ऋषि ने मेंढ़की के सम्बन्ध से माण्डूक ऋषि को पैदा किया। कहीं हिरनी, कहीं मछली, कहीं शुकी तो कहीं उल्लूनी से सम्बन्ध हो रहा है।

पौराणिको! तुम्हें लज्जित होना चाहिए। आर्यसमाज तो नियमानुसार वेद-शास्त्रों के आधार पर आपत्काल में नियोग से सन्तानोत्पत्ति बताता है, परन्तु तुमने तो ऋषियों-मुनियों को यहाँ तक कलङ्कित किया है कि पशु, पक्षी, वृक्ष, लक्कड़ आदि सब वस्तुओं से ऋषियों का सम्बन्ध कराकर उनसे सन्तान उत्पन्न करवा दी। उनको क्या कहोगे? दुराचार तो कह नहीं सकते। हमारे विचार में तुम्हें इसका नाम पौराणिक नियोग रखना चाहिए।

लेख लम्बा हो रहा है, इसलिए अधिक विस्तार न देता हुआ मैं संसार के सब पौराणिकों को चैलेञ्ज देता हूँ कि यदि तुममें साहस है तो मेरे साथ नियोग पर शास्त्रार्थ करो। मेरा पक्ष यह होगा कि नियोग वेद, स्मृति-ग्रन्थों और इतिहास के अनुकूल है और उनमें भरा पड़ा है। कदाचित् ही कोई स्मृति-ग्रन्थ व इतिहास-ग्रन्थ हो, जिसमें नियोग का विधान न हो और तुम्हारा पक्ष यह होगा कि नियोग वेद, स्मृति और इतिहास के विरुद्ध है। नियोग के विरुद्ध विष-वमन करनेवाले पौराणिक पण्डितों में से मैं देखता हूँ कि कौन-सा पण्डित मेरे इस चैलेञ्ज को स्वीकार करके मेरे साथ शास्त्रार्थ करता है।

ओं शम्

पौराणिक ईश्वर की पड़ताल

अनुवादक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रत्येक आस्तिक मत का आधार ईश्वर और उसका ज्ञान होता है। जिस मत में इन दोनों बातों का उत्तम रीति से वर्णन हो, वही मत उत्तम माना जा सकता है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में परमेश्वर का अत्युत्तमता से निरूपण किया है, जो इस प्रकार है—

"ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।"

इस नियम में परमात्मा के सम्बन्ध में कोई भी ऐसी मुख्य बात नहीं है जो छूट गई हो। परमात्मा के इन गुणों को मानने पर उसमें कोई भी दोष नहीं आ सकता और न ही किसी विवाद के लिए कोई अवकाश हो सकता है। हम यहाँ आर्यसमाज के द्वारा माने हुए परमात्मा का वर्णन करना चाहते हैं, जिससे पाठकों को भली प्रकार पता लग जाए कि पौराणिक परमात्मा क्या है?

सबसे पहले देखना यह है कि पुराणों का परमात्मा कौन-सा है, क्योंकि प्रत्येक पुराण में परमेश्वर का पृथक्-पृथक् वर्णन आता है। उदाहरण के रूप में श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ में ब्रह्माजी कहते हैं—

यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः॥[1]

हे पुत्र! गुण-कर्मों से उस विष्णु भगवान् की वाणी में बँधे हुए ब्रह्मा, शिव आदि उसी की पूजा करते हैं। जैसे दो पाँववाले मनुष्य के लिए रस्सी से नाथा हुआ पशु काम देता है, ऐसी ही हमारी अवस्था है।

इस श्लोक में इस बात को अच्छी प्रकार बतला दिया गया है

१. भाग० ५।१।१४

कि लक्ष्मीपति विष्णु ही परमात्मा है, दूसरे ब्रह्मा, शिवजी आदि उसके दास हैं।

मोहिनी की कथा और शिवजी के मुख से विष्णु की प्रशंसा

भागवत क्योंकि वैष्णवों का ग्रन्थ है और वह विष्णु को परमात्मा सिद्ध करने के लिए बनाया गया है, इसलिए इस पुराण में जितनी भी कथाएँ दी गई हैं, वे सब विष्णु की बड़ाई के लिए और अन्य देवताओं की निन्दा के लिए हैं। इसमें स्थान-स्थान पर दूसरे देवताओं से विष्णु की प्रशंसा कराई गई है। उदाहरण के लिए भागवत स्कन्ध ८, अध्याय १२ में लिखी मोहिनी अवतार की कथा का अवलोकन कीजिए। कथा इस प्रकार है—

विष्णुजी अत्यन्त सुन्दरी स्त्री मोहिनी का रूप धारण करके गेंद उछालते हुए हाव-भाव, चटक-मटक से शिवजी के पास आये। जब शिवजी ने मोहिनी को देखा तब काम से ऐसे उन्मत्त हो गये कि अपने-आपको वश में नहीं रख सके। जैसे मस्त हाथी हथनी के पीछे दौड़ता है, वैसे ही वे मोहिनी के पीछे दौड़े और उसे पकड़ लिया। मोहिनी अपने को छुड़ाकर भाग निकली। उस समय शिवजी की दशा क्या थी, इसके लिए निम्न श्लोक देखिए—

स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा
नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद।[१] इत्यादि

मोहिनी के देखने से शिवजी इतने बेचैन हो गये कि वे अपनी आत्मा, पार्वती और जितने उनके सेवक थे, उन सबको भूल गये।

जहाँ कहीं भी ऋषि-मुनि, वन-पर्वत और तालाब थे, वहीं सब स्थानों पर शिवजी ने मोहिनी के पीछे दौड़ लगाई। जिससे वे स्खलित हो गये। उनके वीर्य से सोने, पारे आदि की कानें बन गईं। अन्त में जब उनकी यह दशा हो गई तब हारकर बैठ गये और पार्वती से कहने लगे—

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये यया वशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥[२]

हे पार्वती! तुमने देखा उस परमपुरुष, परमदेवता अजन्मा भगवान्

---
१. भागवत ८.१२.२२
२. वही ८.१२.४३

विष्णु की कैसी माया है ? जब उसकी माया को देखकर मैं जो इतना बड़ा और स्वतन्त्र हूँ, मोहित हो गया, तब परतन्त्र दूसरे देवताओं का तो कहना ही क्या है।

इस कथा को ध्यानपूर्वक पढ़ने से इस बात का भली-भाँति ज्ञान हो जाता है कि यह झूठी कथा केवल इस बात को सिद्ध करने के लिए घड़ी गई है कि विष्णु परमात्मा है और शेष शिवजी आदि देवता उसके दास हैं। इस कथा में शिवजी की जो दुर्दशा की गई है, उसे देखकर शिवजी का परमात्मा होना तो दूर रहा, वह साधारण मनुष्य भी सिद्ध नहीं होता।

कई पौराणिक पण्डित यह कह दिया करते हैं कि इस कथा में अलङ्कार है, अर्थात् शिवजी या रुद्र नाम अग्नि का है और सोना-चाँदी आदि धातुएँ अग्नि से ही बनती हैं, इस बात का वर्णन इस कथा में किया गया है, परन्तु यह बात झूठी है। यदि इस बात को मान लिया जाए तो पौराणिकों के चौबीस अवतारों के स्थान पर तेईस अवतार ही रह जाएँगे, चौबीसवाँ विष्णु का मोहिनी अवतार उड़ जाएगा। इसके साथ ही शिवजी, पार्वती और विष्णु आदि भी न रहेंगे जो पौराणिकों को कभी भी अभीष्ट नहीं है।

पद्मपुराण में विष्णु की महत्ता

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में लिखा है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
सममन्यैर्निरीक्षेत स पाषण्डी भवेत् सदा॥[१]

अर्थ—अज्ञान से मोहित जो मनुष्य भगवान् विष्णु को ब्रह्मा, शिवजी आदि देवताओं के समान समझता है, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी को समान मानता है, वह पाखण्डी है।

यहाँ कितने स्पष्ट शब्दों में विष्णु को परमात्मा और ब्रह्माजी आदि को नीचा बताया है। यहाँ तक ही नहीं, प्रत्युत जो विष्णु को न माने, दूसरे अन्य देवताओं को माने उसके लिए यह दण्ड लिखा है—

किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽ प्यवैष्णवाः।
न स्पृष्टव्या न वक्तव्या न द्रष्टव्याः कदाचन॥[२]

अर्थ—जो ब्राह्मण विष्णु को नहीं मानते, उन्हें छूना नहीं चाहिए,

१. पद्म० उत्तर २३५।९-१०
२. वही २३५।११-१२

कभी उनसे बात नहीं करनी चाहिए और न इन्हें कभी देखना ही चाहिए।

कितना कठोर दण्ड है! कट्टरपन्थी पौराणिक अछूतों को छूना पाप समझते हैं, परन्तु यहाँ तो जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं है, उनसे बातें करना और उन्हें देखना आदि भी पाप लिखा है। पद्मपुराण की इस व्यवस्था के अनुसार तो शिवजी आदि के सब उपासक शूद्र ठहरते हैं।

अन्य देवताओं के भोग आदि की निन्दा

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में लिखा है कि—

"विष्णु के चरणामृत को छोड़कर शेष देवताओं पर चढ़ाये हुए अन्न, जल, पुष्प, फल आदि शराब के समान होते हैं। इनको कभी नहीं छूना चाहिए। ब्राह्मण को चाहिए कि विष्णु के अतिरिक्त किसी देवता के दर्शन न करे। न इनकी पूजा करे, न इनका भोग खाये, न इनके मन्दिर में जाए।"

हम पौराणिकों से पूछते हैं कि जो शिवजी आदि के मन्दिरों में जाते हैं, उनकी पूजा करते हैं, उनपर चढ़ा हुआ भोग खाते हैं, क्या वे इस व्यवस्था को नहीं तोड़ते?

यहाँ तक ही नहीं प्रत्युत यह भी लिखा है कि शिव आदि देवताओं पर चढ़ाया हुआ भोग राक्षसों और पिशाचों का अन्न है तथा मांस और शराब के तुल्य है। जो ब्राह्मण अपनी मूर्खता से शिवजी आदि पर चढ़ाये हुए भोग को खाता है, वह सहस्र करोड़ कल्प तक नरक की आग में जलता है, इसलिए ब्राह्मण को चाहिए कि वह विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी देवता पर चढ़ाया हुआ भोग न खाये। जो लोग विष्णु को छोड़कर दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं, वे सब पाखण्डी हैं और संसार में निन्दनीय हैं।

पौराणिको! तनिक सोचो, जो लोग हनुमान्, देवी, शिवजी और ब्रह्मा आदि की पूजा करते हैं और उनपर चढ़ाया हुआ भोग खाते हैं, वे क्या अरबों वर्ष तक नरक में जीने की तैयारी नहीं कर रहे हैं? जिस पूजा से नरक में सड़ना पड़े, उससे लाभ ही क्या है?

विष्णु तिलक-छाप की महत्ता

उसी पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में लिखा है कि—

जो ब्राह्मण विधि से विष्णु-तिलक, अर्थात् ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण नहीं करता और जो धातु को तपाकर अपने शरीर पर छाप नहीं लगाता, वह चाहे हज़ारों यज्ञों के करनेवाला और चारों वेद तथा

शास्त्रों का जाननेवाला हो, फिर भी पतित होता है। उसको गधे पर चढ़ाकर अपने नगर की सीमा से बाहर कर देना चाहिए। इसके लिए श्लोकों का अवलोकन कीजिए—

सर्ववेदविदो वापि सर्वशास्त्रविशारदः।
अधृत्वा विधिना चक्रं ब्राह्मणः पतितो भवेत्॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु शंखचक्रविवर्जितः।
तं गर्दभे समारोप्य बहिः कुर्यात् स्वपत्तनात्॥[1]

इन श्लोकों के अनुसार पौराणिक मत के बड़े-बड़े पण्डित, विद्वान् और संन्यासी तनिक विचार करें कि क्या उन्होंने तिलक-छाप आदि लगाई हैं। यदि नहीं लगाई तो क्या वे इस दण्ड के भागी हैं या नहीं? पौराणिक कहा करते हैं कि हम जन्म से ही ब्राह्मण आदि होते हैं और अछूत जन्म से नीच होते हैं, परन्तु यहाँ तो लिखा है कि विष्णु-तिलक धारण न करनेवाला और तिलक-छाप न लगानेवाला ब्राह्मण चारों वेदों का जाननेवाला और यज्ञों का करनेवाला तक क्यों न हो, उसके हाथ का नहीं खाना चाहिए।

मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि तनिक यह तो बताओ कि तुम्हारा जन्मवाद कहाँ चला गया। यहाँ तो जन्म के विद्वान् ब्राह्मण को भी यदि वह विष्णु-तिलक धारण न करे और छाप न लगाये तो पापी समझा जाता है और गधे पर चढ़ाकर अपने देश से बाहर निकाले जाने का अधिकारी समझा जाता है। और सुनिए—

यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितम्।
द्रष्टव्यं नैव तत्किंचिच्छ्मशानसदृशं भवेत्॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत्।
तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं चाधिगच्छति॥[2]

जो मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र, अर्थात् अपने माथे पर थर्ड क्लास रेलगाड़ी के डिब्बे की भाँति तीन लकीरें [।।।] नहीं लगाता, उस मनुष्य का मुँह श्मशान के तुल्य है, उसका मुख कभी नहीं देखना चाहिए। ऐसा मनुष्य सन्ध्या आदि जितने कर्म करता है, वे सब व्यर्थ हैं और वह नरक में जाता है।

पौराणिक भाई तनिक सोचें कि वे इन श्लोकों के अनुसार सन्ध्या आदि शुभ कर्म करते हैं या नहीं? यदि नहीं करते तो नरक

---

१. पद्मपु० उत्तर० २२४।४१,४३-४५
२. वही २२५।१२-१३

में जाने के लिए तैयार हो जाएँ।

नाम लेकर निन्दा

पद्मपुराण के इसी प्रकरण में लिखा है कि जो शिवजी की भक्ति करते हैं व माथे पर राख का तिलक लगाते हैं, वे सब पाखण्डी और वेद विरोधी हैं।

पौराणिकों में जितने शैवमतावलम्बी शिव को माननेवाले संन्यासी हैं, वे सब अपने माथे पर भभूती, अर्थात् भस्म लगाते हैं और शिवजी की भक्ति करते हैं, क्या वे सब पाखण्डी और वेद-विरोधी हैं? इसका उत्तर पौराणिकों को अवश्य देना चाहिए।

वृद्धहारीतस्मृति की व्यवस्था

इस स्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है—

जो ब्राह्मण विष्णु-तिलक-छाप आदि नहीं लगाता, उसे दूर से चण्डाल की भाँति छोड़ देना चाहिए। वह चण्डाल से भी नीच है। उसे श्राद्ध कभी नहीं खिलाना चाहिए और पंक्ति में भी नहीं बैठाना चाहिए। वह नरक में जाएगा और जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं है, वह सब धर्मों से युक्त भी क्यों न हो फिर भी निन्द्य है। जो शिवजी की पूजा करता है और त्रिपुण्ड्र तिलक धारण करता है, वह शूद्र है।

दुर्गा, भैरव, यक्ष और विद्याधर आदि की पूजा मांस, शराब पीनेवाले चाण्डालों के लिए है। आपत्ति में भी ब्राह्मणों को माथे पर भस्म का तिलक नहीं लगाना चाहिए। जो अज्ञानता से अपने माथे पर भस्म का तिलक लगाता है, वह शराबी है, उसे देखना भी नहीं चाहिए। उससे बातें नहीं करनी चाहिएँ। जो मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र व विष्णु-तिलक से रहित ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन खिलाता है, उसके पितर टट्टी-पेशाब खाते हैं।

कितनी भयानक साम्प्रदायकता है! जो पण्डित पुराणों को व्यास का बनाया हुआ कहते हैं और ऐसी अमान्य, अनार्ष स्मृतियों को ऋषि-मुनियों का बनाया हुआ बताते हैं, वे तनिक ठण्डे हृदय से इन बातों पर विचार करें।[१]

महर्षि दयानन्द ने जो यह लिखा है कि ये पुराण साम्प्रदायक

---

१. हम यहाँ मूल श्लोक दे रहे हैं, पढ़िए और आनन्द लूटिए।

चक्रादिचिह्नरहितं प्राकृतं कलुषान्वितम्।
अवैष्णवस्तु तं दूरात् श्वपाकमिव सन्त्यजेत्॥ ३१॥

लोगों के बनाये हुए हैं, यह सोलह आने सत्य है। इन पुराणों में एक देवता को प्रधान मानकर शेष सबकी निन्दा की गई है। जैसाकि भागवत व पद्मपुराण में विष्णु को परमात्मा मानकर शेष शिव और ब्रह्मा आदि की घोर निन्दा की गई है। यहाँ तक ही नहीं, प्रत्युत इन देवताओं को माननेवालों के लिए जो तिलक नियत किये गये हैं और पूजा व चढ़ावे आदि की जो सामग्री नियत की गई है, उसकी भी निन्दा है। चाहे कितना भी विद्वान् पण्डित क्यों न हो, यदि विष्णु के अतिरिक्त किसी अन्य देवता को मानेगा, उसपर चढ़ावा चढ़ाएगा तो वह नरक में जाएगा। वह चाण्डाल है। उसे देखना, उससे बात करना और उसको छूना पाप है।

ये सब बातें हम ऊपर बता ही चुके हैं। इससे यह भली प्रकार सिद्ध हो गया है कि भागवत, पद्मपुराण और वृद्धहारीत स्मृति के अनुसार विष्णु ही एक परमात्मा है। उसी की भक्ति करनी चाहिए। दूसरों की नहीं, परन्तु दूसरे पुराणों में इसके विपरीत शिवजी और देवी आदि की महिमा गायी गई है, और विष्णु को इनका दास बताया गया है। इसी प्रकार अट्ठारह पुराणों में एक देवता को ईश्वर मानकर दूसरों को उसका दास व नौकर बताया गया है। कोई भी एक देवता ईश्वर नहीं ठहरता, जिसे अट्ठारह पुराणों में सर्वसम्मति से एक ईश्वर माना गया हो।

मैं अगले ट्रैक्ट[1] में पुराणों के प्रमाणों से यह सिद्ध करूँगा कि

अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकादधमः स्मृतः।
अश्राद्धेयो ह्यपांक्तेयो रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ३२॥
अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मयुतोऽपि वा।
स पाषण्डेति विज्ञेयः सर्वकर्मसु नार्हति॥ ३३॥
रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते।
तच्छूद्राणां विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन॥ ४३-४४॥
यक्षराक्षसभूतानि विद्याधरगणस्तदा।
चाण्डालानामर्चनीया मद्यमांसनिषेवणाम्॥ ४५-४६॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनं तु यः श्राद्धे भोजयेद् द्विजम्।
अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्रं नात्र संशयः॥ ६१॥

१. यह ट्रैक्ट लिखा गया या नहीं पता नहीं। पण्डितजी ने सम्भवतः १९ ट्रैक्ट लिखे थे। हमारे पास छह हिन्दी में और दो उर्दू में हैं। वे सभी इस संग्रह में संगृहीत कर दिये हैं। यदि किन्हीं के पास कोई अन्य ट्रैक्ट हो तो हमें भेज दें, अगले संस्करण में उन्हें सम्मिलित कर दिया जाएगा। —जगदीश्वरानन्द

शिव ही एक परमात्मा है और उसी की भक्ति करनी चाहिए और जिस विष्णु की भागवत, पद्मपुराण और हारीत स्मृति में इतनी प्रशंसा की गई है, वह शिवजी का दास है और जो शिवजी का त्रिपुण्ड्र तिलक नहीं लगाता, वह चाण्डाल है, आदि।

पौराणिक मण्डल में यदि किसी में साहस हो तो पौराणिक ईश्वर के सम्बन्ध में मेरे साथ लिखित वा मौखिक शास्त्रार्थ करे। मेरा पक्ष यह है कि पौराणिकों का पुराणों के अनुसार कोई एक निश्चित ईश्वर नहीं है, जिसकी सब पौराणिक भक्ति और उपासना कर सकें।

विवाह संस्कार

सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में लिखा है कि—

''जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा आर्यलोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन, अर्थात् माता-पिता के अधीन विवाह होने लगा; तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को छोड़के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें।

''जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता। न बाल्यावस्था में विवाह करने में सुख होता है।

''कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए, क्योंकि युवावस्था में स्त्री-पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है।

''परन्तु जब कन्या व वर के विवाह का समय हो, अर्थात् जब एक वर्ष वा छह महीने ब्रह्मचर्य आश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब, अर्थात् जिसको 'फ़ोटोग्राफ' कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतारके कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की और कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें।

''जिस-जिसका रूप मिल जाए, उस-उसका इतिहास, अर्थात् जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म-चरित्र का जो पुस्तक हो, उसको अध्यापक लोग मँगवाके देखें। जब दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव सदृश हों तब जिस-जिसके साथ जिसका विवाह होना योग्य समझें उस-उस पुरुष व कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हम को विदित कर देना।

''जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाए

तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ, नहीं तो कन्या के माता-पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब अध्यापकों वा कन्या के माता-पिता आदि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बात-चीत, शास्त्रार्थ करना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें'' इत्यादि।

शङ्का—स्वामी दयानन्दजी ने विवाह संस्कार में जो यह लिखा है कि विवाह स्वयंवर रीति से होना चाहिए, कन्या और वर की इच्छा ही विवाह में प्रधान है। कन्या और वर सबके समक्ष वार्त्तालाप व शास्त्रार्थ करें। दोनों का फ़ोटो एक-दूसरे के पास भेजना चाहिए। उनका गुण-कर्म-स्वभाव, शील, रूपलावण्य, कुल आदि देखने चाहिएँ और यह बातें मिलने पर वर-कन्या की इच्छा से विवाह होना चाहिए। ये सब बातें वेद-शास्त्र के विरुद्ध हैं। स्वामी दयानन्द ने ईसाइयों की नकल की है। आर्यसमाजियों का यह दावा है कि स्वामी दयानन्द की शिक्षा वैदिक है, अतः वे इन सब बातों को सिद्ध करने के लिए वेद वा शास्त्रों के प्रमाण देवें।

समाधान—जो बातें ऋषि दयानन्दजी ने विवाह के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में लिखी हैं वे सब वेद, शास्त्र, इतिहास के अनुकूल तथा युक्तिसङ्गत हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

प्रमाण संख्या-१

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।

—ऋ० २।३५।४

जवान स्त्रियाँ उत्तम ब्रह्मचर्य से युक्त होकर जवान ब्रह्मचारी पुरुषों को जैसे जल वा नदी स्वयं समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे स्वयमेव प्राप्त होती हैं।

इस मन्त्र से सिद्ध है कि युवा पुरुष व युवती स्त्रियों का परस्पर विवाह स्वयंवर रीति से होना चाहिए।

प्रमाण संख्या-२

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्॥

—ऋ० १०।२७।

सायणभाष्य—किं परिमाणा स्त्रीजातिः मनुष्यसम्बन्धिनो भोगानाचरतः स्त्रीकामस्य अनुरक्ता शोभनरूपा सा द्रौपदी-दमयन्त्यादिका स्वयमात्मनैव जनमध्येऽवस्थितं मित्रं प्रियमर्जुन-नलादिकं स्वयंवरधर्मेण प्रार्थयते ॥

कितने परिमाणवाली स्त्री। जो मनुष्य स्त्री की कामना करता है उसमें अनुरक्त, सुन्दर रूपवाली द्रौपदी व दमयन्ती आदि स्वयमेव जनसमूह में स्थित, प्रिय अर्जुन, नल आदि को स्वयंवर धर्म से प्राप्त करती है।

यह मन्त्र स्वयंवर धर्म का प्रबल मन्त्र है। सायणाचार्य ने भी इस मन्त्र का स्वयंवर-परक अर्थ किया है। इस मन्त्र से निम्न बातें सिद्ध होती हैं।

१. प्रथम, स्त्री-पुरुष का परिमाण यानी लम्बाई, चौड़ाई, बल, दृढ़ता आदि गुणों को देखना चाहिए।

२. स्त्री, पुरुष ऐसे हों जो एक-दूसरे के गुणों को देखकर परस्पर प्रीति व अनुराग करनेवाले हों।

३. वधू कल्याण करनेवाली, भद्र देखनेवाली, भद्राचरण करनेवाली, सुन्दर, दृढ़ हो।

४. विवाह सब जनों के समक्ष होना चाहिए और कन्या स्वयमेव उस जनसमूह में से गुण-कर्म-स्वभाव देखकर वर को पसन्द कर लेवे।

सायणाचार्य ने द्रौपदी तथा दमयन्ती का उदाहरण देकर इस मन्त्र को स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि द्रौपदी के विवाह में जो लक्षण ऊपर बताये हैं सब घटते हैं और इन्हीं लक्षणों के अनुकूल उनका विवाह हुआ था।

प्रमाण संख्या-३

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम॥
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे॥

—ऋग्० १०।१८४।१-२

कन्या कहती है कि हे वर! मैंने तुमको परीक्षापूर्वक अच्छी प्रकार देख लिया है कि तुम मुझसे विवाह के योग्य हो और मैंने यह

भी जान लिया है कि तुमने तपश्चर्या से विद्या, ज्ञान को प्राप्त किया है तथा रूप, लावण्य, बल, पराक्रम को बढ़ाया है। इस संसार में प्रजा व धन की इच्छा करते हुए, हे पुत्र की कामना करनेवाले! विवाह करके मेरे साथ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो।

इसके उत्तर में वर कहता है—कि मैंने परीक्षापूर्वक तुम्हारे गुण-कर्म-स्वभाव सब देख लिये हैं। तुम अत्यन्त युवती हो, बालिका नहीं हो। हे पुत्र की कामना करनेवाली! तुम विवाह करके मेरे साथ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो।

इन उपर्युक्त दो मन्त्रों से ये बातें स्पष्ट होती हैं—

१. कन्या-वर एक-दूसरे की सबके समक्ष परीक्षा करें। जब उन दोनों को निश्चय हो कि हम दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव परस्पर मिलते हैं तब वे परस्पर एक-दूसरे को जतलाकर वार्त्तालाप करके विवाह करें।

२. विवाह से प्रथम कन्या तथा वर तपश्चर्यापूर्वक विद्याध्ययन करनेवाले तथा बल, पराक्रम, रूप, लावण्य को बढ़ानेवाले हों।

३. कन्या-वर अत्यन्त जवान हों। इससे बाल्यावस्था के विवाह का सर्वथा निषेध हो जाता है और उन दोनों को परस्पर ज्ञान हो कि दोनों पुत्र की कामना करनेवाले और सन्तान-विज्ञान के पण्डित हैं।

प्रमाण संख्या-४

वांछ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सकथ्यौ।
अक्षौ वृषण्यन्त्या केशाः मां ते कामेन शुष्यन्तु॥

—अथर्व० ६।९।१

वर कहता है कि तू मेरे शरीर, पैरों, और आँखों को पसन्द कर। मैं तुम्हारे रूप-लावण्यादि बातों को पसन्द करता हूँ।

इस मन्त्र में यह बात स्पष्ट है कि वर-कन्या के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की भी परीक्षा करनी चाहिए। जब दोनों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग निर्दोष हों तब उनका परस्पर विवाह होना चाहिए।

इस मन्त्रानुसार कन्या-वर का एक-दूसरे को परस्पर देखना, एक-दूसरे के पास एक-दूसरे का फोटो भेजना, अध्यापक व अध्यापिकाओं द्वारा परीक्षा करना आदि सब बातें आ जाती हैं। इन मन्त्रों पर मनु का निम्नलिखित श्लोक ठीक घटता है—

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम्॥

—मनु० ३।१०

भी जान लिया है कि तुमने तपश्चर्या से विद्या, ज्ञान को प्राप्त किया है तथा रूप, लावण्य, बल, पराक्रम को बढ़ाया है। इस संसार में प्रजा व धन की इच्छा करते हुए, हे पुत्र की कामना करनेवाले! विवाह करके मेरे साथ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो।

इसके उत्तर में वर कहता है—कि मैंने परीक्षापूर्वक तुम्हारे गुण-कर्म-स्वभाव सब देख लिये हैं। तुम अत्यन्त युवती हो, बालिका नहीं हो। हे पुत्र की कामना करनेवाली! तुम विवाह करके मेरे साथ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो।

इन उपर्युक्त दो मन्त्रों से ये बातें स्पष्ट होती हैं—

१. कन्या-वर एक-दूसरे की सबके समक्ष परीक्षा करें। जब उन दोनों को निश्चय हो कि हम दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव परस्पर मिलते हैं तब वे परस्पर एक-दूसरे को जतलाकर वार्त्तालाप करके विवाह करें।

२. विवाह से प्रथम कन्या तथा वर तपश्चर्यापूर्वक विद्याध्ययन करनेवाले तथा बल, पराक्रम, रूप, लावण्य को बढ़ानेवाले हों।

३. कन्या-वर अत्यन्त जवान हों। इससे बाल्यावस्था के विवाह का सर्वथा निषेध हो जाता है और उन दोनों को परस्पर ज्ञान हो कि दोनों पुत्र की कामना करनेवाले और सन्तान-विज्ञान के पण्डित हैं।

प्रमाण संख्या-४

वांछ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सकथ्यौ।
अक्षौ वृषण्यन्त्या केशाः मां ते कामेन शुष्यन्तु॥

—अथर्व० ६।९।१

वर कहता है कि तू मेरे शरीर, पैरों, और आँखों को पसन्द कर। मैं तुम्हारे रूप-लावण्यादि बातों को पसन्द करता हूँ।

इस मन्त्र में यह बात स्पष्ट है कि वर-कन्या के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की भी परीक्षा करनी चाहिए। जब दोनों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग निर्दोष हों तब उनका परस्पर विवाह होना चाहिए।

इस मन्त्रानुसार कन्या-वर का एक-दूसरे को परस्पर देखना, एक-दूसरे के पास एक-दूसरे का फोटो भेजना, अध्यापक व अध्यापिकाओं द्वारा परीक्षा करना आदि सब बातें आ जाती हैं। इन मन्त्रों पर मनु का निम्नलिखित श्लोक ठीक घटता है—

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम्॥

—मनु० ३।१०

जिसके सरल-सूधे अङ्ग हों; विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो, हंस और हथिनी के तुल्य जिसकी चाल हो, सूक्ष्म लोम=केश और दाँतयुक्त हो, सब अङ्ग कोमल हों, ऐसी स्त्री के साथ विवाह होना चाहिए।

प्रमाण संख्या-५

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥

—ऋ० ३।५५।१६

किसी से न दुही, गौओं के समान बाल्यावस्था से रहित, उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करनेवाली, कुमारावस्था का उल्लंघन करनेवाली, नवीन-नवीन शिक्षा और पूर्ण अवस्था से युक्त युवती स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य और सुनियमों से पूर्ण विद्वानों के प्राणशास्त्र शिक्षायुक्त प्रज्ञा में रमण करनेवाली, तरुण पतियों के साथ विवाह करें। कभी भूलकर भी बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यान न करें, क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोक में सुख का साधन है। बाल्यावस्था में जितना पुरुष का नाश उससे अधिक स्त्री का नाश होता है।

प्रमाण संख्या-६

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णश्रोत्रियो वरः।
यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः॥

—याज्ञवल्क्य० १।५५

यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम्।
पुमान्स्याल्लक्षणैरेतैः विपरीतस्तु षण्डकः॥ —मिताक्षरा

इन गुणों से युक्त, सवर्ण, वेद के जाननेवाला, बुद्धिमान्, सब जनों से प्यार करनेवाला, जिसके पुरुषत्व की यत्न से परीक्षा की है वह वर विवाह के योग्य है।

परीक्षा का प्रकार यह है कि जिसका वीर्य पानी में तैरने लगे, जिसके मूत्र की धार घोड़े के मूत्र के समान वेगवाली तथा झागवाली हो वह मर्द तथा उसके विपरीत नामर्द है।

कहो, पौराणिको! तुम जो ऋषि दयानन्द की विवाह की परीक्षा पर उपहास करते हो, क्या कोई नारदजी की वर-परीक्षा-विधि पर आचरण करने को तैयार है? क्या कोई इस परीक्षा के अनुसार ब्रह्मचारी रह सकता है? इस परीक्षा के तुम्हारे शास्त्रों में होते हुए ऋषि

दयानन्द की विवाह-परीक्षा पर शङ्का करते हो ? लज्जित होना चाहिए।

प्रमाण संख्या-७

कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

—प० सं० आ० का० ३। २। ९१

कुल, शील, शरीर अवस्था, आयु, विद्या, धन, सनाथता—इन सात गुणों की परीक्षा करके फिर कन्या देवे।

इस स्मृति-वचन में विवाह के लिए जो बातें ऋषि दयानन्दजी महाराज ने बतलाई हैं प्रायः वे सब आ गई हैं। यदि इन बातों को देखकर विवाह किया जाए तो संसार के बहुत-से दुःख स्वयमेव नष्ट हो जाएँ।

प्रमाण संख्या-८ (कन्या परीक्षा)

मुहुर्ते तिथिसम्पन्ने नक्षत्रे चाभिपूजिते।
द्विजैस्तु सह वा गम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित्॥ ४॥
हस्तौ पादौ परीक्षेत अंगुल्यौ नख एव च।
पाणीरेखा च जंघे च कटिनासोरू एव च॥ ५॥
जघनोदरं पृष्ठं च स्तनौ कर्णौ भुजौ तथा।
जिह्वां चौष्ठौ च दन्ताश्च कपोलं गलकं तथा॥ ६॥
चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्तथैव च।
रोमराजिं स्वरं वर्णमावर्तानि तु वा पुनः॥ ७॥[1]
अरोमको भगो यस्या समः सुश्लिष्टसंस्थितः।
अपि नीचकुलोत्पन्ना राजपत्नी भवत्यसौ॥ ८॥[2]

तिथियुक्त मुहूर्त में, पूजनीय नक्षत्र में ब्राह्मणों के साथ आकर शास्त्र के ज्ञाता को चाहिए कि कन्या को देखे। कन्या के हाथ, पाँव, अङ्गुलियाँ, नाखुन, जंघा, कमर, नाक, जघन, पेट, पीठ, स्तन, कान, जीभ, होंठ, दाँत, माथा, सिर, बाल, रोम आदि सब अङ्गों की भली प्रकार परीक्षा करें।

मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ क्या अब भी तुम्हारी दुष्ट लेखनी आर्यसमाज के विरुद्ध उठेगी ? भविष्यपुराण के इन श्लोकों

में तो यह लिखा है कि लड़केवाले लड़की की घर में जाएँ और शुभ तिथि नक्षत्रादि को देखकर लड़की के हाथ, पाँव, नाखून, बाल आदि की अच्छी प्रकार परीक्षा करें। यहाँ तक कि उसके गुप्त अङ्गों की भी परीक्षा करें। पौराणिको! बतलाओ क्या तुममें कोई इस पुराणरूपी पाँचवें वेद पर आचरण करता है? यदि आचरण करेगा तो कैसे करेगा? क्या डाक्टर को साथ ले-जाकर कन्या के एक-एक अङ्ग को देखेगा। क्या लज्जावाला आदमी इस बात को सहन करेगा कि उसकी कन्या की दूसरा मनुष्य इस पुराण के लेख के अनुसार परीक्षा करे। इसके मुक़ाबले में महर्षि दयानन्दजी ने जो परीक्षा-विधि लिखी है वह सर्वोत्तम है, अर्थात् लड़के वा लड़की का फ़ोटो उतारकर एक-दूसरे के अध्यापक-अध्यापिकाओं अथवा माता-पिता के पास भेज दिया जावे और वह फ़ोटो लड़के-लड़की को भी दिखला दिया जावे। इसके अतिरिक्त लड़के-लड़की का जीवन-चरित्र जन्म से लेकर विवाहपर्यन्त जो कुछ मुख्य घटनाएँ उनके माता-पिता व अध्यापक-अध्यापिकाओं ने लिखी हों वे भी एक-दूसरे को भेज दी जावें, जिससे उनको देखकर लड़के-लड़की के गुण-कर्म-स्वभाव का निश्चय हो सके। यदि अधिक निश्चय करना चाहें तब अध्यापक-अध्यापिकाओं अथवा माता-पिता के सामने लड़के-लड़की का वाद-विवाद करा दिया जावे जिससे एक-दूसरे की विद्या का परिचय पा सकें।

पुरुष परीक्षा

शिवेऽहनि सुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ।
पूर्वाह्ने मङ्गलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः॥
प्रमाणं संहतिं छायां गतिं सर्वाङ्गलक्षणम्।
दन्तकेशनखश्मश्रु एतत्सर्वं विचक्षणः॥[1]
निम्नपादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनः।
दुःखितं तं विजानीयात् पुरुषं नात्र संशयः॥[2]
दक्षिणावर्तलिङ्गश्च नरौ वै पुत्रवान् भवेत्॥[3]

शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, सौम्य ग्रह और शुभ रविवार में दोपहर से

१. भवि० ब्राह्मपर्व० २४.९-१०
२. वही, २५.३
३. वही, २५.१

पहले, मंगलयुक्त दिन में बुद्धिमान् को चाहिए कि वर की परीक्षा करे। वर की लम्बाई, चौड़ाई, दृढ़ता, दाँत, केश, नाखून, दाढ़ी आदि सब अङ्गों की परीक्षा करनी लिखी है।

पुराण जिस भी कार्य को लेते हैं अति अवश्य करते हैं। वर व कन्या की परीक्षा अनुचित नहीं, परन्तु पुराण की प्रत्येक अङ्ग की परीक्षा ठीक नहीं, अस्तु। हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि जैसे महर्षि दयानन्दजी ने वेद-शास्त्र के अनुकूल वर-कन्या की परीक्षा लिखी है उसके विपरीत पुराणों में भी वर-कन्या की परीक्षा लिखी है। इस परीक्षा की विद्यमानता में किसी भी पौराणिक पण्डित का यह साहस नहीं होना चाहिए कि वह महर्षि दयानन्द की बताई हुई वर-कन्या की वैदिक परीक्षा-विधि पर कोई आक्षेप करे।

चित्र देखना

अनिरुद्धं विलिखतं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया।
सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते॥ २१॥
तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम्।
हेतुभिर्लक्षयां चक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः॥ २७॥

—भा० १०।६२।२१, २७

अर्थ—बाण राजा की पुत्री उषा ने श्रीकृष्ण के पौत्र प्रद्युम्न के लड़के के स्वप्न में दर्शन किये। उसे देखकर वह अत्यन्त व्याकुल रहने लगी। उसकी चित्रलेखा नाम की सखी ने पूछा कि सखे! तुम उदास क्यों रहती हो! उषा ने सारा वृत्तान्त जो कुछ स्वप्न में देखा था चित्रलेखा को कह सुनाया। चित्रलेखा ने इस वृत्तान्त को सुनकर एक-एक राजकुमार का चरित्र बना-बनाकर दिखाना प्रारम्भ किया। जिस समय श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का चित्र खैंचकर दिखलाया तब, यही है—यही है, कहकर उषा हँसने लगी। चित्रलेखा अपने योगबल से द्वारका में आई और सोये हुए अनिरुद्ध को उठाकर उषा के महल में ले-गई। उषा ने उसको कन्यापुर में रखा और अनेक प्रकार के भोजन-पान वस्त्रादि से उसकी सेवा करने लगी। जब गुप्तचरों को इस धर्मविरुद्ध कार्य का पता लगा तब उन्होंने इस बात की सूचना राजा बाण को दी। इत्यादि।

इस उपर्युक्त भागवत की कथा से कई बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि पुराणकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि विवाह से प्रथम कन्या-वर को एक-दूसरे के चित्र को देखना परीक्षा-विधि

का एक अङ्ग है। इसीलिए चित्रलेखा ने उषा को राजकुमारों के चित्र बनाकर दिखलाये। जब अनिरुद्ध का चित्र दिखाया तब उषा उसको देखकर बड़ी ही प्रसन्न हुई। इस कथा के होते हुए पौराणिक लोग ऋषि दयानन्द की चित्र-विधि पर शङ्का नहीं कर सकते।

दूसरी बात यह है कि ऋषि दयानन्द की परीक्षा-विधि पर उपहास करते हुए पौराणिक पण्डित कई अनुचित आक्षेप किया करते हैं, परन्तु इस कहानी में यह लिखा है कि कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने उषा से बिना विवाह के अनुचित सम्बन्ध किया। कृष्णजी ने उसको बुरा न बतलाकर अनिरुद्ध का विवाह उषा के साथ कर दिया। इस कथा के होते हुए महर्षि की बतलाई हुई विवाह से पूर्व पवित्र परीक्षा-विधि पर आक्षेप करने का कोई अवकाश शेष नहीं रह जाता।

तीसरी बात यह सिद्ध होती है कि जैसे वर्त्तमान समय में कई जातियों में यह प्रथा विद्यमान है कि विवाह से प्रथम कन्या-वर का सम्बन्ध हो जाता है और फिर दोनों का विवाह कर दिया जाता है। पुराण भी इस बात को स्वीकार करता है कि विवाह से पहले जैसे अनिरुद्ध और उषा का सम्बन्ध हो गया फिर भी उनकी शादी हो गई। पुराणों में ऐसे वर्णन होने पर पौराणिकों को इस बात के कहने का साहस नहीं करना चाहिए कि ऋषि दयानन्द की बतलाई हुई विवाह-विधि ईसाइयों की नक़ल है।

प्रमाण संख्या-१० (द्रौपदी)

कलिङ्गवङ्गाधिपपाण्ड्यपौण्ड्राः
विदेहराजो यवनाधिपश्च।
अन्ये च नानानृपपुत्रपौत्राः
राष्ट्राधिपाः पङ्कजपत्रनेत्राः ॥ १६ ॥[1]

द्रौपदी के स्वयंवर में कलिङ्ग, बङ्ग, देश के राजा पाण्ड्य तथा पौण्ड्र, विदेह तथा यवन देश का राजा और अनेक देशों के राजाओं के पुत्र तथा पौत्र द्रौपदी से विवाह करने के लिए उपस्थित हुए।

आप्लुताङ्गी सुवसना सर्वाभरणभूषिता।
मालां च समुपादाय कांचनीं समलंकृताम् ॥ २९ ॥
अवतीर्णा ततो रङ्गं द्रौपदी भरतर्षभ ॥ ३० ॥

१. महा० आदि० १८५.१६

इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः
शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं
शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः॥ ३५॥
एतत् महत्कर्म करोति यो वै
कुलेन रूपेण बलेन युक्तः।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं
कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि॥ ३६॥[१]

जिसके अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं, सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहिन-कर हाथ में सोने की माला लेकर द्रौपदी भी उन राजाओं में आकर खड़ी हो गई। तब द्रौपदी के भाई ने यह घोषणा की हे राजा लोगो! तुम सब मेरे इस वचन को सुनो—यह धनुष है, यह लक्ष्य है, ये बाण हैं, जो कोई भी इस यन्त्र के छिद्र से पाँच बाणों को मारकर इस लक्ष्य को बेधेगा उसी के साथ मेरी बहिन द्रौपदी का विवाह होगा। यह सत्य है, इसमें रत्तीभर भी झूठ नहीं है।

उपर्युक्त लेख से कई बातें सिद्ध होती हैं। प्रथम यह है कि द्रौपदी के स्वयंवर में बंगाल, बिहार, मिथिला, यूनान, कन्धार आदि अनेक देशों के राजकुमार आये हुए थे। इससे सिद्ध है कि भारत के विवाह आदि सम्बन्ध बिना देश-बन्धन के प्रत्येक देश-देशान्तर में होते थे।

दूसरी बात यह सिद्ध है कि जिसका गुण-कर्म-स्वभाव मिल जाए उसका उससे विवाह हो जाता था। इसमें जन्म की जाति का कोई बन्धन नहीं था, क्योंकि द्रौपदी के विवाह की घोषणा करते हुए उसके भाई ने किसी जन्म की जाति का कोई बन्धन नहीं लगाया। प्रधान शर्त यही थी कि जो लक्ष्य वेधन करेगा, उसी से द्रौपदी का विवाह हो जाएगा।

कुल, धर्म, जन्मजाति का कोई सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि जिसको पौराणिक लोग जन्म से नीच कहते हैं उनमें भी कुल, धर्म, जाति उच्च पाये जाते हैं। जिनको जन्म से उच्च बताते हैं उनमें भी कुल, धर्म नीच होते हैं।

तीसरी बात यह सिद्ध होती है कि उस समय भारतवर्ष में पर्दा वा घूंघट निकालने की प्रथा नहीं थी। अगर यह प्रथा विद्यमान होती तब द्रौपदी हाथ में माला लेकर स्वयंवर-क्षेत्र में सबके सामने न

१. महा० आदि० १८४.२९, ३०, ३५, ३६

आती, क्योंकि घूंघट के होने से वह किसी भी प्रकार राजकुमारों को नहीं देख सकती थी और देखे बिना माला कैसे डालती ?

इसके अतिरिक्त दमयन्ती, सीता आदि भारत रमणियों के स्वयंवर प्रसिद्ध हैं। किसी ने भी इनकी निन्दा नहीं की प्रत्युत सबकी दृष्टि में ये रमणियाँ भारत की रत्न मानी जाती हैं। महर्षि दयानन्दजी महाराज इस आर्यजाति में इसी उच्च स्वयंवर प्रथा की स्थापना करना चाहते थे, जिसके होने से आर्यजाति के अनेक पुरुषों तथा रमणियों के विभिन्न प्रकार के संकट दूर हो सकते हैं। आज आर्यजाति में विवाह-विच्छेद के लिए जो आन्दोलन किया जा रहा है, यदि महर्षि दयानन्द के कथनानुकूल स्वयंवर-प्रथा प्रचलित हो जाए तो वे कष्ट जिनके दूर करने के लिए विवाह-विच्छेद की आवश्यकता बतलाई जाती है; स्वयमेव दूर हो जाएँगे।

उपर्युक्त लेख में हमने वेद-शास्त्र, इतिहास, पुराण के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि महर्षि दयानन्दजी महाराज ने विवाह के सम्बन्ध में जो बातें लिखी हैं वे सब वैदिक, युक्तिसंगत तथा संसार के कष्ट को मिटानेवाली हैं।

दयानन्द स्वाध्याय मण्डल का इससे अगला पुष्प 'गर्भाधान और योनिसंकोचन' होगा।

इति शम्

॥ ओ३म् ॥

मृतक श्राद्ध-खण्डन

महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश आदि सम्पूर्ण ग्रन्थों में यह लिखा है कि श्राद्ध जीवित माता-पिता, आचार्य, गुरु आदि महापुरुषों का होता है, मरे हुओं का नहीं। ऐसा ही वेदादिशास्त्रों में लिखा है। इसके विपरीत पौराणिक लोग यह मानते हैं कि श्राद्ध मृतकों का ही सिद्ध होता है, जीवितों का नहीं। मरे हुए माता-पिता आदि की ही पितृसंज्ञा होती है, जीवितों की नहीं।

आर्यसमाज के सिद्धान्त की सच्चाई को सिद्ध करने के लिए श्राद्ध के विषय को चार भागों में बाँटकर लिखा जाएगा। प्रथम यह कि पितर किस-किसको कहते हैं? दूसरे, उनका भोजन क्या होना चाहिए? तीसरे, भोजन के अधिकारी कौन हैं? चौथे, मरे हुए पितरों को भोजन पहुँचता कैसे है?

हमारा विचार है कि यदि अभ्युपगमसिद्धान्त से विशेष परीक्षा करने के लिए मृतक श्राद्ध मान भी लिया जाए तब भी वह पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार नहीं हो सकता, बल्कि पौराणिक ग्रन्थों में लिखा है कि श्राद्ध असम्भव है। सबसे प्रथम पितर शब्द का विचार किया जाता है।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳ समाः॥

—यजुः० १९।४६

उव्वटभाष्य—यजमानाः ये समानाः समनसः जीवाः जीवनवन्तः। जीवेषु जीवनवत्सु मध्ये मामकाः मदीयाः।

यजमान कहता है कि जो समान मनवाले, जीते हुओं में मेरे सम्बन्धी पितर हैं, उनकी लक्ष्मी मुझको प्राप्त हो।

इस मन्त्र में महीधर तथा उव्वट दोनों ने स्वीकार किया है कि जीवित प्राणियों को पितर कहते हैं तब पौराणिक पण्डितों की यह बात कि मुर्दों की ही पितृ-संज्ञा है, त्याज्य है।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ ५७॥

—यजुः० १९।५७

महीधरभा०—हे पितरः, इह यज्ञे आगमन्तु आगच्छन्तु। व्यत्ययेन शपो लुक्। ते श्रुवन्तु अस्मद्वचः शृण्वन्तु। श्रुत्वा च अधिब्रुवन्तु पितृभिः पुत्राणां यद्वक्तव्यं तद्वदन्तु। ते अस्मानवन्तु।

हे पितर लोगो! आप हमारे यज्ञों, घरों, खज़ानों में आओ, हमारी बातें सुनों और हमको उपदेश दो तथा हमारी रक्षा करो।

इस मन्त्र में महीधर तथा उव्वट ने इस बात को स्वीकार किया है कि पितर जीवित होते हैं, मृतक नहीं, क्योंकि पितरों का यज्ञ में आना और पुत्रों की बातें सुनना, उनको उपदेश देना व उनकी रक्षा करना—ये चार काम जीवितों में ही हो सकते हैं, मृतकों में नहीं।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥

—यजुः० २५।२२

महीधरभाष्य—यत्रास्माकं जरायां पुत्रासोऽस्मत्पुत्राः पितरो भवन्ति पुत्रवन्तो भवन्ति। यावदस्माकं पौत्रा भवन्तीत्यर्थः। तावत् मध्ये नोऽस्माकमायुर्मा रीरिषत मा हिंसिष्ट।

माता-पिता कहते हैं जहाँ हमारे बुढ़ापे में हमारे पुत्र पितर हो जावें, अर्थात् पुत्रवाले हो जावें। जबतक हमारे पौत्र न हों, तब तक हे परमात्मन्! आप हमारी आयु का नाश न कीजिए, यानी हम जीवित रहें।

इस मन्त्र में तो महीधर ने वेदभाष्य करते हुए पौराणिक मण्डल की कमर तोड़ डाली है। महीधर ने यह स्वीकार किया है कि पुत्रों की भी, जब उनके पुत्र हो जाते हैं पितर संज्ञा हो जाती है। पितरों की ओर से ही प्रार्थना है कि जब तक हमारे पुत्र पितर न बनें, पुत्रोंवाले न हों तब तक हम जीवित रहें। इस वेदमन्त्र व महीधर के भाष्य से पौराणिक पण्डितों का दावा कि मृतकों की ही पितृसंज्ञा है, सर्वथा ग़लत सिद्ध हो जाता है।

ऊपर हमने तीन वेदमन्त्र महीधरभाष्य के साथ देकर यह सिद्ध कर दिया है कि जीवितों की ही पितृसंज्ञा है। इसकी पुष्टि के लिए अन्य प्रमाण भी दिये जाते हैं।

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः॥
—ब्रह्म० वै० गण० १।४७।२१

ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेयाः धर्मे च पथिवर्तिनः॥
—वा०रा०कि० १८।१३

विद्या देनेवाला, अन्न देनेवाला, भय से रक्षा करनेवाला, जन्मदाता, कन्या देनेवाला और बड़ा भाई इनकी 'पितृ' संज्ञा है।

बड़ा भाई, पिता और विद्यादाता—ये तीनों पितर हैं, यदि धर्म के मार्ग पर चलते हों।

उपर्युक्त पुराण व वाल्मीकि रामायण के प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि जीवितों का नाम ही पितर है, मृतकों का नहीं।

भोजन विचार

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु॥ २६८॥
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु॥ २७०॥
वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ २७१॥
कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥ २७२॥
—मनु० अ० ३

दो महीने मछली के मांस से, तीन मास हिरन के मांस से, दस महीने सूअर तथा भैंसे के मांस से, ग्यारह महीने खरगोश तथा कछुए के मांस से, वाध्रीणस हिरन के मांस से बारह वर्ष तथा लम्बे कानवाले बकरे के मांस से पितर अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं।

कहिए पोपजी! मनुस्मृति में यह प्रक्षिप्त प्रकरण लिखकर भी भोजन कैसा बढ़िया बतलाया है? बस, एक लम्बे कानवाले बकरे का मांस ब्राह्मणों को खिला दीजिए और मृतक श्राद्ध से हमेशा के लिए छुट्टी पाइए।

शङ्का—यह जो मच्छी आदि का मांस लिखा है, यह राक्षसों के लिए लिखा है, श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं।

समाधान—राक्षसों के लिए नहीं पितरों व ब्राह्मणों को ही खिलाना लिखा है। इसके कारण निम्नलिखित हैं—

१. यहाँ पर लिखा है कि मछली आदि के मांस से पितर तृप्त

होते हैं। क्या आपका दिया हुआ भोजन पितरों को मिलता है या नहीं। अगर मिलता है तो आपके पितरों को मछली आदि का मांस मिला। क्या आपके पितर भी राक्षस हैं?

२. हमारा चैलेञ्ज है कि इस पितृ-प्रकरण में यह कहीं नहीं लिखा कि मांस-भोजन राक्षसों के लिए है। अगर हिम्मत है तो दिखाओ।

३. बल्कि इसके विपरीत लिखा है—

यत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः।
यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥

उस मृतक श्राद्ध में जिन उत्तम ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए और जिनको नहीं खिलाना चाहिए, जितनों को खिलाना चाहिए, जो अन्न खिलाना चाहिए, वह सब मैं बताऊँगा।

इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि यह श्राद्ध उत्तम ब्राह्मणों के लिए है, अनधिकारियों को नहीं। जब अनधिकारी ब्राह्मणों को श्राद्ध खाने पर अधिकार नहीं तब राक्षसों को कैसे हो सकता है?

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम्॥

—मनु० ५।३५

कुल्लूकभाष्य—श्राद्धे मधुपर्के च यथाशास्त्रं नियक्तुः।

श्राद्ध में या मधुपर्क में शास्त्र की आज्ञानुसार नियुक्त हुआ जो मनुष्य मांस नहीं खाता वह मरकर इक्कीस बार पशुयोनि में जाता है।

कहिए पोपजी! तुम तो कहते थे मांस राक्षसों के लिए है, परन्तु यहाँ तो मांस न खानेवाले के लिए बड़ा भारी दण्ड लिखा है। यदि यह राक्षसों का अन्न था तो न खानेवालों को इतना बड़ा दण्ड क्यों लिखा? दूसरी बात यह है कि यहाँ पर मनुष्य के लिए मांस का खाना लिखा है। आपके सिद्धान्त के अनुसार तो राक्षस मनुष्यों से भिन्न होते हैं। इसलिए आपका यह कथन मिथ्या है कि श्राद्ध में मांस-विधान राक्षसों के लिए है।

नियुक्तस्तु यतिः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमिच्छति॥

—वा०[१] ३४।११

१. वा से क्या तात्पर्य है, हमें पता नहीं लगा। वायु, वामनपुराण और वाल्मीकि रामायण में तो यह श्लोक नहीं है। **—जगदीश्वरानन्द**

जो कोई ब्राह्मण व संन्यासी श्राद्ध अथवा देवयज्ञ में मांस न खावे, वह उतने वर्ष नरक में रहेगा, जितने उस पशु को बाल हैं।

यदि श्राद्ध का भोजन राक्षसों के लिए हो तो यह लाखों साल नरक में रहने का दण्ड क्यों दिया जाता। इससे सिद्ध है कि श्राद्धों में घृणित मांस-भोजन का विधान है और श्राद्ध, वेदशास्त्र के विरुद्ध होने से अवैदिक हैं।

अधिकारी

तीसरी बात जो मृतक श्राद्ध में है वह यह है किनको भोजन खिलाना चाहिए। जहाँ तक हमने पौराणिकों ग्रन्थों का अध्ययन किया है वहाँ तक यह पता चलता है कि मृतक श्राद्ध हो ही नहीं सकता? प्रमाण निम्न हैं—

चिकित्सकान् देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा।

—मनु० ३।१५२

सोमविक्रयिणो विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्।
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ॥ १८०॥
यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान्॥ १३३॥

—मनु० ३।१८०, १३३

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः।
श्राद्धे यज्ञे महादाने न वरणीयाः कदाचनः॥ ३८५॥
***पतन्ति पितरो ह्येषां दानं चैव तु निष्फलम्॥ ३८६॥**
आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः।
चतुर्विप्राः न भोज्यन्ते बृहस्पतिः समा अपि॥ ३८५॥

—अत्रिस्मृ० ३८५-३८७

वैद्यों को, पुजारियों को, मांस बेचनेवाले को, दुकानदारों को, सोम बेचनेवाले को श्राद्ध में भोजन नहीं खिलाना चाहिए। जो इनको व वेद के न जाननेवालों को भोजन खिलाएगा अथवा जो खाएगा उन दोनों के मुख में गर्म करके लोहे के गोले, त्रिशूल आदि ठूँसे जाएँगे। ज्योतिषी तथा कंजूस व पुराण के पढ़नेवालों को, श्राद्ध, यज्ञ व महादान में भोजन के लिए कभी भी नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि इनको भोजन खिलाने व दान देने से पितर पतित हो जाते हैं और

* इस श्लोक में पाठभेद है।

दान निष्फल जाता है, इसलिए इनको कभी श्राद्ध में भोजन नहीं खिलाना चाहिए। भेड़ पालनेवाले, चित्रकार, वैद्य तथा ज्योतिषी—इन चार ब्राह्मणों को बृहस्पति के समान होने पर भी भोजन नहीं खिलाना चाहिए।

मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि इस लिस्ट के अनुसार क्या तुम्हारा मृतक श्राद्ध हो सकता है? यहाँ पर पुजारी, व्यापारी, वैद्य, ज्योतिषी, दुकानदार, दस्तकार, वेद के न जाननेवाला—इन सबको भोजन न खिलाने का ही विधान नहीं है बल्कि खिलाने व खानेवालों को बड़ा भारी दण्ड लिखा है और पितरों का पतन लिखा है। इसलिए पौराणिक ग्रन्थों के अनुकूल भी मृतक श्राद्ध नहीं हो सकता। मृतक श्राद्ध करनेवालों को चाहिए कि वे इस दण्ड से बचने के लिए मृतक श्राद्ध को सर्वथा त्याग दें। एक तो श्राद्ध करना दूसरे दण्ड भोगना इससे क्या लाभ है?

भोजन पहुँचने का साधन

चौथा प्रश्न यह है मृतपितरों को भोजन कैसे पहुँचता है? आर्यसमाजी व पौराणिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि मरकर जीव का पुनर्जन्म होता है। फिर यह विचारणीय बात है कि जब उन्होंने जन्म ले-लिया फिर उन्हें भोजन कैसे पहुँचेगा? इस विषय में पौराणिकों का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। कई कहते हैं कि जिस-जिस योनि में पितर हैं, वहाँ-वहाँ उसी योनि के अनुकूल भोजन पहुँच जाता है। कइयों का कथन है कि पितर पितृलोक में जमा रहते हैं, वहीं भोजन पहुँचता है। तीसरे कहते हैं कि पितरलोग यहीं भोजन खाने के लिए आते हैं, क्योंकि पौराणिकों का इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है इसी से सिद्ध है मृतक श्राद्ध असत्य है। एक दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग।
प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥ २६॥
श्राद्धकर्त्रा तु यद्येकः श्राद्धे विप्रो निमन्त्रितः।
उदरस्थः पिता तस्य वामपार्श्वे पितामहः॥ २७॥
प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकः॥ २८॥

—गरुड पु० प्रे० अ० १०। २६-२८

श्राद्ध करनेवाला अगर एक ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन खिलाये तब ब्राह्मण के पेट में बैठकर श्राद्ध करनेवाले का पिता भोजन खाता

है। बाँई कोख पर बैठकर दादा, दाँई पर परदादा और पीठ पर पिण्ड खानेवाला। पौराणिको! कहो, यह तुम्हारा भोजन खिलाने का कैसा तरीका है? पेट के अन्दर क्या होता है, क्या वहाँ सोहन हलुवा रक्खा है वा ठाकुरजी का भोग? कुक्षी में बैठकर क्या ब्राह्मण जौंक की भाँति खून पीता है। इस गुरुड़पुराण के श्लोक से सिद्ध है कि पितर लोग यहाँ भोजन खाने आते हैं और वे ब्राह्मण के खाने के बाद उस के मल, खून आदि का भोजन खाते हैं। इससे उल्टा नीचे का सिद्धान्त देखिए।

गान्धर्वे भोगरूपेण पशुत्वे तु तृणं भवेत्॥ ५॥
श्राद्धं तु वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति।
फलं भवति पक्षित्वे राक्षसेषु तथामिषम्॥ ६॥
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरं तथा
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्॥

—ग० प्रे० अ० १०। श्लो० ५ से ७ तक

श्राद्ध में दिया हुआ अन्न किसी का पितर गन्धर्व बन गया हो तो भोगरूप से, पशु बन गया हो तो घास बनकर मिलता है। साँप बन गया हो तो हवा के रूप में, पक्षी की योनि में जन्म लिया हो तो फल बनकर, राक्षसों की योनि में मांस बनकर मिलता है। प्रेत हो तो खून बनकर, मनुष्य हो तो अन्नपान के रूप में, बच्चा हो तो रस बनकर मिलता है।

इस श्लोक ने तो पौराणिक मृतक श्राद्ध पर पानी फेर दिया है। इससे पौराणिकों की पितर, पितृलोक आदि सब बातें उड़ जाती हैं। जैसे ऊपर लिखा था कि पितर लोग यहाँ भोजन खाने आते हैं या उनको पितृलोक में पहुँचता है? परन्तु यह सिद्धान्त सर्वथा ऊपर के सिद्धान्त के विरुद्ध है। अगर किसी का बाप मरकर सूअर बन गया हो तो क्या उसको विष्ठा के रूप में भोजन मिलेगा? अगर ऐसा है तो यह कितना अन्याय है। वह ब्राह्मणों को तो खीर-पूड़े खिलाता है और उसका बदला मल है। अगर कोई वैष्णव श्राद्ध करेगा वह मांस के विरुद्ध है और उसका भोजन मांस बनकर मिलेगा। और यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध भी है, क्योंकि जितने प्राणी हैं वे किसी-न-किसी के पितर हैं और उनमें से किसी को भी श्राद्धों का भोजन नहीं मिल रहा। इस सिद्धान्त के अनुसार श्राद्ध करनेवालों को चाहिए कि कभी ब्राह्मणों को घास खिलावें, कभी मांस, कभी रक्त पिलावें, कभी

कंकर, क्योंकि चकोर कंकर-पत्थर खाता है।

अनेक योनियों का अनेक प्रकार का भोजन होता है वह बदल-बदलकर खिलाना चाहिए, क्योंकि इस बात का तो निश्चय ही नहीं कि पितर किस योनि में गया है? नीचे मृतक श्राद्ध के बारे में कुछ प्रश्न दिये जाते हैं, जिनसे पाठकों व शास्त्रार्थ करनेवालों को लाभ पहुँचेगा।

१. ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन पितरों को पहुँच जाता है; इसके लिए युक्ति व वेद का प्रमाण दो।

२. जब मरने के पश्चात् मृतक की हड्डियाँ गङ्गा में डाल दी जाती हैं और पौराणिकों के अनुसार उस मृतक की मुक्ति हो जाती है और मुक्तपुरुष का खाने-पीने आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता वह ब्रह्म बन जाता है, फिर मृतक श्राद्ध खाने कौन आवेगा?

३. दसगात्र, सीण्डिकरण, पिण्डदान आदि बातों के लिए कोई वेदमन्त्र पेश करो। हमारा दावा है कि ये सब बातें अवैदिक व कपोलकल्पित हैं।

४. अथर्ववेद के अट्ठारवें काण्ड के सब मन्त्रों का विनियोग सायणाचार्य ने अन्त्येष्टि संस्कार में किया है, फिर उनको मृतक श्राद्ध में लगाना क्या सायणाचार्य के विरुद्ध नहीं है?

५. भोजन पितरों को ब्राह्मण के द्वारा पहुँचता है या वैसे ही? यदि कहो वैसे ही पहुँचता है तब फिर ब्राह्मणों को भोजन खिलाने की क्या आवश्यकता है? यदि कहो कि ब्राह्मण के द्वारा पहुँचता है तब भोजन खिलाने के बाद व पहले ब्राह्मण को व भोजन को तोलना चाहिए। यदि भोजन खाने के पश्चात् भोजनसहित पूरा हो तब तो समझो कि भोजन नहीं पहुँचता। यदि वज़न कम हो जाए तब जानो पितरों को भोजन पहुँचा है।

६. ब्राह्मण के खाने के बाद क्या पितरों को उसका रक्त-मांस आदि पहुँचता है या कुछ अन्य? इसके लिए प्रमाण दो।

७. ब्राह्मण को खिलाया भोजन बिना पते के पितरों को पहुँच जाता है, इसमें क्या प्रमाण है? किसी के जीवित माता-पिता को यदि एक मकान में बन्द करके बाहर ब्राह्मणों को भोजन खिलाया जावे तो क्या खिलानेवाले के माँ-बाप को मिल जाएगा? यदि पता होने पर भी भोजन नहीं मिलता तब जिन माता-पिता का कुछ भी पता नहीं है उनको लापता डाक कैसे मिल जाएगी?

८. यदि पौराणिक मृतकों का श्राद्ध मानते हैं तब तीन पीढ़ी का ही श्राद्ध क्यों करते हैं, दूसरों का क्यों नहीं करते? वास्तव में बात यह है कि पिता, दादा, परदादा जीवित रह सकते हैं, इसलिए तीन पीढ़ी का श्राद्ध है। इससे भी सिद्ध है कि श्राद्ध जीवित का होता है मृतक का नहीं।

९. यदि किसी के चार पुत्र हैं और वे चारों भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं और एक ही दिन श्राद्ध करते हैं तब पितर किसका श्राद्ध खाने जावेगा? यदि एक का खाया तो तीन का तो ब्राह्मण मुफ्त में उड़ा जाएँगे।

१०. देहली की शान्ति नाम की कन्या थी, उसने अपने पिछले जन्म के सास-ससुर, जेठ, पुत्रादि के मथुरा में सब हाल बतला दिये और उसके लिए बाकायदा कमिशन बैठा कि जिसमें मुसलमान भी शामिल थे और उन्होंने यह निश्चय किया कि यह सब हाल ठीक थे और उससे यह सिद्ध हो गया शान्ति का पुनर्जन्म हो गया। अब तुम्हारा पितृलोक, पितर व श्राद्ध खिलाना कहाँ गया? क्योंकि वह दिल्ली में मौजूद है और कहीं श्राद्ध खाने नहीं जाती।

११. अगर किसी का पिता मरकर बकरा बन जाए और वह उसी को मारकर पिता का श्राद्ध करे, तब पिता को मार कर किया गया श्राद्ध किसको मिलेगा? कल्पना करो कि किसी का बाप मरकर उसी के घर में पैदा हो गया तब पिता तो पुत्र बन गया, मृतक श्राद्ध किसको मिलेगा?

१२. जीव की पितृसंज्ञा है व शरीर की? यदि कहो शरीर की तो वह जल गया। यदि कहो जीव की तब ग़लत है, क्योंकि अकेले जीव में पिता-पुत्र भाव नहीं होता और वह पुत्रों के घर में अथवा पशु-पक्षियों के घर में भी पैदा हो सकता है, इसलिए उसकी पितृसंज्ञा नहीं होती। इससे सिद्ध है कि जीवसहित शरीर का नाम ही पितर है और वह जीवित होता है, मृतक नहीं।

१३. पद्मपुराण के उतरखण्ड अध्याय ७८ में कथा आती है कि किसी के माँ-बाप मरकर उसी के घर कुतिया व बैल बन गये उसने उनका श्राद्ध किया और उनको नहीं मिला, अपितु कुतिया की कमर उसकी बहू ने तोड़ डाली और बैल भूखा मर गया। इससे साफ़ प्रकट है कि मृतकों को श्राद्ध नहीं मिलता।

शङ्का—संस्कार-विधि में स्वामी दयानन्दजी ने स्नातक का

अपसव्य होकर ज़मीन पर पानी छोड़ना लिखा है, इससे मृतक श्राद्ध सिद्ध है।

समाधान—अपसव्य के अर्थ जनेऊ बदलना नहीं है, बल्कि दक्षिण शरीर वा दक्षिण की ओर घूमना है। जैसे अमरकोष काण्ड ३ वर्ग १ में लिखा है।

वामं शरीरं सव्यं स्यादपसव्यं तु दक्षिणम्॥ ८४॥

बायें शरीर का नाम सव्य और दाएँ का नाम अपसव्य है। ब्रह्मचारी का मुख पहले पूर्व की ओर होता है और फिर वह दक्षिण की ओर घूमकर आचार्यों से निवेदन करता है कि जैसे यह पानी शान्ति देनेवाला है वैसे आपने भी मुझे विद्यादि गुणों से शान्ति प्रदान की है, दूसरों को भी शान्ति दीजिए।

विवाह संस्कार में भी लड़के-लड़की पर जल के छीटें देकर जल की महिमा लिखी है। यहाँ पर मृतक श्राद्ध की गन्ध भी नहीं है।

शङ्का—दुनिया में पिता का धन पुत्र को मिलता है, वैसे ही पिता का कर्म पुत्र को मिल जाएगा।

समाधान—यह बात ग़लत है कि पिता का कर्म पुत्र को मिलता है, प्रत्युत सिद्धान्त यह है कि जो धनवान् वा गरीबों के घर में जन्मते हैं, वे अपनी प्रारब्ध के अनुसार जन्म लेते हैं। एक का कंगाल घर में तथा दूसरे का धनी घर में पैदा होना अपने प्रारब्ध कर्म के सिवाय नहीं हो सकता। कई पिता की सम्पत्ति से वञ्चित रह जाते हैं और कइयों को मिल जाती है, यह सब अपने कर्म का खेल है।

दूसरी बात यह है कि दुनिया की राज-प्रजाओं के कायदे में ग़लती व अन्याय भी हो सकता है, परन्तु परमात्मा का न्याय अटल है। जो कोई करेगा वही भरेगा। प्रभु के न्याय में दूसरे का कर्म दूसरे को नहीं मिलेगा। श्राद्ध के विषय में अधिक जाननेवाले मेरी श्राद्ध मीमांसा देखें।

॥ ओ३म् ॥

पुत्र-परिवर्तन वैदिक है

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में श्री स्वामी दयानन्दजी वर्णव्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"**प्रश्न**—जो किसी के एक ही पुत्र व पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाए तो उसके माँ-बाप की सेवा कौन करेगा? वंशछेदन भी हो जाएगा। इसकी व्यवस्था होनी चाहिए!

उत्तर—न किसी की सेवा का भंग और न वंशछेदन होगा, क्योंकि उनको लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे। इसलिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी"।

इस लेख पर पौराणिक लोग यह शङ्का करते हैं कि आर्यसमाज का यह सिद्धान्त वेद के विरुद्ध है। अन्य का पुत्र अन्य का कैसे बन सकता है। यह बात युक्ति व शास्त्र के विरुद्ध है। स्वामी दयानन्द ने यह नवीन सिद्धान्त चलाकर हिन्दूजाति की बड़ी हानि की है। यदि आर्यसमाजियों में हिम्मत है तो पुत्र-परिवर्तन के लिए वेद का प्रमाण दिखावें।

समाधान—जो व्यवस्था महर्षि दयानन्दजी ने लिखी है, वह वेद-शास्त्र तथा युक्तिसङ्गत है। इसके लिए वेद के प्रमाण दिये जाते हैं। अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त ३० का देवता वागम्भृणी है। हम्भ्रण के अर्थ निघण्टु में महत् या बहुत के किये हैं। उसका अर्थ है बहुतों की वाणी, अर्थात् राष्ट्रसभा, क्योंकि इस सूक्त का देवता यानी विषय राष्ट्रसभा व उसके काम हैं। इसी राष्ट्रसभा का संकेत श्री स्वामीजी महाराज ने पुत्र-परिवर्तन के विषय में किया है। मन्त्र नीचे दिये जाते हैं—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ १॥

इस मन्त्र में राज्यसभा की बनावट=निर्माण का वर्णन है, अर्थात् राज्यसभा का निर्माण करते समय उसमें रुद्र ब्रह्मचारी, आदित्य ब्रह्मचारी, धर्मसभा, विद्यासभा के प्रतिनिधि, अध्यापक, उपदेशक,

सभापति, विशेष विद्वान्, वैद्य आदि सब सम्मिलित होने चाहिएँ। राज्यसभा में प्रत्येक समूह—विद्याविभाग, राज्यविभाग, समाजविभाग आदि के व्यक्ति होने चाहिएँ। जैसा राज्यसभा का वर्णन श्री स्वामीजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है, वैसा ही इस मन्त्र में वर्णन आया है। यदि प्रत्येक संस्था, प्रत्येक विद्याविभाग, प्रत्येक सामाजिक विभाग के प्रतिनिधि राज्यसभा में सम्मिलित हों तब किसी को किसी प्रकार की शिकायत नहीं हो सकती। सर्वोत्तम राज्यसभा का निर्माण है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरि स्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥ २ ॥

मैं राष्ट्रसभा पुत्रों के पहुँचानेवाली यानी परिवर्तन करनेवाली हूँ। पूर्ण ज्ञान रखनेवाली और प्रधान हूँ। मुझको बहुत प्रकार से देवता तथा विद्वान् लोग धारण करते हैं। बहुत पदार्थों में मेरी स्थिति है। मेरे सदस्य वही हो सकते हैं जिनमें बहुत-से गुण, विद्या व कर्मकार्य के साधन विद्यमान हों।

इस मन्त्र में स्पष्ट राज्यसभा का राष्ट्री नाम से वर्णन किया है और उसका काम तथा स्वरूप बतलाया है। प्रथम काम यह बतलाया है कि वह गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल गुणों का परिवर्तन करनेवाली है। गुणों का वर्णन करते हुए उसका पहला गुण यह बतलाया है कि वह पूर्ण ज्ञानवाली है। दूसरा, गुणों का परिवर्तन अज्ञान से नहीं, परन्तु पूर्ण ज्ञान से करती है। तीसरा, गुण उसका यह बतलाया है कि वह पूजनीय संस्थाओं में प्रथम यानि प्रधान है। कोई संस्था भी उसकी आज्ञा को नहीं टाल सकती। चौथा गुण उसका यह बतलाया है कि इस राष्ट्रसभा को मूर्ख नहीं, किन्तु विद्वान् लोग धारण करते हैं। पाँचवाँ गुण यह बतलाया है कि वह अनेक प्रकार से कार्य करनेवाली है। छठा गुण उसका यह है कि कि इसकी बहुत पदार्थों में स्थिति है, अर्थात् वह सब कामों में हस्तक्षेप करती है। सातवीं विशेषता उसकी यह है कि उसमें जो विद्वान् हैं वे बहुत गुणों को बहुत कर्मों तथा बहुत कार्यों को धारण करनेवाले हैं।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि वह राष्ट्रसभा गुणों का परिवर्तन किसी कारण को लेकर करती है वा अकारण ही? इसका उत्तर अगले मन्त्र में है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ३ ॥

मैं ही वह आज्ञाएँ निकालती हूँ जो विद्वान्, अविद्वान् सबके लिए हितकारी होती हैं और मैं ही गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल किसी को ब्राह्मण, किसी को ऋषि की, किसी को सुमेधा की पदवी देती हूँ।

इस मन्त्र में इस बात को खोल दिया है कि राज्यसभा गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ब्राह्मणादि वर्णों की स्थापना करती और गुण-कर्म के अनुसार ही उनका परिवर्तन करती हैं। दूसरे मन्त्र में जो वसु शब्द है वह पुत्र का वाचक है, क्योंकि रयि नाम धन का है और वसु नाम भी धन का है। ऋक् मण्डल ४ सूक्त ४ में पुत्र को रयि व धन के नाम से लिखा है।

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥ ४॥

मेरी आज्ञा से ही राज्य में विशेषज्ञान का काम करनेवाले को अन्न मिलता है। जो मेरी आज्ञा को सुनते हैं वे जीते हैं और जो मेरी आज्ञा नहीं मानते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हे लोगो! तुम मेरे श्रद्धायुक्त वचनों को सुनो।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे सखे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ५॥

मैं ही शूरवीर के लिए ब्रह्मद्वेषी को मारने के लिए धनुष को तानती हूँ, अर्थात् दुष्टों के वध की आज्ञा मैं ही देती हूँ। मैं ही श्रेष्ठ पुरुषों को सुख देती हूँ। मेरा प्रवेश पृथिवी में, स्थल में, जल में, अन्तरिक्ष में सब जगह है, यानि वायुयानों द्वारा आकाश में और समुद्री जहाज़ों के द्वारा पृथिवी पर—सब जगह मेरा साम्राज्य है।

ऊपर के मन्त्रों में राष्ट्रसभा का निर्माण, उसके गुण व पुत्र परिवर्तनादि कार्य, उसका कार्यक्षेत्र, उसकी अनिवार्य आज्ञाओं का मानना, आज्ञा न माननेवालों को दण्ड, माननेवालों को सुख-सम्पत्ति, धन आदि का देना सब बातों का अत्यन्त सुन्दर व रोचक वर्णन आया है। इन मन्त्रों के होते हुए पौराणिक पण्डितों को यह दुस्साहस छोड़ देना चाहिए कि वेदों में पुत्र-परिवर्तन का विधान नहीं है।

राष्ट्री शब्द की व्युत्पत्ति

सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। —उणादि ४।१५९॥
राजृ दीप्तौ। —अ० पा० ३।३६॥
इति षत्वं षित्वात् ङीष्। —४।१।४१॥

संगमनी—सन् गम्लृ ल्युट् ङीप सङ्गमयेत्री प्रापयेत्री।

शंका—इस सूक्त में दुर्गा देवी का वर्णन है राज्यसभा का नहीं। इसमें जो काम बताये हैं, वे सब दुर्गा के कार्य हैं।

समाधान—तुम्हारी शेर पर चढ़नेवाली, आठ हाथ वाली, राक्षसों को मारनेवाली दुर्गा का यहाँ नामोनिशान भी नहीं है, किन्तु मन्त्र में यह लिखा है कि राष्ट्रसभा दुष्टों को दण्ड देने के लिए, रुद्र के लिए धनुष को तानती है। अब तुम्हारी जो शिवजी की धर्मपत्नी है, उसमें धनुष के तानने की व ग्रहण की शक्ति नहीं है; क्या उसको धनुष तानने के लिए दुर्गा आज्ञा देती है? जब तुम उसको परमात्मा मानते हो तब क्या उसको दुष्टों को दण्ड देने के लिए किसी की आज्ञा लेने की आवश्यकता है? क्या वही, लोगों को ब्राह्मण, ऋषि आदि बनाती है, तो तुम्हारा जन्मवाद कहाँ गया? इसलिए इन मन्त्रों में सीधा राज्यसभा का वर्णन है।

शंका—

परीषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः॥ ७॥
नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभिषाळेतु नव्यः॥ ८॥

—ऋग्० मं० ७। सू० ४॥

दूसरे के पुत्र को अपना पुत्र नहीं बनाना चाहिए। तुम अपने नित्य पुत्र के पति, रक्षक बनो। हे अग्ने! अन्य जात पुत्र अपना नहीं होता। दूसरे के पुत्र को कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए। अन्योदर्य को कभी मन से भी पुत्र नहीं मानना चाहिए। वह फिर अपने घर चला जाएगा। हमको बलवान्, सहनशील तथा नवीन गुणों को धारण करनेवाला पुत्र प्राप्त हो।

इन दोनों मन्त्रों में स्पष्ट यह लिखा है कि अन्यजात व अन्योदर्य को अपना पुत्र नहीं बनाना चाहिए। इसलिए स्वामी दयानन्द का यह लेख कि दूसरे को अपना पुत्र बना लेना चाहिए, वेद के सर्वथा विरुद्ध है।

समाधान—इस शंका के नीचे लिखे समाधान हैं—

१. मन्त्र में अन्यजात शब्द आया है, जिसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि अन्य यानि दूसरी स्त्री में उत्पन्न हुआ। दूसरा यह कि दूसरे की सन्तान। सब सन्तानें अपने नहीं अन्य माता के उदर से

ही उत्पन्न होती हैं, इसलिए अन्य जात का अर्थ अन्य स्त्री में उत्पन्न हुए को पुत्र न मानना ठीक नहीं। यदि इसका यह अर्थ किया जाए कि अन्य माता–पिता से उत्पन्न सन्तान अपनी सन्तान नहीं हो सकती तब भी ठीक नहीं; क्योंकि आर्यों में दत्तक पुत्र, मुतबन्ना व क्षेत्रज आदि पुत्र उचित व जायज़ हैं। अब भी अनेक धनवान् लोग व महाराजा लोग सन्तान के न होने पर लड़के गोद लेते हैं। वह अपना नहीं बल्कि दूसरों का पुत्र होता है। फिर भी जायदाद का स्वामी और गोद लेनेवाले का ही पुत्र माना जाता है। उसी से उसका वंश चलता है। वर्त्तमान कानून में भी यह बात ठीक है।

२. दूसरा शब्द मन्त्र में अन्योदर्य आता है। इसका अर्थ भी विचारणीय है। सब सन्तानें दूसरे के यानि माता के पेट से ही पैदा होती हैं। अपने से कोई नहीं होती। इसलिए अन्योदर्य का अर्थ कोई भिन्न ही होना चाहिए। मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि तुम अन्योदर्य को दायभागी नहीं मानोगे तब अपना पुत्र भी पुत्र नहीं कहलाएगा। वह भी अपनी माता के उदर से उत्पन्न होता है, इसलिए अन्योदर्य है।

३. याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है—

''अन्योदर्यस्तु संसृष्टीनान्योदर्यो धनं हरेत्॥''

—प्रकरण दायविभाग १३९॥

इसकी मिताक्षरा टीका में लिखा है **''अन्योदर्यः सापत्नो भ्राता संसृष्टी धनं हरेत्।''** अर्थात् अन्योदर्य सपत्नी (मत्रेयी) का पुत्र धन का भागी होता है। यदि वह संसृष्टी, अर्थात् जायदाद में शामिल हो। इस श्लोक तथा टीका में मत्रेयी माता के पुत्र को अन्योदर्य लिखा है। यदि एक पुरुष के दो स्त्रियें हों तो दूसरी स्त्री के पुत्र को अन्योदर्य लिखा है। हिन्दूशास्त्र में दूसरी विवाहिता स्त्री का पुत्र भी जायदाद का भागी तथा अपना पुत्र होता है। यदि अन्योदर्य को पुत्र न माना जाए तब वह जायदाद का भागी कैसे होगा? हाँ, इतना भेद श्लोक में किया है कि एक अन्योदर्य संसृष्टी और दूसरा असंसृष्टी हो जाता है। अगर वह प्रथम ही जायदाद में से अपना हिस्सा बाँटकर अलग हो गया हो तब उनको उसमें से हिस्सा नहीं मिलेगा।

४. हमने जो आपत्तियाँ अन्योदर्य व अन्यजात शब्द पर उठाई हैं उनका उत्तर कोई पौराणिक पण्डित नहीं दे सकता। इसलिए मन्त्र का यथार्थ अर्थ नीचे दिया जाता है।

मन्त्र में अरणः शब्द आता है जिसका अर्थ स्कन्द स्वामी ने निरुक्तभाष्य करते हुए तथा सायणाचार्य ने वेदभाष्य करते हुए यह किया है—ऋणादपगतः अरणः अनृणस्य। जो अन्योदर्य, अन्यजात पुत्र पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण को न चुकावे उसको कभी भी अपना पुत्र नहीं बनाना चाहिए। मन्त्र ने ही इस बात को साफ़ कर दिया कि अपना पुत्र व अन्योदर्य दूसरे की सन्तान यदि गोद ली जाती है तो वह इसलिए कि पितृऋणादि को उतार देवे। यदि वह इन ऋणों को नहीं चुकाता तब उसको मन से भी अपना पुत्र नहीं बनाना चाहिए।

जो आपत्तियाँ हमने पौराणिक पण्डितों के अर्थ पर उठाई थीं वे इस सायण व स्कन्द के अर्थ से सर्वथा दूर हो जाती है, यानि जो ऋण चुकावे वह दूसरे का पुत्र भी अपना बन जाता है। यदि वह ऋणों को न उतारे तो उसे अपना पुत्र नहीं मानना चाहिए।

शंका—यह पुत्र परिवर्तन की बात युक्तिविरुद्ध तथा अस्वाभाविक प्रतीत होती है। ऐसा कभी नहीं हो सकता।

समाधान—

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम्।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले॥ ७॥
देवक्या जेठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्।
तत् सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय॥ ८॥

—भा० १०। २

देवकी के पेट में जो गर्भ था उसको निकालकर देवी ने रोहिणी के पेट में डाल दिया।

पौराणिको! कहो इसका नाम क्या रक्खोगे। हमारे विचार में तो इसका नाम गर्भपरिवर्तन रखना चाहिए। जब तुम्हारे इस पाँचवें वेद का गर्भपरिवर्तन अस्वाभाविक व अयुक्त नहीं है तो आर्यसमाज का पुत्र-परिवर्तन अयुक्त कैसे है?

शंका—आर्यसमाजी क्या पुत्रों की भाँति पुत्रियों का परिवर्तन भी मानते हैं। यह कैसे हो सकता है कि दूसरे के पुत्र से मनुष्य प्रेम करे?

समाधान—पुत्रियों का परिवर्तन तो सब जातियों में होता ही है। इसमें शंका की क्या आवश्यकता है? सबकी पुत्रियाँ विवाहित होकर दूसरे घरों में जाती हैं और अपने ससुर की पुत्रीवत् होकर उसकी जायदाद की भागिनी होती हैं। जब मनुष्य पुत्री तक को दे

देता है और दूसरे की पुत्री को अपने घर में लाकर अपनी पुत्रवधू बनाता है तब पुत्र परिवर्तन के लिए शंका कैसी ? यह कोई नियम नहीं है कि जो अपने से ही उत्पन्न हो उसी से प्रेम करता है। सबकी स्त्रियाँ दूसरों की पुत्रियाँ होती हैं और पुरुष उनसे प्रेम करते हैं। तुम कोई सिद्धान्त निश्चित करो। दूसरे से प्रेम क्यों नहीं हो सकता ? दामाद-ससुर का प्रेम होता है। मित्र-मित्र का प्रेम होता है। वे अपने से उत्पन्न नहीं होते।

शंका—क्या कोई ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता हो कि दूसरे का पुत्र अपना पुत्र हो जाता है।

समाधान—हाँ, अनेक प्रमाण मिलते हैं, जो नीचे दिये जाते हैं—

१. श्रीमद्भागवत में आता है कि श्रीकृष्ण का पिता वसुदेव कृष्ण को उत्पन्न होते ही नन्द के घर छोड़ आया तथा उसकी लड़की को अपने घर ले-आया। यह पुत्र-परिवर्तन है या नहीं ?

२. ऐतरेयब्राह्मण पञ्चिका सात में लिखा है कि अजीर्गत के बेटे शुनःशेप को विश्वामित्र ने अपना बेटा बनाया। अपना बेटा ही नहीं सबका सरदार बनाया। बेटों के शंका करने पर उनको शाप दे दिया। इसी बात को भा० ९। १६। ३०। में लिखा है—

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम्।
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम्॥

विश्वामित्र ने अजीगर्त के बेटे भार्गव को अपना पुत्र बनाया और अपने लड़कों से कहा इसको तुम मेरा सबसे बड़ा पुत्र समझो। इससे सिद्ध होता है कि गुण-कर्म-स्वभाव से ही पुत्र होता है। शुनःशेप के पिता अजीगर्त के गुण शुनःशेप के अनुकूल नहीं थे। इसलिए वह विश्वामित्र का पुत्र बना।

३. भागवत में लिखा है कि भरद्वाज ममता व बृहस्पति का लड़का था जो ब्राह्मण-ब्राह्मणी थे और उससे भरत का खानदान चला जो क्षत्रिय था। पाण्डव भी उसी वंश में थे।

४. शकुन्तला विश्वामित्र की पुत्री थी। उसको कण्व ने पाला और पाण्डवों का खानदान चला।

५. उसी स्कन्ध में लिखा है कि कृपाचार्य तथा कृपी, सत्यधृति क्षत्रिय के पुत्र थे और ब्राह्मण-ब्राह्मणी बने।

६. व्यास और कर्ण, पराशर व सूर्य के पुत्र थे, परन्तु कर्ण दूसरे का पुत्र बना और दूसरे का खानदान चला।

ऐसे अनेक उदाहरण ग्रन्थों में मिलते हैं, जहाँ अन्य के पुत्र होते हुए, अन्यों के पुत्र बने। महाभारत आदिपर्व अध्याय ७४ में लिखा है—

स्वपत्नीप्रभवान् पञ्च लब्धान् क्रीतान् विवर्धितान्।
कृतान् अन्यासु चोत्पन्नान् पुत्रान् वै मनुरब्रवीत्॥

औरस, लब्ध या कहीं से मिले हुए, खरीदे हुए, पाले हुए व नियोग के द्वारा दूसरी स्त्रियों में उत्पन्न किये हुए इन सबको मनु ने पुत्र बतलाया है।

इससे सिद्ध है कि अपनी पत्नी से उत्पन्न के अतिरिक्त भी अपने पुत्र होते हैं।

शंका—यदि किसी का पुत्र गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल होने पर भी उसके गुणों में आगे चलकर परिवर्तन आ जाए तब क्या वह फिर वर्ण को बदलेगा?

समाधान—

मातुरग्नेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जीबंधने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्॥ १६९॥
उत्पादकब्रह्मदात्रो गरीयान् ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्म जन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥ १४६॥
कामान् माता पिता चैव यदुत्पादयतोः मिथः।
सम्भूतिं तस्य तां विद्यात् यद्योनावभि जायते॥ १४७॥
आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा॥ १४८॥

—मनु०

पुरुष का प्रथम जन्म माता से होता है। दूसरा यज्ञोपवीत संस्कार से और तीसरा यज्ञदीक्षा में होता है। ऐसी वेद की आज्ञा है। उत्पन्न करनेवाले व वेदज्ञान देनेवाले पिताओं में वेदज्ञान देनेवाला पिता श्रेष्ठ है, क्योंकि जो आचार्य द्वारा मनुष्य का दूसरा जन्म होता है वही सर्वोत्तम होता है। माता-पिता पुत्र को कामना से उत्पन्न करते हैं। वह केवल उत्पत्तिमात्र ही होती है, किन्तु आचार्य वेद पढ़ाने के अनन्तर जिस जन्मजाति, यानि वर्ण को गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल निश्चित करता है वह सत्य, अजर व अमर होता है।

उपर्युक्त प्रमाण से सिद्ध है कि मनुष्य के तीन जन्म होते हैं। एक माता-पिता से, दूसरा गायत्री माता तथा आचार्य पिता से और तीसरा

यज्ञदीक्षा से। जिस वर्ण का आचार्य से जन्म लिखा है वह सत्य तथा अजर-अमर लिखा है। इस से सिद्ध है कि पच्चीस साल के बाद वर्ण परिवर्तन नहीं होगा। यदि करोड़ों में कोई एक ऐसी घटना हो भी जावे तो उसके वर्ण परिवर्तन के कारण उस वर्ण से गिरने से कोई हानि नहीं होगी। आजकल भी विदेशी गवर्नमैण्ट जिस राजा को अपने स्वार्थ के विरुद्ध, वास्तव में अत्याचारी देखती है उसको उसकी जायदाद से हटा देती है।

शंका—यदि विधवा के एक ही पुत्र हो और वह विधवा अनपढ़ हो, उसका पुत्र गुण-कर्म-स्वभाव के कारण किसी दूसरे को मिल जाए, तो वह विधवा क्या करेगी। यदि उसको अनपढ़ लड़का मिले तब क्या यह अन्याय नहीं है?

समाधान—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों में तो पुत्र-परिवर्तन यदि होगा तो उनके अनुकूल ही दूसरा पुत्र मिलेगा। उससे वह उनके धर्म और जायदाद की यथेष्ट रक्षा करेगा। इसलिए उनमें तो यह प्रश्न ही नहीं पैदा होता, परन्तु किसी की माता अनपढ़ गुण-कर्म से शूद्र हो तो उसको शूद्र पुत्र ही मिलना उचित है। वह उसको प्राप्त करके दुखी नहीं, परन्तु सुखी ही होगी। प्रायः यह देखा जाता है कि जिनके गुण-कर्म-स्वभाव नहीं मिलते वहाँ पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पति-पत्नी आदि में कलह ही देखा जाता है। ऐसी सैकड़ों घटनाएँ दिखाई देती हैं, जहाँ पत्नी की पति के द्वारा, पुत्र के द्वारा पिता की, माता के द्वारा पुत्र की हत्याएँ होती हैं। यह सब गुण-कर्म-स्वभाव न मिलने का ही परिणाम है।

शंका—यदि किसी की धर्मपत्नी विवाह होने के पश्चात् बी०ए० पास कर लेवे और उसका पति थोड़ी विद्या जाननेवाला हो तब पत्नी के वर्ण का परिवर्तन होने से उसका क्या परिणाम होगा?

समाधान—शास्त्र की मर्यादा वर्त्तमान अवस्था को देखकर नहीं बनाई गई, किन्तु वह आदर्शरूप है। शास्त्र की आज्ञा है कि प्रथम ही स्त्री-पुरुष के गुण-कर्म-स्वभाव देखकर उनका विवाह सम्बन्ध करना चाहिए! इसलिए इस बात में यह दूषण ही उत्पन्न नहीं होता। वर्त्तमानकाल में पौराणिक मतानुसार केवल जन्म को लेकर ही विवाह आदि कार्य होते हैं। इसलिए उसी जन्मवाद में यह दूषण हो सकता है। दूसरी बात यह कि मनु के अनुसार स्त्री-पुरुष का जो वर्ण निश्चित किया जाता है वह अजर-अमर होता है, इसलिए

उसमें परिवर्तन के लिए अवकाश नहीं है।

तीसरी युक्ति यह है कि केवल विद्या पढ़ने से ही मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य नहीं हो जाता, किन्तु उसमें कर्म तथा स्वभाव शब्द भी साथ है। यदि कोई विद्या पढ़ लेवे, किन्तु ब्राह्मण के कर्म न करेगा तब भी वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि विद्या भी पढ़ले और कर्म भी करे, परन्तु उसके स्वभाव में त्याग व तपस्वीपन न हो तो वह ब्राह्मण नहीं कहलाएगा। उदाहरण के लिए बहुत-से मनुष्य ऐसे होते हैं जो हवन-यज्ञ, वेदाध्यायनादि ब्राह्मण-कर्म करते हुए भी अत्यन्त लोभी होते हैं। उनका गुण-कर्म ब्राह्मण का होने पर भी स्वभाव ब्राह्मण का नहीं है, इसलिए उनको ब्राह्मण नहीं कह सकते, वर्ण निश्चय में प्रधानता स्वभाव की होती है।

स्वामी दयानन्दजी के कहने के अनुसार यदि यह नियम बन जावे कि जिस क्षत्रिय के गुण-कर्म व स्वभाव ब्राह्मण के अनुसार न हों तो वह क्षत्रिय ब्राह्मण की जायदाद का अधिकारी नहीं होगा, तब संसार के, विशेषतः भारत के अनेक कष्ट दूर हो सकते हैं। वर्त्तमान भारत के राजा लोग अपनी जायदाद को कुकर्मों में पानी की तरह बहाते हैं। केवल इसलिए कि वे अपने बाप के पुत्र हैं। यदि इन अनधिकारियों को हटाकर उस जायदाद का मालिक कोई दूसरा योग्य क्षत्रिय प्रजारक्षक पुत्र-परिवर्तन के सिद्धान्त के अनुसार उसकी सम्पत्ति का स्वामी बना दिया जाए तब उसके उस धन का ठीक प्रयोग करने से भारत के सब कष्ट दूर हो सकते हैं। रूस की क्रान्ति का कारण यह जन्मवाद ही था। हम न इस जन्मवाद को मानते हैं और न रूस के अतिवाद को मानते हैं, किन्तु योग्यतावाद को मानते हैं। जिसकी जैसी योग्यता हो उसके अनुसार उसको अधिकार देना चाहिए।

ऊपर हमने सिद्ध कर दिया है कि पुत्र परिवर्तन वैदिक, शास्त्रसङ्गत, इतिहास व पुराणानुमोदत है। जो कुर्तक इस विषय पर किये जाते हैं उनका भी समाधान कर दिया है।

वर्णव्यवस्था के विषय में जो पाठक अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहें वे मेरी ''वर्णव्यवस्था मीमांसा'' को दयानन्द स्वाध्याय मण्डल से मँगाकर पढ़ें। इसमें बड़े ज़ोर से वेदशास्त्र, इतिहास तथा पुराणों के प्रमाणों द्वारा गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था का मण्डन और जन्मपरक वर्णव्यवस्था का खण्डन किया गया है।

॥ ओ३म् ॥

धाया का दूध

सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि—

"प्रसूता का दूध छह दिन तक बालक को पिलावें, पश्चात् धायी पिलाया करे, परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान-पान माता-पिता करावें। जो कोई दरिद्र हो धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जोकि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हों उनको शुद्ध जल में भिगो, औंटा छानके, दूध के समान जल मिला बालक को पिलावें।

"जहाँ धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहाँ जैसा उचित समझें वैसा करें, क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव-समय निर्बल हो जाती है, इसीलिए प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिए स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करें जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसा करने से दूसरे महीने में स्त्री पुनरपि युवती हो जाती है।

"इस प्रकार जो स्त्री-पुरुष करेंगे उनके बल-पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी, जिससे सब सन्तान उत्तम बलपराक्रमयुक्त, दीर्घायु और धार्मिक होंगे।"

आगे चलकर चौथे समुल्लास में लिखा है "जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिलावे। यदि उसकी माता के दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा करके उसका दूध पिलावें"।

शङ्का—इस लेख पर व्याख्यानों तथा शास्त्रार्थों में पौराणिक पंडित कहते हैं कि यह स्वामी दयानन्द का लेख अवैदिक है। वेदों में कहीं भी धायी का दूध पिलाने का विधान नहीं है। स्वामी दयानन्दजी ने ईसाइयों की नकल की है। यदि आर्यसमाजियों को स्वामीजी के सिद्धान्तों पर विश्वास है तो वे उक्त लेख को वेदों से सिद्ध करके दिखावें।

मेरे विचार में महर्षि दयानन्द का यह लेख सोलहों आने सत्य, वेदशास्त्र-सम्मत तथा युक्तिसङ्गत है। प्रमाण तथा युक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

प्रमाण संख्या - १

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥

—यजुः० १७।७०

माता तथा धायी जो समान मनवाली हैं, परन्तु जिनका रूप विरुद्ध है, एक बालक को दोनों दूध पिलाती हैं।

इस मन्त्र में इस बात का स्पष्ट वर्णन आता है कि बालक को माता तथा धायी दोनों दूध पिलाती हैं। माता को ''नक्त=रात्री'' धाया को ''उषा'' बतलाया है। इसका कारण यह है कि माता प्रसव के कारण अत्यन्त दुर्बल हो जाती है; उसकी सब शक्तियाँ हीन हो जाती हैं, इसलिए उसको रात्रि नाम से पुकारा गया है। धाया की शक्तियाँ प्रबल होती हैं, इसलिए उसे उषा नाम से कहा है। उनको समान मनवाली इसलिए लिखा है कि बच्चे पर जैसे माता स्नेह करती है, धायी का कर्त्तव्य है कि वह भी उससे वैसा ही स्नेह करे, किसी प्रकार का दुर्व्यवहार बालक के साथ न करे। ''विरूप'' शब्द से यह सिद्ध होता है कि उनकी सुन्दरता आदि समान हों, प्रत्युत असमान रूप होने पर भी दोनों बच्चे से समान व्यवहार करें।

शङ्का—इस मन्त्र में रूपकालंकार से यह वर्णन आता है कि रात्रि व उषा दिन रूपी एक बालक को दूध पिलाती हैं। यहाँ पर धायी व माता का कोई वर्णन नहीं आता।

समाधान—प्रथम तो इस मन्त्र में आपका यह अर्थ नहीं है। यदि मान भी लिया जावे तब भी मेरे अर्थ की कोई हानि नहीं होती क्योंकि यदि संसार में कोई असली वस्तु न हो तब रूपक आदि अलंकार नहीं बन सकते। उदाहरण के लिए यदि संसार में चन्द्रमा न हो तो किसी स्त्री के मुख को चन्द्र नहीं कह सकते। इसी प्रकार यदि माता व धायी एक बच्चे को दूध न पिलाती हों तब माता व धायी की भाँति रात व उषा का दिनरूपी बालक को दूध पिलाना नहीं बन सकता। इसलिए चाहे नक्त और उषा को रात्रि व उषा तथा माता व धायी मानें। दोनों प्रकार के अर्थों से यह सिद्ध होता है कि माता व धायी दोनों मिलकर बच्चे को दूध पिलावें।

प्रमाण संख्या – २

माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १२॥

—ऋग्० ३.५५.१२

एक माता जोकि बालक की जननी है, दूसरी धायी जो बच्चे से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखती, फिर भी बच्चे से, जैसे गौ बच्छे से स्नेह करती है, वैसे ही स्नेह करती है। ये दोनों मिलकर बालक को दूध पिलाती हैं। माता तथा धायी का बालक को दूध पिलाना विद्वानों का मुख्य सिद्धान्त है।

प्रमाण संख्या – ३

अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनूरूधः।
ऋतस्य सा पयसा पिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १३॥

—ऋग्० ३.५५.१३

धाया दूसरे के बच्चे को बड़े प्रेम से गौ की तरह दूध पिलाती है और उसकी पालना करती हुई सत्यसिद्धान्त की रक्षा करती है। धाया को बच्चे का दूध पिलाना विद्वानों का प्रबल सिद्धान्त है।

उपर्युक्त तीनों वेदमन्त्रों में इन बातों का वर्णन आता है—माता तथा धायी दोनों मिलकर बालक को दूध पिलावें। वे समान रूपवाली न होने पर भी समान मनवाली, अर्थात् बच्चे के प्रति समान प्रेम करनेवाली हो सकती हैं। संसार में गौ का बच्छे से प्रेम करना प्रसिद्ध है। धाया के लिए उसी गौ की उपमा दी गई है कि वह अपना बच्चा न होने पर भी गौ की तरह बालक से प्रेम करे। धाया के दूध पिलाने को सिद्धान्त ही नहीं, किन्तु एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बतलाया है।

अब मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि इन तीन मन्त्रों की विद्यमानता में तुम किस मुँह से कहते हो कि ऋषि दयानन्द का धाया के दूध पिलाने का सिद्धान्त वेदविरुद्ध है?

इन वेद प्रमाणों के अतिरिक्त इस वैदिक सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अन्य प्रमाण व युक्तियाँ भी दी जाती हैं—

प्रमाण संख्या – ४

ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कुर्यातां यथावर्णं धात्रीमुपेयान् मध्यमपरिमाणामरोगां शीलवतीं जीवद्वत्सां इत्यादि।

शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं मन्त्रेणानेन पाययेत॥

चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः।
भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये॥
पयोमृतं रसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवा प्राश्यामृतं यथा॥

—सुश्रुत शारीरिकस्थान अध्याय १०

उसके बाद दसवें दिन माँ-बाप बच्चे का नाम रखकर वर्ण के अनुसार धाया को प्राप्त करें। वह धाया मध्यम परिमाणवाली, रोगरहित, सुशील, जिसका बच्चा जीता हो, मोटे स्तनोंवाली न हो, ऐसी धाया को प्राप्त करके, पहले बच्चे के मुँह में उसका दाँयाँ स्तन देकर यह मन्त्र बोलें। —'हे सुभगे! तेरे स्तनों में समुद्र की तरह अपार दूध हो। तेरे अमृतरूपी दूध को पीकर यह बच्चा लम्बी उम्रवाला हो'।

सुश्रुत का ज्ञान धन्वन्तरिजी महाराज ने दिया था और धन्वन्तरि को पुराणों में अवतार लिखा है। इसके अर्थ यह हुए कि सुश्रुत का ज्ञान पौराणिक सिद्धान्त के अनुकूल परमात्मा का ज्ञान है। इस ईश्वरीय ज्ञान सुश्रुत में धाया का दूध पिलाना ही नहीं लिखा बल्कि धाया की आकृति उसके गुण-कर्म-स्वभाव का विस्तार से वर्णन लिखा है। और यह भी लिखा है कि धाया का दूध बच्चे के लिए अमृत-तुल्य होता है। उससे उम्र लम्बी होती है। यहाँ तक लिखा है कि जैसे देवता लोग सोमवल्ली आदि अमृत का पान करके दीर्घायु होते हैं वैसे ही धाया का दूध पीने से बच्चे की आयु लम्बी होती है।

पौराणिक कहें कि जब उनके कहने के अनुसार सुश्रुत धन्वन्तरि अवतार का ज्ञान है और उसमें लिखा है कि धाया का दूध बच्चे के लिए अमृत-तुल्य होता है, उससे आयु बढ़ती है, फिर तुम किस मुँह से महर्षि दयानन्द की उस शिक्षा को जिसका वर्णन वेद तथा सुश्रुत आदि ग्रन्थों के आधार पर ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में किया है, ईसाइयों की शिक्षा बतलाते हो? क्या जो विस्तृत विधि सुश्रुत में धाया के दूध पिलाने की लिखी है वह भी ईसाइयों की नकल है? कुछ बुद्धि से काम लो? महर्षि की शिक्षा पर व्यर्थ आक्षेप मत करो। तुम सुश्रुत को वैदिक मानते हो या अवैदिक? यदि वैदिक मानते हो तो ऋषि दयानन्द की शिक्षा पर शङ्का क्यों करते हो? उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सुश्रुत के अनुकूल है। यदि अवैदिक तब तुम्हारा अवतारवाद मलियामेट हो जाएगा। तुम्हारे

कहने के अनुसार अवतार वैदिक धर्म की स्थापना के लिए आते हैं, फिर उन्होंने इस ईसाई शिक्षा का प्रचार क्यों किया ? ईसाई सुश्रुत से पहले हुए थे या पीछे ? यदि कहो पहले, तब तुम्हारी इतिहास की अज्ञानता प्रकट होगी, क्योंकि कोई भी बुद्धिमान् इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं होगा कि सुश्रुत ईसाइयों की नकल है। यदि कहो कि ईसाई पीछे हुए हैं, तो तुम्हारी यह बात मिथ्या है कि स्वामी दयानन्दजी ने जो बच्चे को धायी द्वारा दूध पिलाना लिखा है, वह ईसाइयों की नकल है, क्योंकि स्वामीजी ने धायी का दूध पिलाने की विधि में सुश्रुत आदि ग्रन्थों का अनुवादमात्र किया है।

शङ्का—जब धाया बच्चे को दूध पिलाएगी तब उसका अपना बच्चा क्या पीएगा ? क्या यह उसके बच्चे के साथ अन्याय नहीं है ?

समाधान—जो प्रमाण हमने सुश्रुत का उद्धृत किया है उसमें लिखा है—''जीवद्वत्साम्'' धाया ऐसी हो कि जिसका बच्चा जीता हो। इससे सिद्ध होता है कि वही धाया दूध पिलाये जिसका अपना बच्चा जीता हो। जब पौराणिक इस सुश्रुत की शिक्षा को अवतार की शिक्षा मानते हैं तब वे तो इसपर शंका ही नहीं कर सकते। जो शब्द प्रमाण को नहीं मानते उनके लिए उत्तर यह है—सुश्रुत में लिखा है—कि धाया को पौष्टिक पदार्थ और ओषधियाँ खिलानी चाहिएँ; जिससे उसका दूध बहुत बढ़ जाए और स्वच्छ तथा रोगरहित हो जावे। बस, दूध के अधिक बढ़ने से उसके अपने बच्चे को कोई कष्ट नहीं होगा। वह भली प्रकार दोनों बच्चों की पालना कर सकती है।

शङ्का—स्वामी दयानन्दजी ने यह युक्ति दी है कि प्रसूता को दूध नहीं पिलाना चाहिए, वरना वह अधिक दुर्बल हो जाएगी, ठीक नहीं, क्योंकि धायी के भी तो दुर्बल होने की सम्भावना है। जब उसकी माता दुर्बल होगी तब क्या धायी दुर्बल न होगी ? क्या धायी पर यह अन्याय नहीं है ?

समाधान—सुश्रुत में आता है कि धाया को खूब पौष्टिक पदार्थ खिलाने चाहिएँ। उनके खाने से धाया कमज़ोर नहीं होगी। प्रसूता प्रसव के कारण दुर्बल होती है, धाया नहीं होती। तीसरा कारण यह है कि धाया का काम ही बच्चों का पालन होता है, इसीलिए उसको कोई कष्ट प्रतीत नहीं होगा। एक वकील व पण्डित को अगर कोई कड़कती धूप में हल चलाने के लिए कहे तो वह नहीं चला सकता और शायद गर्मी से मर भी जावे, परन्तु एक किसान हल चलाने में इतना कष्ट अनुभव नहीं करता जितना एक वकील। एक मज़दूर दो

मन की बोरी उठाकर, बड़ी दूर तक जा सकता है। यदि वही भार एक जज, वकील, डाक्टर व पण्डित पर रख दिया जाए तो प्रथम तो वह उसको उठा ही नहीं सकता और कथञ्चित उठा भी ले तो उसका मार्ग में ही 'राम नाम सत' हो जावेगा। मज़दूर के लिए बहस करना कठिन है और वकील के लिए आसान। इससे सिद्ध हुआ कि जिसका जो काम होता है उसको उसमें उतना नष्ट नहीं होता। धाया का कार्य ही बच्चों की पालना व उनकी रक्षा करना होता है, इसलिए उसको दुर्बलता आदि कष्ट न होंगे। धाया के मुक़ाबले में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों की स्त्रियों को राज्यकार्य, शिक्षाकार्य, प्रचारकार्य, अध्यापनकार्यादि अनेक काम करने पड़ते हैं, अतः उनके दुर्बल होने की सम्भावना होती है, धाया की नहीं।

शङ्का—राजस्थान में अनेक वीर रानियों की गाथाएँ आती हैं कि क्षत्रणियों ने अपने देश, जाति की रक्षा के लिए घोर संग्राम किये और शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। उनमें लक्ष्मीबाई, पद्मावाई, कर्णवती आदि अनेक वीराङ्गनाएँ भारतभूषण हुई हैं। जहाँ इन वीराङ्गनाओं का भारतीय इतिहास में वर्णन आता है वहाँ प्रातः स्मरणीय वीरवर प्रताप, महाराणा सांगा, राठौर अमरसिंह, पूज्य शिवाजी आदि महावीरों का वर्णन है कि उन्होंने क्षत्राणियों का दूध पिया था।

इसमें एक इतिहास की कहानी भी है कि महामाया का पति यशवन्तसिंह जब औरङ्गज़ेब के साथ लड़ाई लड़ रहा था तब किसी कारण से लड़ाई छोड़कर जोधपुर चला गया। महामाया को पता लगने पर उसने किले के फाटक बन्द करवा दिये और कहा कि—"राठौर कुल में जन्म लेकर, शिशोदिया कुल में शादी करवाके जो शत्रु को पराजित न करके भागता है वह शेर नहीं बल्कि गीदड़ है। मेरा पति शेर था, गीदड़ नहीं था। इसलिए मैं इस मनुष्य को किले में प्रविष्ट करके वीरता को कलंकित करना नहीं चाहती"।

सास के समझाने पर यशवन्तसिंह किले में प्रविष्ट हुआ, उधर सास ने महामाया को कहा कि "तुम हलुवा बनाओ मैं अपने बच्चे को खिलाऊँगी"। महामाया ने लोहे के बर्तन में हलुआ बनाया। कढाई और पलटे का शब्द सुनकर यशवन्तसिंह की माता ने कहा कि "लोहे से डरकर तो मेरा बच्चा यहाँ आया है फिर तू यहाँ लोहा बजा रही है"। इस ताने को सुनकर यशवन्तसिंह फिर लड़ने को तैयार हो गया। यशवन्तसिंह की दुर्बलता के विषय में पूछने पर माता ने बताया कि इसने एक बार दासी का दूध पी लिया था। मैंने उल्टा

करके सारा दूध निकाल दिया लेकिन कोई बून्द इसके अन्दर रह गई। उसी के कारण इसमें दुर्बलता रह गई है। इससे सिद्ध है कि बच्चे को धाया आदि हीन स्त्रियों का दूध नहीं पिलाना चाहिए।

समाधान—धाया नीच स्त्री नहीं, किन्तु एक उत्तम देवी होती है। सुश्रुत में आता है कि धाया गुण-कर्म-स्वभाव से समान वर्णवाली होनी चाहिए। जो गुण धाया के सुश्रुत में लिखे हैं उनके होते हुए धाया को नीच कहना अपनी नीचता का परिचय देना है। वीरता जन्म की जाति व दूध में ही नहीं होती बल्कि उसके अन्य कारण हैं। भारतवर्ष के जाट, सिक्ख, भील, मावली, मीणे आदि अनेक जातियाँ भारत तथा विदेश में वीरता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पौराणिक पण्डे उनको शूद्र कहते हैं। यह और बात है कि आर्यसमाज के प्रचार के बाद अब इन जातियों की आँखें खुली हैं। जब से इन्होंने अपने आपको क्षत्रिय कहना प्रारम्भ किया है तब से पौराणिक पण्डित इनको शूद्र कहने से घबराते हैं। इनके मुक़ाबले में वर्त्तमान में राजस्थान के जन्म के कई क्षत्रिय, जन्म की कई क्षत्रणियों का दूध पीने पर भी कायर, बुज़दिल, अफीमची, आलसी दिखाई देते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जन्म व दूध में वीरता नहीं है, किन्तु वीरता की शिक्षा और उसके अनुकूल अभ्यास करने में और दिल के दिलेर होने में वीरता है। जिनमें ये तीन गुण नहीं होते वे वीर नहीं हो सकते।

उदयसिंह कायर थे, परन्तु उनके पुत्र महाराणा प्रतापसिंह की वीरता जगत्प्रसिद्ध है। महाराणा के पुत्र अमरसिंह भी इतने त्यागी, तपस्वी और वीर नहीं थे जितने कि महाराणा प्रताप। वर्त्तमान समय में भी जिन जातियों में शिक्षा व अभ्यास है उनमें वीर पैदा होते हैं। पौराणिक मत के अनुसार वे नीच ही क्यों न हों। राजपूतों में भी जो वीरता के काम करते हैं वे ही वीर हैं। दूसरे, जन्म से क्षत्रिय होने पर व जन्म की क्षत्राणियों का दूध पीने पर, वीर नहीं, किन्तु कायर हैं। महामाया की सास के दूध की और लोहे के बर्त्तन की कहानी बनावटी, अशुद्ध और इतिहासविरुद्ध है। टाड साहिब ने टाड राजस्थान में कहीं भी इन बातों का उल्लेख नहीं किया। चित्तौड़ की पन्ना धाया इतिहास में एक वीराङ्गना हुई है। उसने उदयसिंह को बचाने के लिए स्वयं अपने जिगर के टुकड़े का बलिदान करवाया। यह कम वीरता नहीं है।

उपर्युक्त लेख से सिद्ध हो गया कि वीरता जन्म की जाति, माता के दूध पर निर्भर नहीं है, परन्तु उसका कारण शिक्षा, अभ्यास, कर्मण्यता तथा चित्त का उत्साह है।

करके सारा दूध निकाल दिया लेकिन कोई बून्द इसके अन्दर रह गई। उसी के कारण इसमें दुर्बलता रह गई है। इससे सिद्ध है कि बच्चे को धाया आदि हीन स्त्रियों का दूध नहीं पिलाना चाहिए।

समाधान—धाया नीच स्त्री नहीं, किन्तु एक उत्तम देवी होती है। सुश्रुत में आता है कि धाया गुण–कर्म–स्वभाव से समान वर्णवाली होनी चाहिए। जो गुण धाया के सुश्रुत में लिखे हैं उनके होते हुए धाया को नीच कहना अपनी नीचता का परिचय देना है। वीरता जन्म की जाति व दूध में ही नहीं होती बल्कि उसके अन्य कारण हैं। भारतवर्ष के जाट, सिक्ख, भील, मावली, मीणे आदि अनेक जातियाँ भारत तथा विदेश में वीरता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पौराणिक पण्डे उनको शूद्र कहते हैं। यह और बात है कि आर्यसमाज के प्रचार के बाद अब इन जातियों की आँखें खुली हैं। जब से इन्होंने अपने आपको क्षत्रिय कहना प्रारम्भ किया है तब से पौराणिक पण्डित इनको शूद्र कहने से घबराते हैं। इनके मुक़ाबले में वर्त्तमान में राजस्थान के जन्म के कई क्षत्रिय, जन्म की कई क्षत्रणियों का दूध पीने पर भी कायर, बुज़दिल, अफीमची, आलसी दिखाई देते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जन्म व दूध में वीरता नहीं है, किन्तु वीरता की शिक्षा और उसके अनुकूल अभ्यास करने में और दिल के दिलेर होने में वीरता है। जिनमें ये तीन गुण नहीं होते वे वीर नहीं हो सकते।

उदयसिंह कायर थे, परन्तु उनके पुत्र महाराणा प्रतापसिंह की वीरता जगत्प्रसिद्ध है। महाराणा के पुत्र अमरसिंह भी इतने त्यागी, तपस्वी और वीर नहीं थे जितने कि महाराणा प्रताप। वर्त्तमान समय में भी जिन जातियों में शिक्षा व अभ्यास है उनमें वीर पैदा होते हैं। पौराणिक मत के अनुसार वे नीच ही क्यों न हों। राजपूतों में भी जो वीरता के काम करते हैं वे ही वीर हैं। दूसरे, जन्म से क्षत्रिय होने पर व जन्म की क्षत्राणियों का दूध पीने पर, वीर नहीं, किन्तु कायर हैं। महामाया की सास के दूध की और लोहे के बर्त्तन की कहानी बनावटी, अशुद्ध और इतिहासविरुद्ध है। टाड साहिब ने टाड राजस्थान में कहीं भी इन बातों का उल्लेख नहीं किया। चित्तौड़ की पन्ना धाया इतिहास में एक वीराङ्गना हुई है। उसने उदयसिंह को बचाने के लिए स्वयं अपने जिगर के टुकड़े का बलिदान करवाया। यह कम वीरता नहीं है।

उपर्युक्त लेख से सिद्ध हो गया कि वीरता जन्म की जाति, माता के दूध पर निर्भर नहीं है, परन्तु उसका कारण शिक्षा, अभ्यास, कर्मण्यता तथा चित्त का उत्साह है।

शङ्का—क्या इतिहास में ऐसे उदाहरण आते हैं जिनसे यह सिद्ध होता हो कि किन्हीं बालकों ने अपनी माताओं का दूध न पीकर दूसरी माताओं का दूध पीया हो?

समाधान—हाँ, आते हैं। दूर क्यों जाते हो इन पुराणों को ही लिजिए, जिनको पौराणिक लोग पाँचवाँ वेद मानते हैं। इनमें अनेक कहानियां ऐसी आती हैं जिनसे सिद्ध है कि बहुत-से बच्चों ने अपनी माताओं का दूध न पीकर दूसरी स्त्रियों का दूध पीया और वे महापुरुष कहलाए। कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. भागवत में आता है कि जन्मते ही कृष्णजी को उनका पिता नन्द के घर छोड़ आया और उसकी कन्या को देवकी को लाकर दे दिया। कृष्णजी ने अपनी माता का दूध न पीकर एक अहीर ग्वाले की स्त्री का दूध पीया। जो सनातनियों के कहने के अनुसार शूद्र था। मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि जब एक अहीर स्त्री का दूध पीकर कृष्णजी बलवान्, वीर व तुम्हारे अवतार हो सकते हैं तब तुम्हें एक धाया के दूध पर आपत्ति क्यों है?

२. भागवत के नवमस्कन्ध में आता है कि राजा भरत के कोई सन्तान नहीं थी। उसको भरद्वाज नामक लड़का मरुतों ने दिया। फिर लिखा है कि बृहस्पति ब्राह्मण था और उसकी भौजाई ममता, ब्राह्मणी थी उन दोनों के संयोग से भरद्वाज लड़का उत्पन्न हुआ। माता के ब्राह्मण-ब्राह्मणी होने पर भी भरत का क्षत्रिय कुल भरद्वाज से चला। जिस कुल में आगे चलकर कौरव तथा पाण्डवों का जन्म हुआ। यहाँ तक लिखा है कि उसकी माता ममता भरद्वाज को जन्मते ही छोड़कर चली गई, उसने दूध नहीं पिलाया। अगर अपनी माता को छोड़ दूसरी स्त्री का दूध नहीं पीना चाहिए तो बताओ कि भरद्वाज ने किसका दूध पिया?

३. उसी नवम स्कन्ध में लिखा है कि कृपा-कृपी एक सरकण्डे में से पैदा हुए। पौराणिक पण्डित बतलाएँ कि कृपा-कृपी ने माँ का दूध कहाँ से पिया? उनकी माँ तो सरकण्डा थी।

४. देवीभागवत में लिखा है कि सत्यवती की माँ मछली थी। मैं पौराणिकों से पूछता हूँ कि सत्यवती जो व्यास की माता थी उसने अपनी माता का दूध कहाँ पिया, क्योंकि उसकी माता तो मछली थी।

५. देवीभागवत में आता है कि व्यास जी पैदा होते ही अपनी माता को छोड़कर चल दिये। सत्यवती अपने बाप के पास चली गई। पौराणिक पण्डितो! बतलाओ तुम्हारे अठारह पुराणों को बनानेवाला व्यास माता का दूध पीये बिना इतना बड़ा योगी व ज्ञानी

बन सकता है, तो तुम्हें धाया के दूध पर आपत्ति क्यों है?

६. भागवत के नवमस्कन्ध में आता है कि राजा युवनाश्व के कोई लड़का नहीं था। उसने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। घड़े में मन्त्रपूत पानी पड़ा हुआ था। वह उस राजा ने भूल से पी लिया और उसको गर्भ रह गया। उसके लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम मान्धाता था, वह पैदा होते ही रोने लगा। लोगों ने कहा कि वह किसका दूध पिएगा? इन्द्र ने कहा कि बेटा! मेरा दूध पी ले? आगे चलकर वह बड़ा भारी राजा हुआ। पौराणिको! बतलाओ मान्धाता ने किसका दूध पीया? उसकी माता तो थी ही नहीं। इसी प्रकार के सैकड़ों उदाहरण पुराणों में भरे पड़े हैं। इनके होते हुए पौराणिक पण्डितों का धाया का दूध पीने पर आक्षेप करना अपनी धृष्टता का परिचय देना है।

प्रमाण संख्या – ५

राजपूत राजाओं में अभी तक यह प्रथा है कि वे बच्चों को पालने के लिए धाया रखते हैं। अंग्रेज़ों के अन्दर जोकि संसार के सबसे बड़े हिस्से पर राज्य कर रहे हैं, उनके बच्चों को धाया (मिड वाइफ) पालती है। ऋषि दयानन्द ने तो स्पष्ट लिख दिया है कि अगर धाया का प्रबन्ध न कर सकें तो गौ, बकरी आदि का प्रबन्ध कर लें। यदि वह भी न हो सके तो जैसा उचित हो वैसा करें। वर्त्तमान समय में भारतवर्ष में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम है, परन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की मृत्यु संख्या अधिक है। प्रायः इस मृत्यु का कारण सन्तानोत्पत्ति है। माताएँ निर्धनता के कारण बच्चों की पालना नहीं कर सकतीं और लगातार दो-तीन साल दूध पिलाने से कमज़ोर हो जाती हैं। उससे जहाँ माता को हानि होती है वहाँ बच्चे को भी दुर्बल तथा रोगिणी माता का दूध पीने से अनेक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है, इसलिए महर्षि दयानन्द ने ठीक लिखा है कि बच्चे को माता का दूध न पिलाकर धाया का दूध पिलाना चाहिए; क्योंकि माता प्रसव के कारण दुर्बल होती है।

मैंने वेदशास्त्रों के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि ऋषि दयानन्द का यह सिद्धान्त ''कि धाया बच्चे को दूध पिलाये'' वेदानुकूल है। विरोधी जिन युक्तियों को प्रस्तुत करते हैं उनका उत्तर भी दे दिया है। अब कोई भी विचारवान् व्यक्ति यह मानने से इन्कार नहीं कर सकता कि, धाया का दूध ही बच्चे को पिलाया जाए।

दयानन्द स्वाध्याय मण्डल ग्रन्थमाला का इससे अगला पुष्प ''पुत्र परिवर्तन वैदिक है'' होगा, प्रतीक्षा करें।

॥ ओ३म् ॥

गर्भाधान और योनि-सङ्कोचन

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि लिखते हैं—

"जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका और नेत्र के सामने नेत्र, अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य-प्राप्ति समय अपानवायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे। सोंठ, केसर, अस्सगन्ध, छोटी इलायची सालम मिश्री डालकर गर्म कर रक्खा हुआ दूध ठण्डा कर दोनों पीकर अलग-अलग अपनी-अपनी शय्या पर शयन करें।"

इस महर्षि के वैदिक, स्वाभाविक, युक्तियुक्त, कल्याणकारक लेख पर पौराणिक पण्डित निम्न शंका करते हैं।

शंका—स्वामी दयानन्द का यह गर्भाधान सम्बन्धी सिद्धान्त वेदविरुद्ध, अश्लील तथा दुराचार फैलानेवाला है। यदि आर्यसमाजी इसको ठीक समझते हैं तब इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए प्रमाण उपस्थित करें।

समाधान—ऋषि का यह लेख सर्वथा वैदिक तथा युक्तिसङ्गत है। इसके लिए प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

प्रमाण संख्या - १

मुखꣳ सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन्त्सरस्वती।
चप्यन्न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी॥

—यजुः० १९।८८

इस वेदमन्त्र में महर्षि की बतलाई हुई गर्भाधान की सम्पूर्ण विधि आ गई है। स्त्री का अपानवायु को ऊपर खींचना आदि वीर्याकर्षण विधि भी भली प्रकार से आ गई है।

इस मन्त्र का ऋषिभाष्य भी अवलोकन करना चाहिए—

ऋषिभाष्य—स्त्री-पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आँख के साथ आँख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसन्धान करके गर्भ का धारण करें, जिससे कुरूप व वक्रांग सन्तान न हो।

महीधर ने भी इस मन्त्र का अर्थ गर्भाधान परक किया है। इस मन्त्र को देखकर पौराणिक पण्डितों को चाहिए कि इस विषय में शंका करना छोड़ देवें।

प्रमाण संख्या - २

अमास्य उरू विहापयति। तस्यामर्थं निष्ठाप्य मुखेन मुखꣳ सन्धाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्टि विष्णुर्योनिं कल्पयतु॥

—शत० कां० १४[१]

इस शतपथ के प्रमाण में भी उसी विधि का भली प्रकार से वर्णन किया है जिस विधि का विधान ऋषि दयानन्दजी ने सत्यार्थ-प्रकाश में किया है। वही सब मुख के सामने मुख आदि क्रिया है।

प्रमाण संख्या - ३

हठयोग के ग्रन्थों में अनेक प्रकार के प्राणायाम तथा दस मुद्राओं का वर्णन आता है उनमें एक मुद्रा वज्रोली भी है। यह मुद्रा हठयोग प्रदीपिका, शिवसंहिता, गोरक्षपद्धति, घेरण्डसंहिता आदि हठयोग के सम्पूर्ण ग्रन्थों में आती है। इस मुद्रा व प्राणायाम के द्वारा योगी पुरुष व योगिनी स्त्री को नियमबद्ध वीर्याकर्षण की विधि सिखलाई जाती है। जैसेकि हठयोग-प्रदीपिका में लिखा है—

पुँसोर्विंदुसमाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाटवात्।
यदि नारीरजो रक्षेत् वज्रोल्या सापि योगिनी॥१॥
वज्रोल्याभ्यासयोगेन सर्वसिद्धिं प्रयच्छतः।
अतीतानागतं वेत्ति खेचरी च भवेद् ध्रुवम्।
अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेऽपि मुक्तिदः॥५॥

यदि स्त्री भली प्रकार अभ्यास करके वज्रोली मुद्रा के द्वारा अपने रज की रक्षा करे तथा पुरुष के वीर्य का आकर्षण कर लेवे तो वह भी योगिनी हो जाती है। यह वज्रोली मुद्रा सब सिद्धियाँ देनेवाली है। यह योग अत्यन्त पुण्य देनेवाला है। इसके अभ्यास से ...

भोगने पर भी स्त्री-पुरुष की मुक्ति हो जाती है।

मैं इन पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ जब आपके प्रत्येक हठयोग के ग्रन्थों में वीर्याकर्षण विधि को एक पवित्र विधि माना है, और ग्रन्थों के बनानेवाले भी आपके कथनानुकूल शिव, वसिष्ठ, मत्स्यन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि महापुरुष व आपके परमात्मा हैं। तब आप इस पवित्र विधि पर शंका क्यों करते हैं? यह आपके योग के ग्रन्थ हैं, साधारण ग्रन्थ नहीं है और इन ग्रन्थों में इस विधि को जहाँ अनेक फलों का देनेवाला लिखा है वहाँ इसको मुक्ति तक का देनेवाला लिखा है।

प्रमाण संख्या - ४

इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह॥ १६॥
रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद।
सा साध्वी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात्॥ १७॥
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा॥ १८॥

—दे० स्कं० ९ अ० २४.१६-१८

ऐसा कहकर विष्णु ने तुलसी के साथ रमण किया, तब पतिव्रता साध्वी तुलसी ने वीर्याकर्षण विधि से यह बात पहचानली की यह मेरा पति नहीं है। उसका आकर्षण अन्य प्रकार का था तथा इसका दूसरी प्रकार का है।

कहिए पोपजी? यहाँ तो आपकी तुलसी तथा विष्णु महाराज भी वीर्याकर्षण विधि का प्रयोग करते हैं, पुनः आप आर्यसमाज पर आक्षेप क्यों करते हैं?

प्रमाण संख्या - ५

स्वामीजी ने लिखा है कि—आँख के सामने आँख आदि करने से अङ्गहीन तथा कुरूप सन्तान नहीं होती। इसकी सत्यता के लिए दे० ६। २४। ५८ को देखिए वहाँ लिखा है—

शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसंगे प्रथमे तदा।
अन्धस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते॥

व्यासजी कहते हैं कि जब मैं माता की आज्ञा से अम्बिका के पास नियोग करने गया, तब रानी ने आँखें बन्द कर लीं, भली प्रकार मुझे देखा नहीं; इसलिए धृतराष्ट्र अन्धा पुत्र उत्पन्न हुआ।

दासी ने प्रेम से मेरा अवलोकन किया तब उसके श्रेष्ठ विदुर

जैसा पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ।

इस इतिहास की साक्षी के होते हुए सनातनियों को आर्यसमाज के आगे अपना सिर झुका देना चाहिए।

शंका—स्वामी दयानन्दजी ने यह बात कामशास्त्र वा कोकशास्त्र की लिखी है जो ठाक नहीं, आचार को दूषित करनेवाली है।

समाधान—कामशास्त्र अथवा सन्तानशास्त्र की बातें वेद तथा शास्त्रों में आती हैं, इसलिए इनको दूषित नहीं कह सकते। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं।

१. **आरोह तल्पं सुमनस्यमाना इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ॥ १४ ॥**[१]
ओषधीं शेपहर्षणीम् ॥ —अथर्व० ४।४।१
कोऽदात् कस्मादात् कामोऽदात कामायादात्।[२]

उपर्युक्त वेदमन्त्रों में स्पष्ट कामशास्त्र का वर्णन आता है। इसके अतिरिक्त ऋषि वात्स्यामन का कामशास्त्र प्रसिद्ध ही है। कामसूत्र में ऋषि वात्स्यायन ने कामशास्त्र का विस्तार से विवेचन किया है, अतः कामशास्त्र को दूषित नहीं कह सकते।

२. **करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि ।**
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम् ॥ १४८ ॥
प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत् ।
शृङ्गराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् ॥ १५२ ॥
पुनस्तां च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम् ।
क्षतविक्षतसर्वाङ्गीं नखदन्तैश्चकार ह ॥ १५३ ॥
कामशास्त्रविशारदः ॥ १५४ ॥

—ब्रह्म० कृष्ण० अ० १५

श्रीकृष्ण ने राधा के दोनों हाथ पकड़कर उसे अपने वक्षस्थल पर लिटा लिया, फिर चार प्रकार का चुम्बन किया। उसके प्रत्येक अङ्ग के साथ अपना अङ्ग मिलाया, अर्थात् नासिका के सामने नासिका आँख के सामने आँख इत्यादि, कामशास्त्र के जाननेवाले कृष्ण ने आठ प्रकार का श्रृंगार किया, क्योंकि कृष्णजी कामशास्त्र में अतिनिपुण थे। कहिए पोपजी! अब भी आपकी सन्तुष्टि हुई या नहीं? यहाँ तो

१. अथर्व० १४ २ ३१

आपके १६ कला पूर्ण भगवान् को कामशास्त्र का पण्डित बतलाया है। स्वयं उन्होंने गर्भाधान के ढंग का आचरण करके दिखलाया है।

३. **कुरूपां च स्वसदृशीं गृहाणान्यां स्त्रियं द्विज।**
भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी॥ ३१॥
रतिः स्वसदृशे कान्ते नार्याः किल निगद्यते।
त्वं न जानासि मन्दात्मन् कामशास्त्रविनिर्णयम्॥ ३१॥

—दे० १.११.३१.३२

चन्द्रमा बृहस्पति से कहता है हे द्विज! तुम अपने-जैसी किसी कुरूप स्त्री को ग्रहण करो! तेरे जैसे भिक्षुक के घर पर ऐसी सुन्दर स्त्री नहीं रह सकती। कामशास्त्र में लिखा है कि अपने समान पति के साथ स्त्री को रतिकार्य करना चाहिए। हे मन्दात्मन्! तू कामशास्त्र को नहीं जानता, अतः यहाँ से चला जा।

उपर्युक्त प्रमाण में चन्द्रमा ने बृहस्पति को केवल इसलिए डाँट बतलाई है कि वह कामशास्त्र को नहीं जानता था, पुनः आप कामशास्त्र के विरुद्ध क्यों हैं?

शंका—स्वामीजी ने जो स्त्री-पुरुष के संयोग में उठाना लिखा है, वह कितना उठे।

समाधान—स्वामीजी ने तो ऐसी कोई बात लिखी नहीं, हाँ पुराणों में ऐसी बातें अवश्य आती हैं—

तस्य पादप्रहारेण वसुधा परिपीडिता।
स तु तां पार्वतीं प्राप्य कामविह्वलमानसः।
न रात्रिं प्रतिजानाति दिनं वापि जगत्पतिः॥ १५॥
न क्षणं विरतिस्तस्य जायते वा महेशितुः।
रेतः पतति नो वापि न शान्तिरपि जायते॥ १६॥

—[१]मा० भा० अ० २९

शिवजी पार्वती को प्राप्त करके काम से उन्मत्त हो गये। जब गर्भाधान करने लगे तब रात-दिन एक क्षण के लिए भी हटते नहीं थे। रेतपात भी नहीं होता था तथा शान्ति भी नहीं होती थी। इस प्रकार १५ वर्ष लगे रहे। पृथिवी पर इतने ज़ोर से लात मारते थे कि पृथिवी कम्पायमान होती थी।

१. अनुपलब्धमूल। ये श्लोक कहाँ के हैं, हमें पता नहीं लगा।

मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि वही बतलावें शिवजी कितने उठते थे? क्योंकि उनके पादप्रहार से पृथिवी कम्पायमान होती थी।

शंका—स्वामी दयानन्द बालब्रह्मचारी थे, उनको इस गर्भाधान विधि का ज्ञान कैसे हुआ? क्योंकि यह तो अनुभव की बात है। इस से स्वामीजी के आचरण पर सन्देह होता है।

समाधान—यह कोई आवश्यक नहीं कि यदि कोई मनुष्य किसी बात को लिखता है तो वह स्वयं अनुभव करके लिखता है। यदि कोई वैद्य किसी बीमारी के सम्बन्ध में लिखता है तब उसके यह अर्थ नहीं हैं कि यह रोग उसको हुआ है; अन्यथा इसके सम्बन्ध में उसने कैसे लिखा, किन्तु इसका सीधा अर्थ यह है कि उसने जो पुस्तकों में पढ़ा है वही प्रश्नपत्रों अथवा किसी पुस्तक में लिख दिया। इसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने जैसा वेद तथा वैद्यक शास्त्र में पढ़ा था वैसा अपने ग्रन्थों में लिख दिया। पौराणिक ही बतलाएँ कि उनके कहने के अनुसार श्रीभागवत शुकदेवजी ने परीक्षत को सुनाया। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का जो वर्णन भागवत में आता है वह शुकदेवजी ने कैसे किया? वे तो जन्म से बालब्रह्मचारी थे। उदाहरण के लिए लीजिए—

सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्त्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः॥
आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकणभूषिते करे।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया।
साऽनंगतप्ता कुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम्॥

—भा० स्कं० १० अ० ४८, श्लो० ५-७

कुब्जा, वस्त्र-आभूषण, इतर, सुगन्ध आदि से सुसज्जित होकर मन्द-मन्द लीला से चलती, मुस्कराती हुई श्रीकृष्णजी महाराज के पास आई। श्रीकृष्ण के साथ कुब्जा का क्योंकि प्रथम समागम था इसलिए उसको लज्जा आ रही थी। श्रीकृष्णजी ने उसके दोनों हाथ पकड़कर उसके साथ रमण किया। इसके आगे उन दोनों के संगम के बारे में जो लिखा है उसको प्रकट करते हुए मेरी लेखनी लज्जित होती है।

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण पुराणों में भरे पड़े हैं। पौराणिक ही बतलाएँ कि श्रीकृष्ण भी बालब्रह्मचारी थे तथा शुकदेवजी भी पुनः उन्होंने कुब्जा, कृष्ण के समागम का वर्णन कैसे कर दिया?

शंका—स्वामी दयानन्दजी ने यह लिखा है कि—

गर्भाधान के पश्चात् स्त्री-पुरुष को औषध-सेवन करना चाहिए। सामाजिक पण्डित बतलाएँ कि किस वेद में औषध-सेवन का विधान है? अन्यथा स्वामी दयानन्द के लेख को अवैदिक स्वीकार करें।

समाधान—सब संसार ओषधियों का सेवन करता है इसमें शंका करने की कौन-सी बड़ी बात है। यदि आपको इस बात का दुराग्रह है तब मैं इस बात के लिए भी वेदमन्त्र उपस्थित करता हूँ।

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः।
अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नः सधस्थमासदत्॥

—यजुः० ११।४८

हे मनुष्यो! तुम फूलों तथा फलोंवाली ओषधियों को ग्रहण करो। इससे जहाँ तुम्हारा शरीर आरोग्य तथा पुष्ट होगा वहाँ गर्भ को भी लाभ पहुँचेगा।

यद्वेद राजा वरुणो यद्वा देवी सरस्वती।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब॥

—अ० ५।२५।६

जिन ओषधियों को परमात्मा व वैद्य जानता है जिनको वैद्यक-शास्त्र के जाननेवाली वैद्या जानती है उन गर्भ करनेवाली ओषधियों का हे स्त्री-पुरुषो! तुम पान करो!

ऊपर मैंने दो वेदमन्त्र उद्धृत किये हैं। उनसे सिद्ध है कि गर्भाधान के पश्चात् तथा उससे पूर्व गर्भ की उत्पत्ति के लिए औषध सेवन करना चाहिए। अब भी यदि पौराणिक पण्डित ऋषि दयानन्द की बातों को न मानें तब उनका दुराग्रह ही समझना चाहिए।

शंका—स्वामी दयानन्द की यह गर्भाधानविधि अस्वाभाविक प्रतीत होती है, अतः मानने योग्य नहीं।

समाधान—स्वामीजी की बतलाई यह विधि सर्वथा सङ्गत तथा स्वाभाविक है। प्रायः इसी विधि से संसार सन्तान उत्पन्न करता है आँख के सामने आँख आदि सब बात सरल तथा स्वाभाविक हैं। हाँ, पुराणों में कहीं भी गर्भाधान का वर्णन नहीं आता। कहीं मुखाधान,

कहीं हवनकुण्डाधान, कहीं सरकण्डाधान, किसी स्थान पर कर्णाधान तथा नासिकाधान भरा पड़ा है, इसलिए यदि आप गर्भाधान पर शंका करें तब यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

सा तं विवस्वतः शुक्रं नासाभ्यां समधारयत्।
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ॥५५॥

—भवि० ब्रा० अ० ७९

जब संज्ञा घोड़ी बनकर जंगल में गई तब सूर्य भी जंगल में गया और वहाँ जाकर घोड़ी की नाक में.......कर दिया और अश्विनीकुमार उत्पन्न हो गये।

कहिए पोपजी! आप किस मुख से आर्यसमाज की गर्भाधान विधि पर शंका करते हैं, जबकि आपके माने हुए पुराणों में ऐसे-ऐसे आख्यान भरे पड़े हैं।

प्रमाण संख्या - ७

अश्वगन्धा घृतं दुग्धं कथितं पुत्रकारकम्।

—ग० आ० का० अ० १७९।२८

असगन्ध, घी, दूध—ये सब पुत्र को देनेवाली ओषधियाँ हैं।

शंका—इस बात को माना कि यह सब विधि वेदशास्त्रों में लिखी है, किन्तु स्वामीजी को इस बात के लिखने की क्या आवश्यकता थी?

समाधान—जो संसार का कल्याण करनेवाले सिद्धान्त हैं उन सबपर प्रकाश डालना महर्षि का कार्य था और विशेष करके जो सिद्धान्त किसी जाति की उन्नति का मूलकारण है।

सन्तान की श्रेष्ठता गर्भाधान पर निर्भर है। विकृत गर्भाधान से सन्तान में अनेक दूषण उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में इस संस्कार के सम्बन्ध में न लिखना बड़ी भारी न्यूनता होती। दूसरी बात यह है कि लोग अनेक प्रकार के आसनों के द्वारा मैथुन करके जहाँ अपने स्वास्थ्य का नाश करते थे, वहाँ सन्तान में भी अनेक अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए यह आवश्यक था कि वे इस अत्यन्त उपयोगी विधि पर प्रकाश डालते और वही कार्य महर्षि ने किया।

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

"स्त्री योनिसंकोचन, शोधन, पुरुष वीर्यस्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे"।

शंका—यह योनिसंकोच की विधि अवैदिक है। यदि कोई वैदिक प्रमाण आर्यसमाजियों के पास है तब वे उपस्थित करें। यह विधि दुराचार फैलानेवाली भी है।

समाधान—योनिसंकोच पर अनेक प्रमाण हैं। नीचे कुछ प्रमाण दिये जाते हैं।

प्रमाण संख्या - १

स्वस्ति पुत्र कृथेषु योनिषु॥ —ऋ० १०।६३।१५

सायणभाष्यम्

पुत्राणां कर्तृषु उत्पादकेषु स्त्रीणां योनिषु कल्याणं यथा गर्भा न पतन्ति तथा कुरुत।

सन्तान की उत्पन्न करनेवाली योनियों में जैसे कल्याण हो और गर्भपातादि विकार न हों वैसा करना चाहिए।

इस बात को सब पुरुष जानते हैं कि यदि गर्भवती स्त्री गरम खान-पान अधिक सेवन करे तब गर्भपात हो जाता है। इसका कारण यह है कि गर्म पदार्थ खाने से योनि आदि स्थानों की शिथिलता से गर्भपात हो जाता है, अतः महर्षि ने जो योनिसंकोच लिखा है, वह सर्वथा सङ्गत है।

प्रमाण संख्या - २

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥

—ऋ० १०।१८४।१

सायणभाष्यम्

गर्भाधानस्थानं कल्पयतु रूपाणि स्त्री पुंस्त्वाभिव्यंजकानि चिह्नानि अवयवी करोतु सावपाता अप्रसूतामाभूत इत्यादि॥

गर्भाधान स्थान को कठिन व समर्थ बनावें, जिससे गर्भापातादि दोष न हों तथा स्त्री वन्ध्या न हो। स्त्री का जो गुप्त स्थान है उसको औषध आदि से दृढ़ व कठिन बनावें।

उपर्युक्त वेदमन्त्रों में स्पष्ट योनिसंकोच का विधान आता है। इन मन्त्रों के होते हुए पौराणिकों को इस बात पर शंका करना सर्वथा

छोड़ देना चाहिए कि योनिसंकोचन अवैदिक है।

प्रमाण संख्या – ३

कटुकालावुकृतबेधनसर्षपसर्पनिर्भीकैर्वाकटु तैलामिश्रे योनिं धूपयेत्॥

सुश्रुत में आता है कि—

जौ, कुलत्थ, चावल आदि बढ़िया भोजन प्रसूता को खिलावे तथा सरसों, साँप की कांचली आदि से योनि को धूनि देवे। इस प्रकार करने से १५ दिन में ही प्रसूता युवती हो जावेगी।

ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि सुश्रुत व चरक में लिखी विधि के अनुसार बर्त्ताव करें। यहाँ उपर्युक्त प्रमाण में साफ योनिसंकोच, १५ दिन में युवती होना आदि बातें लिखी हैं। इनके होते हुए पौराणिकों को अपना दुराग्रह छोड़ देना चाहिए।

प्रमाण संख्या – ४

शंखपुष्पी वचः मांसी सोमराज्ञी च फल्गुकम्॥ ६॥
माहीषं नवनीतं च त्वेकीकृत्य भिषग्वरः।
समूलानि सपत्राणि क्षारेणाज्येन पेषयेत्॥ ७॥
गुटिकां शोधितां कृत्वा नारीयोन्यां प्रवेशयेत।
दशवारं प्रसूतापि पुनः कन्या भविष्यति॥ ८॥

—गरुड० आचार० अ० १८०

शंखपुष्पी, वच, जटामांसी, भैंस का मक्खन—इन सबको एकत्र करके, पीसकर गोलियाँ बनाकर स्त्री की योनि में रखे। यदि ऐसा करे तो दश सन्तान उत्पन्न होने पर भी वह कन्या हो जाएगी।

पोपजी! क्या इससे बढ़कर भी कोई योनिसङ्कोच का योग हो सकता है। दस सन्तान उत्पन्न होने पर पुनः कन्या हो जाएगी इस पौराणिक व्यास के बतलाये योग के होने पर यदि आप योनिसङ्कोच के विषय में शंका करते हैं तब आप जैसा धृष्ट कोई नहीं हो सकता।

यजुर्वेद अ० २३ मन्त्र २८ का भाष्य करते हुए उव्वट भी लिखते हैं—

तदा अल्पत्वात् योनेः स्थूलत्वात् ह्रस्वत्वाच्च दुः प्रजननस्य वृषणौ अस्याः प्रजननस्योपरि एजतः। मत्स्याविव [नृत्यतः]।

योनि के छोटा होने से तथा पुरुषेन्द्रिय के बड़ा होने से स्त्री के

प्रजननेन्द्रिय पर मछलियों की तरह वृषण नृत्य करते हैं।

कहो पोपजी ! अब भी आर्यसमाज के सिद्धान्त पर शंका करोगे।

सम्पूर्ण वैद्यक के ग्रन्थों में योनिसंकोच लिखा हुआ है। जब सब वैद्य इस बात को मानते हैं तब इस बात पर शंका करना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है। इसके अतिरिक्त सब संसार के सभ्य लोग पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् योनिसंकोच का उपचार करते हैं। सब प्राणी योनिसंकोच चाहते हैं। पुनः इस सर्वतन्त्रसिद्धान्त पर शंका करना क्या अपनी अज्ञानता का परिचय देना नहीं है ?

ऊपर अनेक प्रमाण देकर मैंने सिद्ध कर दिया है कि—

ऋषि दयानन्द ने जो गर्भाधान व योनिसंकोच लिखा है वह सर्वथा वैदिक व शास्त्रसम्मत है।

वेदभाष्य

शंका—स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद अ० ६ मं० १४ का अत्यन्त अश्लील अर्थ किया है। स्वामीजी अर्थ करते हैं—

हे शिष्य! मैं तेरी पायु को शुद्ध करता हूँ। क्या आर्यसमाज की यही भ्रष्ट शिक्षा है? यही वैदिक धर्म है? आर्यसमाजी महीधर के अर्थ पर उपहास करते हैं पर स्वामी दयानन्द के गन्दे अर्थ को तो सोचें।

समाधान—महर्षि दयानन्दजी ने इस वेदमन्त्र का जो भाष्य किया है वह अत्यन्त शुद्ध, पवित्र तथा शिक्षादायक है। नीचे मन्त्र, उसका भाष्य तथा विस्तार से विचार दिया जाता है

अथ कथं ता गुरुपत्नयो गुरवश्च यथायोग्यशिक्षया स्वस्वान्तेवासिनः सद्गुणेन प्रकाशयन्तीत्युपदिश्यते॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने विद्यार्थियों को अच्छे-अच्छे गुणों से कैसे प्रकाशित करते हैं, यह अगले मन्त्र में कहा है।

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि॥

हे शिष्य! अनेक प्रकार की शिक्षाओं से मैं तेरी वाणी, प्राण, आँख, कान, नाभि, मेढ्र, पायु, चरित्रों को शुद्ध करता हूँ।

गुरुओं और गुरुपत्नियों को चाहिए कि वेद और उपवेद तथा उपाङ्गों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे-अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।

१. कितना पवित्र मन्त्र का अर्थ महर्षि ने किया है। इसमें भी दुर्हृदय पौराणिक पण्डितों को अपने अन्तःकरण की दुर्गन्ध दिखाई

देती है। महर्षि लिखते हैं कि गुरुओं को चाहिए कि अनेक प्रकार की शिक्षाओं से मनुष्य के मन, वाणी, अन्तःकरणों को तथा नेत्र, कान आदि बाह्य करणों को शुद्ध करें, पवित्र करें।

शौच दो प्रकार का होता है—एक बाह्य तथा दूसरा आभ्यन्तर। इस मन्त्र में दोनों प्रकार की शुद्धि का वर्णन है। सत्यविद्या आदि सद्‌गुणों से अन्तःकरण की शुद्धि होती है तथा मिट्टी, जल आदि से बाह्य अङ्गों की शुद्धि होती है, ऐसा योगदर्शन के व्यासभाष्य में लिखा है—

तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्।
आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम्। —यो०सा०सू० ३२

२. मन्त्र के अन्त में लिखा है कि मैं तेरे चरित्रों को शुद्ध करता हूँ। इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि गुरु अपनी शिक्षा द्वारा ही अपने चेले को सुधारता है। इतना साफ़ उपदेश होने पर भी अगर पौराणिक पण्डितों को इस मन्त्र के अर्थ में मलिनता दिखाई दे तो निस्सन्देह यह मलिनता उनके अन्तःकरण की है। मनु महाराज ने भी लिखा है—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥

—मनु० ६.४६॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

—मनु० ५.१०९

दृष्टि से पवित्र करके पैर रखना चाहिए। कपड़े से छानके पानी पीना चाहिए। सत्य से पवित्र करके वाणी बोलनी चाहिए और मन को पवित्र करके आचरण करना चाहिए।

पानी से शरीर के अङ्ग शुद्ध होते हैं, मन सत्य से शुद्ध होता है। विद्या और तप से आत्मा और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

३. मेढ्रशुद्धि का अर्थ चरित्र की पवित्रता है। ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि वह अष्ट प्रकार के मैथुनों से बचता रहे, सदाचारी रहे तथा जलादि से अपने अङ्गों को शुद्ध रक्खे। आजकल के डाक्टर-वैद्य भी इस बात पर अधिक बल देते है।

४. गरुड़पुराण में लिखा है—

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश।

प्रत्येक धर्मशास्त्र में यह बात आती है कि इतने बार मिट्टी से हाथ आदि अङ्गों का प्रक्षालन करे। गुरु इस बात की शिक्षा दे सकता है कि धर्मशास्त्र के अनुसार कितने बार मनुष्य और ब्रह्मचारियों को हाथ आदि अङ्गों का मिट्टी से प्रक्षालन करना चाहिए। यही अर्थ ''पायुन्ते शुन्धामि'' का है। हाँ, पौराणिकों के यहाँ अश्लील शिक्षा आती है। संवर्त्तस्मृति में आता है कि—

पादशौचं तु यो दद्यात् तथा तु गुदलिङ्गयोः।
यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिः सदा भवेत्॥

जो ब्राह्मण के पैर व गुह्य-इन्द्रिय व पायु का प्रक्षालन करता है वह शुद्ध बुद्धिवाला होता है।

पौराणिको! कहो, यह तुम्हारी कितनी भ्रष्ट शिक्षा है, और नाममात्र के ब्राह्मणों का कितना बड़ा स्वार्थ है। क्या तुम इसी भ्रष्ट शिक्षा के बल पर ऋषि दयानन्द की शिक्षा पर आक्षेप करते हो। अब तनिक इस मन्त्र का महीधरभाष्य देखना चाहिए।

पशोः प्राणाञ्छुन्धति पत्नी मुखं नासिके चक्षुषि कर्णौ
नाभीं मेढ्रं पायुं पादान् सꣳहृत्य वाचं तें शुन्धामीति।

यजमान की स्त्री पशु के मुँह, नाक, कान, मेढ्र आदि गुह्य अङ्गों को पानी से धोवे।

पौराणिको! कहो, यह कैसा बढ़िया अर्थ है। हम पाठकों से कहेंगे कि ऋषि दयानन्द के भाष्य व इस पौराणिक गन्दे भाष्य का मुक़ाबला करके देखें कि क्या यजमान की पत्नी के द्वारा घोड़े आदि के प्रत्येक अङ्ग का धोना अच्छा है अथवा शिक्षा द्वारा शिष्य के अन्तःकरण व बाह्य अङ्गों का पवित्र करना अच्छा है।

शंका—स्वामी दयानन्दजी ने यजुर्वेद अध्याय ३७ मन्त्र ९ का अर्थ करते हुए लिखा है कि मैं तुमको घोड़े की लीद से तपाता हूँ। स्वामीजी ने यह कितना भूँडा अर्थ किया है। क्या किसी को घोड़े की लीद से भी तपाया जाता है?

समाधान—अगर पौराणिकों ने कुछ भी वैद्यक-शास्त्र पढ़ा होता तो वे ऋषि दयानन्द के भाष्य पर शंका न करते। अब भी लोग चोट लगने पर घोड़े की लीद से टकोर करते हैं और पौराणिक लोग तो शंका कर ही कैसे सकते हैं, क्योंकि गरुडपुराण आचारकाण्ड अ० १९ पृ० १२४ पर लिखा है—

कूर्ममत्स्याश्वमहिषगोशृगालाश्च वानराः।
बिडालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः ॥ १४ ॥
हंस एषां च विण्मूत्रं मांसं वा रोमशोणितम्।
धूपं दद्याज्ज्वरार्तेभ्यः उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥ १५ ॥
एतान्यौषधजातानि कथितानि उमापते।
निघ्नन्ति तांश्चरोगांश्च वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १६ ॥

कछुआ, मछली, घोड़ा, भैंस, गौ, गीदड़, वानर, बिल्ली, बर्हि, कौआ, सूअर, उल्लू, कुक्कट, हंस—इनकी बीट, मूत्र, मांस, बाल, खून— इनका धूप देने से बुखार तथा पागलपन दूर होता है। हे उमापते! ये जो दवाइयाँ बतलाई हैं ये उन-उन बीमारियों को ऐसे नष्ट करती हैं जैसे बिजली वृक्षों को काटती है।

पौराणिको! कहो कैसा मुँह पर चपेट लगा? तुम तो महर्षि दयानन्द की घोड़े की लीद के तपाने पर शंका करने चले थे, परन्तु यहाँ तो घोड़ा, भैंसा, कुक्कट, मछली आदि सबकी बीट, मांस, मूत्र आदि सबसे तपाना निकल आया? अब आपको चाहिए आप सरकार को कहें कि वह अपने पागलखाने बन्द कर देवे और आपके पुराण के अनुसार पागलों को इन चीजों से तपाएँ। इससे आपके पण्डित भी मालामाल हो जाएँगे।

अब पाठक ऊपर के वेदमन्त्र का महीधर का अर्थ भी देखें। वह लिखता है कि "अश्वपुरीषेण महावीरान्धूपयेत्" घोड़े की लीद से महावीरों को धूप देवे। क्या बढ़िया धूप है! अब तो पैसा भी खर्च न होगा। अब आपको लाहौर के घोड़ों की लीद का ठेका ले-लेना चाहिए और सब मन्दिरों में देवताओं को धूनी देनी चाहिए।

शंका—यजुः० २१।४३ में स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि "बकरे के दूध से सुख व कल्याण होता है"। अच्छा वेदभाष्य किया। क्या बकरे का भी दूध होता है! स्वामी दयानन्द को इतना भी पता नहीं लगा? अच्छे भाष्यकार हैं।"

समाधान—इस मन्त्र के भावार्थ में स्वामीजी लिखते हैं जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर और उनके दूध आदि का अच्छा-अच्छा संस्कार और भोजन करें।

यहाँ ऋषि दयानन्द ने छाग के अर्थ बकरी किये हैं। छाग शब्द जातिवाचक है। उसके अर्थ बकरा-बकरी दोनों होते हैं। इस के लिए, प्रमाण—गरुडपुराण आ० का०, अ० १७७, पृ० ११५।

छागदुग्धसेकमौष्ण्याच्चक्षुषोर्वातशूलनुत्॥ १६॥

छाग के दूध के सेक से आँखों का बादी का दर्द दूर होता है। कहिए पोपजी ? यहाँ छाग के क्या अर्थ करेंगे ? बकरा या बकरी ? यदि बकरा करते हो तो तुम्हारे पुराण के बकरे दूध देंगे तो क्या हमारे बकरों का दूध सूख गया ? अगर बकरी अर्थ करो तो स्वामीजी के अर्थ पर शंका कैसे करते हो ?

शंका—यजुर्वेद अ० १३ म० ४९ तथा अ० १९ मंत्र २० में स्वामी दयानन्दजी ने पशुओं का मारना लिखा है—

समाधान—१३.४९ मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि लिखते हैं—

हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिए कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम, जिन गौ आदि से दूध-घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं, जिनके दूध आदि से सब प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो। जो जन इन उपकारक पशुओं को मारे, उनको राजादि न्यायधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जंगल में रहनेवाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं''।

इस भाष्य में महर्षि ने स्पष्ट लिखा है कि उपकारी पशुओं को मत मारो, किन्तु मारनेवालों को दण्ड दो। हाँ, जो प्रजा की हानि करनेवाले जंगली जानवर हैं उनको दण्ड देना राजपुरुषों का काम है। महीधर ने भी मन्त्र के इस भाग का यही अर्थ किया है **''ते तव आरण्यं गवयं गोसदृशं पशुविशेषमनुदिशामि। शिष्टमुक्तम्॥** तुझे जंगल में रहनेवाले गौ-जैसे पशुविशेष जंगली गौ को बतलाता हूँ। बाकी ऊपर कह दिया है''।

अब तनिक उव्वट का कहा हुआ अर्थ भी सुनें। मं० ४७ के भाष्य में उन्होंने लिखा है—**मयुं ते तव शुक् सन्तापः ऋच्छतु। किंच यं पुरुषं वयं द्विष्मः तं च शुक् ऋच्छतु हिनस्तु।** मयु को सन्ताप प्राप्त हो और जिस पुरुष से हम द्वेष करते हैं उसको शोक मारे। इस मन्त्र के अर्थ से मन्त्र ४९ का भी यही अर्थ होता है कि जंगली गौ को मारो। कहिए पोपजी ! कैसी हुई ? दूसरे का चूहा पकड़ने चले थे घर में बिल्ली निकल आई।

१९.२० वाले मन्त्र के भाष्य पर विपक्षी ने छल से काम लिया है। महर्षि का भाष्य यह है—''जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्क्रिया का कर्त्ता मनुष्य हो

वह प्रशंसा को प्राप्त होता है।''

इसमें कहीं भी पशुओं को मारना नहीं लिखा, किन्तु यह लिखा है कि जिसके पास बहुत-से पशु होते हैं वह उनके दूध-घी आदि से हवन करके जो शेष रहता है उसको खावे। भारतवर्ष में कोई ऐसा समय भी था जब लोगों के पास हज़ारों गौएँ होती थीं और वे लोग बड़े-बड़े यज्ञ करते थे।

पुराणा में अवश्यमेव पशुओं को मारना लिखा है—

कालिका० पृ० १८५।१८१।१८०

नारमांसं शिरोरक्तं देव्या सम्यङ्निवेदयेत्॥ २२४॥
नरस्य शीर्षमादाय साधको दक्षिणे करे।
वामेन रौधिरं पात्रं गृहीत्वा निशि जाग्रतः॥ ६९॥

—पृ० २२६

पक्षिणः कच्छपा ग्राह्यः मत्स्या नवविधामृगाः।
महिषो गोधिकागावछागोबभ्रुश्च सूकरः।
शार्दूलश्च नरैश्चैव स्वगात्ररुधिरं तथा॥ ४॥
चण्डिका भैरवादीनां वलयः परिकीर्तिता।

—पृ० २२०। अ० ७१

नरेण बलिना देवी सहस्त्रं परिवत्सरान्।
विधिदत्तेन चाप्नोति तृप्तिं लक्षं त्रिभिर्नरैः॥ १८॥

—पृ० २२१

अब्राह्मणनराणां तु मांसं सर्वोत्तमं मतम्।
मृगाणां च तथा प्रोक्तं तितिरादिकपक्षिणाम्।
मांसतृप्तिकरं त्र्यहं कालीयकस्य तु। —श्लो० १४३।

—मेरु० वि० प्र० पृ० ४८३।

आदमी का मांस और खून देवी को चढ़ाए। साधू को चाहिए आदमी का सिरकाट कर दाहिने हाथ में पकड़े और बाँये हाथ में खून का पात्र लेवे और रात को जाकर देवी की पूजा करे। पक्षी, कछुवे, मछलियाँ, हिरन, भैंस, गौ, बकरा, बकरी, सूअर, शेर, आदमी, अपने शरीर का खून चण्डिदेवी तथा भैरव आदि को बलियाँ चढ़ानी चाहिएँ। मनुष्य को मार बलि चढ़ाने से देवी एक हज़ार वर्ष तक प्रसन्न रहती है। ब्राह्मण को छोड़कर बाकी सबका मांस बड़ा उत्तम होता है। तित्तर आदि पक्षियों का मांस भी तृप्तिकारक होता है।

कहिए पोपजी! कैसी हुई? आपके पुराणों में तो मनुष्य के मांस का भी विधान कर दिया। इतना स्वार्थ अवश्य किया है कि ब्राह्मण का मांस नहीं चढ़ाना चाहिए। चाहिए तो यह था कि ब्राह्मण का मांस चढ़ाते। उससे देवी अधिक प्रसन्न होती, क्योंकि वह सबसे उत्तम होता है। चौबेजी चले थे छब्बेजी बनने रह गये दूबेजी?

शंका—यजुः० १९।४० का अर्थ करते हुए स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि स्त्री को माता जानो। धन्य हो स्वामी दयानन्दजी महाराज! अच्छा उपदेश दिया कि जिसपर समाजी फूले नहीं समाते।

समाधान—यहाँ भी पोप ने छल से काम लिया है। ऋषि दयानन्द का असली अर्थ नीचे दिया जाता है, देखो—

"यदि मनुष्याः धनुर्ज्यादिशस्त्रास्त्ररचनसम्बन्धचालनक्रियाः विज्ञायरेन् तर्हीं मामुपदेशिकां मातरमिव सुखप्रदां पत्नीं च विजय-सुखं च प्राप्नुयुः"।

"उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देनेवाली पत्नी और विजय-सुख को प्राप्त हों"।

महर्षि की संस्कृत का अर्थ यह है कि "माता के तुल्य उपदेशिका को और सुख देनेवाली पत्नी को तथा विजय को प्राप्त होते हैं"। और जो भाषा में लिखा है "माता के समान सुख देनेवाली पत्नी" इसका यह अर्थ कहाँ से निकल आया कि पत्नी माता के समान होती है। किसी को शेर कहने के क्या ये अर्थ होते हैं कि वह पूँछवाला ही शेर है। जरा रामायण के नीचे लिखे श्लोक को ध्यान से पढ़िए। अयोध्या० स० १२.६, ९ में महाराजा दशरथ कहते हैं—

यदायदा च कौसल्या दासीव च सखीव च।
भार्यावद् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति॥
सततं प्रियकामा मे प्रियपुत्राप्रियंवदा॥

जब कौसल्या दासी की भाँति, सखी की भाँति और बहिन के समान, माता की भाँति मुझको प्राप्त होती थी, वह निरन्तर मेरी प्रिय कामना करनेवाली है।

कहिए पोपजी! क्या इसका आप यह अर्थ करेंगे कि राजा दशरथ कौसल्या को माँ व बहिन कहते थे। इसलिए कुछ अकल से काम लिया कीजिए।

शंका—महर्षि दयानन्द ने यजुः० २१.६० में लिखा है कि बैल से भोग करें। धन्य हो समाजियो! कैसी गन्दी तुम्हारी शिक्षा है। फिर

भी तुम इसको मानते हो।

समाधान—पौराणिक लोग यहाँ भी छल से काम लेते हैं। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि 'बैल से भोग करें, उपयोग लें। संस्कृत में आता है—**ऋषभेन उक्षेन् भुञ्जीरन्,** बैलरूपी साधन के द्वारा खेती व कूएँ आदि चला सुख को भोगें'। इसी के भाष्य में महर्षि ने लिखा है जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि से प्राणापान की रक्षा के लिए चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसों को पीकर वृद्धि को पाते हैं वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं''।

यहाँ महर्षि ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि बैल, बकरे आदि से भोग करने का क्या प्रयोजन है। मैं पोप से पूछता हूँ कि जब तुम यह कहते हो कि ''ठाकुरजी को भोग लगाओ, राधाजी को भोग लगाओ'' तब भोग का अर्थ क्या करोगे? यजुर्वेद में आता है कि ''**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः**''। हे मनुष्यो! तुम त्याग के साथ भोग करो। यहाँ क्या अर्थ करोगे? अब जरा महीधर का अर्थ सुनिए। वह लिखता है ''**छागादीन् अभक्षयन्**'', ''बकरी-बैल आदि को खाया। कहिए! स्वामी जी का अर्थ अच्छा है या यह।''

शंका—स्वामी दयानन्दजी ने यजुः० २५.७ में लिखा है कि ''अन्धे साँपों को स्थूल गुदा से पकड़ो''। कितना बुरा अर्थ है। कैसा बुरा तरीका साँपों को पकड़ने का बतलाया है। इसी को आर्यसमाजी ऋषिभाष्य कहते हैं।

समाधान—इस मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि लिखते हैं—

१ स्थूलगुदया सह वर्त्तमानान् अन्धान् अहीन् स्थूलगुदया सह सर्पान् विशेषेण कुटिलान् उदरस्थैर्नाड़ीविशेषैर्येन यद्यद् कार्यं सिद्ध्येत् तेन तेन अङ्गेन पदार्थेन वा तत् तत् साधनीयम्''।

इस मन्त्र व भाष्य में दो प्रकार की आँतों का वर्णन आता है। एक लम्बी तथा कुटिल छोटी आँत होती है जो भोजन के पचाने का काम करती है उसको सर्प शब्द से कहा है। और दूसरी बड़ी, अन्धी आँत होती है जिसको अंग्रेजी में ब्लाइन्ड पाउच (Blind pouch) अर्थात् अन्धी थैली कहते हैं। उसको अहि शब्द से कहा है। उन्हीं दोनों आँतों का यहाँ वर्णन किया है। महर्षि ने यहाँ स्पष्ट लिखा है '**उदरस्थैर्नाड़ीविशेषैः**' उदर में होनेवाली नाड़ीविशेष। इस प्रकरण में शरीर के अङ्ग जिस-जिस कार्य को करते हैं इस बात का वर्णन है।

उदाहरण के रूप में—पित्त भोजन को पचाता है। छोटी आँतें भोजन को पचाती हैं इत्यादि॥ ''निगृह्णीत'' के अर्थ जानने व प्राप्त करने के हैं। जैसे गुरु से विद्या ग्रहण करो इसके अर्थ गुरु से विद्या पढ़ने के हैं। यहाँ विपक्षी का यह अर्थ सर्वथा असंगत है कि स्वामी दयानन्दजी ने गुदा से अन्धे साँप को पकड़ने का उपदेश दिया है। स्वामीजी ने लिखा है कि—गुदा के साथ वर्त्तमान अन्धे साँप'' गुदा के साथ वर्त्तमान दूसरे साँप नहीं हो सकते किन्तु अन्धी आँतें व छोटी आतें ही हो सकती हैं। पाठक! अब तनिक महीधर के अर्थ को देखिए। फिर ऋषि भाष्य के साथ उसका मुक़ाबला कीजिए। महीधर लिखता है—

''वनिष्ठुः स्थूलान्त्रं तेन पूषणं देवं प्रीणामि। गुदस्य स्थूलभागेन अन्धान् अहीन् प्रीणामि। स्थूलगुदातिरिक्तैर्गुदभागैः सर्पान् प्रीणामि। अन्त्रसम्बधिनो मांसभागाः तैर्विह्रुतो देवान् प्रीणामि। नाभेरधो वर्तमानं मूत्रपुटं तेन आपो देवताः प्रीणामि। लिंगोभयपार्श्वस्थाभ्यां मांसपिंडाभ्यां वृषणं देवं प्रीणामि। शेपो लिङ्गं तेन वाजिनं देवं प्रीणामि। रेतो वीर्यं तेन प्रजां देवतां प्रीणामि। गुदतृतीयभागेन प्रदरान् देवान् प्रीणामि। विष्ठायाः पिंडैः कूश्मान् देवान् प्रीणामि।''

स्थूल आँत से पूषणदेवता को तृप्त करता हूँ। गुदा के स्थूलभाग से अन्धे साँपों को, गुदातिरिक्त भागों से साँपों को, आँत-सम्बन्धी मांसभाग से देवताओं को, नाभि के नीचे के भाग मूत्राशय से आप देवता को, लिंग के आसपास के मांस पिण्डों से वृषण देवता को, शेप लिङ्ग से वाजिदेवता को, वीर्य से प्रजादेवता को, गुदा के तीसरे भाग से प्रदरदेवताओं को, और विष्ठा से कूश्मदेवताओं को तृप्त करता हूँ।

ऊपर हमने ऋषि दयानन्द तथा महीधर का भाष्य दे दिया है। महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र का भाष्य किया है कि—इस शरीर में क्या-क्या अंग हैं? वे क्या-क्या करते हैं तथा उनसे क्या-क्या उचित कार्य लेने चाहिएँ। महीधर ने इसके विपरीत शरीर के अंगों से तथा मल-मूत्रादि से देवताओं को तृप्त करना लिखा है। अब इस बात को पौराणिक पण्डित ही बताएँ व करके दिखलाएँ कि इन अङ्गों व मल-मूत्रादि से किस प्रकार देवताओं को तृप्त किया जाता है। आश्चर्य होता है कि पौराणिक लोग महर्षि दयानन्द के इतने युक्तियुक्त भाष्य का उपहास करते हैं और उस भद्दे युक्तिशून्य महीधरभाष्य पर गर्व करते हैं।

शंका—यजुः० अ० १४.४८ का भाष्य करते हुए स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है। हे माता-पितादि लोगो! आप हमारे बीच में प्रजा, अन्न, और दूध और वीर्य को धारण करो। यह स्वामी दयानन्द

की कितनी भ्रष्ट शिक्षा है जो सन्तान पुत्री आदि पिता से कहती हैं कि वीर्य का धारण करो।

समाधान—यहाँ भी पौराणिक लोग छल से काम लेते हैं। महर्षि इस मन्त्र में लिखते हैं ''सन्तानैः किंकर्त्तव्यमित्याह'' सन्तानों को क्या करना चाहिए।

इस मन्त्र में एक कन्या ही नहीं, परन्तु सब लड़के-लड़कियों की प्रार्थना है और महर्षि ने लिखा है 'हे माता-पितादि लोगो' यहाँ ऋषि ने पिता, प्रपिता, गुरु आदि सब महापुरुषों का ग्रहण किया है। अगर पौराणिकों का घृणित अर्थ माना जावे तब माता से यह प्रार्थना कैसे संगत होगी। इसलिए इस मन्त्र का अर्थ यह है कि हे माता-पितादि लोगो! तुम हमको उत्तम शिक्षा दो। उत्तम भोजन, व्यायाम आहार-विहार से मनुष्य वीर्यवान् होता है।

भावार्थ में महर्षि ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया है। ऋषि लिखते हैं—जो स्त्री-पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सकल विद्याओं का संग्रह, परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके ऋतुगामी होकर विधिपूर्वक प्रजा की उत्पत्ति करते हैं, उनकी वह प्रजा शुभगुणयुक्त होकर, माता-पितादि को निरन्तर सुखी करती है।

इस अर्थ में महर्षि ने वीर्य को बलवान् बनाने के लिए यह लिखा है कि ब्रह्मचर्य से और उत्तम आहार-विहार से मनुष्य वीर्यवान् बनता है। इसी बात की प्रार्थना इसी मन्त्र में है कि हे माता-पिता, गुरु आदि लोगो तुम हमको ऐसी उत्तम शिक्षा उत्तम आहार-विहार सिखलाओ जिससे हम बलवान् बन सकें।

अब ज़रा उव्वट तथा महीधर का अर्थ भी देखिए। वे लिखते हैं—यूयं च हे ऋत्विजः अन्नं च पयश्च रेतश्च अस्मासु धत्त। हे ऋत्विजः, अस्मासु अन्नं व्रीह्यादि पयो दुग्धं रेतो वीर्यवत्तां यूयं धत्त स्थापयत। हे ऋत्विजो! तुम हममें अन्न, दूध, वीर्य का स्थापन करो। कहिए पोपजी कैसी मुँह की लगी? ऋषि दयानन्द ने माता-पिता से प्रार्थना लिखी है और महीधर ने ऋत्विजों से जिनकी संख्या सैकड़ों हो सकती है। अर्थ दोनों का एक ही है। तो क्या तुम जैसा अर्थ करते हो उसके अनुकूल यदि ऋत्विज लोग आचरण करें तब धर्म की मर्यादा रह सकती है? अब यजुः० २.३३ को भी देखिए—महीधर लिखता है—हे पितरः, यथाऽस्मिन्नेव ऋतौ पुरुषो भूयात् तथा गर्भं पुत्ररूपं यूयमाधत्तः। हे पितरो! जैसे इसी ऋतु में पुरुष हों वैसे तुम

पुत्ररूप गर्भ का आधान करो। कहिए पौराणिको! क्या तुम अपने माता-पिता आदि को इस नीच कार्य के लिए प्रेरित करोगे?

शङ्का—यजुः० १४.८ में स्वामीजी लिखते हैं—हे पति! तुम मेरे प्राणापान की रक्षा करो। यह कितना भ्रष्ट अर्थ है। पति स्त्री के प्राणापान की रक्षा कैसे करेगा?

समाधान—ऋषि दयानन्दजी ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखा है—स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों का सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें। इस भाष्य में महर्षि ने प्राणापान की रक्षा के सभी साधन लिख दिये, अर्थात् उत्तमशिक्षा, शास्त्रों का श्रवण, योगाभ्यास, औषध सेवन, उत्तम आहार के करने से प्राण-अपान की रक्षा होती है। मनुष्य का जीवन प्राण तथा अपान पर ही निर्भर है। यदि इनमें कोई विकार उत्पन्न हो जाए तो अनेक प्रकार की व्याधियाँ हो जाती हैं। योग में प्राण-अपान के मिलाने को ही योग लिखा है। इस मन्त्र के भाष्य पर पौराणिकों ने कई भ्रष्ट तस्वीरें बनाई हैं। मैं इन पण्डितों से पूछता हूँ कि गीता अ० ४.२९ में जो लिखा है—

'अपाने जह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे'—कुछ अपान में प्राण का हवन करते हैं और दूसरे प्राण में अपान का हवन करते हैं। पौराणिक लोग तनिक इसकी तस्वीर बनाकर तो दिखलाएँ कि अपान में धौंकनी लगाकर कैसे हवन किया जाता है और प्राण में अपान का कैसे?

अब जरा महीधर का अर्थ देखिए। वह लिखता है "हे इष्टके त्वं मे मम प्राणं प्राणरूपं वायुं पाहि पालय। एवमपानं मम पाहि"। हे ईंट! तू मेरे प्राण-अपान की रक्षा कर। पोपजी! कहो ईंट प्राण-अपान की रक्षा कैसे करेगी?

शंका—स्वामीजी ने यजुः० १६.१७ में आमों के पेड़ों का काटना लिखा है। यह कितनी बुरी बात है। आमों को लगाना चाहिए अथवा कटवाना चाहिए!

समाधान—महर्षि ने इस मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखा है **'नमः वज्रादिशस्त्रसमूहः आम्रादिभ्यः'**। इस संस्कृत का अर्थ यह है कि शस्त्रों से आम आदि वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए। यहाँ कहीं भी महाराज ने काटना नहीं लिखा। संस्कृत के विरुद्ध हिन्दी प्रमाण

नहीं। यदि यह अर्थ मान भी लें तो भी कोई हानि नहीं, क्योंकि स्वामीजी लिखते हैं कि राजपुरुषों को चाहिए प्रजा को डाकू-चोर आदि से बचाने का प्रयत्न करें''। यदि कोई ऐसे आम के बाग हैं। जिनमें चोर आदि बैठकर प्रजा की हानि करते हैं तब उनका काटना कोई पाप नहीं। पेशावर के अन्दर एक डाकू एक अंग्रेज कन्या को उठा कर ले-गया था, तब सरकार ने बहुत-से बाग कटवा डाले थे। कई विद्वान् इसका यह अर्थ करते हैं कि स्वामीजी ने इस मन्त्र का यह अर्थ किया है **''हरणशीला सूर्यरश्मयो येषु तेभ्यः''** जिनमें हरणशील सूर्य की किरण प्राप्त हों, ऐसे आमादि वृक्षों को काटने के लिए, अर्थात् जो पेड़ सूर्य आदि की किरणों से सूख गये हों उनको कटवा देना चाहिए।

शंका—यजुः० १६.२२ में स्वामीजी ने राजा को सूअर की भाँति सोनेवाला लिखा है। यह कितनी निकृष्ट उपमा है।

समाधान—सब नीतिवचनों में निकृष्ट जन्तु से गुण-ग्रहण करना लिखा है। जैसे विद्यार्थी के लिए लिखा है कि कुत्ते की भाँति सोनेवाला। तुलसीदासजी ने लिखा है—

दादुर ध्वनि चहुं ओर सुहाई। वेद पढ़ें जिमि वटुसमुदाई॥

यहाँ पर विद्यार्थियों के लिए यह निकृष्ट उपमादी है कि विद्यार्थी मेंढक की भाँति होता है। स्वामीजी लिखते हैं—'' विशेष कर सूअर के समान सोने व उत्तम सूअर की निन्दा करनेवाले हे राजन्''! इसका अर्थ यह नहीं कि राजा सूअर की भाँति सोनेवाला है, प्रत्युत यह कहा कि जो सूअर की भाँति सोता है।

शंका—स्वामीजी ने यजुः० २०.९ का अर्थ अश्लील किया है।

समाधान—स्वामीजी इसके भावार्थ में लिखते हैं—''जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम और प्रतिष्ठित राजा होवे।''

इसमें अश्लीलता की गन्ध भी नहीं है। अब तनिक महीधर का अर्थ भी देखो।

मे आण्डौ वृषणौ संयोगजनितसुखेन नन्दतस्तौ पसो लिङ्गं भगः सौभाग्यं चास्तु। सर्वदा भोगासक्तमस्तु इत्यादि ॥

शंका—स्वामीजी ने यजुः० २४.२३ में उल्लू पालने लिखे हैं। यह ठीक नहीं।

समाधान—२४वें अध्याय में जो जल के जन्तु, पशु, तथा पक्षियों

को जानते हैं, वे सदा उनको बढ़ाते हैं। जर्मनी के युद्ध में कबूतरों से डाक भेजने का कार्य लिया जाता था। अब भी शिक्षित दुनिया जानवरों से अनेक प्रकार के काम लेती है। स्वामीजी ने लिखा है कि उल्लू को ऐसे जंगलों में निकाल देना चाहिए जिनमें फल-फूलादि कुछ भी नहीं होते। दूसरा यह कि जिन वृक्षों के फलों को तोते आदि जानवर खा जाते हों, उन बागों में उल्लुओं को रक्खो उनके डर के मारे पक्षी बाग को छोड़ जाएँगे तो फल-फूलों की रक्षा हो जाएगी। यह दोनों ही अर्थ सङ्गत हैं। महीधर ने इन उल्लू आदि जानवरों का अलग-अलग देवताओं के लिए बलिदान लिखा है। यह सर्वथा असङ्गत है।

शंका—यजुः० २७.३४ में स्वामीजी ने विद्वान् को जँवाई की भाँति लिखा है जो अत्यन्त अनुचित है।

समाधान—यथा जामाता आश्चर्यगुणः सत्सेवकः स्वीकर्तव्योऽस्ति तथा वायुरपि वरणियोऽस्ति अथकिंवद् वायुः स्वीकर्तव्य इत्याह। अद्भुत गुणोंवाला, सत्सेवक जामाता स्वीकार करने योग्य होता है वैसे मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह वायु से प्रेम करे''। यहाँ वायु-सेवन का महत्त्व बतलाया है, क्योंकि वायु ही मनुष्य-जीवन का आधार है। संस्कृत में कहीं भी विद्वान् शब्द नहीं है। किन्तु वायु का वर्णन है, इसलिए उसके विरुद्ध भाषा अमान्य है।

शंका—यजुः० ३०.२१ में स्वामीजी ने सर्पों का पैदा करना लिखा है। यह ठीक नहीं।

समाधान—स्वामीजी महाराज ने वहाँ लिखा है ''परा सुव'' सर्पादि को दूर करो। यहाँ महाराज ने सर्पों को दूर करना लिखा है जो सर्वथा सङ्गत है।

ऊपर हमने पौराणिकों द्वारा ऋषिभाष्य पर की हुई समस्त शङ्काओं का समाधान कर दिया है। साथ में यह भी दिखला दिया है कि ऋषि के मुक़ाबले में महीधर का भाष्य कितना घृणित तथा त्याज्य है। फिर भी पौराणिक लोग दुराग्रह से स्वार्थवश होकर ऋषिभाष्य की निन्दा करते हैं तथा महीधरभाष्य को स्वीकार करते हैं। परमात्मा उनको सुबुद्धि प्रदान करें।

एक ट्रेक्ट हम अलग लिखेंगे जिसमें ऋषि-भाष्य व अन्य भाष्यों का मुक़ाबला किया जावेगा।

मन्त्रसूत्रश्लोकानुक्रमणिका

—o—

क्रम	पुस्तक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१.	यजुर्वेदभाष्य	पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार	१२४०	५०० /-
२.	सामवेदभाष्य	पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार	१०२०	३५०/-
३.	अथर्ववेदभाष्य	पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार	१९००	८००/-
४.	सामवेदभाष्य	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	५०४	१००/-
५.	सत्यार्थप्रकाश	महर्षि दयानन्द सरस्वती	४९६	८०/-
६.	संस्कारविधिः	,, ,, ,,	२४८	६०/-
७.	उपदेश मञ्जरी	,, ,, ,,	११२	२२/-
८.	आर्योद्देश्यरत्नमाला (सम्पूर्ण पुस्तक दो रंग में)	,, ,, ,,	१६	६/-
९.	दयानन्द लघुग्रन्थ संग्रह	,, ,, ,,	२२४	४०/-
१०.	स्वाध्याय सन्दोह	स्वामी वेदानन्द तीर्थ	४८४	२५०/-
११.	वैदिक सम्पत्ति	पं० रघुनन्दन शर्मा	७५२	३२०/-
१२.	वैदिक विनय	आचार्य अभयदेव	४२४	१३०/-
१३.	वैदिक विनय (आर्ट पेपर)	,, ,,	४२४	३००/-
१४.	सन्ध्यापद्धतिमीमांसा	आचार्य विश्वश्रवा	३४०	१००/-
१५.	शतपथ ब्राह्मण के प्रतीक	डॉ० सावित्रीदेवी शर्मा	३१०	२००/-
१६.	आदर्श नित्यकर्म विधि	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	२००	३०/-
१७.	आदर्श नित्यकर्म विधि (दो रंग में सजिल्द)	,, ,, ,,	२००	५०/-
१८.	संक्षिप्त सत्यार्थ प्रकाश	,, ,, ,,	१२०	१५/-
१९.	देवर्षि दयानन्द चरित	,, ,, ,,	२५०	४०/-
२०.	धर्मशिक्षा	,, ,, ,,	३२	३/-
२१.	सन्मार्ग दर्शन	स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती	४५४	१६०/-
२२.	वेदों की वर्णन शैलियाँ	आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार	३७२	१७०/-
२३.	वैदिक मधुवृष्टि	,, ,, ,,	२२४	६०/-
२४.	वैदिक सूक्तियाँ	,, ,, ,,	८८	१८/-
२५.	चतुर्वेद शतकम्	स्वामी अच्युतानन्द	१६८	४६/-
२६.	आर्य पर्व पद्धति	भवानीप्रसाद	२४०	५०/-
२७.	वरुण की नौका	आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	३७६	१६०/-
२८.	ईशोपनिषद्	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	९६	२०/-
२९.	वैदिक विचारधारा	स्वामी स्वतन्त्रानन्द	२१४	६५/-

३०.	ऋषि दयानन्द: सिद्धान्त, जीवन दर्शन	डॉ० भवानीलाल भारतीय	४१६	१५०/-
३१.	भारत में बाइबिल	लुई जाकोल्यो, अनु० डॉ० भवानीलाल भारतीय	७२	२०/-
३२.	शंका समाधान	स्वामी मुनिश्वरानन्द	३१२	१००/-
३३.	ऋग्वेद में आचार-सामग्री	पं० सत्यप्रिय शास्त्री	२४८	१००/-
३४.	जाति-निर्णय	शिवशङ्कर शर्मा 'काव्यतीर्थ'	३४०	१६०/-
३५.	त्रिदेव निर्णय	,, ,, ,,	२०८	३०/-
३६.	स्वामी श्रद्धानन्द : विलक्षण व्यक्तित्व	डॉ० विनोदचन्द्र विद्यालङ्कार	५८०	२५०/-
३७.	दयानन्दोपनिषद्	पं० भीमसेन विद्यालङ्कार	१२८	३५/-
३८.	बौद्धमत और वैदिक धर्म	स्वामी धर्मानन्द	१२४	३५/-
३९.	हैदराबाद मुक्ति संग्राम का इतिहास	डॉ० चन्द्रशेखर लोखण्डे	४६४	१५०/-
४०.	वेदों में पर्यावरण विज्ञान	,, ,, ,,	१०८	३०/-
४१.	ऋषि दयानन्द की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन	डॉ० मञ्जुलता विद्यार्थी	३७४	१५०/-
४२.	बागी दयानन्द	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	५६	१३/-
४३.	आर्ष दृष्टि	,, ,, ,,	९२	३०/-
४४.	अद्वैतमतखण्डन	,, ,, ,,	६४	२०/-
४५.	गौ की गुहार	,, ,, ,,	९२	१८/-
४६.	आर्यसिद्धान्त विमर्श	,, ,, ,,	१२८	३०/-
४७.	सत्यार्थप्रकाश विमर्श	डॉ० रामप्रकाश	१७६	३५-
४८.	अवतारवाद मीमांसा	जे०पी० चौधरी	१६०	५०/-
४९.	वैदिक सूक्तमाला	संक० पं० वीरसेन वेदश्रमी भाष्य—स्वामी जगदीश्वरानन्द	९६	१०/-
५०.	बीते जीवन गले में लगाऊँ तुम्हे (आत्मकथा)	प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	३४४	१२०/-
५१.	पं० शान्तिप्रकाश	,, ,, ,,	१६८	६०/-
५२.	रक्तरंजित है कहानी (प्रथम भाग)	,, ,,		प्रकाशनाधीन
५३.	रक्तरंजित है कहानी (द्वितीय भाग)	,, ,,	१२८	२६/-
५४.	सत्यार्थप्रकाश : क्या और क्यों ?	,, ,,	८०	२०/-
५५.	महर्षि का बलिदान	,, ,, ,,	२०	२/-
५६.	पुराणों को पढ़िये तो	अमर स्वामी	१६	२/-

५७.	अमीं भजन सुधा	भक्तराज अमींचन्द	७२	१८/-
५८.	आर्यसमाज की मान्यताएँ	गजानन्द आर्य	८०	१६/-
५९.	यज्ञ क्यों ?	,, ,,	३२	१०/-
६०.	दहला पागल हो गया	पं० शान्तिप्रकाश	८०	२०/-
६१.	योगमार्ग	स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	४८	१६/-
६२.	वैदिक वर्ण-व्यवस्था, समाजवाद	डॉ० ओम्प्रकाश आर्य	४८	१६/-
६३.	यज्ञः शास्त्रोक्त सरल परिचय	रामनिवास 'गुणग्राहक'	७२	१८/-
६४.	शाकाहार-पीयूष	डॉ० वेदसहानी, डॉ० राजकुमार सहानी	१०४	३०/-
६५.	ओ३म् पीयूष	,, ,,	८०	२२/-
६६.	प्रभु के द्वार पर	डॉ० ओम्प्रकाश वेदालङ्कार	१६०	४०/-
६७.	नये घर के दो पंछी	,, ,, ,,	५६	१६/-
६८.	आर्यों का परमधर्म	,, ,, ,,	४८	१४/-
६९.	मेरे तो गिरिधर गोपाल	,, ,, ,,	४६	१८/-
७०.	मृत्यु से अमृत की ओर	,, ,, ,,	१२६	३०/-
७१.	अपने आपको कैसे जाने व पढ़े	,, ,,	५६	१६/-
७२.	ओङ्कार उपासना	स्वामी सत्यानन्द	४४	८/-
७३.	देवयज्ञ	डॉ० फुन्दनलाल अग्निहोत्री	४०	१४/-
७४.	योगामृत	श्री गोपाल, बी०ए०	६४	२०/-
७५.	हृदय की भाषा	आचार्य चमूपति	७०	२४/-
७६.	विचार वाटिका खण्ड-२	,, ,,	२३२	६०/-
७७.	ज्ञान का प्रादुर्भाव	डॉ० रघुवीर वेदालङ्कार	७२	२०/-
७८.	मातृ-गौरव	आचार्य ब्र० नन्दकिशोर	३२	१०/-
७९.	आर्य-गौरव	,, ,, ,,	३२	१०/-
८०.	विद्या-गौरव	,, ,, ,,	६०	१५/-
८१.	गुरु-गौरव	,, ,, ,,	५६	१५/-
८२.	सत्सङ्ग-गौरव	,, ,, ,,	६४	१६/-
८३.	कन्या-गौरव	,, ,, ,,	७६	१८/-
८४.	पितृ-गौरव	,, ,, ,,	४८	१२/-
८५.	अतिथि-गौरव	,, ,, ,,	३२	१०/-
८६.	राष्ट्र-गौरव	,, ,, ,,	९६	२२/-
८७.	प्रेरक जीवन	स्वामी देवव्रत	१९६	५०/-
८८.	पुराणों की हलचल	चन्द्रप्रकाश आर्य	४४	१६/-
८९.	भजनाञ्जलि	पं० नरेशदत्त	५६	१६/-

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

९०.	जैनशास्त्रों की असंगत बातें	बच्छराम सिंघी	१६८	२५/-
९१.	हिन्दू नाम कसौटी पर	डॉ० वीरेन्द्र शर्मा	—	१५/-
९२.	अन्तिम प्याला	जयन्त	८६	२७/-
९३.	हमारा सच्चा सुधारक	पं० मुनीश्वरदेव	१६	३/-
९४.	महान् आर्य हिन्दू जाति विनाश के मार्ग पर	चतुरसेन गुप्त	३२	८/-
९५.	पञ्चमहायज्ञ क्या और क्यों ?	प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	२०	५/-
९६.	आदर्श सत्सङ्ग गुटका	स्वामी जगदीश्वरानन्द	५६	१०/-
९७.	क्या अथर्ववेद में जादू टोना आदि है	डॉ० रघुवीर वेदालंकार	३८	१२/-
९८.	वैदिक सिद्धान्त रत्नावलि	प्रो० सत्यपाल शास्त्री	४०६	१३०/-
९९.	गायत्री-माता का रहस्य	पं० राजेन्द्र चतुर्वेदी	४९६	१५०/-
१००.	सार्वदेशिक आर्यवीर दल	डॉ० देवव्रत आचार्य	८८	१२/-
101.	Fountain Head of Relegion	Pt. Ganga Prasad	240	140/-

हमारे यहाँ उपलब्ध अन्य पुस्तकें

१.	चतुर्वेद संहिता	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	२०६८	३५०/-
२.	गंगा ज्ञान सागर	प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	२०५२	१०००/-
३.	महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षापद्धति	डॉ० सुरेन्द्रकुमार	३९०	१५०/-
४.	वैदिक योगामृत	आचार्य रामप्रसाद वेदालङ्कार	२६४	१००/-
५.	महान् विदुर के महान् उपदेश	,, ,, ,,	२००	१५०/-
६.	वैदिक उपदेशामृत	,, ,, ,,	३९६	२००/-
७.	वैदिक प्रार्थना-सौरभ	,, ,, ,,	३७६	१२५/-
८.	वैदिक सुधा	,, ,, ,,	२८०	१२०/-
९.	वैदिक रश्मि	,, ,, ,,	२४०	१००/-
१०.	वैदिक पुष्पाञ्जलि	,, ,, ,,	५७८	२००/-
११.	वैदिक उपनिषदामृत	,, ,, ,,	३२४	१३०/-
१२.	आदर्श परिवार	,, ,, ,,	३१२	१५०/-

Our New publication :—

Fountain Head of Relegion

by Rai Bahadur **Pt. GANGA PRASAD**

M.A., M.R.A.S.Retd. Cheif Justice

Pg. 230 Rs. 140.00

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास की हितकारी प्रकाशन योजना

हम लम्बे समय से अनुभव करते रहे हैं कि पुस्तकों के पाठक कम होते जा रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं, जिनमें पुस्तकों का महँगा होना भी एक कारण है। वर्तमान में पुस्तकों के मूल्य और व्यक्ति द्वारा प्रतिदिन पढ़े जानेवाले पृष्ठों का हिसाब लगाएँ तो आम आदमी की आय का एक बड़ा हिस्सा इसमें व्यय हो जाए। ऐसी स्थिति में व्यक्ति पुस्तकों से दूर ही रहेगा या फिर वह सस्ती पुस्तकें अथवा पत्रिकाएँ क्रय करेगा, जो छपती तो लाखों की संख्या में हैं, लेकिन प्रायः हित नहीं करती हैं। इस समस्या के निराकरण हेतु हमने एक हितकारी प्रकाशन योजना प्रारम्भ की है जिसके अन्तर्गत उत्तम कागज पर कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसैट पर छपाई की जाकर सुन्दर सज्जा में आकर्षक व टिकाऊ आवरण-जिल्द तैयार करवाकर लागत मूल्य पर पुस्तकें सदस्यों को उपलब्ध करवाई जाती हैं।

इस योजना का सदस्यता शुल्क २५०/- (दो सौ पचास रुपये) है। यह प्रारम्भ में एक बार सदस्य को जमा कराने होते हैं। आप हमेशा इस योजना के सदस्य रहेंगे। योजना की सदस्यता समाप्त नहीं की जा सकेगी। आप इसे अपने स्थान पर किसी अन्य के नाम परिवर्तित करा सकते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत वर्ष में दो बार में चार सौ रुपये के लगभग की पुस्तकें प्रकाशित होंगी। इन पुस्तकों का लेना सदस्यों के लिए अनिवार्य होगा।

एक सदस्य को एक पुस्तक लागत मूल्य+डाक व्यय पर प्राप्त होगी। एक सदस्य कितनी ही प्रतियों का सदस्य बन सकता है। वह जितनी प्रतियों का सदस्य बनेगा उसे उतना ही सदस्यता शुल्क जमा कराना होगा तथा उतनी ही प्रतियाँ लेनी होंगी।

पुस्तकें प्रकाशित होने पर बिना सूचना के सदस्यों को पंजीकृत डाक या कूरियर द्वारा भिजवाई जाएँगी। पुस्तक प्राप्त होने पर बीस दिन के अन्दर पुस्तकों का मूल्य+डाक या कूरियर व्यय भिजवा सकेंगे। समय से राशि नहीं भिजवाने पर अगली पुस्तकें वी० पी० द्वारा भिजवाई जाएँगी।

पुस्तकें वापिस आने पर क्षतिपूर्ति सदस्यता शुल्क से की जाएगी व सदस्यता समाप्त समझी जाएगी। यदि शुल्क में कुछ राशि बचती है तो वह वापिस नहीं होगी। क्षतिपूर्ति की राशि जमा करवाकर सदस्यता पुनः प्रारम्भ की जा सकती है।

इस योजना के अन्तर्गत समय-समय पर अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें विशेष छूट के साथ उपलब्ध कराई जाएँगी, जिनका लेना सदस्य की इच्छा पर निर्भर करेगा।

आशा है इस लाभकारी योजना के आप स्वयं सदस्य बनकर अपने परिचितों को भी बनाकर विचार के इस प्रसार अभियान में हमारा उत्साहवर्धन करेंगे।

हिण्डौन सिटी में बैंक—१. स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, २. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, ३. पंजाब नेशनल बैंक, ४. दी बैंक ऑफ राजस्थान लि०, ५. बैंक ऑफ बड़ौदा, ६. दी ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स। आप हमारे पंजाब नेशनल बैंक के खाता सं० ४१६१ ०००१ ०००३ २१२१ श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास में सीधे रुपये जमा करवा सकते हैं।